ऋग्वेद संहिता

[सरल हिन्दी भावार्थ सहित]

भाग-४

[मण्डल ९-१०]

सम्पादक

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

*

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना

गायत्री तपोभूमि, मथुरा (उ. प्र.)

२००५

मूल्य : १२५ रुपये

भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥

***

उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुख स्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अन्तरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करे।

*

— ऋग्वेद ३.६२.१०

अनुक्रमणिका

संकेत-विवरण

अथर्व० = अथर्ववेद
आ० श्रौ० = आश्वलायन श्रौतसूत्र
आर्षा० = आर्षानुक्रमणी
उत्त० = उत्तरार्द्ध
ऋ० = ऋग्वेद
ऐत० ब्रा० = ऐतरेय ब्राह्मण
काठ० सं० = काठक संहिता
काठ० संक० = काठक संकलन
कौषी० ब्रा० = कौषीतकि ब्राह्मण
गो० उ० = गोपथ उपनिषद्
गो० ब्रा० = गोपथ ब्राह्मण
ता० म० = ताण्ड्य महाब्राह्मण
तैत्ति० ब्रा० = तैत्तिरीय ब्राह्मण
तैत्ति० सं० = तैत्तिरीय संहिता
द्र० = द्रष्टव्य
नि० = निरुक्त
नि० दु० = निरुक्त दुर्गवृत्त
पञ्च० ब्रा० = पञ्चविंश ब्राह्मण
पु० = पुराण
पू० = पूर्वार्द्ध
बृह० = बृहद्देवता
ब्राहना० पु० = ब्राह्मणपुराण
भ० गी० = भगवद् गीता
महा० अनु० = महाभारत अनुशासनपर्व
महा० वन० = महाभारत वनपर्व
मही० भा० = महीधर भाष्य
मैत्रा० ब्रा० = मैत्रायणी ब्राह्मण
मैत्रा० सं० = मैत्रायणी संहिता
यजु० = यजुर्वेद
वा० पु० = वायु पुराण
वि० पु० = विष्णु पुराण
शत० ब्रा० = शतपथ ब्राह्मण
शां० आ० = शांखायन आरण्यक
साम० = सामवेद
सा० भा० = सायण भाष्य

॥ अथ नवमं मण्डलम् ॥

[सूक्त - १]

[ऋषि - मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । देवता - पवमान सोम । छन्द - गायत्री ।]

नवम मण्डल के लगभग सभी सूक्तों के देवता पवमान सोम हैं । वेद में सोम के सम्बन्ध में अनेक धारणाएँ हैं । सोम ऐसा दिव्य प्रवाह है, जो सूर्य को तेजस्वी बनाता है , प्रकृति की अनेक प्रक्रियाओं का संचालक है । किरणों एवं जल धाराओं के साथ प्रवहणशील है, वनस्पतियों में स्थित है, प्राणियों के मन और इन्द्रियों को पुष्ट करने वाला है आदि । सोमवल्ली से निकाले गये सोमरस को भी सोम ही कहा गया है । विभिन्न मंत्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार के सोम प्रवाहों का वर्णन है । कुछ आचार्यों ने मंत्रों का केवल यज्ञीय कर्मकाण्ड-परक अर्थ किया है, जिसमें सोम को निचोड़ कर विभिन्न प्रकार से यज्ञार्थ तैयार करने की बात की गई है; किन्तु मंत्र सोम की विभिन्न धाराओं के उद्घोषक हैं , इसलिए इस भावार्थ में यथा साध्य स्वाभाविक धाराओं-प्रक्रियाओं को इंगित करने वाले अर्थ किये गये हैं —

७६९१. स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥१ ॥

हे सोमदेव ! आप इन्द्रदेव के लिए पान करने हेतु निकाले गये हैं, अत: अत्यन्त स्वादिष्ट, हर्ष प्रदायक धार के रूप में प्रवाहित हों ॥१ ॥

७६९२. रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहतम् । द्रुणा सधस्थमासदत् ॥२ ॥

दुष्टों का नाश करने वाले, मानवों के लिए हितकारी, सोमदेव शुद्ध होकर सुवर्ण पात्र (द्रोण कलश) में भरकर यज्ञ स्थल पर प्रतिष्ठित हो गये हैं ॥२ ॥

७६९३. वरिवोधातमो भव मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः । पर्षि राधो मघोनाम् ॥३ ॥

हे सोमदेव ! आप महान् ऐश्वर्य प्रदाता तथा शत्रुओं (विकारों) को नष्ट करने वाले हों । वृत्रासुर का हनन करके, उसका महान् धन हमें प्रदान करें ॥३ ॥

[इस ऋचा में पौराणिक वृत्रासुर का धन अनीति से बचाकर सत्कार्यों के लिए देने तथा दुष्प्रवृत्ति रूपी असुर से जीवन-सम्पदा छीनकर देव प्रयोजनों में लगाने का भाव है ।]

७६९४. अभ्यर्ष महानां देवानां वीतिमन्धसा । अभि वाजमुत श्रवः ॥४ ॥

हे सोमदेव ! आप श्रेष्ठ देवगणों के यज्ञ में अन्न सहित पहुँचें तथा हमें अन्न और बल प्रदान करें ॥४ ॥

७६९५. त्वामच्छा चरामसि तदिदर्थं दिवेदिवे । इन्दो त्वे न आशसः ॥५ ॥

हे सोम ! हमारी इच्छायें सदैव आपको समर्पित रहती हैं, अत: हम उत्तम विधि से आपकी सेवा करते हैं ॥५ ॥

७६९६. पुनाति ते परिस्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता । वारेण शश्वता तना ॥६ ॥

हे सोमदेव ! सूर्य पुत्री (उषा) आपके रस को सनातन (प्रकाशरूप) आवरण से पवित्र बनाती है ॥६ ॥

७६९७. तमीमण्वीः समर्य आ गृभ्णन्ति योषणो दश । स्वसारः पार्ये दिवि ॥७ ॥

सोम को पवित्र करते समय बहिनों के समान दस अँगुलियाँ (रस निकालने के लिए) उस सोमवल्ली को पकड़ती हैं ॥७ ॥

७६९८. तमीं हिन्वन्त्यग्रुवो धमन्ति बाकुरं दृतिम् । त्रिधातु वारणं मधु ॥८ ॥

तेजस्वी दिखाई पड़ने वाले इस सोमरस को अँगुलियाँ लातीं और दबाकर निकालती हैं । इस दु:ख निवारक मधुर रस में तीन शक्तियाँ (शरीर, मन और बुद्धि को सामर्थ्य प्रदान करने वाली) विद्यमान हैं ॥८ ॥

७६९९. अभी३ ममघ्न्या उत श्रीणन्ति धेनवः शिशुम् । सोममिन्द्राय पातवे ॥९ ॥

न मारी जाने योग्य गौएँ अपने बछड़े को पुष्ट करने के लिए उन्हें (दूध) पिलाती हैं । (इसी प्रकार) सोम इन्द्रदेव को पुष्ट बनाता है ॥९ ॥

७७००. अस्येदिन्द्रो मदेष्वा विश्वा वृत्राणि जिघ्नते । शूरो मघा च मंहते ॥१० ॥

सोमपान करने से आनन्दित हुए इन्द्रदेव शत्रुओं का संहार करके याज्ञिकों को धन प्रदान करते हैं ॥१० ॥

[सूक्त - २]

[**ऋषि** - मेधातिथि काण्व । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७७०१. पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंह्या । इन्द्रमिन्दो वृषा विश ॥१ ॥

हे सोमदेव ! देव शक्तियों का सान्निध्य पाने की इच्छा करने वाले आप तीव्र गति से शोधित हों । हे सोमदेव ! बलवर्द्धक आप इन्द्रदेव की तृप्ति के लिए प्रतिष्ठित हों ॥१ ॥

७७०२. आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः । आ योनिं धर्णसिः सदः ॥२ ॥

हे सोमदेव ! शौर्यवान्, दीप्तिमान् और सर्वधारक गुणों से युक्त आप हमें प्रचुर मात्रा में अन्न और बल प्रदान करें तथा आप निर्धारित स्थल पर पधारें ॥२ ॥

७७०३. अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः । अपो वसिष्ट सुक्रतुः ॥३ ॥

शोधित सोमरस की धाराएँ प्रिय मधुर रस को पात्र में संगृहीत करती हैं । सत्कर्मों से युक्त याज्ञिक सोम को जल में मिश्रित करते हैं ॥३ ॥

७७०४. महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः । यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥४ ॥

हे सोमदेव ! जिस समय आप गौ (किरणों अथवा गौ दुग्ध) में मिश्रित होते हैं, उस समय महान् जल (श्रेष्ठ रसादि) आपकी ओर आकर्षित होता है ॥४ ॥

७७०५. समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः । सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥५ ॥

जल से युक्त, देवलोक का धारक और आधारभूत हमारा इच्छित सोमरस जल में मिश्रित और शोधित होकर हमारे निकट आता है ॥५ ॥

७७०६. अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः । सं सूर्येण रोचते ॥६ ॥

मित्र के समान प्रिय, शक्तिमान्, हरिताभ सोमरस, निचोड़े जाते समय शब्द करता हुआ, उसी प्रकार प्रकाशित होता है, जिस प्रकार सूर्यदेव प्रकाशित होते हैं ॥६

७७०७. गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भसे ॥७ ॥

हे सोमदेव ! आपकी शक्ति-सामर्थ्य से ही कर्म की प्रेरणा पाने वाले स्तोतागण वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हैं । वे स्तुति मन्त्रों द्वारा आनन्द वृद्धि के लिए आपको सुशोभित करते हैं ॥७ ॥

७७०८. तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे । तव प्रशस्तयो महीः ॥८ ॥

संसार के कल्याण की इच्छा से शत्रुओं का संहार करने वाले हे सोमदेव ! हम आनन्दवृद्धि के लिए महान् स्तोत्रों से आपकी स्तुति करते हैं ॥८ ॥

७७०९. अस्मभ्यमिन्दविन्द्रयुर्मध्वः पवस्व धारया । पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ॥९ ॥

हे सोमदेव ! प्राण-पर्जन्य की वर्षा के समान आप हमारी इन्द्रियों की शक्ति-सामर्थ्य को अपनी अमृत रूपी मधुर धारा से बढ़ायें ॥९ ॥

७७१०. गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत । आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥१० ॥

हे सोमदेव ! यज्ञ के मूल तथा प्रमुख आत्मा के रूप में आप हमें गौ, अश्व, अन्न और सुसन्तति प्रदान करने वाले हों ॥१० ॥

[सूक्त - ३]

[**ऋषि** - शुनः शेप आजीगर्ति । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७७११. एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयति । अभि द्रोणान्यासदम् ॥१ ॥

अमरणधर्मा ये दिव्य सोमदेव गतिमान् पक्षी के सदृश, कलश में वेग से प्रविष्ट होते हैं ॥१ ॥

७७१२. एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति । पवमानो अदाभ्यः ॥२ ॥

अँगुलियों द्वारा निचोड़कर शोधित किया गया सोम, स्वयं अदम्य रहकर शत्रुओं का दमन करता है ॥२ ॥

७७१३. एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः । हरिर्वाजाय मृज्यते ॥३ ॥

इस शोधित किये गये सोमरस को उद्गातागण स्तुतियों द्वारा उसी तरह विभूषित करते हैं, जिस प्रकार युद्धोन्मुख अश्व को सब प्रकार से सुसज्जित किया जाता है, मंत्रशक्ति द्वारा शोधित सोम को अधिक प्रभावोत्पादक बनाया जाता है ॥३ ॥

७७१४. एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः । पवमानः सिषासति ॥४ ॥

यह शोधित, बलयुक्त सोम अपनी सामर्थ्य से उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त करते हुए उसके समुचित वितरण की इच्छा करता है ॥४ ॥

७७१५. एष देवो रथर्यति पवमानो दशस्यति । आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥५ ॥

ये शोधित दिव्य सोमदेव ध्वनि करते हुए यज्ञ स्थल में जाने हेतु उपयुक्त माध्यम की कामना करते हैं । वे याजकों को इष्ट-पदार्थ प्रदान करने की इच्छा रखते हैं ॥५ ॥

७७१६. एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो वि गाहते । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥६ ॥

श्रेष्ठ पुरुषों से प्रशंसा पाने वाले ये दिव्य सोमदेव, हविदाता को धन-वैभव प्रदान करते हुए, जल में मिश्रित होते हैं ॥६ ॥

७७१७. एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया । पवमानः कनिक्रदत् ॥७ ॥

शोधित होकर , शब्द करते हुए धारा रूप में प्रकट सोमदेव , शत्रुलोकों (प्रकृति चक्र में आने वाले अवरोधों) को जीतकर यज्ञ के प्रभाव से स्वर्ग की प्राप्त करते हैं ॥७ ॥

७७१८. एष दिवं व्यासरत्तिरो रजांस्यस्पृतः । पवमानः स्वध्वरः ॥८ ॥

उत्तम, यज्ञकारक, शोधित, दिव्य सोमदेव शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ हुए, वे इस यज्ञ-स्थल से दिव्यलोक को गमन करते हैं ॥८ ॥

७७१९. एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्षति ॥९ ॥

सनातन रीति से संस्कारित किया यह हरिताभ सोम देवों के लिए छानकर शोधित किया जाता है ॥९ ॥

७७२०. एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः । धारया पवते सुतः ॥१० ॥

विशिष्ट कार्यक्षमता के जनक और पोषक आहार उत्पन्न करने वाले ये सोमदेव अपने प्रवाह के क्रम में स्वाभाविक रूप से शुद्ध हो जाते हैं ॥१० ॥

[सूक्त - ४]

[**ऋषि** - हिरण्यस्तूप आङ्गिरस । देवता - पवमान सोम । छन्द - गायत्री ।]

७७२१. सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥१ ॥

अत्यधिक स्तुत्य, पवित्र हे सोमदेव ! आप देवशक्तियों को उपलब्ध हों तथा बैरियों पर विजय प्राप्ति के बाद हमें कीर्तिमान् बनायें ॥१ ॥

७७२२. सना ज्योतिः सना स्व१र्विश्वा च सोम सौभगा । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥२ ॥

हे सोमदेव ! आप हमें तेजस्विता प्रदान करें । सभी स्वर्गोपम सुख और सौभाग्य देते हुए आप हमारा कल्याण करें ॥२ ॥

७७२३. सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥३ ॥

हे सोमदेव ! आप हमें बल और यज्ञीय कर्तव्य पालन करने की शक्ति प्रदान करें तथा शत्रुपक्ष को पराजित करके हमारा कल्याण करें ॥३ ॥

७७२४. पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥४ ॥

सोमरस शोधित करने वाले हे याजको ! आप इन्द्रदेव के पान हेतु सोमरस को पवित्र करें । (जिस पीकर) वे हमारा कल्याण करें ॥४ ॥

७७२५. त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥५ ॥

हे सोमदेव ! आप अपने सत्कर्मों और संरक्षण-युक्त साधनों से हमें सूर्यदेव की ओर प्रेरित करें, जिससे हमारा श्रेष्ठ हित हो ॥५ ॥

७७२६. तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक्पश्येम सूर्यम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥६ ॥

हे सोमदेव ! आपके द्वारा प्रदत्त सद्ज्ञान से एवं आपके संरक्षण से युक्त हम बहुत वर्षों तक सूर्यदर्शन (दीर्घायुष्य) से लाभान्वित हों, आप हमारा मंगल करें ॥६ ॥

७७२७. अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥७ ॥

हे श्रेष्ठ शस्त्रधारी सोमदेव ! लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के धन से आप हमें सम्पन्न करें, जिससे हम सुख को प्राप्त करें ॥७ ॥

७७२८. अभ्य१र्षानपच्युतो रयिं समत्सु सासहिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥८ ॥

हे शक्तिसम्पन्न सोमदेव ! युद्ध-भूमि में विजयी होने वाले और बैरियों को पराजित करने वाले आप कलश में स्थापित हों और हमें कल्याण से युक्त करें ॥८ ॥

७७२९. त्वां यज्ञैरवीवृधन् पवमान विधर्मणि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥९ ॥

हे पवित्रता से युक्त सोमदेव ! अति फलदायक यज्ञ में यजमान उत्तम स्तोत्रों का गान करते हुए आपकी महिमा को बढ़ाते हैं , आप हमें कल्याण से युक्त करें ॥९ ॥

७७३०. रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥१० ॥

हे सोमदेव ! हमें विचित्र अश्वों से सम्पन्न और सर्वलोक हितकारी वैभव पर्याप्त मात्रा में प्रदान करें जिससे हम सुख को प्राप्त करें ॥१० ॥

[सूक्त - ५]

[**ऋषि** - असित काश्यप अथवा देवल काश्यप। **देवता** - आप्रीसूक्त (१ इध्म या समिद्ध अग्नि, २ तनूनपात् , ३ इळ, ४ बर्हि, ५ देवी द्वार, ६ उषासानक्ता, ७ दिव्य होतागण प्रचेतस् , ८ सरस्वती, इळा, भारती - तीन देवियाँ, ९ त्वष्टा, १० वनस्पति, ११ स्वाहाकृति ।) **छन्द** - गायत्री, ८-११ अनुष्टुप् ।]

७७३१. समिद्धो विश्वतस्पतिः पवमानो वि राजति । प्रीणन् वृषा कनिक्रदत् ॥१ ॥

सबका स्वामी, तेजस्वी, बलशाली सोम शब्द करता हुआ पवित्र होता है और सबको सन्तुष्ट करता है ॥१ ॥

७७३२. तनूनपात् पवमानः शृङ्गे शिशानो अर्षति । अन्तरिक्षेण रारजत् ॥२ ॥

शरीर को क्षीण न करने वाला यह पवित्र सोमरस अन्तरिक्ष से चमकते हुए उच्च भाग से तेजस्वीरूप में स्रवित होता है ॥२ ॥

७७३३. ईळेन्यः पवमानो रयिर्वि राजति द्युमान् । मधोर्धाराभिरोजसा ॥३ ॥

प्रशंसा के योग्य यह पवित्र सोम तेजस्वी होकर अपनी मधुर रस धाराओं से सुशोभित होता हुआ (याज्ञिकों को) इच्छित धन प्रदान करता है ॥३ ॥

७७३४. बर्हिः प्राचीनमोजसा पवमानः स्तृणन् हरिः । देवेषु देव ईयते ॥४ ॥

हरिताभ दिव्य सोम शोधित होते समय देवगणों के सम्मुख फैलाये गये आसन की ओर अपनी शक्ति से बढ़ता है ॥४ ॥

७७३५. उदातैर्जिहते बृहद् द्वारो देवीर्हिरण्ययीः । पवमानेन सुष्टुताः ॥५ ॥

उत्तम विधि से पूजित स्वर्णिम किरणें दिव्य सोम के साथ अपने पराक्रम से सभी ओर दृष्टिगोचर होती हैं ॥५॥

७७३६. सुशिल्पे बृहती मही पवमानो वृषण्यति । नक्तोषासा न दर्शते ॥६ ॥

यह सोम महान् गुणों से युक्त, पूज्य, दर्शनीय तथा सुन्दर उषा (दिवारात्रि के आगमन) की इच्छा करता है ॥६ ॥

७७३७. **उभा देवा नृचक्षसा होतारा दैव्या हुवे । पवमान इन्द्रो वृषा ॥७ ॥**

मानव मात्र के द्रष्टा तथा दिव्य होता, इन दोनों (इन्द्र तथा सोम) देवताओं की हम प्रार्थना करते हैं ॥७ ॥

७७३८. **भारती पवमानस्य सरस्वतीळा मही । इमं नो यज्ञमा गमन्तिस्रो देवीः सुपेशसः ॥**

हमारे इस पवित्र यज्ञ में भारती (भाषा की अधिष्ठात्री) , सरस्वती (विद्या की अधिष्ठात्री) तथा इडा (वाक् की अधिष्ठात्री) तीनों देवियाँ पधारें ॥८ ॥

७७३९. **त्वष्टारमग्रजां गोपां पुरोयावानमा हुवे । इन्दुरिन्द्रो वृषा हरिः पवमानः प्रजापतिः ॥**

सनातन प्रजापालक, सृष्टिकर्त्ता, आगे ले जाने वाले त्वष्टा देव का हम आवाहन करते हैं । हरिताभ पवित्र सोम तथा इच्छाओं की पूर्ति करने वाले प्रजापालक इन्द्रदेव का भी हम इस यज्ञ में आवाहन करते हैं ॥९ ॥

७७४०. **वनस्पतिं पवमान मध्वा समङ्ग्धि धारया ।**
सहस्रवल्शं हरितं भ्राजमानं हिरण्ययम् ॥१० ॥

हे पवमान सोमदेव ! आप अपनी सहस्रों मधुर धाराओं के संयोग से वनस्पतियों को हरा (विकसित) करने वाले तथा स्वर्णिम प्रकाशयुक्त हजारों धाराओं से (जीव-जगत् को) सिंचित करने वाले हैं ॥१० ॥

७७४१. **विश्वे देवाः स्वाहाकृतिं पवमानस्या गत ।**
वायुर्बृहस्पतिः सूर्योऽग्निरिन्द्रः सजोषसः ॥११ ॥

हे वायु, बृहस्पति, सूर्य, अग्नि तथा इन्द्रदेव ! आप सभी इस यज्ञ में आएँ तथा उत्तम सम्मान प्राप्त करें ॥११ ॥

[सूक्त - ६]

[**ऋषि** - असित काश्यप अथवा देवल काश्यप । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७७४२. **मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः । अव्यो वारेष्वस्मयुः ॥१ ॥**

बलवर्धक , देवताओं के अभीष्ट , हे सोमदेव ! आप हमें संरक्षण प्रदान करें और आनन्ददायक धारा के रूप में छलनी से शोधित हों ॥१ ॥

७७४३. **अभि त्यं मद्यं मदमिन्दविन्द्र इति क्षर । अभि वाजिनो अर्वतः ॥२ ॥**

हे सोमदेव ! आप परमात्मा हैं , अतः आनन्द प्रदान करने वाले सोमरस की वर्षा करें और हमें बलशाली घोड़े भी प्रदान करें ॥२ ॥

७७४४. **अभि त्यं पूर्व्यं मदं सुवानो अर्ष पवित्र आ । अभि वाजमुत श्रवः ॥३ ॥**

हे सोमदेव ! आप रस निकालते समय शाश्वत आनन्द की वृद्धि करने वाले बनकर श्रेष्ठ यज्ञ स्थल में पधारें तथा हमें अन्न और बल प्रदान करें ॥३ ॥

७७४५. **अनु द्रप्सास इन्दव आपो न प्रवतासरन् । पुनाना इन्द्रमाशत ॥४ ॥**

शीघ्रगामी, शोधित सोमरस उत्तम मार्ग से जलधाराओं के समान प्रवाहित होकर इन्द्रदेव को प्राप्त हों ॥४ ॥

७७४६. **यमत्यमिव वाजिनं मृजन्ति योषणो दश । वने क्रीळन्तमत्यविम् ॥५ ॥**

वन में उत्पन्न होने वाले, सूर्य से भी अधिक तेजस्वी, जिसको चपल घोड़े सदृश दस अँगुलियाँ निचोड़ती हैं ॥

७७४७. तं गोभिर्वृषणं रसं मदाय देववीतये । सुतं भराय सं सृज ॥६ ॥

उस बलवर्धक, देवगणों के लिए आनन्ददायी सोमरस को गाय के दूध के साथ मिश्रित करते हैं ॥६ ॥

७७४८. देवो देवाय धारयेन्द्राय पवते सुतः । पयो यदस्य पीपयत् ॥७ ॥

यह दिव्य सोमरस इन्द्रदेव के लिए धार रूप से पात्र में गिरता है, जो इन्द्रदेव के लिए पुष्टिकारक है ॥७ ॥

७७४९. आत्मा यज्ञस्य रंह्या सुष्वाणः पवते सुतः । प्रत्नं नि पाति काव्यम् ॥८ ॥

यज्ञ की आत्मा के रूप में यह सोमरस यजमान की कामनाओं की पूर्ति के लिए पात्र में द्रुतगति से निःसृत होता है तथा सनातन स्तोत्रों की मर्यादा का पालन करता है (मन्त्र के भाव से प्रवाहित होता है) ॥८ ॥

७७५०. एवा पुनान इन्द्रयुर्मदं मदिष्ठ वीतये । गुहा चिद्दधिषे गिरः ॥९ ॥

हे आनन्दवर्धक सोमदेव ! स्तुतिरूपी वाणी को स्वीकार कर आप इन्द्रदेव के पान करने के उद्देश्य से आनन्ददायी बनकर यज्ञशाला में स्थापित हों ॥९ ॥

[सूक्त - ७]

[**ऋषि** - असित काश्यप अथवा देवल काश्यप । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७७५१. असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः । विदाना अस्य योजनम् ॥१ ॥

यजमान एवं देवताओं के सम्बन्ध में भली-भाँति जानते हुए, यशस्वी सोमदेव धर्म कार्यों की तरह यज्ञ मार्ग में आरूढ़ होते हैं ॥१ ॥

७७५२. प्र धारा मध्वो अग्रियो महीरपो वि गाहते । हविर्हविष्षु वन्द्यः ॥२ ॥

हवियों में श्रेष्ठ, प्रशंसित, हविरूप सोम जल में मिश्रित होता हुआ मधुर रसधार से पात्र में स्थिर हो रहा है ॥

७७५३. प्र युजो वाचो अग्रियो वृषाव चक्रदद्वने । सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥३ ॥

आहुतियों में अग्रिम, वाणी का उत्पादक, शक्तिशाली, सत्ययुक्त और अहिंसक यह सोमरस जल के साथ मिश्रित होकर यज्ञशाला में प्रविष्ट होता है ॥३ ॥

७७५४. परि यत्काव्या कविर्नृम्णा वसानो अर्षति । स्वर्वाजी सिषासति ॥४ ॥

प्रज्ञावान् सोमदेव अपनी शक्ति-सामर्थ्य से मनुष्यों में पवित्रता का संचार करते हैं । वे जब स्तुतियों को स्वीकार करते हैं, तब शक्तिशाली इन्द्रदेव स्वर्ग से यज्ञ स्थल पर आने के लिए उद्यत होते हैं ॥४ ॥

७७५५. पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति । यदीमृण्वन्ति वेधसः ॥५ ॥

याज्ञिकों की प्रेरणा से संस्कारित सोमदेव; राजा की भाँति प्रजा की रक्षा तथा शत्रुओं का संहार करने के लिए तैयार होते हैं ॥५ ॥

७७५६. अव्यो वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति । रेभो वनुष्यते मती ॥६ ॥

जल मिश्रित हरिताभ सोम, शोधक (यन्त्र) द्वारा पवित्र होते समय, ऋत्विजों द्वारा की गई स्तुतियों को स्वीकार करते हुए, ध्वनि के साथ पात्र में स्थिर हो रहा है ॥६ ॥

७७५७. स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति । रणा यो अस्य धर्मभिः ॥७ ॥

जो याजक इस सोम को निकालने एवं शुद्ध करने में संलग्न रहते हैं, वे आनन्दवर्धक सोम के साथ वायु इन्द्र और अश्विनीकुमारों का सान्निध्य लाभ प्राप्त करते हैं ॥७ ॥

७७५८. **आ मित्रावरुणा भगं मध्वः पवन्त ऊर्मयः । विदाना अस्य शक्मभिः ॥८ ॥**

जिन ऋत्विजों द्वारा मधुर सोम की धाराएँ मित्र, वरुण और भग देवों के निमित्त प्रवाहित होती हैं, ऐसे सोम की महिमा से परिचित याजक आनन्द की प्राप्ति करते हैं ॥८ ॥

७७५९. **अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये । श्रवो वसूनि सं जितम् ॥९ ॥**

हे पृथ्वी और द्युलोक के अधिष्ठाता देवता ! सोमरस रूप श्रेष्ठ पोषक आहार को प्राप्त करने के लिए आप हमें धन-धान्य के रूप में अपार वैभव प्रदान करें ॥९ ॥

[सूक्त - ८]

[**ऋषि** - असित काश्यप अथवा देवल काश्यप । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७७६०. **एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन् । वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥१ ॥**

इन्द्रदेव की सामर्थ्य में वृद्धि करने वाला यह सोम इन्द्रदेव को प्रिय लगने वाले रसों की वर्षा करता है ॥१ ॥

७७६१. **पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना । ते नो धान्तु सुवीर्यम् ॥२ ॥**

हे शुद्ध सोमदेव ! आप वायु और अश्विनीकुमारों के साथ मिलकर हमें वीरोचित श्रेष्ठता प्रदान करें ॥२ ॥

७७६२. **इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय । ऋतस्य योनिमासदम् ॥३ ॥**

हे पवित्र सोमदेव ! आप इन्द्रदेव की आराधना के लिए हमारे हृदय में प्रेरणा उत्पन्न करें । हम देवों के अनुकूल यज्ञ कर्म हेतु प्रस्तुत हुए हैं ॥३ ॥

७७६३. **मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः । अनु विप्रा अमादिषुः ॥४ ॥**

हे सोमदेव ! दस दिशाएँ आपका मार्जन करती हैं, सप्त धारण शक्तियाँ आपको संवर्द्धित करती हैं । विप्र-सत्पुरुष आपको (स्तुतियों या यज्ञीय कृत्यों द्वारा) सन्तुष्ट करते हैं ॥४ ॥

७७६४. **देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्यः । सं गोभिर्वासयामसि ॥५ ॥**

शोधित होने वाले सुखद हे सोम ! देवताओं को आनन्दित करने के लिए हम आपको गौदुग्ध में मिलाते हैं ॥

७७६५. **पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः । परि गव्यान्यव्यत ॥६ ॥**

शुद्ध होकर कलश में स्थापित होने वाले हरिताभ सोम को गौ दुग्ध धारण कर लेता है ॥६ ॥

७७६६. **मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः । इन्दो सखायमा विश ॥७ ॥**

हे सोमदेव ! आप हमें धन-ऐश्वर्य से युक्त करने के लिए पवित्र हों, द्वेष करने वालों का नाश करें और मित्ररूप इन्द्रदेव के साथ एकाकार हो जाएँ ॥७ ॥

७७६७. **वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि । सहो नः सोम पृत्सु धाः ॥८ ॥**

हे सोमदेव ! आप आकाश से पृथ्वी पर दिव्यवृष्टि करें, पृथ्वी पर पोषक रस उत्पन्न करें और हमें संघर्ष की शक्ति प्रदान करें ॥८ ॥

७७६८. **नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम्। भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥९ ॥**

हे सोमदेव ! समस्त प्राणियों का निरीक्षण करने वाले सर्वज्ञ इन्द्रदेव के द्वारा पान किये जाने वाले आप हमें सन्तान, अन्न, बल और सद्ज्ञान आदि प्रदान करें ॥९ ॥

[सूक्त - ९]

[**ऋषि** - असित काश्यप अथवा देवल काश्यप। **देवता** - पवमान सोम। **छन्द** - गायत्री।]

७७६९. **परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः। सुवानो याति कविक्रतुः ॥१ ॥**

बुद्धि को बढ़ाने वाला यह सोम, सोमरस निकालने के दो फलकों (दो पाटों द्युलोक एवं पृथ्वी) के बीच में स्थित होकर ब्रह्मनिष्ठों द्वारा सचेतन प्राणियों तक पहुँचाया जाता है ॥१ ॥

७७७०. **प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहे। वीत्यर्ष चनिष्ठया ॥२ ॥**

हे सोमदेव ! आपके स्थायित्व के लिए प्रयत्नशील, द्रोहरहित, मित्रभाव से गुणगान करने वाले, मनुष्यों के लिए पोषक आहार के रूप में उपयोग किए गए आप स्तुति के योग्य हैं ॥२ ॥

७७७१. **स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत्। महान्मही ऋतावृधा ॥३ ॥**

संस्कारित होता हुआ वह सोमरूपी महान् पुत्र, यज्ञ को पोषण देने वाले प्रसिद्ध माता-पिता अन्तरिक्ष और पृथ्वी को सुशोभित करता है ॥३ ॥

७७७२. **स सप्त धीतिभिर्हितो नद्यो अजिन्वदद्रुहः। या एकमक्षि वावृधुः ॥४ ॥**

धारण शक्तियों से सुरक्षित, द्रोहरहित सोम (प्रकृति के) सप्त प्रवाहों अथवा नदियों को आनन्दित करता है, जो (वे सप्त-नदियाँ) इस क्षीण न होने वाले सोम को संवर्द्धित करती हैं ॥४ ॥

७७७३. **ता अभि सन्तमस्तृतं महे युवानमा दधुः। इन्दुमिन्द्र तव व्रते ॥५ ॥**

हे इन्द्रदेव ! यज्ञ में देवताओं को अर्पित करने के लिए अहिंसित, बलवान्, तरुण सोम को वे (धारण क्षमताएँ) अपने अंदर समाहित करती हैं ॥५ ॥

७७७४. **अभि वह्निरमर्त्यः सप्त पश्यति वावहिः। क्रिविर्देवीरतर्पयत् ॥६ ॥**

हवनीय पदार्थों से देवताओं को तृप्त करने वाला, यज्ञ संचालक, न मारे जाने वाला सोम सातों प्रवाहों को देखता है। वह कूप के समान जल से पूर्ण होकर दिव्य प्रवाहों को तृप्ति प्रदान करता है ॥६ ॥

७७७५. **अवा कल्पेषु नः पुमस्तमांसि सोम योध्या। तानि पुनान जङ्घनः ॥७ ॥**

पवित्रता प्रदान करने वाले हे दिव्य सोमदेव ! आप युद्ध की इच्छा करने वाले राक्षसों का संहार कर प्रत्येक अवसरों पर हमारा संरक्षण करें ॥७ ॥

७७७६. **नू नव्यसे नवीयसे सूक्ताय साधया पथः। प्रत्नवद्रोचया रुचः ॥८ ॥**

स्तुति योग्य, हमारे प्रशंसनीय हे सोमदेव ! सूक्तों को सुनने के लिए आप सनातन रूप में अपना तेज प्रकट करते हुए उत्तम मार्ग से पधारें ॥८ ॥

७७७७. **पवमान महि श्रवो गामश्वं रासि वीरवत्। सना मेधां सना स्वः ॥९ ॥**

हे सोमदेव ! आप अन्न, गौ तथा अश्व सहित वीर सन्तति प्रदान करने वाले हैं । इन सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से युक्त करते हुए आप हमें सद्बुद्धि प्रदान करें ॥९ ॥

[सूक्त - १०]

[**ऋषि** - असित काश्यप अथवा देवल काश्यप । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७७७८. प्र स्वानासो रथा इवार्वन्तो न श्रवस्यवः । सोमासो राये अक्रमुः ॥१ ॥

अश्वों एवं रथों की भाँति वेगपूर्वक तथा ध्वनि करते हुए सोमरस का शोधन हो रहा है । शोधित सोमदेव हमें अपार यश एवं वैभव प्रदान करते हैं ॥१ ॥

७७७९. हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः । भरासः कारिणामिव ॥२ ॥

युद्ध में जा रहे रथों के समान यज्ञ की ओर जाने वाले सोमरस को, भारवाहक द्वारा दोनों हाथों से उठाये गये बोझ के समान याजकगण धारण करते हैं ॥२ ॥

७७८०. राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते । यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥३ ॥

प्रशंसित राजा तथा सात याजकों द्वारा जिस प्रकार यज्ञदेव की प्रतिष्ठा होती है, उसी प्रकार गौ-घृतादि से ये सोमदेव संस्कारित होते हैं ॥३ ॥

७७८१. परि सुवानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा । सुता अर्षन्ति धारया ॥४ ॥

अभिषुत होने (निचोड़ने) के बाद अमृत स्वरूप, ज्ञानवर्धक मधुर सोमरस साधकों के द्वारा स्तुतिगान करते हुए छाना जाता है ॥४ ॥

७७८२. आपानासो विवस्वतो जनन्त उषसो भगम् । सूरा अण्व वि तन्वते ॥५ ॥

उषा काल का वह समय भाग्यशाली होता है, जब इन्द्रदेव के पान के लिए सोमरस शब्द करते हुए नीचे आता है ॥५ ॥

७७८३. अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः । वृष्णो हरस आयवः ॥६ ॥

शक्तिशाली सोमदेव की स्तुति करने वाले, स्तोता प्राचीन यज्ञ द्वारों को उद्घाटित करते हैं ॥६ ॥

[प्रकृति में अनेक प्रकार की यज्ञीय प्रक्रियायें प्राचीन काल से चलती आ रही हैं । स्तोता उनको व्यक्त कर देते हैं ।]

७७८४. समीचीनास आसते होतारः सप्तजामयः । पदमेकस्य पिप्रतः ॥७ ॥

उत्कृष्ट सात बन्धुओं के समान सोम के स्थान को एक साथ पूर्ण करते हुए सात याज्ञिक यज्ञकर्मानुष्ठान के लिए उपस्थित होते हैं ॥७ ॥

७७८५. नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुश्चित्सूर्ये सचा । कवेरपत्यमा दुहे ॥८ ॥

नेत्र सूर्य पर निर्भर है । अपने यज्ञ एवं नाभि (उदर) के लिए कवि (क्रान्तदर्शी दिव्य प्रवाह) के पुत्र रूप में हम सोम का दोहन करते हैं ॥८ ॥

७७८६. अभि प्रिया दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम् । सूरः पश्यति चक्षसा ॥९ ॥

बलवान् इन्द्रदेव अपने नेत्रों से दिव्य लोक में प्रिय और अध्वर्युओं द्वारा हृदयस्थ सोम को देखते हैं ॥९ ॥

[सूक्त - ११]

[**ऋषि** - असित काश्यप अथवा देवल काश्यप । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७७८७. **उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अभि देवाँ इयक्षते ॥१ ॥**

हे याजको ! देवशक्तियों के निमित्त, यज्ञार्थ प्रयुक्त होने वाले, शुद्ध हुए इस सोम की स्तुति करो ॥१ ॥

७७८८. **अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयुः । देवं देवाय देवयु ॥२ ॥**

यह दिव्यरस देवों ने देव पुरुषों के लिए प्रकट किया है । इसे अथर्वा ऋषियों (विज्ञान वेत्ताओं) ने तुम्हारे लिए मधुर गौ-दुग्ध के साथ दिलाया है ॥२ ॥

७७८९. **स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते । शं राजन्नोषधीभ्यः ॥३ ॥**

हे कल्याणकारी सोमदेव ! आप स्वयं शुद्ध होकर पशुधन, प्रजाधन तथा अश्वादि सैन्यबल का कल्याण करें और ओषधियों को पवित्र बनायें ॥३ ॥

७७९०. **बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे । सोमाय गाथमर्चत ॥४ ॥**

हे स्तोता ! आप लोग भूरे रंग के बलशाली, अरुणिमा युक्त, आकाश में रहने वाले सोम की स्तुति करो ॥४ ॥

७७९१. **हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन । मधावा धावता मधु ॥५ ॥**

हे ऋत्विजो ! पाषाणों से कूटकर निष्पन्न सोमरस को शोधित करो तथा मधुर सोमरस में मधुर गौ-दुग्ध मिश्रित करो ॥५ ॥

७७९२. **नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन । इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥६ ॥**

हे ऋत्विजो ! इस सोमरस को नमस्कारपूर्वक दही में मिलाकर रखो । दीप्तिमान् सोमरस इन्द्रदेव के पीने के लिए अर्पित करो ॥६ ॥

७७९३. **अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे । देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥७ ॥**

हे दिव्य सोमदेव ! शत्रुनाशक, सर्वद्रष्टा, देवों की इच्छानुसार कार्य करने वाले आप हमारी गौओं को सुख दें (सुखपूर्वक रखें) ॥७ ॥

७७९४. **इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे । मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥८ ॥**

यह सोम मनों में रमणशील, मनों के अधिपति इन्द्रदेव के सेवनार्थ उनके आनन्दवर्द्धन के निमित्त संस्कारित होकर पात्र में एकत्रित होता है ॥८ ॥

७७९५. **पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि नः । इन्दविन्द्रेण नो युजा ॥९ ॥**

हे शोधित होने वाले पवित्र सोमदेव ! आप उत्तम तेजस्विता युक्त होकर अपने सहायक इन्द्रदेव के पास से हमें अभीष्ट धन दिलाएँ ॥९ ॥

[सूक्त - १२]

[**ऋषि** - असित काश्यप अथवा देवल काश्यप । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** -गायत्री ।]

७७९६. **सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य सादने । इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥१ ॥**

यज्ञ के लिए शोधकर तैयार किये गए मधुररस युक्त सोम को इन्द्रदेव के निमित्त प्रस्तुत करते हैं ॥१ ॥

७७९७. अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न मातरः । इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥२ ॥

हे ऋत्विजो ! जिस प्रकार गौएँ अपने बछड़ों के लिए व्याकुल हो जाती हैं, उसी भाव से तुम सोम पीने के लिए इन्द्रदेव की स्तुति करो ॥२ ॥

७७९८. मदच्युत्क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् । सोमो गौरी अधि श्रितः ॥३ ॥

हर्ष बढ़ाने वाला सोम यज्ञ - स्थल पर प्रतिष्ठित होता है । नदी की तरंगों के समान यह वाणी को तरंगित करता है ॥३ ॥

७७९९. दिवो नाभा विचक्षणोऽव्यो वारे महीयते । सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥४ ॥

यह सोम श्रेष्ठकर्मा तथा ज्ञानयुक्त है, जो अन्तरिक्ष की नाभि के समान छन्ने में शुद्ध होकर महत्त्व (प्रतिष्ठा) को प्राप्त होता है ॥४ ॥

७८००. यः सोमः कलशेष्वाँ अन्तः पवित्र आहितः । तमिन्दुः परि षस्वजे ॥५ ॥

पवित्र होकर कलशों में अवस्थित सोमरस में चन्द्रमा के श्रेष्ठ गुणों का संचार होता है ॥५ ॥

७८०१. प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि । जिन्वन् कोशं मधुश्चुतम् ॥६ ॥

मधुर सोमरस आकाश (घटाकाश) में प्रवेश कर शब्द करता हुआ कलश को पूरी तरह भर देता है ॥६ ॥

७८०२. नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धीनामन्तः सबर्दुघः । हिन्वानो मानुषा युगा ॥७ ॥

नित्य स्तुत्य, वनों के स्वामी सोमदेव, श्रेष्ठ मनुष्यों को संगठित होने की प्रेरणा प्रदान करें और मधुरभाषी की हार्दिक स्तुतियों को स्वीकार करें ॥७ ॥

७८०३. अभि प्रिया दिवस्पदा सोमो हिन्वानो अर्षति । विप्रस्य धारया कविः ॥८ ॥

यह ज्ञानवर्धक सोम ज्ञानी जनों को अन्तरिक्ष से (सत्कर्म की) प्रेरणा देता हुआ धार रूप में यज्ञस्थल पर प्रतिष्ठित होता है ॥८ ॥

७८०४. आ पवमान धारय रयिं सहस्रवर्चसम् । अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥९ ॥

हे शुद्ध होने वाले सोमदेव ! आप हमें सहस्र गुणसम्पन्न अपने धाम और ऐश्वर्य का अधिकारी बनाएँ ॥९ ॥

[सूक्त - १३]

[**ऋषि** - असित काश्यप अथवा देवल काश्यप । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७८०५. सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः । वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१ ॥

हजारों धाराओं के रूप में शोधक यंत्र से शोधित सोम, वायु और इन्द्रदेव के पान करने के लिए श्रेष्ठ पात्रों में स्थिर होता है ॥१ ॥

७८०६. पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत । सुष्वाणं देववीतये ॥२ ॥

अपने संरक्षण की कामना करने वाले, हे याजको ! सबको पवित्र करने वाले, विशेष आनन्द प्रदान करने वाले, देवों के पान करने योग्य शोधित सोम के लिए सम्मानपूर्वक स्तुतियों का गान करो ॥२ ॥

७८०७. **पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः । गृणाना देववीतये ॥३ ॥**

अन्न (पोषण) प्रदान करने के कारण स्तुत्य, देवतुल्य, हजारों प्रकार से बलवर्द्धक यह सोमरस शोधित किया जा रहा है ॥३ ॥

७८०८. **उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः । द्युमदिन्दो सुवीर्यम् ॥४ ॥**

हे सोमदेव ! आप जीवन-संग्राम की सफलता के लिए हमें श्रेष्ठ अन्न प्रदान करें तथा तेजस्वी और सामर्थ्यवान् बनाएँ ॥४ ॥

७८०९. **ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यम् । सुवाना देवास इन्दवः ॥५ ॥**

वह स्रवित किया गया दिव्य सोमरस हमें असंख्य ऐश्वर्य और उत्तम सामर्थ्य प्रदान करे ॥५ ॥

७८१०. **अत्या हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये । वि वारमव्यमाशवः ॥६ ॥**

युद्धस्थल पर जाते हुए अश्वों की भाँति प्रेरित सोम ऋत्विजों द्वारा तीव्र गति से शोधित किया जाता है ॥६ ॥

७८११. **वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न धेनवः । दधन्विरे गभस्त्योः ॥७ ॥**

जैसे गौएँ बछड़ों की ओर रँभाती हुई जाती हैं, उसी प्रकार शब्द करता हुआ सोमरस कलश में प्रवेश करता है और ऋत्विजों द्वारा हाथों में धारण किया जाता है ॥७ ॥

७८१२. **जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमान कनिक्रदत् । विश्वा अप द्विषो जहि ॥८ ॥**

इन्द्रदेव को तृप्त करने वाले हे सोमदेव ! आप पवित्र होकर शब्द करते हुए सभी शत्रुओं (विकारों) का विनाश करें ॥८ ॥

७८१३. **अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः । योनावृतस्य सीदत ॥९ ॥**

हे सोम ! दान न देने वाले स्वार्थियों का नाश करते हुए अपने तेजस्वी रूप में आप यज्ञस्थल पर स्थित हों ॥९ ॥

[सूक्त - १४]

[**ऋषि** - असित काश्यप अथवा देवल काश्यप । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७८१४. **परि प्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः । कारं बिभ्रत् पुरुस्पृहम् ॥१ ॥**

बुद्धिवर्द्धक, प्रशंसनीय, याजकों का पोषण करने वाला, नदी की लहरों (जल) में मिला हुआ यह सोमरस पात्र (सत्पात्रों) में स्थिर होता है ॥१ ॥

७८१५. **गिरा यदी सबन्धवः पञ्च व्राता अपस्यवः । परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् ॥२ ॥**

भ्रातृभाव से रहने वाले पाँचों वर्णों के लोग यज्ञीय कर्म की कामना करते हुए सबके पोषक सोमदेव को वाणी द्वारा (स्तुतियों से) सुशोभित करते हैं ॥२ ॥

७८१६. **आदस्य शुष्मिणो रसे विश्वे देवा अमत्सत । यदी गोभिर्वसायते ॥३ ॥**

सोमरस निकालने के बाद जब उसे गौ-दुग्ध में मिलाया जाता है, तब इस बलवर्द्धक सोम के पान से सभी देवगण आनन्दित होते हैं ॥३ ॥

७८१७. **निरिणानो वि धावति जहच्छर्याणि तान्वा । अत्रा सं जिघ्रते युजा ॥४ ॥**

छलनी से शोधित होता हुआ सोम छलनी को (अपने रस से) सराबोर करता हुआ, उसके छिद्रों से नीचे की ओर प्रवाहित होता है और सखा रूप में इन्द्रदेव से मिल जाता है ॥४ ॥

७८१८. **नप्तीभिर्यो विवस्वतः शुभ्रो न मामृजे युवा । गाः कृण्वानो न निर्णिजम् ॥५ ॥**

याज्ञिक यजमान की अँगुलियों से शोधित होता हुआ सोमरस गौ के दूध में मिलाने पर सफेद, दीप्तिमान्, तरुण अश्व के समान तथा दूध जैसा ही दिखाई पड़ता है ॥५ ॥

७८१९. **अति श्रिती तिरश्चता गव्या जिगात्यण्व्या । वग्नुमियर्ति यं विदे ॥६ ॥**

(शोधित होते समय) सोमरस अँगुलियों से दबाने पर इधर-उधर से गौ के दूध में मिश्रित होने के लिए नीचे गिरता है । पात्र में गिरते हुए (यजमान की जानकारी के लिए) शब्द करता है ॥६ ॥

७८२०. **अभि क्षिपः समग्मत मर्जयन्तीरिषस्पतिम् । पृष्ठा गृभ्णत वाजिनः ॥७ ॥**

सोमरस को शोधित करती हुई अँगुलियाँ आपस में मिलकर बलशाली सोम को पकड़ती हैं और उसे स्वच्छ (शुद्ध) करती हैं ॥७ ॥

७८२१. **परि दिव्यानि मर्मृशद्विश्वानि सोम पार्थिवा । वसूनि याह्यस्मयुः ॥८ ॥**

हे दिव्य सोमदेव ! सम्पूर्ण पृथिवी का ऐश्वर्य लेकर आप हमारे पास पधारें ॥८ ॥

[सूक्त - १५]

[**ऋषि** - असित काश्यप अथवा देवल काश्यप । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७८२२. **एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१ ॥**

अँगुलियों से निचोड़ा गया शक्तिशाली यह सोम तीव्र गतिशील रथ से विवेकपूर्वक इन्द्रदेव के निकट पहुँच जाता है ॥१ ॥

७८२३. **एष पुरू धियायते बृहते देवतातये । यत्रामृतास आसते ॥२ ॥**

देवों से अधिष्ठित, श्रेष्ठ, यह सोम यज्ञ-स्थल में असंख्यों कर्म सम्पन्न करने की अभिलाषा रखता है ॥२ ॥

७८२४. **एष हितो वि नीयतेऽन्तः शुभ्रावता पथा । यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ॥३ ॥**

हविष्यान्न के रूप में प्रयुक्त यह सोम यज्ञस्थल पर ले जाया जाता है, जहाँ से अध्वर्युगण उसे शुद्ध करते हुए देवताओं को समर्पित करते हैं ॥३ ॥

७८२५. **एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो३ वृषा । नृम्णा दधान ओजसा ॥४ ॥**

ऐश्वर्यवान् यह सोम अपनी सामर्थ्य को उसी प्रकार प्रकट करता है, जिस प्रकार बलशाली वृषभ पशुओं के मध्य अपनी शक्ति को प्रकट करता है ॥४ ॥

७८२६. **एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः । पतिः सिन्धूनां भवन् ॥५ ॥**

श्वेत रश्मियों से युक्त, रसों का अधिपति, प्रवहमान, शक्तिशाली सोम वेग से प्रवाहित होकर उपासकों के पास पहुँचता है ॥५ ॥

७८२७. **एष वसूनि पिब्दना परुषा ययिवाँ अति । अव शादेषु गच्छति ॥६ ॥**

अपनी सामर्थ्य से निठल्ले दुष्टों को पीड़ित करता हुआ, यह सोम, उन्हें मर्यादित रखता है और हिंसकों का विनाश कर देता है ॥६ ॥

७८२८. **एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः । प्रचक्राणं महीरिषः ॥७ ॥**

रसयुक्त (पोषक) अन्नों से उत्पत्तिकारक, शोधित होने योग्य सोम को ऋत्विग्गण संस्कारित करके कलशों में एकत्रित करते हैं ॥७ ॥

७८२९. **एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सप्त धीतयः । स्वायुधं मदिन्तमम् ॥८ ॥**

श्रेष्ठ, आनन्ददायी शक्ति को धारण करने वाला हरिताभ सोम, दसों अँगुलियों एवं सप्तऋत्विजों द्वारा निचोड़ा जाकर शोधित किया जाता है ॥८ ॥

[सूक्त - १६]

[**ऋषि** - असित काश्यप अथवा देवल काश्यप । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७८३०. **प्र ते सोतार ओण्योः रसं मदाय घृष्वये । सर्गो न तक्त्येतशः ॥१ ॥**

हे सोमदेव ! याज्ञिकजन द्युलोक और पृथिवी लोक के मध्य में शत्रुओं के संहार के उद्देश्य से उत्साह बढ़ाने के लिए आपका रस निकालते हैं ॥१ ॥

७८३१. **क्रत्वा दक्षस्य रथ्यमपो वसानमन्धसा । गोषामण्वेषु सश्चिम ॥२ ॥**

अन्न की पोषक शक्ति से युक्त, बलवर्धक सोम को सत्कर्म की शक्ति प्राप्त करने हेतु जल एवं गौ के दुग्ध के साथ मिलाते हैं । उसे हमारी अँगुलियाँ धारण करती हैं ॥२ ॥

७८३२. **अनप्तमप्सु दुष्टरं सोमं पवित्र आ सृज । पुनीहीन्द्राय पातवे ॥३ ॥**

हे याजको ! शत्रुओं की पहुँच से बाहर, दुष्टों के आक्रमण की परिधि से दूर जल-मिश्रित सोमरस को इन्द्रदेव के पान करने हेतु छलनी से छानकर रखो ॥३ ॥

७८३३. **प्र पुनानस्य चेतसा सोमः पवित्रे अर्षति । क्रत्वा सधस्थमासदत् ॥४ ॥**

शोधित करने वाला याज्ञिक बुद्धिपूर्वक सोम को पवित्र करने के कार्य में लग जाता है । इस कृत्य से वह सोम (यज्ञस्थलों में) प्रतिष्ठित होता है ॥४ ॥

७८३४. **प्र त्वा नमोभिरिन्दव इन्द्र सोमा असृक्षत । महे भराय कारिणः ॥५ ॥**

हे इन्द्रदेव ! सोम आपको विनयपूर्वक प्राप्त होता है । यह सोम आपको संग्राम में शत्रुहनन के कार्य में समर्थ बनाता है ॥५ ॥

७८३५. **पुनानो रूपे अव्यये विश्वा अर्षन्नभि श्रियः । शूरो न गोषु तिष्ठति ॥६ ॥**

जिस प्रकार शूर पुरुष अश्व के साथ सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार शोधित सोमरस (गौ-दुग्ध में) सुशोभित होता है ॥६ ॥

७८३६. **दिवो न सानु पिप्युषी धारा सुतस्य वेधसः । वृथा पवित्रे अर्षति ॥७ ॥**

जिस प्रकार आकाश की जलधारा पर्वत के शिखर पर पड़ती है, उसी प्रकार पवित्र-सोम की धारा शोधित होते समय अनायास ही पात्र में गिरती है ॥७ ॥

७८३७. त्वं सोम विपश्चितं तना पुनान आयुषु । अव्यो वारं वि धावसि ॥८ ॥

हे सोमदेव ! समस्त मनुष्यों में जो आपकी स्तुति करते हैं, उनका आप संरक्षण करते हैं । आप स्वयं शोधन के लिए अनश्वर छलनी में वेगपूर्वक जाते हैं ॥८ ॥

[सूक्त - १७]

[**ऋषि** - असित काश्यप अथवा देवल काश्यप । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७८३८. प्र निम्नेनेव सिन्धवो घ्नन्तो वृत्राणि भूर्णयः । सोमा असृग्रमाशवः ॥१ ॥

जैसे नदियों का प्रवाह नीचे की ओर होता है, उसी प्रकार दुष्टों का संहारक, शीघ्रगामी सोमरस वेगपूर्वक छलनी से नीचे की ओर प्रवाहित होता है ॥१ ॥

७८३९. अभि सुवानास इन्दवो वृष्टयः पृथिवीमिव । इन्द्रं सोमासो अक्षरन् ॥२ ॥

पृथ्वी पर होने वाली वर्षा की भाँति शोधित सोमरस इन्द्रदेव के पास जाता है ॥२ ॥

७८४०. अत्यूर्मिर्मत्सरो मदः सोमः पवित्रे अर्षति । विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥३ ॥

उत्साहवर्द्धक, आनन्ददायी, स्फूर्तिदायक सोमरस राक्षसों (विकारों) का संहार करते हुए देवगणों के पास जाने के उद्देश्य से छलनी में जाता है ॥३ ॥

७८४१. आ कलशेषु धावति पवित्रे परि षिच्यते । उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते ॥४ ॥

यह सोमरस छलनी में छाने जाते समय कलशों में एकत्रित होता है और यज्ञ के स्तोत्रों से वृद्धि को प्राप्त करता है ॥४ ॥

७८४२. अति त्री सोम रोचना रोहन्न भ्राजसे दिवम् । इष्णन्त्सूर्यं न चोदयः ॥५ ॥

हे सोमदेव ! आप तीनों लोकों में सबसे ऊपर रहकर द्युलोक को प्रकाशित करते हैं तथा अपनी इच्छानुसार सूर्यदेव को भी प्रेरित करते हैं ॥५ ॥

७८४३. अभि विप्रा अनूषत मूर्धन्यज्ञस्य कारवः । दधानाश्चक्षसि प्रियम् ॥६ ॥

सोमरस के प्रति प्रीतियुक्त भाव रखने वाले कर्मनिष्ठ याज्ञिक विद्वज्जन यज्ञस्थल के मुख्य भाग में बैठकर यज्ञ करते हैं ॥६ ॥

७८४४. तमु त्वा वाजिनं नरो धीभिर्विप्रा अवस्यवः । मृजन्ति देवतातये ॥७ ॥

अपने संरक्षण की कामना वाले ज्ञानी जन बुद्धियुक्त कर्मों से अन्नयुक्त सोम को यज्ञार्थ शोधित करते हैं ॥७ ॥

७८४५. मधोर्धारामनु क्षर तीव्रः सधस्थमासदः । चारुर्ऋताय पीतये ॥८ ॥

हे सोमदेव ! आप शोधन स्थल पर मधुर रस की धार के रूप में वेगपूर्वक पात्र में एकत्रित हों । आप देवगणों के पान करने के लिए तथा यज्ञ हेतु प्रवाहित हों ॥८ ॥

[सूक्त - १८]

[**ऋषि** - आसत काश्यप अथवा देवल काश्यप । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७८४६. परि सुवानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षाः । मदेषु सर्वधा असि ॥१ ॥

यह सोमरस पवित्र कलश में निकाला गया है । हे सोमदेव ! आप पर्वत पर उत्पन्न होने वाले हैं, रस निकाले जाने पर आनन्द देने वालों में आप सबसे श्रेष्ठ हैं ॥१ ॥

७८४७. **त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः । मदेषु सर्वधा असि ॥२ ॥**

हे सोमदेव ! आप ज्ञानवान् हैं, दूरदर्शी हैं तथा अन्न से उत्पन्न हुए पोषक तत्वों को देने वाले हैं । आनन्दप्रद रसों में आपका स्थान सर्वोत्तम है ॥२ ॥

७८४८. **तव विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत । मदेषु मर्वधा असि ॥३ ॥**

हे सोमदेव ! संगठन शक्ति से क्रियाशील सभी देवता आपके रस का सेवन करने की कामना करते हैं । आनन्द प्रदाताओं में आप ही सर्वोत्कृष्ट हैं ॥३ ॥

७८४९. **आ यो विश्वानि वार्या वसूनि हस्तयोर्दधे । मदेषु सर्वधा असि ॥४ ॥**

हर प्रकार का ऐश्वर्य हस्तगत करने वाले जो सोमदेव हैं, वे पदार्थों में सभी प्रकार के आनन्द स्थापित करने वाले हैं ॥४ ॥

७८५०. **य इमे रोदसी मही सं मातरेव दोहते । मदेषु सर्वधा असि ॥५ ॥**

जो सोम माता के समान द्यु तथा पृथ्वी दोनों लोकों को पुत्रवत् सुख प्रदान करता है । वह सोम आनन्द देने वालों में भी विशेष आनन्द प्रदायक है ॥५ ॥

७८५१. **परि यो रोदसी उभे सद्यो वाजेभिरर्षति । मदेषु सर्वधा असि ॥६ ॥**

जो सोम द्यु तथा पृथिवी दोनों लोकों को सदैव अन्न से परिपूर्ण रखता है, वह श्रेष्ठ आनन्ददायी है ॥६ ॥

७८५२. **स शुष्मी कलशेष्वा पुनानो अचिक्रदत् । मदेषु सर्वधा असि ॥७ ॥**

जो सोम बल बढ़ाने वाला है तथा शोधित होते समय कलश में शब्दनाद करता हुआ प्रवाहित होता है, वह आनन्द प्रदान करने वाले पदार्थों में सर्वाधिक आनन्दप्रद है ॥७ ॥

[सूक्त - १९]

[**ऋषि** - असित काश्यप अथवा देवल काश्यप । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७८५३. **यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु । तन्नः पुनान आ भर ॥१ ॥**

पवित्रता को प्राप्त होने वाले हे दिव्य सोमदेव ! इस पृथ्वी पर जो भी अद्‌भुत प्रशंसनीय दिव्य वैभव है, वह सब आप हमें प्रदान करें ॥१ ॥

७८५४. **युवं हि स्थः स्वर्पती इन्द्रश्च सोम गोपती । ईशाना पिप्यतं धियः ॥२ ॥**

गौओं के स्वामी ऐश्वर्यशाली हे सोम और इन्द्रदेव ! आप दोनों निश्चित रूप से इस जगत् के रक्षक हैं । हम सबकी बुद्धि को श्रेष्ठ मार्ग पर नियोजित करें ॥२ ॥

७८५५. **वृषा पुनान आयुषु स्तनयन्नधि बर्हिषि । हरिः सन्योनिमासदत् ॥३ ॥**

याजकों के जीवन को पवित्र करने वाले हे हरिताभ सोमदेव ! शब्दायमान होते हुए आप अपने आसन पर स्थिर हों ॥३ ॥

७८५६. **अवावशन्त धीतयो वृषभस्याधि रेतसि । सूनोर्वत्सस्य मातरः ॥४ ॥**

पुत्र की इच्छा करने वाली माताओं की भाँति धारण करने वाली (भूमि-वनस्पतियाँ-काया आदि), बलशाली सोम के उत्पादक तेजस् की इच्छा करतीं हैं ॥४ ॥

[सोम प्रवाह सभी में उत्पादक क्षमता उत्पन्न करने में समर्थ है ।]

७८५७. कुविद्वृषण्यन्तीभ्यः पुनानो गर्भमादधत् । याः शुक्रं दुहते पयः ॥५ ॥

जो पवित्र-तेजस्वी पय (जल या सारतत्त्व) का दोहन करती हैं (ऐसी भूमि, वनस्पतियाँ आदि) अन्तरिक्षीय वृष्टि की कामना करने वाली (प्रकृति) में, पवित्र होता हुआ यह सोम गर्भ (उर्वरता या तेज) की स्थापना करता है ॥५ ॥

[अन्तरिक्ष से बरसने वाले सूक्ष्म प्रवाह ही भूमि, वनस्पतियों आदि में उत्पादक विशेषताएँ उत्पन्न करते हैं । इस विज्ञान-सम्मत प्रक्रिया को यहाँ प्रस्तुत किया गया है ।]

७८५८. उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रुषु । पवमान विदा रयिम् ॥६ ॥

हे सोमदेव ! हमसे दूर रहने वाले मित्रों को आप हमारे पास लाएँ । हमारे शत्रुओं को भयभीत करें तथा हमें धन प्रदान करें ॥६ ॥

७८५९. नि शत्रोः सोम वृष्ण्यं नि शुष्मं नि वयस्तिर । दूरे वा सतो अन्ति वा ॥७ ॥

हे सोम ! आप हमारे समीप तथा दूर के सभी शत्रुओं की सामर्थ्य, उनका तेज तथा उनके अन्न को नष्ट करें ॥७ ॥

[सूक्त - २०]

[**ऋषि -** असित काश्यप अथवा देवल काश्यप । **देवता -** पवमान सोम । **छन्द -** गायत्री ।]

७८६०. प्र कविर्देववीतयेऽव्यो वारेभिरर्षति । साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः ॥१ ॥

देवताओं को प्रदान करने के लिए यह ज्ञानवर्धक सोम उत्तम रीति से संस्कारित किया जाता है । विकारनाशक यह सभी शत्रुओं को परास्त करता है ॥१ ॥

७८६१. स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति । पवमानः सहस्त्रिणम् ॥२ ॥

परिशुद्ध यह दिव्य सोम, स्तुति करने वाले याजकों को धन-धान्य प्रदान करके सन्तुष्ट करता है ॥२ ॥

७८६२. परि विश्वानि चेतसा मृशसे पवसे मती । स नः सोम श्रवो विदः ॥३ ॥

हे संस्कारित हुए वन्दनीय सोमदेव ! आप हमें विचारपूर्वक अन्न के भण्डार प्रदान करें ॥३ ॥

७८६३. अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम् । इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥४ ॥

हे दिव्य सोमदेव ! स्तुति करने वाले धनवान् साधकों के लिए भी आप महान् यश, स्थायी निधि एवं अन्न के भण्डार प्रदान करें ॥४ ॥

७८६४. त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिथ । पुनानो वह्ने अद्भुत ॥५ ॥

सत्कर्म में निरत, सद्‌भावनासम्पन्न, पवित्र हृदय वाले स्वामी के समान हे दिव्य सोमदेव ! आप याजकों द्वारा प्रस्तुत श्रेष्ठ वचनों (स्तुतियों) को स्वीकार करें ॥५ ॥

७८६५. स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः । सोमश्चमूषु सीदति ॥६ ॥

यज्ञ सम्पन्न कराने वाला, हथेलियों की सहायता से शुद्ध किया जाता हुआ, जल-मिश्रित सोम पात्र में स्थिर होता है ॥६ ॥

७८६६. **क्रीळुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि । दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥७ ॥**

यज्ञ की भाँति निरन्तर परमार्थ में निरत होकर क्रीड़ा करने वाले हे सोमदेव ! आप स्तोताओं को शौर्य-पराक्रम प्रदान करते हुए शुद्धता को प्राप्त होते हैं ॥७ ॥

[सूक्त - २१]

[**ऋषि** - असित काश्यप अथवा देवल काश्यप । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७८६७ **एते धावन्तीन्दवः सोमा इन्द्राय घृष्वयः । मत्सरासः स्वर्विदः ॥१ ॥**

यह तेजस्वी सोम इन्द्रदेव के पास आनन्द बढ़ाने, ज्ञान देने तथा युद्ध की प्रेरणा देने के लिए गमन करता है ॥१ ॥

७८६८. **प्रवृण्वन्तो अभियुजः सुष्वये वरिवोविदः । स्वयं स्तोत्रे वयस्कृतः ॥२ ॥**

यह सोमरस स्तोताओं को धन-धान्य से पूर्ण करने वाला तथा शोधित करने वालों की विशेष प्रकार से उपयोगी सहायता करने वाला है ॥२ ॥

७८६९. **वृथा क्रीळन्त इन्दवः सधस्थमभ्येकमित् । सिन्धोरूर्मा व्यक्षरन् ॥३ ॥**

यह सोमरस सहज रूप से पात्र में रखे हुए, नदी के जल में क्रीड़ा करने जैसा गिरकर एकत्रित होता है ॥३ ॥

७८७०. **एते विश्वानि वार्या पवमानास आशत । हिता न सप्तयो रथे ॥४ ॥**

रथ में जुड़े घोड़े के समान यह शोधित सोमरस स्वीकार करने योग्य समस्त (अभीष्ट) धन प्रदान करता है ॥४ ॥

७८७१. **आस्मिन्पिशङ्गमिन्दवो दधाता वेनमादिशे । यो अस्मभ्यमरावा ॥५ ॥**

हे सोमदेव ! जो याज्ञिक अपने धन को दान (सत्कार्यों के लिए नियोजन) करता है, उसे हर प्रकार का धन इस उद्देश्य के लिए प्रदान करें ॥५ ॥

७८७२. **ऋभुर्न रथ्यं नवं दधाता केतमादिशे । शुक्राः पवध्वमर्णसा ॥६ ॥**

हे सोमदेव ! ऋभुगण जिस प्रकार रथ चलाने के लिए नवीन उत्तम सारथी को नियुक्त करते हैं, उसी प्रकार आप हमें यज्ञ कार्य के लिए नियुक्त करें । शोधित सोमरस (यज्ञ में उपयोग के लिए) जल के साथ पवित्र हो ॥६ ॥

७८७३. **एत उ त्ये अवीवशन्काष्ठां वाजिनो अक्रत । सतः प्रासाविषुर्मतिम् ॥७ ॥**

यज्ञ की कामना करने वाला यह बलवान् सोम यज्ञस्थल पर प्रतिष्ठित होता है । वह याज्ञिक की बुद्धि को यज्ञ करने की प्रेरणा देता है ॥७ ॥

[सूक्त - २२]

[**ऋषि** - असित काश्यप अथवा देवल काश्यप । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७८७४. **एते सोमास आशवो रथा इव प्र वाजिनः । सर्गाः सृष्टा अहेषत ॥१ ॥**

यह सोम शोधित होते समय छलनी द्वारा, रथ की भाँति अथवा अश्वों की भाँति शब्दनाद करता हुआ द्रुतगति से नीचे की ओर (अन्तरिक्ष से भूमि की ओर) गमन करता है ॥१ ॥

७८७५. एते वाता इवोरवः पर्जन्यस्येव वृष्टयः । अग्नेरिव भ्रमा वृथा ॥२ ॥

यह सोम पर्जन्य की वर्षा के समान तथा अग्नि की ज्वालाओं के समान वायु वेग से गमन करता है ॥२ ॥

७८७६. एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः । विपा व्यानशुर्धियः ॥३ ॥

इस शोधित सोमरस को ज्ञानवर्धक दही के साथ मिलाया गया है, जो विशेष रूप से ज्ञान प्रदायक होकर बुद्धिमत्ता पूर्ण किए जा रहे यज्ञकर्म में पहुँचता है ॥३ ॥

७८७७. एते मृष्टा अमर्त्याः ससृवांसो न शश्रमुः । इयक्षन्तः पथो रजः ॥४ ॥

यह पवित्र तथा अमृत के समान शोधित सोमरस, शोधन के समय शोधक यंत्र से नीचे (कलश या भूमण्डल) की ओर सतत प्रवाहित होता है, (फिर भी) थकता नहीं है ॥४ ॥

७८७८. एते पृष्ठानि रोदसोर्विप्रयन्तो व्यानशुः । उतेदमुत्तमं रजः ॥५ ॥

यह सोमरस स्वर्गलोक तथा पृथिवीलोक के पृष्ठ भाग (गुह्य या अंतिम भागों) तक विविध प्रकार से गमन करता है और विस्तार पाता है । यह उत्तम सोमरस द्युलोक में भी प्राप्त होता है ॥५ ॥

[वर्तमान वैज्ञानिक भी यह मानने लगे हैं कि कुछ अति सूक्ष्म कणों का सतत प्रवाह हो रहा है। जो पृथ्वी जैसे ठोस दिखने वाले पिण्डों के बीच से भी सहज ही पार हो जाता है । कुछ ऐसे ही प्रवाह के बारे में ऋषि ने यहाँ कहा है ।]

७८७९. तन्तुं तन्वानमुत्तममनु प्रवत आशत । उतेदमुत्तमाय्यम् ॥६ ॥

यज्ञ का विस्तार करने वाले उत्कृष्ट सोम को नदियों के जल में मिश्रित किया जाता है । वही सोम श्रेष्ठ यज्ञ को पूर्णता तक पहुँचाता है ॥६ ॥

७८८०. त्वं सोम पणिभ्य आ वसु गव्यानि धारयः । ततं तन्तुमचिक्रदः ॥७ ॥

हे सोमदेव ! आप पणिजनों (गौओं को रखने वालों तथा व्यापार करने वालों) से दूध, दही तथा घृत आदि पदार्थ प्राप्त कर यज्ञस्थल में प्रतिष्ठित करते हैं । आप यज्ञ को पूर्ण कर इसकी कीर्ति का विस्तार करें ॥७ ॥

[सूक्त - २३]

[**ऋषि** - असित काश्यप अथवा देवल काश्यप । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७८८१. सोमा असृग्रमाशवो मधोर्मदस्य धारया । अभि विश्वानि काव्या ॥१ ॥

स्तोताओं द्वारा अनेक प्रकार के स्तोत्रों से स्तुति करते हुए मधुर रस की धारा के रूप में द्रुतगति से सोमरस निकाला जाता है ॥१ ॥

७८८२. अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः । रुचे जनन्त सूर्यम् ॥२ ॥

अति पुरातन (शाश्वत) सतत आवागमनशील (सोमदेव) नये-नये पद (चरण-स्वरूप) प्राप्त करते हैं । प्रकाश के लिए सूर्य को उत्पन्न करते हैं ॥२ ॥

[सोम आदि काल में अंतरिक्षीय (कास्मिक) प्रवाह के रूप में नित्य नये स्वरूपों में प्रकट एवं क्रियाशील होता है । सूर्य के ऊर्जाचक्र के संचालन में भी इसी कास्मिक प्रवाह की भूमिका रहती है, ऐसा वर्तमान वैज्ञानिक भी मानते हैं ।]

७८८३. आ पवमान नो भरार्यो अदाशुषो गयम् । कृधि प्रजावतीरिषः ॥३ ॥

हे सोमदेव ! आप शत्रुओं के समान अनुदार लोगों का धन तथा प्रजायुक्त अन्न हमें प्रदान करें ॥३ ॥

७८८४. अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम्। अभि कोशं मधुश्चुतम् ॥४ ॥

शोधित होने वाला सोमरस आनन्दवर्धक है। इस मधुर रस को पात्र में एकत्रित करते हैं ॥४ ॥

७८८५. सोमो अर्षति धर्णसिर्दधान इन्द्रियं रसम्। सुवीरो अभिशस्तिपाः ॥५ ॥

सर्वोत्तम बलशाली, हर प्रकार के दुःखों से बचाने वाला, इन्द्रियों की शक्ति को बढ़ाने वाला, धारणा शक्ति से युक्त यह सोमरस पात्र में एकत्रित होता है ॥५ ॥

७८८६. इन्द्राय सोम पवसे देवेभ्यः सधमाद्यः। इन्दो वाजं सिषाससि ॥६ ॥

हे सोमदेव ! आप यज्ञ के उपयुक्त हैं। इन्द्रदेव तथा अन्य सभी देवगणों के निमित्त ही आपके रस को निकाला जाता है। आप हमारे लिए अन्न देने वाले हैं ॥६ ॥

७८८७. अस्य पीत्वा मदानामिन्द्रो वृत्राण्यप्रति। जघान जघनच्च नु ॥७ ॥

आनन्ददायी, उत्साहवर्द्धक इस सोमरस का पान करके अजेय इन्द्रदेव ने चारों ओर से घेरने वाले शत्रुओं को नष्ट किया तथा (वे इन्द्रदेव) आगे भी नष्ट करते रहें ॥७ ॥

[सूक्त - २४]

[**ऋषि** - असित काश्यप अथवा देवल काश्यप। **देवता** - पवमान सोम। **छन्द** - गायत्री।]

७८८८. प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः। श्रीणाना अप्सु मृञ्जत ॥१ ॥

दुग्ध आदि पोषक्र तत्त्वों से युक्त शीतल सोमरस पवित्र होते समय जल के साथ नीचे रखे हुए पात्र में एकत्रित हो रहा है ॥१ ॥

७८८९. अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः। पुनाना इन्द्रमाशत ॥२ ॥

शुद्धता को प्राप्त होने वाला सोमरस अधः पात्र (नीचे के बर्तन) में पहुँचकर स्थिर हो रहा है। देवराज इन्द्र इस पवित्र रस का पान करते हैं ॥२ ॥

७८९०. प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय पातवे। नृभिर्यतो वि नीयसे ॥३ ॥

इन्द्रदेव का उत्साहवर्द्धन करने वाले हे पवित्र सोमदेव ! शुद्धिकरण की प्रक्रिया के बाद आप ऋत्विजों (याजकों) द्वारा यज्ञवेदी पर पहुँचाए जाते हैं ॥३ ॥

७८९१. त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीसहे। सस्निर्यो अनुमाद्यः ॥४ ॥

प्रशंसा के योग्य हे संस्कारित सोमदेव ! मानवमात्र के आनन्द को बढ़ाने वाले, याजकों के द्वारा धारण किए गये, आप पवित्रता को प्राप्त करें ॥४ ॥

७८९२. इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिधावसि। अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥५ ॥

हे सोमदेव ! पत्थरों से कुचलकर निकालने के बाद आपको छन्ने द्वारा शुद्ध किया जाता है, तब आप इन्द्रदेव के पीने योग्य होते हैं ॥५ ॥

७८९३. पवस्व वृत्रहन्तमोक्थेभिरनुमाद्यः। शुचिः पावको अद्भुतः ॥६ ॥

आश्चर्यजनक रीति से शत्रुओं का विनाश करने वाले, श्रेष्ठ वचनों द्वारा वन्दना करने योग्य हे सोमदेव ! आप शुद्धता और पवित्रता को प्राप्त करें ॥६ ॥

७८९४. **शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतस्य मध्वः । देवावीरघशंसहा ॥७ ॥**

विधिपूर्वक तैयार किया गया शुद्ध, संस्कारित और पवित्र सोमरस देवताओं को तृप्ति देने वाला एवं दुष्टों का विनाश करने वाला (विकारों का शमन करने वाला) कहा गया है ॥७ ॥

[सूक्त - २५]

[**ऋषि** - दृळहच्युत आगस्त्य । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७८९५. **पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे । मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥१ ॥**

हे हरिताभ सोमदेव ! आप हर्ष और शक्ति के साधनभूत हैं। देवों और मरुतों के पीने के निमित्त कलश में स्थित हों ॥१ ॥

७८९६. **पवमान धिया हितो३भि योनिं कनिक्रदत् । धर्मणा वायुमा विश ॥२ ॥**

भली-भाँति विचारपूर्वक स्थापित किए गए, हे संस्कारित सोमदेव ! आप अपने स्वाभाविक गुणों से वायु के साथ संयुक्त होकर कलश में प्रतिष्ठित हों ॥२ ॥

७८९७. **सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः । वृत्रहा देववीतमः ॥३ ॥**

ज्ञान और बल से सम्पन्न शुद्ध, संस्कारित होने के कारण सभी को परम प्रिय, किसी के बन्धन में न रहने वाले सोमदेव, देवताओं के मध्य सुशोभित हो रहे हैं ॥३ ॥

७८९८. **विश्वा रूपाण्याविशन्पुनानो याति हर्यतः । यत्रामृतास आसते ॥४ ॥**

यह पवित्र सोम सभी रूपों में प्रविष्ट होकर जहाँ देवगण रहते हैं, उनके पास सुशोभित होकर जाता है ॥४ ॥

७८९९. **अरुषो जनयन्गिरः सोमः पवत आयुषक् । इन्द्रं गच्छन्कविक्रतुः ॥५ ॥**

यह मेधावी सोमरस प्रीतिपूर्वक इन्द्रदेव के पास जाता है। यह तेजस्वी सोम शोधित होते समय शब्दनाद करता है ॥५ ॥

७९००. **आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे । अर्कस्य योनिमासदम् ॥६ ॥**

आनन्द प्रदान करने वाले कान्तिमान् हे सोमदेव ! पूजा के योग्य इन्द्रदेव के आश्रय को प्राप्त करने के लिए आप धारा रूप से शोधित होकर पवित्र बनें ॥६ ॥

[सूक्त - २६]

[**ऋषि** - इध्मवाह दार्ढच्युत । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७९०१. **तममृक्षन्त वाजिनमुपस्थे अदितेरधि । विप्रासो अण्व्या धिया ॥१ ॥**

विद्वज्जन अपनी सूक्ष्म बुद्धि से उस बलशाली सोम को अदिति की गोद में (अखण्ड प्रकृति या यज्ञ क्षेत्र में) उत्तम विधि से पवित्र बनाते हैं ॥१ ॥

७९०२. **तं गावो अभ्यनूषत सहस्रधारमक्षितम् । इन्दुं धर्तारमा दिवः ॥२ ॥**

सूर्यादि लोकों को धारण करने वाले, कभी भी क्षीण न होने वाले, हजारों धाराओं से स्रवित होने वाले सोमदेव की, हम उत्तम स्तोत्रों द्वारा स्तुति करते हैं ॥२ ॥

७९०३. **तं वेधां मेधयाह्यन्पवमानमधि द्यवि। धर्णसिं भूरिधायसम् ॥३ ॥**

सबके आधार, सभी के धारणकर्त्ता तथा सभी के आश्रयदाता उन सोमदेव को (याज्ञिक जन) अपनी मेधाशक्ति से द्युलोक के पास अर्थात् उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित करते हैं ॥३ ॥

७९०४. **तमह्यन्भुरिजोर्धिया संवसानं विवस्वतः। पतिं वाचो अदाभ्यम् ॥४ ॥**

वाणी के अधिष्ठाता, अविनाशी सोम को याज्ञिक जन अपने हाथों में धारण करके यज्ञस्थल तक ले जाते हैं ॥४ ॥

७९०५. **तं सानावधि जामयो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः। हर्यतं भूरिचक्षसम् ॥५ ॥**

याजकगण उच्चस्थान पर स्थित हरिताभ सोम को पत्थरों से कूटकर दसों अँगुलियों से रस निकालते हैं ॥५ ॥

७९०६. **तं त्वा हिन्वन्ति वेधसः पवमान गिरावृधम्। इन्दविन्द्राय मत्सरम् ॥६ ॥**

हे सोमदेव ! स्तोत्रों द्वारा स्तुति किये जाने पर प्रशंसित होने वाले इन्द्रदेव को आनन्द प्रदान करने हेतु ज्ञानीजन आपको प्रेरित करते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - २७]

[**ऋषि** - नृमेध आङ्गिरस। **देवता** - पवमान सोम। **छन्द** - गायत्री।]

७९०७. **एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते। पुनानो घ्नन्नप स्रिधः ॥१ ॥**

ज्ञानियों और कवियों के द्वारा स्तुत्य, शोधित, विकारनाशक यह सोम तृप्ति प्रदान करने वाला है ॥१ ॥

७९०८. **एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित्परि षिच्यते। पवित्रे दक्षसाधनः ॥२ ॥**

शक्तिवर्धक एवं स्वर्गीय सुख को अपने अधिकार में रखने वाला दिव्य सोम अन्तरिक्ष से छनकर इन्द्रदेव (मेघों) और वायु के निमित्त नीचे आता है ॥२ ॥

७९०९. **एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः। सोमो वनेषु विश्ववित् ॥३ ॥**

यह द्युलोक के उच्च भाग से वर्षणशील-बलवान् सोम वनों में सभी (वनस्पति आदि) का ज्ञाता है, अभिषुत होकर यह अग्रणी मनुष्यों द्वारा (यज्ञादि में) लाया जाता है ॥३ ॥

७९१०. **एष गव्युरचिक्रदत् पवमानो हिरण्ययुः। इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥४ ॥**

द्युलोक में प्रतिष्ठित, शक्तिवर्द्धक, रसरूप, विश्वज्ञाता यह सोम वनों (वृक्ष-वनस्पतियों) के माध्यम से मनुष्यों द्वारा प्रयुक्त किया जाता है ॥४ ॥

७९११. **एष सूर्येण हासते पवमानो अधि द्यवि। पवित्रे मत्सरो मदः ॥५ ॥**

यह पवित्र सोम आनन्द प्रदान करने वाला तथा प्रसन्नतादायी है। सूर्यदेव के द्वारा इसे द्युलोक की शोधक छलनी (अंतरिक्षीय शोधन प्रणाली) में स्थापित किया जाता है ॥५ ॥

[सोम के अन्तरिक्षीय शोधन तंत्र में सूर्य रश्मियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।]

७९१२. **एष शुष्म्यसिष्यददन्तरिक्षे वृषा हरिः। पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥६ ॥**

यह अन्तरिक्ष से वर्षणशील-बलवर्द्धक हरि (हरे रंग का या विकारनाशक) सोम नीचे आता हुआ, पवित्र होता हुआ इन्द्रदेव को प्रदान किया जाता है ॥६ ॥

[सूक्त - २८]

[**ऋषि** - प्रियमेध आङ्गिरस । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७९१३. **एष वाजी हितो नृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः । अव्यो वारं वि धावति ॥१ ॥**

सर्वज्ञाता, मन का अधिपति, बलशाली सोम यज्ञकर्त्ताओं द्वारा शुद्ध होकर कलश में प्रतिष्ठित होता है ॥१ ॥

७९१४. **एष पवित्रे अक्षरत् सोमो देवेभ्यः सुतः । विश्वा धामान्याविशन् ॥२ ॥**

देवों के निमित्त निष्पन्न हुआ यह सोम शुद्ध होकर देवों के शरीरों में संव्याप्त हो जाता है ॥२ ॥

७९१५. **एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः । वृत्रहा देववीतमः ॥३ ॥**

देवों को अतिप्रिय, देवत्व को बढ़ाने वाला, अविनाशी, शत्रुसंहारक सोम, कलश में शोभायमान होता है ॥३ ॥

७९१६. **एष वृषा कनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः । अभि द्रोणानि धावति ॥४ ॥**

दसों अँगुलियों द्वारा निचोड़ा गया बलवर्द्धक यह सोम, शब्द करता हुआ, कलश में पहुँचता है ॥४ ॥

७९१७. **एष सूर्यमरोचयत् पवमानो विचर्षणिः । विश्वा धामानि विश्ववित् ॥५ ॥**

सबका द्रष्टा यह सोमरस समस्त विश्व का ज्ञाता है । यह सोम समस्त यज्ञ स्थानों (श्रेष्ठ कर्मों) तथा सूर्यदेव को भी प्रकाशित करता है ॥५ ॥

७९१८. **एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति । देवावीरघशंसहा ॥६ ॥**

देवताओं के रक्षक, पापियों के संहारक, नष्ट न होने वाले, शोधित हुए, बलयुक्त सोमदेव, कलश में पहुँचते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - २९]

[**ऋषि** - नृमेध आङ्गिरस । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७९१९. **प्रास्य धारा अक्षरन्वृष्णः सुतस्यौजसा । देवाँ अनु प्रभूषतः ॥१ ॥**

सोमरस की बल बढ़ाने वाली तथा देवों पर अपना अनुकूल प्रभाव डालने वाली, प्रभावकारी धाराएँ वेगपूर्वक (कलश) पात्र में एकत्रित होने लग गईं हैं ॥१ ॥

७९२०. **सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा । ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥२ ॥**

देदीप्यमान, स्तुत्य, अश्व के समान वेगवान् सोम को मेधावी अध्वर्युगण अपनी वाणी रूप स्तुतियों द्वारा शुद्ध कर रहे हैं ॥२ ॥

७९२१. **सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो । वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥३ ॥**

हे सम्पत्तिशाली और स्तुत्य सोमदेव ! पवित्र होने वाले आप, अपने प्रचण्ड पराक्रम से रक्षा करने वाले हैं । समुद्र के समान (आप अपने दिव्य रसों से) इस पात्र को पूर्ण कर दें ॥३ ॥

७९२२. **विश्वा वसूनि सञ्जयन्पवस्व सोम धारया । इनु द्वेषांसि सध्र्यक् ॥४ ॥**

हे सोमदेव ! समस्त धन को जीतते हुए आप शुद्ध हों तथा हमारे सभी शत्रुओं को हमसे दूर भगाएँ ॥४ ॥

७९२३. रक्षा सु नो अररुषः स्वनात्समस्य कस्य चित् । निदो यत्र मुमुच्महे ॥५ ॥

हे सोमदेव ! अनुदार लोगों एवं उनके ही समान अन्य शत्रुओं तथा निन्दा करने वालों से, भली प्रकार से हमारी रक्षा करें, ताकि हम शत्रुओं से मुक्त हो जाएँ ॥५ ॥

७९२४. एन्दो पार्थिवं रयिं दिव्यं पवस्व धारया । द्युमन्तं शुष्ममा भर ॥६ ॥

हे सोमदेव ! पृथिवी पर अपनी धारा से रस प्रवाहित करते हुए आप हर प्रकार का दिव्य धन प्रदान करें तथा तेजोयुक्त बल भी हमें दें ॥६ ॥

[सूक्त - ३०]

[**ऋषि** - बिन्दु आङ्गिरस । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७९२५. प्र धारा अस्य शुष्मिणो वृथा पवित्रे अक्षरन् । पुनानो वाचमिष्यति ॥१ ॥

स्तुति सुनने की कामना से बलशाली सोम की धाराएँ छलनी से पवित्र होने के लिए प्रवाहित होती हैं ॥१ ॥

७९२६. इन्दुर्हियानः सोतृभिर्मृज्यमानः कनिक्रदत् । इयर्ति वग्नुमिन्द्रियम् ॥२ ॥

शोधित करने वाले याज्ञिकों द्वारा प्रेरित किया गया यह सोमरस शोधित होते समय शब्दनाद करता है और (याज्ञिकों की) इन्द्रियों को यज्ञ कार्य (सत्कर्म) करने के लिए प्रेरित करता है ॥२ ॥

७९२७. आ नः शुष्मं नृषाह्यं वीरवन्तं पुरुस्पृहम् । पवस्व सोम धारया ॥३ ॥

हे सोमदेव ! पवित्र धाराओं से प्रवाहित होते हुए आप शत्रुओं का विनाश करने वाला, शौर्यवर्द्धक तथा सभी के द्वारा पूज्य बल हमें प्रदान करें ॥३ ॥

७९२८. प्र सोमो अति धारया पवमानो असिष्यदत् । अभि द्रोणान्यासदम् ॥४ ॥

यह पवित्र सोमरस पात्र में स्थापित होने के लिए धारा रूप में प्रवाहित होता है ॥४ ॥

७९२९. अप्सु त्वा मधुमत्तमं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दविन्द्राय पीतये ॥५ ॥

हरिताभ, अत्यन्त मधुर, जल में मिश्रित, सोमरस को पत्थरों से कूटकर तैयार करते हैं । उसे इन्द्रदेव को पान करने के लिए प्रदान करते हैं ॥५ ॥

७९३०. सुनोता मधुमत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे । चारुं शर्धाय मत्सरम् ॥६ ॥

हे याज्ञिको ! वज्रधारी इन्द्रदेव के बलवर्द्धन हेतु, आनन्ददायी तथा अत्यन्त मधुर सोमरस निकालो ॥६ ॥

[सूक्त - ३१]

[**ऋषि** - गोतम राहूगण । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७९३१. प्र सोमासः स्वाध्य१ः पवमानासो अक्रमुः । रयिं कृण्वन्ति चेतनम् ॥१ ॥

शोधित सोमरस ज्ञानवर्द्धक तथा स्फूर्ति प्रदान करने वाला है । वह उत्तम धन प्रदायक भी है ॥१ ॥

७९३२. दिवस्पृथिव्या अधि भवेन्दो द्युम्नवर्धनः । भवा वाजानां पतिः ॥२ ॥

हे सोमदेव ! आप द्युलोक तथा पृथिवीलोक में अन्न की वृद्धि करने वाले हैं, आप बलों के संरक्षक हों ॥२ ॥

७९३३. तुभ्यं वाता अभिप्रियस्तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः । सोम वर्धन्ति ते महः ॥३ ॥

हे सोमदेव ! वायु आपको तृप्त करते हुए तथा नदियाँ आपका अनुगमन करती हुईं आपकी महत्ता का विस्तार कर रही हैं ॥३ ॥

७९३४. आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य सङ्गथे ॥४ ॥

हे सोमदेव ! आपको प्रत्येक स्थान पर बल की प्राप्ति हो । आप विस्तृत होते हुए संग्राम के समय हमारे लिए अन्न प्रदान करने वाले हों ॥४ ॥

७९३५. तुभ्यं गावो घृतं पयो बभ्रो दुदुह्रे अक्षितम् । वर्षिष्ठे अधि सानवि ॥५ ॥

आपका स्थान सर्वोच्च है । हे प्रजापालक सोमदेव ! गौएँ आपको कभी भी न घटने वाला दूध तथा घृत प्रदान करती हैं ॥५ ॥

७९३६. स्वायुधस्य ते सतो भुवनस्य पते वयम् । इन्दो सखित्वमुश्मसि ॥६ ॥

भुवनों के स्वामी हे सोमदेव ! हम सभी श्रेष्ठ आयुधों से युक्त होकर आपसे मित्रता की कामना करते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - ३२]

[**ऋषि** - श्यावाश्व आत्रेय । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७९३७. प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनः । सुता विदथे अक्रमुः ॥१ ॥

आनन्ददायक सोम अभिषुत होकर हमारे यज्ञ में अन्न और यश प्रदाता बनकर स्थित होता है ॥१ ॥

७९३८. आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥२ ॥

इस शुद्ध हरितवर्ण के सोमरस को साधक अपनी अँगुलियों से निचोड़कर इन्द्रदेव के पीने योग्य बनाते हैं ॥२ ॥

७९३९. आदीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम् । अत्यो न गोभिरज्यते ॥३ ॥

हंस जिस प्रकार (सहजभाव से) अपने समूह में (गतिपूर्वक) जाता है, उसी गति के साथ यह सोमरस विवेकवानों की बुद्धि को प्रभावित करता है ॥३ ॥

७९४०. उभे सोमावचाकशन्मृगो न तक्तो अर्षसि । सीदन्नृतस्य योनिमा ॥४ ॥

हे सोमदेव ! आप द्युलोक तथा पृथिवी लोक दोनों को देखते हुए हरिण के समान तेजस्वी होकर यज्ञ स्थल पर प्रतिष्ठित होते हैं ॥४ ॥

७९४१. अभि गावो अनूषत योषा जारमिव प्रियम् । अगन्नाजिं यथा हितम् ॥५ ॥

जिस प्रकार युद्ध में जाते हुए वीर योद्धा की स्तुति होती है तथा जिस प्रकार स्त्री अपने प्रियतम की स्तुति करती है, उसी प्रकार हे सोमदेव ! हम मंत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं ॥५ ॥

७९४२. अस्मे धेहि द्युमद्यशो मघवद्‌भ्यश्च मह्यं च । सनिं मेधामुत श्रवः ॥६ ॥

हे सोमदेव ! आप हमें तेजस्वी बनाने वाला अन्न तथा याज्ञिकों को धन, बुद्धि तथा यश प्रदान करें ॥६ ॥

[सूक्त - ३३]

[**ऋषि** - त्रित आप्त्य । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७९४३. प्र सोमासो विपश्चितोऽपां न यन्त्यूर्मयः । वनानि महिषा इव ॥१ ॥

बुद्धिवर्द्धक यह सोमरस पानी की लहरों के समान तथा स्वाभाविक रूप से पशुओं के वन में जाने के समान प्रवाहित होता है ॥१ ॥

७९४४. अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया । वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥२ ॥

गौ दुग्ध रूपी अन्न के साथ भूरे रंग का यह सोमरस जल की धारा के साथ बर्तन में मिलाया जाता है ॥२ ॥

७९४५. सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्षन्ति विष्णवे ॥३ ॥

अभिषुत सोमरस इन्द्र, वायु, वरुण, मरुत् तथा विष्णु आदि देवगणों को प्राप्त हो ॥३ ॥

७९४६. तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः । हरिरेति कनिक्रदत् ॥४ ॥

जब तीन प्रकार के (तीन वेदों के) मंत्र बोले जाते हैं । धारक वाणियाँ (गौएँ) स्वर प्रकट करती हैं, तब यह मनोहारी हरिताभ सोम भी शब्द करता हुआ अवतरित होता है ॥४ ॥

७९४७. अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः । मर्मृज्यन्ते दिवः शिशुम् ॥५ ॥

द्युलोक से उत्पन्न हुए सोम को शोधित करते समय महान् विद्वज्जनों द्वारा परमार्थ परायण बनने की प्रेरणा देने वाली ऋचाएँ बोली जाती हैं ॥५ ॥

७९४८. रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणः ॥६ ॥

हे सोमदेव ! आप सभी माध्यमों से ऐश्वर्य के चारों समुद्र हमारे लिए उपलब्ध कराने हेतु हजारों प्रकार से प्रवाहित हों ॥६ ॥

[ऐश्वर्य के चार समुद्र-तीनों लोक और प्राणतत्व अथवा अन्तः करण चतुष्टय अथवा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चारों पुरुषार्थ कहे जा सकते हैं ।]

[सूक्त - ३४]

[**ऋषि** - त्रित आप्त्य । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७९४९. प्र सुवानो धारया तनेन्दुर्हिन्वानो अर्षति । रुजद् दृळ्हा व्योजसा ॥१ ॥

अभिषुत सोमरस व्यापक बलों से युक्त होकर धारारूप से पात्र में एकत्रित होता है । वह अपनी शक्ति से शत्रु के सुदृढ़ किलों को भी ध्वस्त कर देता है ॥१ ॥

७९५०. सुत इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमो अर्षति विष्णवे ॥२ ॥

इन्द्र, वरुण, वायु , मरुत् तथा विष्णु आदि देवों के लिए अभिषुत सोम पात्र में एकत्र होता है ॥२ ॥

७९५१. वृषाणं वृषभिर्यतं सुन्वन्ति सोममद्रिभिः । दुहन्ति शक्मना पयः ॥३ ॥

शक्ति से (दबाव देकर) दूध दुहने की भाँति बल बढ़ाने की शक्ति से युक्त सोमरस को सुदृढ़ पत्थरों से कूटकर अभिषुत किया जाता है ॥३ ॥

७९५२. भुवत्त्रितस्य मर्ज्यो भुवदिन्द्राय मत्सरः । सं रूपैरज्यते हरिः ॥४ ॥

त्रित ऋषि द्वारा शोधित हरिताभ सोमरस गौ दुग्ध के साथ मिश्रित करके इन्द्रदेव को प्रदान किया जाता है ॥४ ॥

७९५३. अभीमृतस्य विष्टपं दुहते पृश्निमातरः । चारु प्रियतमं हविः ॥५ ॥

मरुद्गण इस अत्यन्त प्रिय सुन्दर हवन के योग्य सोम का यज्ञस्थल पर रस निकालते हैं ॥५ ॥

७९५४. समेनमह्रुता इमा गिरो अर्षन्ति सस्रुतः । धेनूर्वाश्रो अवीवशत् ॥६ ॥

जिस प्रकार गौ अपने बछड़े के पास आने की कामना करती है उसी प्रकार हमारी स्तुतियाँ सोमदेव के पास जाने की कामना करती हैं ॥६ ॥

[सूक्त - ३५]

[**ऋषि** - प्रभूवसु आङ्गिरस । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७९५५. आ नः पवस्व धारया पवमान रयिं पृथुम् । यया ज्योतिर्विदासि नः ॥१ ॥

हे सोमदेव ! आप जिस धारा से हमें तेज प्रदान करते हैं , उसी धारा से हमें अपने रस के साथ पर्याप्त धन भी प्रदान करें ॥१ ॥

७९५६. इन्दो समुद्रमीङ्खय पवस्व विश्वमेजय । रायो धर्ता न ओजसा ॥२ ॥

हे सोमदेव ! आप अपने रस में जल को मिश्रित होने के लिए प्रेरित करें । सभी शत्रुओं को भयभीत करने वाले हे सोमदेव ! आप अपनी शक्ति से हमें धनवान् बनाने वाला रस प्रदान करें ॥२ ॥

७९५७. त्वया वीरेण वीरवोऽभि ष्याम पृतन्यतः । क्षरा णो अभि वार्यम् ॥३ ॥

हे शौर्यवान् सोमदेव ! आप जैसे वीर सहयोगी के साथ रहकर हम शत्रुसेना का मुकाबला करेंगे । हमें आप वीरता प्रदान करने वाला धन प्रदान करें ॥३ ॥

७९५८. प्र वाजमिन्दुरिष्यति सिषासन्वाजसा ऋषिः । व्रता विदान आयुधा ॥४ ॥

यह अन्नयुक्त सोम द्रष्टा है तथा हमें अन्न प्रदान करता है । यह सोम आयुधों को अपने पास रखता है तथा सभी नियमों को जानता है ॥४ ॥

७९५९. तं गीर्भिर्वाचमीङ्खयं पुनानं वासयामसि । सोमं जनस्य गोपतिम् ॥५ ॥

पवित्र बनाने वाले, स्तुतियों के लिए प्रेरणा देने वाले, प्रजापालक तथा गौओं की रक्षा करने वाले सोम को हम सुरक्षित रखते हैं तथा उस सोम की हम स्तोत्रों से स्तुति करते हैं ॥५ ॥

७९६०. विश्वो यस्य व्रते जनो दाधार धर्मणस्पतेः । पुनानस्य प्रभूवसोः ॥६ ॥

सोमयज्ञ में सभी याज्ञिकों का मन लगा रहता है । शोधित किया हुआ यह सोम धर्म पालक तथा पर्याप्त धन से युक्त होता है ॥६ ॥

[सूक्त - ३६]

[**ऋषि** - प्रभूवसु आङ्गिरस । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७९६१. असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः । कार्ष्मन्वाजी न्यक्रमीत् ॥१ ॥

नियंत्रित रथ के अश्वों की तरह, निचोड़ा गया सोमरस सावधानी पूर्वक पात्र में भरा जाता है । वह बलवान् सोम देवताओं की तरह अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ है ॥१ ॥

७९६२. स वह्निः सोम जागृविः पवस्व देववीरति । अभि कोशं मधुश्चुतम् ॥२ ॥

हे सोमदेव ! आप सामर्थ्यवान् जाग्रत् सूर्य के समान कान्तिमान् हैं, अतः मधुरता से युक्त होकर आप पात्र में शोधित हों ॥२ ॥

७९६३. स नो ज्योतींषि पूर्व्य पवमान वि रोचय । क्रत्वे दक्षाय नो हिनु ॥३ ॥

हे सनातन सोमदेव ! आप हमारे तेज का विस्तार करें तथा यज्ञ कार्य के लिए बल प्राप्ति की प्रेरणा दें ॥३ ॥

७९६४. शुम्भमान ऋतायुभिर्मृज्यमानो गभस्त्योः । पवते वारे अव्यये ॥४ ॥

याज्ञिकों से शोधित सोम भेड़ के बालों की (अविनाशी) छलनी से छाने जाने पर सुशोभित होता है ॥४ ॥

७९६५. स विश्वा दाशुषे वसु सोमो दिव्यानि पार्थिवा । पवतामान्तरिक्ष्या ॥५ ॥

वह सोम द्युलोक, पृथ्वी लोक तथा अन्तरिक्ष लोक का सम्पूर्ण वैभव याज्ञिकों को प्रदान करे ॥५ ॥

७९६६. आ दिवस्पृष्ठमश्वयुर्गव्ययुः सोम रोहसि । वीरयुः शवसस्पते ॥६ ॥

हे अन्नदाता सोम ! आप अश्वों, गौओं तथा वीरपुत्रों की इच्छा करते हुए द्युलोक के ऊपर स्थित होते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - ३७]

[**ऋषि** - रहूगण आङ्गिरस । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७९६७. स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति । विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥१ ॥

दिव्य गुणों से युक्त, इन्द्रादि देवों के लिए तैयार किया हुआ अभीष्ट प्रदायक सोम, विकारों को नष्ट करता हुआ शोधन यंत्र से टपकता है ॥१ ॥

७९६८. स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः । अभि योनिं कनिक्रदत् ॥२ ॥

सबका संरक्षक, सभी का धारक, दुष्टों का संहारक, वह हरिताभ सोम छन्ने से पवित्र होकर शब्द करता हुआ कलश में पहुँचता है ॥२ ॥

७९६९. स वाजी रोचना दिवः पवमानो वि धावति । रक्षोहा वारमव्ययम् ॥३ ॥

द्युलोक में प्रकाशवान् , सामर्थ्यवान् , दुष्टों का संहारक शोधित होता हुआ दिव्य सोम, अविरल रूप से प्रवाहित होता है ॥३ ॥

७९७०. स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् । जामिभिः सूर्यं सह ॥४ ॥

वह सोम त्रित (अन्तरिक्ष, प्रकृति और जीवों के मध्य आदान-प्रदान करने वाले) यज्ञ में संस्कारित होकर अपने महान् तेज से सूर्यदेव को प्रकाशित करता है ॥४ ॥

७९७१. स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः । सोमो वाजमिवासरत् ॥५ ॥

शत्रुओं का नाश करने वाला बलवर्द्धक, निचोड़कर निकाला गया, धन देने वाला सोम अश्व के वेग के समान कलश में प्रविष्ट होता है ॥५ ॥

७९७२. **स देवः कविनेषितो३भि द्रोणानि धावति। इन्दुरिन्द्राय मंहना ॥६॥**

द्युलोक में प्रकाशवान् वह सोम याजकों के द्वारा प्रभावित होकर इन्द्रादि देवों की महत्ता बढ़ाने के लिए वेगपूर्वक कलश (विश्व घट) में प्रविष्ट होता है ॥६॥

[सूक्त - ३८]

[**ऋषि** - रहूगण आङ्गिरस। **देवता** - पवमान सोम। **छन्द** - गायत्री।]

७९७३. **एष उ स्य वृषा रथोऽव्यो वारेभिरर्षति। गच्छन् वाजं सहस्रिणम् ॥१॥**

रथ के सदृश वेगवान्, अभीष्ट अन्नप्रदायक, यह सोम कलश में छलनी के द्वारा छाना जाता है ॥१॥

७९७४. **एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः। इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥२॥**

इन्द्रदेव द्वारा प्रयुक्त किये जाने के लिए यह हरिताभ सोम (त्रित) तीन प्रकार से (अन्तरिक्ष में, भौतिक यंत्रों में तथा शरीरस्थ तन्त्र में) निचोड़ा जा रहा है ॥२॥

७९७५. **एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः। याभिर्मदाय शुम्भते ॥३॥**

इन्द्रदेव को प्रसन्न करने के लिए यज्ञार्थ दस अँगुलियाँ उस सोम को शोधित करती हैं ॥३॥

७९७६. **एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति। गच्छञ्जारो न योषितम् ॥४॥**

जिस प्रकार बाज़ पक्षी अपने शिकार के प्रति तथा प्रेमी अपनी प्रियतमा के प्रति वेगपूर्वक जाता है, उसी प्रकार यह सोम, मानवों के बीच शीघ्रतापूर्वक पहुँचकर प्रतिष्ठित होता है ॥४॥

७९७७. **एष स्य मद्यो रसोऽव चष्टे दिवः शिशुः। य इन्दुर्वारमाविशत् ॥५॥**

द्युलोक में उत्पन्न हुआ यह आनन्दवर्धक सोम, सबको देखता हुआ (प्राकृतिक) छलनी से शुद्ध होता है ॥५॥

७९७८. **एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः। क्रन्दन्योनिमभि प्रियम् ॥६॥**

सबको धारण करने वाला यह अविनाशी सोम, देवों के पीने के लिए तैयार किया गया है, जो ध्वनि करता हुआ अपने प्रिय निवास-स्थान कलश में प्रवेश करता है ॥६॥

[सूक्त - ३९]

[**ऋषि** - बृहन्मति आङ्गिरस। **देवता** - पवमान सोम। **छन्द** - गायत्री।]

७९७९. **आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना। यत्र देवा इति ब्रवन् ॥१॥**

हे मूर्तिमान् सोमदेव ! "जहाँ देवों का निवास (देवलोक या यज्ञीय क्षेत्र) है वहाँ जाता हूँ" ऐसा कहते हुए आप प्रिय रसधारा सहित शीघ्र उपस्थित हों ॥१॥

७९८०. **परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः। वृष्टिं दिवः परि स्रव ॥२॥**

हे सोमदेव ! संस्काररहित क्षेत्र को संस्कारवान् बनाते हुए, मानवमात्र के निमित्त अन्न आदि उत्पन्न करने के लिए आकाश से वर्षा करें (प्राण-पर्जन्य के रूप में आपका अनुग्रह जल के साथ प्राप्त हो) ॥२॥

७९८१. **सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा। विचक्षाणो विरोचयन् ॥३॥**

सबका निरीक्षक, सबका प्रकाशक, दिव्य सोम अन्तरिक्ष से, प्राकृतिक छन्ने द्वारा छनता हुआ तीव्रगति से अवतरित होता है ॥३ ॥

७९८२. **अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ । सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ॥४ ॥**

आकाश में तीव्र गति से विचरण करने वाला, पवित्र किया जाता हुआ, सोमरस सागर (नदी-जलाशय आदि) की लहरों को प्राप्त होता है ॥४ ॥

७९८३. **आविवासन् परावतो अथो अर्वावतः सुतः । इन्द्राय सिच्यते मधु ॥५ ॥**

तैयार किया हुआ सोमरस दूर एवं समीप (समुचित रीति) से संस्कारित (पवित्र) करके इन्द्रदेव को समर्पित किया जाता है ॥५ ॥

७९८४. **समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । योनावृतस्य सीदत ॥६ ॥**

यज्ञस्थल पर प्रतिष्ठित, शिलाओं के द्वारा पीसकर निकाले गये, ताजे हरे रंग वाले सोमरस को शोधित करते समय एक स्थान पर एकत्रित साधक स्तुति करते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - ४०]

[**ऋषि** - बृहन्मति आङ्गिरस । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७९८५. **पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः । शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥१ ॥**

पवित्र होने के बाद बुद्धिवर्द्धक एवं ज्ञानवर्द्धक यह सोमरस सभी शत्रुओं (विकारों) का शमन करता है । ज्ञानी जन इस सोम की दिव्य स्तोत्रों से स्तुति करते हैं ॥१ ॥

७९८६. **आ योनिमरुणो रुहद्गमदिन्द्रं वृषा सुतः । ध्रुवे सदसि सीदति ॥२ ॥**

विधिवत् तैयार किया गया अरुणाभ सोम, कलश में स्थिर होता है, श्रेष्ठ स्थान पर प्रतिष्ठित होता है और इन्द्रदेव के निकट जाता है ॥२ ॥

७९८७. **नू नो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्त्रिणम् ॥३ ॥**

हे तृप्तिदायक सोमदेव ! आप हमें शीघ्र ही हजारों प्रकार का महान् वैभव सभी ओर से प्रदान करें ॥३ ॥

७९८८. **विश्वा सोम पवमान द्युम्नानीन्दवा भर । विदाः सहस्त्रिणीरिषः ॥४ ॥**

हे शोधित तेजस्वी सोमदेव ! आप हमें हर प्रकार के धन से भरपूर करें तथा हजारों प्रकार का अन्न हमें प्रदान करें ॥४ ॥

७९८९. **स नः पुनान आ भर रयिं स्तोत्रे सुवीर्यम् । जरितुर्वर्धया गिरः ॥५ ॥**

हे सोमदेव ! आप शोधित होते हुए , पराक्रमी बनाने वाला श्रेष्ठ धन हम सभी स्तोताओं को प्रदान करें तथा स्तोताओं की स्तुतियों का विस्तार करें ॥५ ॥

७९९०. **पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम् । वृषन्निन्दो न उक्थ्यम् ॥६ ॥**

हे तेजस्वी सोमदेव ! आप शोधित होते हुए द्युलोक तथा पृथ्वी लोक का धन हमें प्रदान करें । हे धन प्रदाता सोमदेव ! हमें प्रशंसनीय (श्रेष्ठ) धन प्रदान करें ॥६ ॥

[सूक्त - ४१]

[**ऋषि** - मेध्यातिथि काण्व । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७९९१. प्र ये गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः । घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥१ ॥

गौ-किरणों की तरह यह (सोम) शीघ्रता से काली त्वचा (काला आवरण-अँधेरा अथवा विकारों) का निवारण करते हुए तीव्र गति से आगे बढ़ता है ॥१ ॥

७९९२. सुवितस्य मनामहेऽति सेतुं दुराव्यम् । साह्वांसो दस्युमव्रतम् ॥२ ॥

हे सुख प्रदान करने वाले सोमदेव ! असह्य बन्धनों को दूर करने वाले, सत्कर्म से विरत-दुष्कर्म में निरत शत्रुओं का शमन करने के लिए हम आपकी वन्दना करते हैं ॥२ ॥

७९९३. शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः । चरन्ति विद्युतो दिवि ॥३ ॥

पवित्र किये जाते सोम की ध्वनि, वर्षा के समय होने वाली जल की ध्वनि के समान मधुर है । उस तेजस्वी सोम की किरणें आकाश में सर्वत्र फैलती हैं ॥३ ॥

७९९४. आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् । अश्वावद्वाजवत् सुतः ॥४ ॥

सुपात्र में स्थित हे सोमदेव ! आप हमें अन्न के भण्डार एवं पुत्र-पौत्र, गौएँ, अश्व एवं स्वर्णादि अपार वैभव प्रदान करें ॥४ ॥

७९९५. स पवस्व विचर्षण आ मही रोदसी पृण । उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥५ ॥

उषाकाल के बाद अपनी स्वर्णिम रश्मियों से जगत् को आलोकित करने वाले सूर्यदेव की भाँति हे विश्व द्रष्टा सोमदेव ! आप अपने तृप्तिदायक पवित्र हुए रस से धरती और आकाश को भर दें ॥५ ॥

७९९६. परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः । सरा रसेव विष्टपम् ॥६ ॥

हे सोमदेव ! जल से घिरी हुई पृथ्वी की भाँति आप अपनी सुखद रसधार से हमें चारों ओर से घेर लें ॥६ ॥

[पृथ्वी जल से घिरी है, आकाश का नीलापन वायुमण्डल के बाहर निकलने पर नहीं दिखाई पड़ता ।]

[सूक्त - ४२]

[**ऋषि** - मेध्यातिथि काण्व । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

७९९७. जनयन्रोचना दिवो जनयन्नप्सु सूर्यम् । वसानो गा अपो हरिः ॥१ ॥

यह हरिताभ सोम द्युलोक में नक्षत्रों को तथा अन्तरिक्ष में सूर्यदेव का निर्माण करके गौ (किरणों या पृथ्वी) तथा जल को आच्छादित (प्रभावित) करता है ॥१ ॥

७९९८. एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि । धारया पवते सुतः ॥२ ॥

सनातन स्तुतियों की सहायता से यह देदीप्यमान सोमरस देवगणों के लिए धार रूप में प्रवाहित होता है ॥२ ॥

८०९९. वावृधानाय तूर्वये पवन्ते वाजसातये । सोमाः सहस्रपाजसः ॥३ ॥

सोमरस हजारों प्रकार के बल की वृद्धि के लिए तथा अन्नादि लाभ के उद्देश्य से निकाला जाता है ॥३ ॥

८०००. दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि षिच्यते । क्रन्दन्देवाँ अजीजनत् ॥४ ॥

बर्तन में निचोड़ा गया यह सोमरस छलनी से छाना जाता है । शब्द करता हुआ यह सोम देवगणों को यज्ञ में आवाहित करता हुआ प्रतीत होता है ॥४ ॥

८००१. अभि विश्वानि वार्याभि देवाँ ऋतावृधः । सोमः पुनानो अर्षति ॥५ ॥

यह शोधित सोमरस सत्यव्रतधारी देवगणों को समीप लाते हुए सभी प्रकार का धन विविध प्रकार से प्रदान करता है ॥५ ॥

८००२. गोमन्नः सोम वीरवदश्वावद्वाजवत्सुतः । पवस्व बृहतीरिषः ॥६ ॥

हे सोमदेव ! आप गौओं, वीर पुत्रों, अश्वों तथा बलों से युक्त अन्न हमें प्रदान करें ॥६ ॥

[सूक्त - ४३]

[**ऋषि** - मेध्यातिथि काण्व । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

८००३. यो अत्य इव मृज्यते गोभिर्मदाय हर्यतः । तं गीर्भिर्वासयामसि ॥१ ॥

अश्व की भाँति गतिशील सोम को गौदुग्ध में मिश्रित कर शोधित किया जाता है, जो आनन्ददायी होने के कारण प्रिय है, उस सोम की स्तुतियों द्वारा यज्ञस्थल में स्थापना करते हैं ॥१ ॥

८००४. तं नो विश्वा अवस्युवो गिरः शुम्भन्ति पूर्वथा । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥२ ॥

सनातन स्तुतियों की भाँति हर प्रकार से रक्षण करने वाली स्तुतियाँ, उस सोम को सुशोभित करते हुए इन्द्रदेव के लिए तैयार करती हैं ॥२ ॥

८००५. पुनानो याति हर्यतः सोमो गीर्भिः परिष्कृतः । विप्रस्य मेध्यातिथेः ॥३ ॥

स्तुतियों से संस्कारित, शोधित, सोमरस ज्ञानवान् मेधातिथि के यज्ञ में पहुँचता है ॥३ ॥

८००६. पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम सुश्रियम् । इन्दो सहस्रवर्चसम् ॥४ ॥

हे पवित्र तेजस्वी सोमदेव ! आप सहस्रों प्रकार का उत्तम धन हमें प्रदान करें ॥४ ॥

८००७. इन्दुरत्यो न वाजसृत्कनिक्रन्ति पवित्र आ । यदक्षारति देवयुः ॥५ ॥

युद्ध में जाते हुए अश्वों के समान यह सोम देवगणों के पास जाने की कामना से छलनी में शब्द करते हुए जाता है ॥५ ॥

८००८. पवस्व वाजसातये विप्रस्य गृणतो वृधे । सोम रास्व सुवीर्यम् ॥६ ॥

हे सोमदेव ! स्तोता, विप्र की वृद्धि के लिए तथा उत्तम बल से युक्त अन्न के लिए आप प्रवाहित हों ॥६ ॥

[सूक्त - ४४]

[**ऋषि** - अयास्य आङ्गिरस । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

८००९. प्र ण इन्दो महे तन ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि । अभि देवाँ अयास्यः ॥१ ॥

हे सोमदेव ! प्रचुर सम्पदा प्राप्ति के लिए आप कलश में छाने जाते हैं । आपके तेज को धारण करने वाले अयास्य ऋषि, देवों की ओर (देवत्व की ओर अथवा देवपूजन के लिए) बढ़ते हैं ॥१ ॥

८०१०. **मती जुष्टो धिया हितः सोमो हिन्वे परावति। विप्रस्य धारया कविः ॥२ ॥**

ज्ञानवानों की उत्तम बुद्धि से सेवित यह ज्ञानी सोमरस सत्कर्म रूपी यज्ञ में दूर-दूर तक के स्थानों में गमन करता है ॥२ ॥

८०११. **अयं देवेषु जागृविः सुत एति पवित्र आ। सोमो याति विचर्षणिः ॥३ ॥**

जागरण शील, दिव्य द्रष्टा यह सोमरस छलनी में छाने जाने पर देवगणों की ओर गमन करता है ॥३ ॥

८०१२. **स नः पवस्व वाजयुश्चक्राणश्चारुमध्वरम्। बर्हिष्माँ आ विवासति ॥४ ॥**

हे सोमदेव ! इस हिंसारहित यज्ञ को उत्तम विधि से पूर्ण करते हुए आप याज्ञिकों तथा हम सभी के लिए अन्न प्रदान करने वाला रस प्रदान करें ॥४ ॥

८०१३. **स नो भगाय वायवे विप्रवीरः सदावृधः। सोमो देवेष्वा यमत् ॥५ ॥**

ज्ञानी जनों द्वारा प्रेरित वह सोमरस सदा संवर्धित होकर वायुवत् (सर्व हितकारी) देवत्व प्रदान करने वाला ऐश्वर्य हमें प्रदान करे ॥५ ॥

८०१४. **स नो अद्य वसुत्तये क्रतुविद् गातुवित्तमः। वाजं जेषि श्रवो बृहत् ॥६ ॥**

हे सोमदेव ! आप पुण्य कर्मों के मार्गदर्शक तथा सत्कर्म करने वाले हैं , अतः (अपनी सामर्थ्य से) आप धन तथा उत्तम अन्न पर विजय प्राप्त करते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - ४५]

[**ऋषि** - अयास्य आङ्गिरस। **देवता** - पवमान सोम। **छन्द** - गायत्री।]

८०१५. **स पवस्व मदाय कं नृचक्षा देववीतये। इन्दविन्द्राय पीतये ॥१ ॥**

हे सोमदेव ! आप मनुष्यों के द्रष्टा हैं। देवों के निमित्त तथा इन्द्रदेव के आनन्दवर्द्धन के लिये उनके पान करने हेतु सुखपूर्वक अपना रस निष्पादित करें ॥१ ॥

८०१६. **स नो अर्षाभि दूत्यं१त्वमिन्द्राय तोशसे। देवान्त्सखिभ्य आ वरम् ॥२ ॥**

हे सोमदेव ! आप ज्ञान के संदेशवाहक बनकर इन्द्रदेव की तुंष्टि के लिए देवगणों के निमित्त तथा मित्रों के लाभ हेतु रस प्रदान करें ॥२ ॥

८०१७. **उत त्वामरुणं वयं गोभिरञ्ज्मो मदाय कम्। वि नो राये दुरो वृधि ॥३ ॥**

उस अरुणाभ सोम को आनन्द वृद्धि तथा सुख प्राप्ति के लिए, गौ दुग्ध के साथ मिलाते हैं। हे सोमदेव ! आप हमारे धन प्राप्ति के मार्ग को प्रशस्त करें ॥३ ॥

८०१८. **अत्यू पवित्रमक्रमीद्वाजी धुरं न यामनि। इन्दुर्देवेषु पत्यते ॥४ ॥**

जिस प्रकार अश्व धुरे को मार्ग पर गतिशील करता है, उसी प्रकार शोधन यंत्र को पार करके सोम देवों तक पहुँचता है ॥४ ॥

८०१९. **समी सखायो अस्वरन्वने क्रीळन्तमत्यविम्। इन्दुं नावा अनूषत ॥५ ॥**

छलनी में क्रीड़ा करते हुए शोधित सोमरस की, सखाभाव वाले याजक, यज्ञस्थल में स्तुति करते हैं ॥५ ॥

८०२०. **तया पवस्व धारया यया पीतो विचक्षसे । इन्दो स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥६ ॥**

हे सोमदेव ! आप जिस धारा से पान करने पर स्तोताओं को उत्तमबल प्रदान करते हैं , उसी धारा से पात्र में क्षरित हों-पवित्र हों ॥६ ॥

[सूक्त - ४६]

[**ऋषि** - अयास्य आङ्गिरस । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

८०२१. **असृग्रन्देववीतयेऽत्यासः कृत्व्या इव । क्षरन्तः पर्वतावृधः ॥१ ॥**

पर्वत में उत्पन्न हुआ तथा क्षरित होता हुआ सोमरस देवगणों के पास जाने के लिए , वेगवान् अश्वों के समान पात्र में गमन करता है ॥१ ॥

८०२२. **परिष्कृतास इन्दवो योषेव पित्र्यावती । वायुं सोमा असृक्षत ॥२ ॥**

जिस प्रकार पुत्री, पिता द्वारा अलंकारों से विभूषित होकर पति के पास जाती है, उसी प्रकार तेजस्वी सोम वायुदेव के पास जाता है ॥२ ॥

८०२३. **एते सोमास इन्दवः प्रयस्वन्तश्चमू सुताः । इन्द्रं वर्धन्ति कर्मभिः ॥३ ॥**

पात्र में निकालकर रखा गया, यह तेजस्वी सोमरस अन्न के साथ मिलकर अपने यज्ञीय कार्यों से इन्द्रदेव के बल को बढ़ाता है ॥३ ॥

८०२४. **आ धावता सुहस्त्यः शुक्रा गृभ्णीत मन्थिना । गोभिः श्रीणीत मत्सरम् ॥४ ॥**

हे सिद्धहस्त याज्ञिको ! हमारे पास आओ तथा मथानी से मथकर इस बलशाली सोमरस को गाय के दूध के साथ मिलाओ ॥४ ॥

८०२५. **स पवस्व धनञ्जय प्रयन्ता राधसो महः । अस्मभ्यं सोम गातुवित् ॥५ ॥**

हे शत्रुओं का धन जीतने वाले सोम ! आप हमें उत्तम धन प्रदान करने वाला श्रेष्ठ मार्गदर्शन प्रदान करें ॥५ ॥

८०२६. **एतं मृजन्ति मर्ज्यं पवमानं दश क्षिपः । इन्द्राय मत्सरं मदम् ॥६ ॥**

स्तुत्य, पवित्र, सुखद सोम इन्द्र को देने तथा उनको उल्लसित करने के लिए दसों अँगुलियाँ शुद्ध करती हैं ॥६ ॥

[सूक्त - ४७]

[**ऋषि** - कवि भार्गव । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

८०२७. **अया सोमः सुकृत्यया महश्चिदभ्यवर्धत । मन्दान उद्वृषायते ॥१ ॥**

हे सोम ! आप श्रेष्ठ कार्यों से सम्मानित होकर महान् बनते हैं और आनन्द प्रदान करके शक्ति बढ़ाते हैं ॥१ ॥

८०२८. **कृतानीदस्य कर्त्वा चेतन्ते दस्युतर्हणा । ऋणा च धृष्णुश्चयते ॥२ ॥**

यह सोम शत्रुओं का नाश करता है तथा धैर्यपूर्वक (याज्ञिकों के) ऋण को भी दूर करता है ॥२ ॥

८०२९. **आत्सोम इन्द्रियो रसो वज्रः सहस्रसा भुवत् । उक्थं यदस्य जायते ॥३ ॥**

इन्द्रदेव के स्तोत्र बोलते समय उनका प्रिय सोमरस हजारों प्रकार का पौष्टिक अन्न प्रदान करता है ॥३ ॥

८०३०. **स्वयं कविर्विधर्तरि विप्राय रत्नमिच्छति। यदी मर्मृज्यते धियः ॥४॥**

अँगुलियों से शोधित होते समय कवि सदृश यह सोम ज्ञानीजनों को धन प्रदान करने की कामना करता है ॥४॥

८०३१. **सिषासतू रयीणां वाजेष्वर्वतामिव । भरेषु जिग्युषामसि ॥५॥**

हे सोमदेव ! जैसे संग्राम में जाते समय अश्वों को घास देते हैं , उसी प्रकार युद्धभूमि में विजय की कामना करने वालों को आप धन प्रदान करते हैं ॥५॥

[सूक्त - ४८]

[**ऋषि** - कवि भार्गव । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

८०३२. **तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः। चारुं सुकृत्ययेमहे ॥१॥**

देवलोक में व्याप्त , नाना प्रकार के ऐश्वर्यों से युक्त, सुन्दर, हे सोमदेव ! उत्तम कर्मों (यज्ञों) के द्वारा आपको प्राप्त करने की हमारी कामना है ॥१॥

८०३३. **संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम्। शतं पुरो रुरुक्षणिम् ॥२॥**

हे असुरजयी सोमदेव ! आप उत्तम कर्म करने वाले आनन्ददायी तथा शत्रुओं के सैकड़ों नगरों को ध्वस्त करने वाले हैं। आपसे हम ऐश्वर्य की याचना करते हैं ॥२॥

८०३४. **अतस्त्वा रयिमभि राजानं सुक्रतो दिवः। सुपर्णो अव्यथिर्भरत् ॥३॥**

उत्तम कर्मों के अधिष्ठाता , ऐश्वर्यवान् , तेजस्वी हे सोमदेव ! कष्ट एवं पीड़ा को महत्त्व न देने वाले गरुड़ आपको द्युलोक से पृथ्वी पर लायें ॥३॥

८०३५. **विश्वस्मा इत्स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम्। गोपामृतस्य विर्भरत् ॥४॥**

यज्ञरक्षक, जल का प्रेरक, स्वयं प्रकाशित, देवशक्तियों को सहजता से प्राप्त होने वाला दिव्य सोम आकाश को संव्याप्त कर लेता है ॥४॥

८०३६. **अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे। अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ॥५॥**

इसके बाद (पृथ्वी पर आकर) ज्ञान सम्पन्न एवं इष्ट फलदायी सोम, शोधित होकर, अपनी क्षमताओं को और अधिक बढ़ाकर अतिशय श्रेष्ठ बन जाता है ॥५॥

[सूक्त - ४९]

[**ऋषि** - कवि भार्गव । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

८०३७. **पवस्व वृष्टिमा सु नोऽपामूर्मिं दिवस्परि। अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥१॥**

हे दिव्य सोमदेव ! आप (हमारे लिए) द्युलोक द्वारा उत्तम रीति से वृष्टि करें, जल को तरंगित करें तथा उनके साथ रोगनाशक अन्न हमें प्रदान करें ॥१॥

८०३८. **तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन्। जन्यास उप नो गृहम् ॥२॥**

हे सोमदेव ! आप उन धाराओं को प्रकट करें, जिनसे अन्य (जो हमें प्राप्त हैं, उनके अतिरिक्त) गौएँ (वाणियाँ, पोषक प्रवाह) हमें प्राप्त हों ॥२॥

८०३९. **घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः । अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥३ ॥**

हे सोमदेव ! यज्ञ में देवों द्वारा अभिलषित हुए आप धार-रूप जल की वृष्टि करें ॥३ ॥

८०४०. **स न ऊर्जे व्य१व्ययं पवित्रं धाव धारया । देवासः शृणवन्हि कम् ॥४ ॥**

हे सोमदेव ! हमें अन्न प्रदान करने के लिए आप छन्ने से धार-रूप में छनकर कलश में प्रविष्ट हों । देवगण आपके (मधुर) शब्द सुनकर उल्लसित हों ॥४ ॥

८०४१. **पवमानो असिष्यदद्रक्षांस्यपजङ्घनत् । प्रत्नवद्रोचयन् रुचः ॥५ ॥**

शत्रुओं का संहार करने वाला, तेज से देदीप्यमान, पवित्र होने वाला सोमरस कलश में स्रवित होता है ॥५ ॥

[सूक्त - ५०]

[**ऋषि** - उचथ्य आङ्गिरस । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

८०४२. **उत्ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः । वाणस्य चोदया पविम् ॥१ ॥**

हे सोमदेव ! आपके प्रवाहित होने से समुद्र की तरंगों जैसी ध्वनियाँ होती हैं । आप वाणी से उत्पन्न शब्दों की भाँति ध्वनि को प्रेरित करें ॥१ ॥

८०४३. **प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः । यदव्य एषि सानवि ॥२ ॥**

हे सोमदेव ! आपके प्रादुर्भाव के बाद याजकवृन्द ऋक्, यजु, साम के मंत्रों का गान करते हैं, तब आप उच्च आसन पर विराजमान होकर संस्कारित होने के लिए तत्पर हो जाते हैं ॥२ ॥

८०४४. **अव्यो वारे परि प्रियं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । पवमानं मधुश्चुतम् ॥३ ॥**

ऋत्विग्गण पाषाणों से कूटे गये हरिताभ, सुन्दर, मधुर सोमरस को छन्ने से छानते हैं ॥३ ॥

८०४५. **आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे । अर्कस्य योनिमासदम् ॥४ ॥**

हे परम आनन्ददायी सोमदेव ! इन्द्रदेव को तृप्ति प्रदान करने के लिए आप शोधन यंत्र में से निर्मल धारा के रूप में प्रवाहित हों ॥४ ॥

८०४६. **स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः । इन्दविन्द्राय पीतये ॥५ ॥**

हे आनन्ददाता सोम ! आप गौ के पुष्टिकारक दुग्धादि के मिश्रण में छनकर इन्द्र के पान करने योग्य बनें ॥५ ॥

[सूक्त - ५१]

[**ऋषि** - उचथ्य आङ्गिरस । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

८०४७. **अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ सृज । पुनीहीन्द्राय पातवे ॥१ ॥**

हे अध्यर्वो ! इन्द्र के पीने योग्य बनाने हेतु पत्थर से निचोड़े गये सोम को पवित्र करके पात्र के पास लाओ ॥१ ॥

८०४८. **दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे । सुनोता मधुमत्तमम् ॥२ ॥**

हे याज्ञिको ! द्युलोक के अमृत के समान अत्यन्त मधुर सोमरस को वज्रधारी इन्द्रदेव को प्रदान करने के लिये अभिषिक्त करो ॥२ ॥

८०४९. **तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्यश्नते । पवमानस्य मरुतः ॥३ ॥**

हे सोमदेव ! आपके आनन्दवर्द्धक मधुर अन्नरूप रस का देवगण तथा मरुद्गण सेवन करते हैं ॥३ ॥

८०५०. **त्वं हि सोम वर्धयन्त्सुतो मदाय भूर्णये । वृषन्त्स्तोतारमूतये ॥४ ॥**

हे अभिषुत सोमदेव ! आप देवगणों को आनन्दित करने , उनकी कामनाओं की पूर्ण करने तथा संरक्षण प्रदान करने में सहायक होते हैं ॥४ ॥

८०५१. **अभ्यर्ष विचक्षण पवित्रं धारया सुतः । अभि वाजमुत श्रवः ॥५ ॥**

हे सर्वद्रष्टा सोमदेव ! छलनी में धारारूप में निचोड़े गये, आपका रस हमें अन्न तथा कीर्ति प्रदान करे ॥५ ॥

[सूक्त - ५२]

[**ऋषि** - उचथ्य आङ्गिरस । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

८०५२. **परि द्युक्षः सनद्रयिर्भरद्वाजं नो अन्धसा । सुवानो अर्ष पवित्र आ ॥१ ॥**

धन प्रदान करने वाला तेजस्वी सोम हमें बल एवं अन्न से परिपूर्ण करे । हे सोमदेव ! आप शोधक यंत्र से शोधित होते हुए आएँ ॥१ ॥

८०५३. **तव प्रत्नेभिरध्वभिरव्यो वारे परि प्रियः । सहस्रधारो यात्तना ॥२ ॥**

हे सोम ! हजारों धाराओं से गमनशील आपका प्रिय रस अनश्वर छलनी से नीचे की ओर प्रवाहित होता है ॥२ ॥

८०५४. **चरुर्न यस्तमीङ्खयेन्दो न दानमीङ्खय । वधैर्वधस्नवीङ्खय ॥३ ॥**

हे सोमदेव ! पत्थरों से कूटते समय आप रस को बाहर निकलने के लिए प्रेरित करें । हे सोमदेव ! आप चरु के समान जो खाद्य है, उसे हमें प्रदान करें ॥३ ॥

८०५५. **नि शुष्ममिन्दवेषां पुरुहूत जनानाम् । यो अस्माँ आदिदेशति ॥४ ॥**

हे स्तुतियों के योग्य सोमदेव ! आपकी बल बढ़ाने की प्रेरणा हमारे लिए हितकारी है ॥४ ॥

८०५६. **शतं न इन्द ऊतिभिः सहस्रं वा शुचीनाम् । पवस्व मंहयद्रयिः ॥५ ॥**

हे सोमदेव ! हजारों प्रकार से शुद्ध होकर आप संरक्षण से युक्त धन प्रदान करने वाला रस निकालें ॥५ ॥

[सूक्त - ५३]

[**ऋषि** - अवत्सार काश्यप । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

८०५७. **उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः । नुदस्व याः परिस्पृधः ॥१ ॥**

पाषाणों से कूटे गये हे शुद्ध सोमदेव ! आपकी उठती तरंगों (बल) से राक्षसों (विकारों) का विनाश होता है । आप हमसे संघर्ष करने वाले शत्रुओं को दूर करें ॥१ ॥

८०५८. **अया निजघ्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते । स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥२ ॥**

हे सोमदेव ! आप अपनी सामर्थ्य से शत्रुओं का विनाश करने में समर्थ हैं । युद्ध में हम निर्भय अन्तः करण से रथों में स्थित धन प्राप्ति के लिए आपकी स्तुति करते हैं ॥२ ॥

८०५९. अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या। रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥३ ॥

इस संस्कारित सोम के कर्मों से दुष्ट राक्षसों की प्रगति नहीं हो सकती। हे सोमदेव ! अपने प्रति आक्रामक शत्रुओं का आप विनाश करें ॥३ ॥

८०६०. तं हिन्वन्ति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम्।
इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥४॥

आनन्द रस बहाने वाले, बल और उत्साह बढ़ाने वाले इस हरिताभ सोम को (ऋत्विग्गण) नदियों (जल) के माध्यम से इन्द्रदेव के लिए प्रेरित करते हैं ॥४ ॥

[सूक्त - ५४]

[**ऋषि** - अवत्सार काश्यप। **देवता** - पवमान सोम। **छन्द** - गायत्री।]

८०६१. अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः। पयः सहस्रसामृषिम् ॥१ ॥

याजक गण सनातन स्वरूप वाले शुद्ध सोम को निकालते हैं, वह द्रष्टा सोमरस (याजकों को) हजारों प्रकार का धन प्रदान करता है ॥१ ॥

८०६२. अयं सूर्य इवोपदृगयं सरांसि धावति। सप्त प्रवत आ दिवम् ॥२ ॥

देवलोक तक सप्तधाराओं (सप्तकिरणों) के रूप में प्रवाहित सूर्यदेव के समान सभी लोकों का द्रष्टा सोमरस जल पात्रों में शोधित किया जाता है ॥२ ॥

८०६३. अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि। सोमो देवो न सूर्यः ॥३ ॥

पवित्र होने वाला यह सोमरस सूर्यदेव के समान सभी लोकों में प्रकाशित होता है ॥३ ॥

८०६४. परि णो देववीतये वाजाँ अर्षसि गोमतः। पुनान इन्दविन्द्रयुः ॥४ ॥

इन्द्रदेव के पास जाने की कामना वाले हे शोधित सोमदेव ! आप देवगणों के निमित्त गौ (गौएँ या पोषण) तथा हर प्रकार का अन्न प्रदान करते हैं ॥४ ॥

[सूक्त - ५५]

[**ऋषि** - अवत्सार काश्यप। **देवता** - पवमान सोम। **छन्द** - गायत्री।]

८०६५. यवंयवं नो अन्धसा पुष्टम्पुष्टं परि स्रव। सोम विश्वा च सौभगा ॥१ ॥

हे सोमदेव ! अपने दिव्य पोषक रस को अन्न एवं वनस्पतियों के साथ आप हमें उपलब्ध कराते रहें तथा हमें सम्पूर्ण वैभव प्रदान करें ॥१ ॥

८०६६. इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः। नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥२ ॥

देवताओं के प्रिय आहार हे सोमदेव ! याजकों द्वारा जिस भावना से आपकी स्तुति की जाती है, उसी स्नेह के साथ आप यज्ञशाला में श्रेष्ठ आसन ग्रहण करें ॥२ ॥

८०६७. उत नो गोविदश्ववित्पवस्व सोमान्धसा। मक्षूतमेभिरहभिः ॥३ ॥

हे सोमदेव ! आप हमें गौ, अश्व, अन्न आदि के रूप में अपार वैभव प्रदान करें ॥३ ॥

८०६८. यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य। स पवस्व सहस्रजित् ॥४॥

शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले हे सोमदेव ! असुरों का विनाश करने वाले, उनसे कभी पराजित न होने वाले आप पवित्रता को प्राप्त हों ॥४॥

[सूक्त - ५६]

[**ऋषि** - अवत्सार काश्यप । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

८०६९. परि सोम ऋतं बृहदाशुः पवित्रे अर्षति। विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥१॥

द्रुतगति से कार्य करने वाला, देवगणों के पास जाने वाला सोमरस शोधक प्रक्रिया के अन्तर्गत शत्रुओं (विकारों) का संहार करता है तथा हमें उत्तम धन (लाभादि) प्रदान करता है ॥१॥

८०७०. यत्सोमो वाजमर्षति शतं धारा अपस्युवः। इन्द्रस्य सख्यमाविशन् ॥२॥

यज्ञ की कामना वाली सैकड़ों सोमरस की धाराएँ जब इन्द्रदेव से मित्रभाव स्थापित करती हैं, तभी सोमरस से हमें अन्न प्राप्त होता है ॥२॥

[सोम पदार्थ रचना के पूर्व सूक्ष्म कणों के रूप में होता है, इन्द्र अर्थात् संगठक शक्ति की मित्रता के सहयोग से पोषक पदार्थों का प्रादुर्भाव होता है ।]

८०७१. अभि त्वा योषणो दश जारं न कन्यानूषत। मृज्यसे सोम सातये ॥३॥

जिस तरह स्त्री अपने प्रियतम को बुलाती है, उसी प्रकार दसों अँगुलियाँ सोमरस को पकड़तीं और शुद्ध करती हैं ॥३॥

८०७२. त्वमिन्द्राय विष्णवे स्वादुरिन्दो परि स्रव। नृन्त्स्तोतॄन्पाह्यंहसः ॥४॥

हे सोमदेव ! विष्णु तथा इन्द्रदेव के निमित्त आप मधुर रस निकालें और स्तुति करने वाले याजकों को पापकर्मों से बचाएँ ॥४॥

[सूक्त - ५७]

[**ऋषि** - अवत्सार काश्यप । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

८०७३. प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः। अच्छा वाजं सहस्रिणम् ॥१॥

हे सोमदेव ! आपकी अविरल धाराएँ प्रचुर अन्नादि देने वाली हैं, जैसे आकाश से वृष्टि होती है, वैसे ही आपकी धाराएँ पृथ्वी पर अन्न (पोषक तत्त्व) की वृष्टि करती हैं ॥१॥

८०७४. अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति। हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥२॥

सभी प्रिय कर्मों पर दृष्टि रखने वाला हरिताभ सोम शत्रुओं पर आयुधों का प्रहार करता हुआ (उन्हें पराभूत करके) आगे बढ़ता जाता है ॥२॥

८०७५. स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः। श्येनो न वंसु षीदति ॥३॥

वह नित्य उत्तम कर्मों को सम्पन्न करने वाला सोम, ऋत्विजों द्वारा संस्कारित होता हुआ राजा के समान निर्भीक और तेजस्वी दिखाई देता है । वह बाज़ पक्षी के समान वेगपूर्वक जल में मिलाया जाता है ॥३॥

८०७६. स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि । पुनान इन्दवा भर ॥४ ॥

हे सोमदेव ! पवित्र होने वाले आप द्युलोक और पृथिवीलोक में संव्याप्त रहते हुए हमें सभी प्रकार की सम्पदाएँ प्रदान करें ॥४ ॥

[सूक्त - ५८]

[**ऋषि** - अवत्सार काश्यप । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

८०७७. तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः । तरत्स मन्दी धावति ॥१ ॥

निकाली गई सोमरस की पुष्टिकारक धारा आनन्द प्रदान करने वाली है । वह निकृष्ट संस्कारों से रहित और उपासकों को ऊर्ध्वगति प्रदान करने वाली है ॥१ ॥

८०७८. उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः । तरत्स मन्दी धावति ॥२ ॥

सभी प्रकार के वैभवों से युक्त देदीप्यमान धाराएँ याजक का हर प्रकार से संरक्षण करना जानती हैं, ऐसी आनन्द प्रदायक धाराएँ तेजगति से प्रवाहित होती हैं ॥२ ॥

८०७९. ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे । तरत्स मन्दी धावति ॥३ ॥

ध्वस्र (विकारों को ध्वस्त करने वाले) और पुरुषन्ति (ऐश्वर्य प्रदायक-राजाओं या इन गुणों वाले सोम) से हम अपार वैभव प्राप्त करें । आनन्दप्रद ऐसा (सोम) अतिवेग से प्रवाहित होता है॥३ ॥

८०८०. आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे । तरत्स मन्दी धावति ॥४ ॥

जिससे हम तीस सहस्र विस्तृत (वस्त्र या आच्छादन) प्राप्त करते हैं, वह आनन्ददायक (सोम) तीव्र गति से संचरित होता है ॥४ ॥

[सूक्त - ५९]

[**ऋषि** - अवत्सार काश्यप । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

८०८१. पवस्व गोजिदश्वजिद्विश्वजित्सोम रण्यजित् । प्रजावद्रत्नमा भर ॥१ ॥

हे सोमदेव ! आप गौओं (गौएँ, किरणों , इन्द्रियों) को जीतने वाले, अश्वों (घोड़ों-शक्ति प्रवाहों) के विजेता हैं । आप प्रवाहित हों तथा हमें प्रजासहित धन - सम्पन्न बनाएँ ॥१ ॥

८०८२. पवस्वाद्भ्यो अदाभ्यः पवस्वौषधीभ्यः । पवस्व धिषणाभ्यः ॥२ ॥

हे सोमदेव ! जल में मिश्रित होने के लिए आप, अपना रस प्रदान करें । न दबाए जाने वाले आप उत्तम ओषधियों के विस्तार के लिए तथा हमारी बुद्धि को पवित्र बनाने के लिए अपना रस प्रदान करें ॥२ ॥

८०८३. त्वं सोम पवमानो विश्वानि दुरिता तर । कविः सीद नि बर्हिषि ॥३ ॥

हे शोधित सोमदेव ! सभी राक्षसों को दूर करते हुए आप ज्ञानवान् होकर उत्तम आसन पर विराजें ॥३ ॥

८०८४. पवमान स्वर्विदो जायमानोऽभवो महान् । इन्दो विश्वाँ अभीदसि ॥४ ॥

हे सर्वज्ञाता सोमदेव ! आप यजमान को उत्तम फल प्रदान करें । उत्पन्न होते ही वृद्धि को प्राप्त होने वाले आप, सभी शत्रुओं को दूर करें ॥४ ॥

[सूक्त - ६०]

[**ऋषि** - अवत्सार काश्यप । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री, ३ पुर उष्णिक् ।]

८०८५. **प्र गायत्रेण गायत पवमानं विचर्षणिम् । इन्दुं सहस्रचक्षसम् ॥१ ॥**

हे याजको ! सर्वद्रष्टा, हजारों प्रकार से देखने वाले, सोमरस को शोधित करते समय (स्तोतागण) गायत्री छन्द से उसकी स्तुति करते रहो ॥१ ॥

८०८६. **तं त्वा सहस्रचक्षसमथो सहस्रभर्णसम् । अति वारमपाविषुः ॥२ ॥**

हे सोमदेव ! आप हजारों चक्षुओं वाले तथा हजारों के पालक हैं । आप अवरोधों (शोधकतंत्र) को पार करके प्रवाहित हों ॥२ ॥

८०८७. **अति वारान्पवमानो असिष्यदत्कलशाँ अभि धावति । इन्द्रस्य हार्द्याविशन् ॥३ ॥**

पवित्र सोमरस दिव्य छलनी से शुद्ध होकर, इन्द्रदेव के हृदय में प्रवेश करते हुए कलश (विश्वघट) में द्रुतगति से स्थापित होता है ॥३ ॥

[सोम प्रवाह इन्द्र (संगठक शक्ति) के सहयोग से पोषक - पदार्थ का रूप धारण करके - विश्व मण्डल में स्थापित होता है ।]

८०८८. **इन्द्रस्य सोम राधसे शं पवस्व विचर्षणे । प्रजावद्रेत आ भर ॥४ ॥**

हे विश्व के द्रष्टा सोमदेव ! इन्द्रदेव की तुष्टि के लिए आप शान्तिदायक रस प्रदान करें तथा हमें बलशाली सन्तति देने की कृपा करें ॥४ ॥

[सूक्त - ६१]

[**ऋषि** - अमहीयु आङ्गिरस । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

८०८९. **अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा । अवाहन्नवतीर्नव ॥१ ॥**

हे सोमदेव ! इन्द्रदेव के सेवनार्थ आप कलश में स्थित हों । आपका यह रस युद्ध में शत्रुओं के सभी नगरों को नष्ट करने के लिए इन्द्रदेव को सामर्थ्य प्रदान करता है ॥१ ॥

८०९०. **पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शम्बरम् । अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥२ ॥**

सोम पीकर इन्द्रदेव ने यज्ञ करने वाले दिवोदास (दिव्यगुणों के लिए समर्पित व्यक्ति) के लिए शम्बरासुर (अकल्याण करने वाले) को , तुर्वस (क्रोध) को और यदु (नियंत्रण विहीन) को मारा ॥२ ॥

८०९१. **परि णो अश्वमश्वविद्गोमदिन्दो हिरण्यवत् । क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥३ ॥**

हे सोमदेव ! आप हमें गौ, अश्व, सुवर्ण आदि ऐश्वर्य और अभीष्ट पोषक अन्न प्रदान करें ॥३ ॥

८०९२. **पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः । सखित्वमा वृणीमहे ॥४ ॥**

हे सोम !परिष्कृत और शोधित होने वाले आपसे, हम मित्र के रूप में सहयोग पाने की कामना करते हैं ॥४ ॥

८०९३. **ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया । तेभिर्नः सोम मृळय ॥५ ॥**

हे सोम !आपकी लहरों में से जो धारा शोधित हो रही है, उसके द्वारा हमें उल्लसित करने का अनुग्रह करें ॥५॥

८०९४. स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् । ईशानः सोम विश्वतः ॥६ ॥

हे सोम ! आप जगत् नियन्ता हैं । शोधित होने के बाद आप हमें धन-धान्य के साथ सुसन्तति प्रदान करें ॥६ ॥

८०९५. एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् । समादित्येभिरख्यत ॥७ ॥

सिन्धु (अन्तरिक्ष अथवा नदियाँ) जिनकी माता हैं, ऐसे सोमदेव को शुद्ध करने में दसों (अँगुलियाँ या दिशाएँ) सहायक हैं । वे आदित्य (अदिति पुत्र देवों या सूर्य) के साथ संयुक्त प्रतीत होते हैं ॥७ ॥

८०९६. समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ । सं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥८ ॥

सूर्य - रश्मियों से प्रकाशित हे सोमदेव ! आप सुपात्र में स्थिर हुए इन्द्र और वायुदेव को प्राप्त होते हैं ॥८ ॥

८०९७. स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् । चारुर्मित्रे वरुणे च ॥९ ॥

हे मधुर और मनोहर सोमदेव ! हमारे यज्ञ में भग, वायु , पूषा, मित्र और वरुणदेव के लिए आप शुद्ध हों ॥९ ॥

८०९८. उच्चा ते जातमन्धसो दिवि षद्भूम्या ददे । उग्रं शर्म महि श्रवः ॥१० ॥

हे सोमदेव ! आपके पोषक रस का जन्म द्युलोक में हुआ है । वहाँ प्राप्त होने वाला कल्याणकारी सुख और महान् अन्न (आपके माध्यम से) हम पृथ्वी पर प्राप्त करते हैं ॥१० ॥

८०९९. एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् । सिषासन्तो वनामहे ॥११ ॥

इस (सोम) की सहायता से मनुष्यों के लिए आवश्यक सभी प्रकार के अन्नादि हमें प्राप्त हों । हम उनके श्रेष्ठ उपयोग की कामना करते हैं ॥११ ॥

८१००. स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः । वरिवोवित्परि स्रव ॥१२ ॥

हमें ऐश्वर्यशाली बनाने वाले हे सोमदेव ! हम लोग जिनके लिए यज्ञ करते हैं, उन इन्द्र, मरुद्गण और वरुणदेव के निमित्त आप भली प्रकार से क्षरित हों ॥१२ ॥

८१०१. उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ॥१३ ॥

शत्रु संहारक, भली प्रकार से तैयार, जल और गौ दुग्ध में मिला हुआ यह सोमरस देवगणों को तृप्ति देने वाला सिद्ध हो ॥१३ ॥

८१०२. तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव । य इन्द्रस्य हृदंसनिः ॥१४ ॥

हमारी वाणी इन्द्रदेव के हार्दिक प्रिय पात्र, श्रेष्ठ सोम की स्तुतियाँ करे । जिस प्रकार बालक को माता अपने दुग्ध से पुष्ट करती है, उसी प्रकार हमारी स्तुतियाँ सोम की यश वृद्धि करें ॥१४ ॥

८१०३. अर्षा णः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् । वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥१५ ॥

स्तुति करने योग्य हे सोमदेव ! हमारी गौओं को सुख प्रदान करने वाले, हमारे घर को पौष्टिक अन्न से भरने वाले आप जल से मिश्रित होकर सुपात्र में स्थिर हों ॥१५ ॥

८१०४. पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् । ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥१६ ॥

पवित्र होने के बाद इस सोमरस ने दिव्य लोक में विद्यमान, सभी को प्रकाशित करने में समर्थ, महान् वैश्वानर ज्योति को बिजली के समान प्रकट किया ॥१६ ॥

८१०५. पवमानस्य ते रसो मदो राजन्नदुच्छुनः । वि वारमव्यमर्षति ॥१७ ॥

हे सुशोभित होने वाले पवित्र सोमदेव ! दुष्टतारहित, आनन्दप्रद , आपका दिव्यरस अनश्वर छन्ने से होकर अवतरित होता है ॥१७ ॥

८१०६ **पवमान रसस्तव दक्षो वि राजति द्युमान् । ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥१८ ॥**

पवित्रता को प्राप्त होने वाले सोम का शक्तिवर्द्धक एवं तेजस्वी रस सुशोभित होता है । समस्त विश्व में उसकी प्रकाश-किरणें दिखाई देती हैं ॥१८ ॥

८१०७. **यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा । देवावीरघशंसहा ॥१९ ॥**

हे सोमदेव ! देवताओं को आकृष्ट करने वाला, दुष्टों का नाश करने वाला आपका दिव्यरस अत्यन्त हर्षप्रद है । उस पोषक रस सहित आप (कलश में) प्रतिष्ठित हों ॥१९ ॥

८१०८. **जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे । गोषा उ अश्वसा असि ॥२० ॥**

हे सोमदेव ! आप अमित्र (अहितकारी) वृत्र (अज्ञानरूपी वृत्ति) के नाशक हैं । आप सतत संघर्षशील रहते हैं । आप गोधन और अश्वों की भी वृद्धि करते हैं ॥२० ॥

८१०९. **सम्मिश्लो अरुषो भव सूपस्थाभिर्न धेनुभिः । सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥२१ ॥**

हे सोमदेव ! जैसे बाज़ पक्षी अपने घोंसले पर शोभायमान होता है, वैसे ही धेनुओं (गौओं, इन्द्रियों, धारण करने वाली भूमि आदि) के साथ संयुक्त होकर आप तेजस्वी बनते हैं ॥२१ ॥

८११०. **स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे । वव्रिवांसं महीरपः ॥२२ ॥**

हे सोमदेव ! आप जल प्रवाह को रोकने वाले वृत्र को मारने के लिए इन्द्रदेव को प्रोत्साहित करें तथा तीव्र धारा के साथ कलश में छनते जाएँ ॥२२ ॥

८१११. **सुवीरासो वयं धना जयेम सोम मीढ्वः । पुनानो वर्ध नो गिरः ॥२३ ॥**

हे पवित्र सोम !आप हमारी स्तुतियों का विस्तार करें ।हम शौर्यवान् होकर शत्रु के धन पर विजय प्राप्त करें ॥२३ ॥

८११२. **त्वोतासस्तवावसा स्याम वन्वन्त आमुरः । सोम व्रतेषु जागृहि ॥२४ ॥**

हे सोमदेव ! आपका संरक्षण प्राप्त कर हम शत्रुओं का संहार करें । हम व्रतशील बनकर जाग्रत् रहें ॥२४ ॥

८११३. **अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥२५ ॥**

यह सोम रिपुओं को तथा दान न देने वालों को मारता है । इन्द्रदेव के पास जाता हुआ क्षरित होता है ॥२५ ॥

८११४. **महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः । रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥२६ ॥**

हे पवित्रकर्मा सोम !आप हमें अनेकों साधन, पुत्रादि और यश प्राप्त कराएँ । हमारे शत्रुओं का हनन करें ॥२६॥

८११५. **न त्वा शतं चन ह्रुतो राधो दित्सन्तमा मिनन् । यत्पुनानो मखस्यसे ॥२७ ॥**

हे पवित्र सोमदेव ! यज्ञ करने वाले को जब आप ऐश्वर्य देने की इच्छा करते हैं , उस समय आपको सैकड़ों शत्रु भी नहीं रोक सकते ॥२७ ॥

८११६. **पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने । विश्वा अप द्विषो जहि ॥२८ ॥**

हे अभिषुत सोमदेव ! आप श्रेष्ठ बल को बढ़ाने वाले हैं । लोगों में आप हमें यशस्वी बनाएँ तथा हमारे सभी शत्रुओं (विकारों) को नष्ट करें ॥२८ ॥

८११७. अस्य ते सख्ये वयं तवेन्दो द्युम्न उत्तमे । सासह्याम पृतन्यतः ॥२९ ॥

हे सोमदेव ! मित्र भाव से आपने हमें तेजस्वी बनाया है, अतः आक्रमणकारी शत्रुओं पर हम विजय प्राप्त कर सकते हैं ॥२९ ॥

८११८. या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे । रक्षा समस्य नो निदः ॥३० ॥

हे सोमदेव ! शत्रुओं का नाश करने वाले अपने तीक्ष्ण शस्त्रों के द्वारा आप हमें शत्रुओं की निन्दा द्वारा आहत होने से बचाएँ ॥३० ॥

[सूक्त - ६२]

[**ऋषि** - जमदग्नि भार्गव । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

८११९. एते असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः । विश्वान्यभि सौभगा ॥१ ॥

छन्ने की ओर द्रुतगति से जाते हुए सोमरस को, सभी सौभाग्यों की प्राप्ति के लिए ऋत्विजों द्वारा शोधित किया जाता है ॥१ ॥

८१२०. विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः । तना कृण्वन्तो अर्वते ॥२ ॥

बलवर्द्धक , पापनाशक यह सोमरस हमारे एवं हमारी सन्तति के लिए पशु एवं धन प्रदान करने का मार्ग स्वयं बनाता है ॥२ ॥

८१२१. कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् । इळामस्मभ्यं संयतम् ॥३ ॥

हमारे लिए एवं हमारी गौओं के लिए उत्तम धन तथा पौष्टिक अन्न के प्रदाता सोमदेव हमारी सुन्दर प्रार्थनाओं को स्वीकार करते हैं ॥३ ॥

८१२२. असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । श्येनो न योनिमासदत् ॥४ ॥

पर्वतों (ऊर्ध्वलोकों) में उत्पन्न सोम आनन्द वृद्धि के लिए निचोड़ा गया एवं जल के संयोग से व्यापक बना । वह सोम श्येन पक्षी के समान अपने निश्चित स्थान पर स्थित है ॥४ ॥

८१२३. शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धूतो नृभिः सुतः । स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥५ ॥

याजकों द्वारा अभिषुत, देवों का श्रेष्ठ आहार, जल मिश्रित पवित्र सोमरस को गौएँ अपना दूध मिलाकर अधिक स्वादिष्ट बना रही हैं ॥५ ॥

८१२४. आदीमश्वं न हेतारोऽशूशुभन्नमृताय । मध्वो रसं सधमादे ॥६ ॥

अश्व सदृश स्फूर्तिवान् सोम को याजकगण अमरत्व प्राप्ति की कामना से यज्ञस्थल पर स्थापित करते हैं ॥६ ॥

८१२५. यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये । ताभिः पवित्रमासदः ॥७ ॥

अपनी मधुर रस की धाराओं से सभी को संरक्षण देने वाले, हे सोमदेव ! आप उन धाराओं के साथ शुद्धता को धारण करें ॥७ ॥

८१२६. सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो रोमाण्यव्यया । सीदन्योना वनेष्वा ॥८ ॥

ऊन के छन्ने द्वारा शुद्ध होने वाले हे सोमदेव ! यज्ञ के मूल स्थान पर स्थापित होकर आप इन्द्रदेव की तृप्ति के लिए तैयार हों ॥८ ॥

८१२७. **त्वमिन्दो परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः । वरिवोविद् घृतं पयः ॥९ ॥**

धन - वैभव प्रदानकर्त्ता हे सोम ! अंगिरादि ऋषियों के लिए आप घृत, दुग्धयुक्त पौष्टिक आहार प्रदान करें ॥९॥

८१२८. **अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति । हिन्वान आप्यं बृहत् ॥१० ॥**

विशिष्ट, बुद्धिवर्द्धक, पात्र में स्थित होकर शुद्ध किया हुआ यह सोमरस पानी में मिलकर प्रचुर अन्न (पोषण) प्रदान करता हुआ यशस्वी होता है ॥१० ॥

८१२९. **एष वृषा वृषव्रतः पवमानो अशस्तिहा । करद्वसूनि दाशुषे ॥११ ॥**

यह शत्रुनाशक, कामनाओं की पूर्ति करने वाला बलशाली सोम, श्रेष्ठ कार्यों में नियोजन करने वालों को धन प्रदान करता है ॥११ ॥

८१३०. **आ पवस्व सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम् । पुरुश्चन्द्रं पुरुस्पृहम् ॥१२ ॥**

हे सोम ! गौओं तथा अश्वों से युक्त, अनेकों के द्वारा चाहा गया हजारों प्रकार का तेजस्वी धन हमें प्रदान करें ॥१२ ॥

८१३१. **एष स्य परि षिच्यते मर्मृज्यमान आयुभिः । उरुगायः कविक्रतुः ॥१३ ॥**

निकाला गया वह सोम, जो याजकों के द्वारा शोधित किया जाता है, बुद्धिपूर्वक कर्म करने वाला तथा अनेकों प्रकार से स्तुत्य होता है ॥१३ ॥

८१३२. **सहस्रोतिः शतामघो विमानो रजसः कविः । इन्द्राय पवते मदः ॥१४ ॥**

हजारों प्रकार से संरक्षण करने वाला, सैकड़ों प्रकार का धनदाता, विभिन्न लोकों का निर्माण करने वाला आनन्दवर्द्धक ज्ञानी सोम इन्द्रदेव के लिए शोधित किया जाता है ॥१४ ॥

८१३३. **गिरा जात इह स्तुत इन्दुरिन्द्राय धीयते । विर्योना वसताविव ॥१५ ॥**

जिस प्रकार पक्षी घोंसले की ओर आता है, उसी प्रकार हमारी वाणी द्वारा स्तुत होता हुआ परिष्कृत सोमरस इन्द्रदेव के पास जाता है ॥१५ ॥

८१३४. **पवमानः सुतो नृभिः सोमो वाजमिवासरत् । चमूषु शक्मनासदम् ॥१६ ॥**

जिस प्रकार योद्धा संग्राम में जाते हैं, उसी प्रकार याजकों द्वारा निकाला गया शोधित सोमरस अपनी सामर्थ्य से पात्र में जाता है ॥१६ ॥

८१३५. **तं त्रिपृष्ठे त्रिवन्धुरे रथे युञ्जन्ति यातवे । ऋषीणां सप्त धीतिभिः ॥१७ ॥**

याजकगण तीनों सवनों (प्रातः, मध्याह्न, सायं) में ऋषियों के यज्ञरूप रथ में सात छन्दों के द्वारा, तीन वेदों (ऋक् , यजु , साम) का गान करते हुए सोमरस को देवगणों के पास ले जाते हैं ॥१७ ॥

८१३६. **तं सोतारो धनस्पृतमाशुं वाजाय यातवे । हरिं हिनोत वाजिनम् ॥१८ ॥**

सोमरस को शोधित करने वाले हे याजको ! जिस प्रकार अश्वों को युद्ध में जाने के लिए सजाया जाता है, उसी प्रकार हरिताभ सोम को यज्ञ के निमित्त अलंकृत करो ॥१८ ॥

८१३७. **आविशन्कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः । शूरो न गोषु तिष्ठति ॥१९ ॥**

यह परिष्कृत सोमरस कलश में भरे जाते समय सुशोभित होता है, जिस प्रकार गौओं का संरक्षण वीर पुरुष करते हैं, उसी प्रकार यह सोम यज्ञ का संरक्षण करता है ॥१९ ॥

८१३८. आ त इन्दो मदाय कं पयो दुहन्त्यायवः । देवा देवेभ्यो मधु ॥२० ॥

हे सोमदेव ! सभी देव तथा सभी याजक मिलकर देवगणों को कौन सा आनन्द प्रदान करने के लिए दूध मिला हुआ मधुर सोमरस निकालते हैं ? ॥२० ॥

८१३९. आ नः सोमं पवित्र आ सृजता मधुमत्तमम् । देवेभ्यो देवश्रुत्तमम् ॥२१ ॥

हे याजको ! देवों का अतिप्रिय तथा मधुर सोमरस को (शोधित करने के लिए) शोधन यंत्र में रखो ॥२१ ॥

८१४०. एते सोमा असृक्षत गृणानाः श्रवसे महे । मदिन्तमस्य धारया ॥२२ ॥

परमानन्द युक्त यह सोमरस, स्तुतिगान के बाद हमें श्रेष्ठ शक्ति प्रदान करने के लिए धारा के साथ कलश पात्र में गिरता है ॥२२ ॥

८१४१. अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि । सनद्वाजः परि स्रव ॥२३ ॥

मानवमात्र को सुख देने वाले हे सोमदेव ! आप देवताओं के सेवन हेतु गो दुग्धादि से मिश्रित होकर अन्न प्रदान करते हुए कलश में एकत्र हों॥२३ ॥

८१४२. उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः । गृणानो जमदग्निना ॥२४ ॥

हे सोमदेव ! जमदग्नि ऋषि द्वारा की गई स्तुति से युक्त होकर आप हमें गौओं के साथ अन्य सभी प्रशंसनीय पोषक आहार प्रदान करें ॥२४ ॥

८१४३. पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः । अभि विश्वानि काव्या ॥२५ ॥

हे सोमदेव ! आप सर्वश्रेष्ठ हैं । अपने रक्षण-सामर्थ्य सहित आप हमारी वाणी में प्रविष्ट हों तथा सभी काव्यों-स्तुतियों में भी संचरित हों ॥२५ ॥

८१४४. त्वं समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन् । पवस्व विश्वमेजय ॥२६ ॥

हे सर्वहितकारी सोमदेव ! आप अग्रणी होकर , हमारी स्तुतियों को सुनकर प्रसन्न हुए देवलोक के जल का आवाहन करें ॥२६ ॥

८१४५. तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे । तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः ॥२७ ॥

हे दूरदर्शी सोमदेव ! आपकी महत्ता के प्रभाव से यह विश्व स्थित है । आपके लिए दूध उपलब्ध कराने हेतु देवगणों को तृप्त करने वाली गौएँ आपके पास आ रही हैं ॥२७ ॥

८१४६. प्र ते दिवो न वृष्टयो धारा यन्त्यसश्चतः । अभि शुक्रामुपस्तिरम् ॥२८ ॥

हे सोमदेव ! आपकी प्रवाहित होने वाली रस - धाराएँ द्युलोक से होने वाली वर्षा के समान छलनी से शोधित होते हुए गमन करती हैं ॥२८ ॥

८१४७. इन्द्रायेन्दुं पुनीतनोग्रं दक्षाय साधनम् । ईशानं वीतिराधसम् ॥२९ ॥

हे याजको ! वेगवान् , बल बढ़ाने के मुख्य साधन, धनपति, शक्ति के धनी सोम को इन्द्रदेव के निमित्त प्रस्तुत करो ॥२९ ॥

८१४८. पवमान ऋतः कविः सोमः पवित्रमासदत् । दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥३० ॥

यह तेजस् प्रदायक , पवमान, सत्यरूप, मेधावी सोम. स्तोत्रों को तेजस्विता प्रदान करता है ॥३० ॥

[सूक्त - ६३]

[**ऋषि** - निध्रुवि काश्यप । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

८१४९. आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम सुवीर्यम् । अस्मे श्रवांसि धारय ॥१ ॥

हे सोमदेव ! आप हजारों प्रकार के बल से युक्त श्रेष्ठ धन तथा अन्न हमें प्रदान करें ॥१ ॥

८१५०. इषमूर्जं च पिन्वस इन्द्राय मत्सरिन्तमः । चमूष्वा नि षीदसि ॥२ ॥

हे सोमदेव ! आप अत्यन्त आनन्द प्रदान करने वाले हैं, अत: इन्द्रदेव के लिए अन्न और बल का संवर्द्धन करते हुए यज्ञस्थल पर प्रतिष्ठित हों ॥२ ॥

८१५१. सुत इन्द्राय विष्णवे सोमः कलशे अक्षरत् । मधुमाँ अस्तु वायवे ॥३ ॥

अभिषुत सोमरस इन्द्र, विष्णु और वायुदेव के लिए कलश में प्रतिष्ठित होता है । वह सोमरस मधुर हो ॥३ ॥

८१५२. एते असृग्रमाशवोऽति ह्वरांसि बभ्रवः । सोमा ऋतस्य धारया ॥४ ॥

भूरे रंग का द्रुतगामी यह सोमरस जल की धारा के साथ आगे बढ़ता है ॥४ ॥

८१५३. इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । अपघ्नन्तो अराव्णः ॥५ ॥

यह सोम इन्द्रदेव के यश को बढ़ाने वाला, प्रजा को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करने वाला, सम्पूर्ण विश्व को आर्य (श्रेष्ठ) बनाने वाला तथा अदानशीलों को मारने वाला है॥५ ॥

८१५४. सुता अनु स्वमा रजाऽभ्यर्षन्ति बभ्रवः । इन्द्रं गच्छन्त इन्दवः ॥६ ॥

निकाला गया भूरे रंग का सोमरस अपने स्थान को प्राप्त करने के लिए इन्द्रदेव की ओर गमन करता है ॥६ ॥

८१५५. अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः । हिन्वानो मानुषीरपः ॥७ ॥

हे सोमदेव ! जिसके द्वारा आप मनुष्यों के लिए (शरीरस्थ या प्रकृतिगत) जल रसों को बढ़ाते हैं, जिनसे सूर्यदेव को प्रकाशित करते हैं, उन्हीं श्रेष्ठ धाराओं के साथ आप प्रवाहित हों ॥७ ॥

८१५६. अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण यातवे ॥८ ॥

यह पवित्र सोम अभीष्ट ऊर्ध्व गति पाने के लिए संकल्पित याजकों को सूर्य के अश्वों (किरणों) जैसा वेग प्रदान करने में समर्थ है ॥८ ॥

८१५७. उत त्या हरितो दश सूरो अयुक्त यातवे । इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥९ ॥

सोम इन्द्रदेव के नाम का उच्चारण करते हुए हरित वर्ण वाले अश्वों को सूर्य के रथ की भाँति दशों दिशाओं में जाने के लिए नियोजित करता है ॥९ ॥

८१५८. परीतो वायवे सुतं गिर इन्द्राय मत्सरम् । अव्यो वारेषु सिञ्चत ॥१० ॥

हे स्तोता याजको ! आनन्ददायी सोम को वायु तथा इन्द्रदेव के लिए अनश्वर छलनी से छानकर शोधित करो ॥१० ॥

८१५९. पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम दुष्टरम् । यो दूणाशो वनुष्यता ॥११ ॥

हे परिष्कृत होने वाले सोमदेव ! शत्रुओं के लिए जो दुर्लभ हो, जिसे दुष्ट भी नष्ट न कर सकें , ऐसा धन आप हमें प्रदान करें ॥११ ॥

८१६०. **अभ्यर्ष सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम्। अभि वाजमुत श्रवः ॥१२॥**

हे सोमदेव ! आप गौओं तथा अश्वों से युक्त हजारों प्रकार का धन, बल तथा अन्न हमें प्रदान करें ॥१२॥

८१६१. **सोमो देवो न सूर्योऽद्रिभिः पवते सुतः। दधानः कलशे रसम् ॥१३॥**

अद्रि (मेघों या पत्थरों) से निकाले गये देवतुल्य तेजस्वी सोम रस को कलश (विश्वघट) में स्थापित किया जाता है ॥१३॥

८१६२. **एते धामान्यार्या शुक्रा ऋतस्य धारया। वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥१४॥**

यह परिष्कृत सोमरस याजकों के घरों में पशुधन तथा अन्न के रूप में प्रवाहित होता है ॥१४॥

८१६३. **सुता इन्द्राय वज्रिणे सोमासो दध्याशिरः। पवित्रमत्यक्षरन् ॥१५॥**

निष्पन्न (प्रकट हुआ) सोम दधि आश्रित (दही के साथ मिलकर अथवा धारण योग्य पर स्थापित होकर) वज्रधारी इन्द्रदेव को समर्पित किया जाता है ॥१५॥

८१६४. **प्र सोम मधुमत्तमो राये अर्ष पवित्र आ। मदो यो देववीतमः ॥१६॥**

हे सोमदेव ! देवगणों के निमित्त आपका जो आनन्ददायी रस है, वह छलनी से छानने पर परिष्कृत होकर ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाला हो ॥१६॥

८१६५. **तमी मृजन्त्यायवो हरिं नदीषु वाजिनम्। इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥१७॥**

इन्द्रदेव को आनन्दित करने वाले हरिताभ सोम को याजकगण नदी के जल में मिलाकर शुद्ध करते और बलवर्द्धक बनाते हैं ॥१७॥

८१६६. **आ पवस्व हिरण्यवदश्वावत् सोम वीरवत्। वाजं गोमन्तमा भर ॥१८॥**

हे सोमदेव ! आप हमें सुवर्ण आदि धन से, अश्वों से तथा वीर सन्तति से युक्त वैभव प्रदान करें। गौ के दुग्ध से युक्त अन्न आप हमें भरपूर मात्रा में दें ॥१८॥

८१६७. **परि वाजे न वाजयुमव्यो वारेषु सिञ्चत। इन्द्राय मधुमत्तमम् ॥१९॥**

हे याजको ! संग्राम में युद्ध की कामना वाले योद्धा को भेजने की भाँति अत्यन्त मधुर सोमरस को इन्द्रदेव के निमित्त छलनी में शोधित करने के लिए डालो ॥१९॥

८१६८. **कविं मृजन्ति मर्ज्यं धीभिर्विप्रा अवस्यवः। वृषा कनिक्रदर्षति ॥२०॥**

संरक्षण की कामना वाले याजक ज्ञानवर्द्धक सोम को अपनी अँगुलियों से शोधित करते हैं। वह बलवर्द्धक सोम शब्दनाद करता हुआ पात्र में एकत्रित होता है ॥२०॥

८१६९. **वृषणं धीभिरप्तुरं सोममृतस्य धारया। मती विप्राः समस्वरन् ॥२१॥**

धारा के रूप में जल के साथ मिश्रित होने वाले बलवर्द्धक सोमरस की ज्ञानी जन अपनी बुद्धि के अनुसार स्तुति करते हैं ॥२१॥

८१७०. **पवस्व देवायुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः। वायुमा रोह धर्मणा ॥२२॥**

हे दिव्य गुण वाले सोमदेव ! आप छनने के लिए पात्र में जाएँ। आपका आनन्ददायी रस इन्द्रदेव को प्राप्त हो। आप दिव्यरूप से वायु में मिल जाएँ ॥२२॥

८१७१. पवमान नि तोशसे रयिं सोम श्रवाय्यम् । प्रियः समुद्रमा विश ॥२३ ॥

हे पवित्र सोमदेव ! आप सराहनीय ऐश्वर्य के लिए दुष्टों को दण्डित करते हैं । हम यज्ञ कलश में आपका आवाहन करते हैं ॥२३ ॥

८१७२. अपघ्नन् पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः । नुदस्वादेवयुं जनम् ॥२४ ॥

हे सोमदेव ! आप आनन्द प्रदायक, ऋत (सत्य या यज्ञ) के ज्ञाता हैं । विकारों के विनाशक आप देवत्व के विरोधियों का निवारण करें ॥२४ ॥

८१७३. पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः । अभि विश्वानि काव्या ॥२५ ॥

शुभ्र ज्योतिर्मय पवित्रता को प्राप्त होने वाला सोमरस वेदमंत्रों की स्तुतियों के साथ क्षरित होता है ॥२५ ॥

८१७४. पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः । घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ॥२६ ॥

पवमान , उज्ज्वल सोम विकारों का शमन करते हुए तीव्रगति से सुपात्र में स्थिर हो रहा है ॥२६ ॥

८१७५. पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत । पृथिव्या अधि सानवि ॥२७ ॥

शोधित सोम पृथ्वी के ऊँचे भाग आकाश से किरणों तथा अन्तरिक्ष की वृष्टि के समान प्रकट होता है ॥२७ ॥

८१७६. पुनानः सोम धारयेन्दो विश्वा अप स्त्रिधः । जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥२८ ॥

हे श्रेष्ठ कर्म करने वाले तेजस्वी सोमदेव ! हमारे सभी शत्रुओं को पराजित करते हुए आप उन्हें दूर कर दें । स्वयं धारा रूप से शोधित होकर पवित्र बनें ॥२८ ॥

८१७७. अपघ्नन्त्सोम रक्षसोऽभ्यर्ष कनिक्रदत् । द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम् ॥२९ ॥

हे सोमदेव ! असुरों को नष्ट करके शब्दनाद करते हुए आप हमें श्रेष्ठ-तेजस्वी बल प्रदान करें ॥२९ ॥

८१७८. अस्मे वसूनि धारय सोम दिव्यानि पार्थिवा । इन्दो विश्वानि वार्या ॥३० ॥

हे सोमदेव ! आप हमें आकाश तथा पृथ्वी में उत्पन्न हुए, स्वीकार करने योग्य सम्पूर्ण धन प्रदान करें ॥३० ॥

[सूक्त - ६४]

[**ऋषि** - कश्यप मारीच । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - गायत्री ।]

८१७९. वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दधिषे ॥१ ॥

हे सोमदेव ! आप पराक्रमी और तेजस्वी हैं । बल बढ़ाने की क्षमता से युक्त आप सदैव अपने इस धर्म (गुण) को धारण किए रहते हैं ॥१ ॥

८१८०. वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा मदः । सत्यं वृषन् वृषेदसि ॥२ ॥

हे वर्षणशील (सोम) ! आपका बल वर्षणशील है, तेजसमूह वर्षणशील है, आनन्द भी वर्षणशील या बलशाली है । हे बलशाली ! आप वास्तव में ही वृषा (वर्षणशील या बलशाली) हैं ॥२ ॥

[प्रकृति के प्लाज्मा का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिक यह मानते हैं कि सूक्ष्म ऊर्जा रूप कणों की वर्षा सभी ओर से भूमण्डल पर होती रहती है । इसी तथ्य का संकेत इस मन्त्र में है ।]

८१८१. अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः । वि नो राये दुरो वृधि ॥३ ॥

हे सोमदेव ! आप बलशाली हैं, पशुधन की वृद्धि करने वाले हैं । अतः आप हमें ऐश्वर्य दिलाएँ ॥३ ॥

८१८२. **असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया। शुक्रासो वीरयाशवः ॥४॥**

बल और स्फूर्ति बढ़ाने वाला यह सोमरस तेजस्वी है। गौ, अश्व तथा वीर पुत्रों की कामना करने वालों के द्वारा अभिषुत किया जाता है ॥४॥

८१८३. **शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः। पवन्ते वारे अव्यये ॥५॥**

याजकों द्वारा अपने हाथों से तैयार किया गया, विशेष रूप से शोभायमान सोमरस शोधक यंत्र द्वारा संस्कारित किया जाता है ॥५॥

८१८४. **ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा। पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥६॥**

दिव्य सोमरस हविदाता को स्वर्गस्थ, अन्तरिक्ष और भौतिकी (सभी प्रकार की) विभूतियों से युक्त करे ॥६॥

८१८५. **पवमानस्य विश्ववित्प्र ते सर्गा असृक्षत। सूर्यस्येव न रश्मयः ॥७॥**

हे सर्वज्ञ सोम! पवित्र होती हुई आपकी धाराएँ सूर्य की रश्मियों की भाँति तीव्र वेग से नीचे आ रहीं हैं ॥७॥

८१८६. **केतुं कृण्वन्दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि। समुद्रः सोम पिन्वसे ॥८॥**

हे विश्वव्यापी सोमदेव! अन्तरिक्ष में ज्ञान चेतना (विचार तरंगों) के रूप में संव्याप्त होकर आप हमें (प्राण-पर्जन्य वर्षा के रूप में) जल के माध्यम से विभिन्न प्रकार का वैभव प्रदान करते हैं ॥८॥

८१८७. **हिन्वानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि। अक्रान्देवो न सूर्यः ॥९॥**

सूर्य रश्मियों की भाँति प्रकाशित होने वाले हे सोमदेव! स्तुतिगान के साथ पवित्र होते हुए आप ध्वनिपूर्वक पात्र में स्थिर हो रहे हैं ॥९॥

८१८८. **इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मती। सृजदश्वं रथीरिव ॥१०॥**

रथी जिस प्रकार अश्वों को (लक्ष्य की ओर) प्रेरित करते हैं, उसी प्रकार यह चेतना सम्पन्न सोम सूक्ष्मदर्शियों की बुद्धि के द्वारा तरंगित होता है ॥१०॥

[सोम चेतनायुक्त प्रवाह है। उसे सूक्ष्मदर्शी-दूरदर्शी विवेक बुद्धि द्वारा नियंत्रित किया जाता है। ब्राह्मी चेतना उसे जीव-जगत् की ओर प्रेरित-प्रवाहित करती है। मंत्र शक्ति से तथा संकल्पशक्ति से उसे प्रकृति चक्र तथा शरीर में वाञ्छित ढंग से नियोजित किया जा सकता है। सूक्ष्मवेत्ता-तपस्वी ऋषिगण इसीलिए सोम यज्ञादि के प्रयोग किया करते थे।]

८१८९. **ऊर्मिर्यस्ते पवित्र आ देवावीः पर्यक्षरत्। सीदन्नृतस्य योनिमा ॥११॥**

हे सोमदेव! आपकी जो धारा देवगणों को तृप्त करने वाली है, वह छलनी में प्रवाहित होते हुए यज्ञस्थल पर प्रतिष्ठित होती है ॥११॥

८१९०. **स नो अर्ष पवित्र आ मदो यो देववीतमः। इन्दविन्द्राय पीतये ॥१२॥**

हे सोमदेव! देवगणों का अतिप्रिय तथा आनन्ददायी जो सोमरस है, वह इन्द्रदेव के पान करने के लिए हमारी शोधन प्रणाली से प्रवाहित होता है ॥१२॥

[अंतरिक्ष के शोधन तंत्र से प्रकृति, यज्ञीय शोधन तंत्र से अथवा शरीरस्थ शोधन तंत्र से प्रवाहित होकर सोम देवशक्तियों के संगठक अथवा इन्द्रियों के नियमन कर्त्ता को पुष्ट करता है।]

८१९१. **इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः। इन्दो रुचाभि गा इहि ॥१३॥**

हे सोमदेव! आप ज्ञानी ऋत्विजों के द्वारा परिष्कृत होते हुए पोषक रस के लिए धारा के रूप में शुद्ध हों और गौ-दुग्ध के साथ मिलकर प्रकाशित हों ॥१३॥

८१९२. **पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः । हरे सृजान आशिरम् ॥१४ ॥**

हे हरिताभ स्तुत्य सोम ! दूध के साथ मिलाकर शोधित होने वाले आप याजकों को अन्नादि से परिपूर्ण करें॥१४ ॥

८१९३. **पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् । द्युतानो वाजिभिर्यतः ॥१५ ॥**

हे स्तुत्य, बलवान् सोम ! यज्ञ के निमित्त याजकों द्वारा शोधित किए गये आप, इन्द्रदेव के पास पहुँचें ॥१५ ॥

८१९४. **प्र हिन्वानास इन्दवोऽच्छा समुद्रमाशवः । धिया जूता असृक्षत ॥१६ ॥**

अन्तरिक्ष में स्थित वेगवान् सोम अँगुलियों द्वारा दबाने से रस प्रदान करता है ॥१६ ॥

८१९५. **मर्मृजानास आयवो वृथा समुद्रमिन्दवः । अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥१७ ॥**

शोधित होने वाला गतिमान् सोमरस सहज ही अन्तरिक्ष से यज्ञस्थल की ओर गमन करता है ॥१७ ॥

८१९६. **परि णो याह्यस्मयुर्विश्वा वसून्योजसा । पाहि नः शर्म वीरवत् ॥१८ ॥**

हे सोमदेव ! हमारे यज्ञ में पहुँचने की कामना वाले आप अपनी सामर्थ्य से सम्पूर्ण धन तथा हमारे सन्तति युक्त घर का संरक्षण करें ॥१८ ॥

८१९७. **मिमाति वह्निरेतशः पदं युजान ऋक्वभिः । प्र यत्समुद्र आहितः ॥१९ ॥**

यह सोम जब याजकों द्वारा यज्ञ में आवाहित किया जाता है, तब जल में मिश्रित होते समय शब्द करता है॥१९ ॥

८१९८. **आ यद्योनिं हिरण्ययमाशुर्ऋतस्य सीदति । जहात्यप्रचेतसः ॥२० ॥**

वेगवान् सोम जब सुवर्ण सदृश यज्ञस्थल पर प्रतिष्ठित होता है, तब याजकों के अज्ञान को दूर करता है ॥२०॥

८१९९. **अभि वेना अनूषतेयक्षन्ति प्रचेतसः । मज्जन्त्यविचेतसः ॥२१ ॥**

स्तोताजन (सोम की) स्तुति करते हैं । श्रेष्ठ ज्ञानीजन (सोम के) यजन की कामना करते हैं तथा मिथ्या बुद्धि वाले डूब (नष्ट हो) जाते हैं ॥२१ ॥

[सोम शक्ति प्रवाह है । स्तुति का अर्थ है - उसके गुण, धर्म को समझना और स्वीकार करना । यजन का अर्थ है - उसके गुण, धर्म के अनुरूप उसका अनुशासनबद्ध सदुपयोग करना । किसी भी शक्तिप्रवाह-जल या विद्युत् के गुण-धर्म को समझने वाले उससे श्रेष्ठ लाभ उठाते हैं, उसका अनुशासन समझने में चूक करने वाले डूब जाते-नष्ट हो जाते हैं ।]

८२००. **इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः । ऋतस्य योनिमासदम् ॥२२ ॥**

अत्यन्त मधुर हे सोमदेव ! जिनके सहायक मरुद्‌गण हैं, उन इन्द्रदेव के लिए आप यज्ञस्थल पर सुशोभित कलश में प्रतिष्ठित हों ॥२२ ॥

८२०१. **तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति वेधसः । सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥२३ ॥**

अखिल विश्व को धारण करने वाले हे सोमदेव ! वाणी के विशेषज्ञ याजक स्तुतियों से आपकी शोभा बढ़ाते हुए आपको भली-भाँति पवित्र कर रहे हैं ॥२३ ॥

८२०२. **रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्ति वरुणः कवे । पवमानस्य मरुतः ॥२४ ॥**

हे नूतन तत्त्वदर्शी सोम ! पवित्रता युक्त आपके रस को मित्र, वरुण, अर्यमा और मरुद्‌गण सेवन करें ॥२४ ॥

८२०३. **त्वं सोम विपश्चितं पुनानो वाचमिष्यसि । इन्दो सहस्रभर्णसम् ॥२५ ॥**

हे तेजस्वी सोमदेव ! आप शोधित होते समय हजारों प्रकार के पवित्र स्तोत्रों को प्रेरित करते हैं ॥२५ ॥

८२०४. **उतो सहस्रभर्णसं वाचं सोम मखस्युवम् । पुनान इन्दवा भर ॥२६ ॥**

शोधित होने वाले हे सोमदेव ! आप हमें हजारों प्रकार के यज्ञों में स्तोत्रों का गायन करने की प्रेरणा दें ॥२६ ॥

८२०५. **पुनान इन्दवेषां पुरुहूत जनानाम्। प्रियः समुद्रमा विश ॥२७॥**

हे सोमदेव ! इन लोकों के प्रिय आप अनेक प्रकार की स्तुतियों से पवित्र होते हुए जल में मिश्रित हों ॥२७॥

८२०६. **दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा। सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥२८॥**

कान्तिमान्, तेजस्वी, शब्दयुक्त धारा से शुद्ध हुए सोम को गौ के दुग्ध में मिलाकर तैयार किया जाता है ॥२८॥

८२०७. **हिन्वानो हेतृभिर्यत आ वाजं वाज्यक्रमीत्। सीदन्तो वनुषो यथा ॥२९॥**

जैसे युद्ध भूमि में यशस्वी शूरवीर घूमते हैं, उसी प्रकार याजकों से प्रशंसित बलवर्द्धक, सबका हितकारी, संस्कारित सोम यज्ञभूमि में प्रतिष्ठा पाता है ॥२९॥

८२०८. **ऋधक्सोम स्वस्तये सञ्जग्मानो दिवः कविः। पवस्व सूर्यो दृशे ॥३०॥**

हे ज्ञानयुक्त सोमदेव ! आप तेजस्वी सूर्यदेव के सदृश दिव्य आभायुक्त होकर सबके कल्याण के लिए संस्कारित हों ॥३०॥

[सूक्त - ६५]

[**ऋषि** - भृगुवारुणि या जमदग्नि भार्गव। **देवता** - पवमान सोम। **छन्द** - गायत्री।]

८२०९. **हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम्। महामिन्दुं महीयुवः ॥१॥**

सर्वत्र गमनशील एक ही स्थान पर उत्पन्न बहिनें (सूर्य किरणें अथवा हाथ की अँगुलियाँ) इस सामर्थ्यवान्, शूर, पालक, महान् सोम को (शोधन के लिए) प्रेरित करती हैं ॥१॥

८२१०. **पवमान रुचारुचा देवो देवेभ्यस्परि। विश्वा वसून्या विश ॥२॥**

शुद्ध किए गए हे तेजस्वी सोमदेव ! आप देवताओं को समर्पित करने के लिए तैयार किए गए हैं। आप सब प्रकार की (सांसारिक एवं दैवी) सम्पदाएँ हमें प्रदान करें ॥२॥

८२११. **आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः। इषे पवस्व संयतम् ॥३॥**

हे पवित्र सोमदेव ! जिस प्रकार देवताओं के आशीर्वाद मिलते हैं, उसी प्रकार आप स्तुति करने योग्य (रस) की वर्षा करें। वह वर्षा हमें अन्न प्रदान करने वाली हो ॥३॥

८२१२. **वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे। पवमान स्वाध्यः ॥४॥**

हे पवित्र होने वाले बलवर्द्धक सोमदेव ! आप सबको समान दृष्टि से देखने वाले तथा तेजस्वी हैं। इस यज्ञ में हम आपको बुलाते हैं ॥४॥

८२१३. **आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध। इहो ष्विन्दवा गहि ॥५॥**

हे उत्तम आयुधों से युक्त सोमदेव ! आनन्ददायी बनकर आप हमें श्रेष्ठ पराक्रम की क्षमता से युक्त करें और हमारे यज्ञ में आकर सुशोभित हों ॥५॥

८२१४. **यदद्भिः परिषिच्यसे मृज्यमानो गभस्त्योः। द्रुणा सधस्थमश्नुषे ॥६॥**

ऋत्विजों द्वारा दोनों हाथों से शोधित हे सोमदेव ! जल में मिलाने के पश्चात् आपको कलश में स्थापित किया जाता है ॥६॥

८२१५. **प्र सोमाय व्यश्ववत्पवमानाय गायत। महे सहस्रचक्षसे ॥७॥**

हे याजको ! आप व्यश्व ऋषि की भाँति महान्, हजारों आँखों वाले सोम के गुणों का गायन करें ॥७॥

८२१६. **यस्य वर्णं मधुश्चुतं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः। इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥८॥**

हरिताभ सोम को पत्थरों से कूटकर रस निकाला जाता है । उस मधुर तथा शत्रु विनाशक सोमरस को इन्द्रदेव के निमित्त समर्पित किया जाता है ॥८ ॥

८२१७. **तस्य ते वाजिनो वयं विश्वा धनानि जिग्युषः । सखित्वमा वृणीमहे ॥९ ॥**

सभी प्रकार के धन पर विजय प्राप्त करने वाले हे सोमदेव ! हम आपसे मित्रभाव की कामना करते हैं ॥९ ॥

८२१८. **वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः । विश्वा दधान ओजसा ॥१० ॥**

हे सोमदेव ! आप उद्‌गाताओं के लिए वेगवती धारा से कलश में प्रवेश करें और मरुद्‌गणों से सेवित इन्द्रदेव के लिए सामर्थ्य एवं हर्ष बढ़ाने वाले सिद्ध हों ॥१० ॥

८२१९. **तं त्वा धर्तारमोण्योः पवमान स्वर्दृशम् । हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥११ ॥**

हे शोधित सोमदेव ! आत्मदर्शी , बलवान् आप द्युलोक से पृथिवीलोक तक सभी को संरक्षण प्रदान करने वाले हैं । आप बलवान् को हम वाजी (अन्न, बल, संग्राम) के लिए प्रेरित करते हैं ॥११ ॥

८२२०. **अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया । युजं वाजेषु चोदय ॥१२ ॥**

हे हरे रंग वाले सोमदेव ! ज्ञानयुक्त बुद्धि अथवा अँगुलियों से परिष्कृत किये गये आप स्रवित हों और अपने सखा इन्द्रदेव को संग्राम में जाने के लिए प्रेरित करें ॥१२ ॥

८२२१. **आ न इन्दो महीमिषं पवस्व विश्वदर्शतः । अस्मभ्यं सोम गातुवित् ॥१३ ॥**

हे सर्व द्रष्टा सोमदेव ! आप हमें भरपूर अन्न प्रदान करें । आप हम सबके पथ-प्रदर्शक हैं ॥१३ ॥

८२२२. **आ कलशा अनूषतेन्दो धाराभिरोजसा । एन्द्रस्य पीतये विश ॥१४ ॥**

हे सोमदेव ! आपके रस की धाराओं से युक्त कलशों की हम अपनी सामर्थ्य से स्तुति करते हैं । आप इन्द्रदेव के पान करने के निमित्त इन कलशों में प्रविष्ट हों ॥१४ ॥

८२२३. **यस्य ते मद्यं रसं तीव्रं दुहन्त्यद्रिभिः । स पवस्वाभिमातिहा ॥१५ ॥**

हे सोमदेव ! आपके अत्यन्त हर्षकारी वेगवान् रस को अद्रि (मेघों या पत्थरों) से दुहते (प्राप्त करते) हैं, वह (रस) शत्रुनाशक (विकारनाशक) होकर स्रवित हो ॥१५ ॥

८२२४. **राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण यातवे ॥१६ ॥**

मन की शक्तियों के अधीन अथवा यज्ञ के अन्तर्गत यह पवमान राजा (सोम) मेधाओं (गायनों अथवा मंत्रों) से गतिमान् होता हुआ अंतरिक्ष से (यज्ञ कलश या विश्वघट में) जाने के लिए समर्थ होता है ॥१६ ॥

[सोम प्रवाहों को परिष्कृत मनः शक्ति से अधिगृहीत, प्रेरित एवं नियंत्रित किया जाना संभव है ।]

८२२५. **आ न इन्दो शतग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम् । वहा भगत्तिमूतये ॥१७ ॥**

हे सोमदेव ! आप सैकड़ों गौओं एवं श्रेष्ठ अश्वों की प्राप्ति और उनका पोषण करने में समर्थ सौभाग्य हमें प्रदान करें ॥१७ ॥

८२२६. **आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर । सुष्वाणो देववीतये ॥१८ ॥**

दैवी शक्तियों के लिये शोधित हे सोमदेव ! आप बलवर्द्धक बनकर हमें ऐसी शक्ति प्रदान करें , जिससे हमारी तेजस्विता बढ़े ॥१८ ॥

८२२७. **अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् । सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥१९ ॥**

हे तेजस्वी सोमदेव ! आप शब्द करते हुए पात्र (यज्ञ या विश्वघट) में शुद्ध होकर स्थित हों । आप तपोवन में स्थित इस यज्ञ मण्डप में पधारें ॥१९ ॥

८२२८. **अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमो अर्षति विष्णवे ॥२० ॥**

जल मिश्रित सोमरस इन्द्र, वायु, वरुण, मरुत् एवं विष्णु आदि देवों की तृप्ति के लिए कलश में स्थिर हो ॥२०॥

८२२९. **इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणम् ॥२१ ॥**

हे दिव्य सोमदेव ! हमारी सन्तानों के लिए आप सहस्रों प्रकार का अन्न, धनादि वैभव सभी ओर से लाकर प्रदान करें ॥२१ ॥

८२३०. **ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । ये वादः शर्यणावति ॥२२ ॥**

जो सोम दूरस्थ देशों में या समीपस्थ देशों में शर्यणावत सरोवर के निकट उत्पन्न होकर संस्कारित होता है, वह हमारे लिए इष्ट प्रदायक हो ॥२२ ॥

८२३१. **य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् । ये वा जनेषु पञ्चसु ॥२३ ॥**

जो सोम आर्जीक देश में, कर्म करने वालों के देशों में नदियों के किनारे या पंचजनों के बीच उत्पन्न होता तथा संस्कारित किया जाता है, वह हमारे लिये सुखदायक हो ॥२३ ॥

८२३२. **ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम् । सुवाना देवास इन्दवः ॥२४ ॥**

निष्पादित, दीप्तिमान् दिव्य सोम हमें द्युलोक से वृष्टि और उत्तम बल युक्त पोषक अन्न प्रदान करे ॥२४ ॥

८२३३. **पवते हर्यतो हरिर्गृणानो जमदग्निना । हिन्वानो गोरधि त्वचि ॥२५ ॥**

जमदग्नि (ऋषि अथवा जाग्रत् अग्नि) के द्वारा व्यक्त-प्रस्तुत किया गया यह कान्तिमान् (या इच्छा युक्त) गतिशील सोम, गौ त्वचा (गाय के चमड़े अथवा पृथ्वी की ऊपरी सतह) पर धारण करके प्रेरित (प्रयुक्त) किया जाता है ॥२५ ॥

[यज्ञ में प्रयोग के लिए गौ-चर्म पर सोम को धारण करके उपचारित किया जाता था । प्रकृति-यज्ञ में जाग्रत् अग्नि प्रकृति का जाग्रत् ऊर्जा चक्र इसे प्रकट करता है । पृथ्वी की ऊपरी सतह पर धारण करके सोम वृक्ष-वनस्पतियों एवं अन्न के रूप में प्राणियों के लिए तैयार किया जाता है ।]

८२३४. **प्र शुक्रासो वयोजुवो हिन्वानासो न सप्तयः । श्रीणाना अप्सु मृञ्जत ॥२६ ॥**

जल के साथ मिले हुए, अन्न प्रदान करने वाले कान्तिमान् सोमरस को गतिमान् अश्व की भाँति जल से पवित्र किया जाता है ॥२६ ॥

८२३५. **तं त्वा सुतेष्वाभुवो हिन्विरे देवतातये । स पवस्वानया रुचा ॥२७ ॥**

उस सोमरस को याजकगण यज्ञों में देवगणों को देने के लिए प्रेरित करते हैं । हे निष्पन्न सोमदेव ! आप इसके अनुरूप सुशोभित हों ॥२७ ॥

८२३६. **आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥२८ ॥**

हे सोमदेव ! आपके हर्ष प्रदान करने वाले, सम्पत्ति देने वाले, रिपुओं से रक्षा करने वाले, अनेक लोगों द्वारा कामना किए जाने वाले बल को हम धारण करते हैं ॥२८ ॥

८२३७. **आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम् । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥२९ ॥**

आनन्दवर्द्धक , श्रेष्ठ , ज्ञानी , विलक्षण संरक्षक और सबके द्वारा प्रशंसनीय हे सोमदेव ! हम (याजकगण) आपकी उपासना करते हैं ॥२९ ॥

८२३८. **आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥३० ॥**

उत्तम कर्मरत हे सोमदेव ! धन, उत्तम ज्ञान, पुत्र-पौत्र आदि श्रेष्ठ सन्तति, सबल संरक्षण और प्रशंसा के योग्य शक्ति-सामर्थ्य पाने के लिए हम आपकी वन्दना करते हैं ॥३० ॥

[सूक्त - ६६]

[**ऋषि** - शत वैखानस । **देवता** - पवमान सोम, १९-२१ अग्नि । **छन्द** - गायत्री, १८ अनुष्टुप् ।]

८२३९. **पवस्व विश्वचर्षणेऽभि विश्वानि काव्या । सखा सखिभ्य ईड्यः ॥१ ॥**

हे सर्वद्रष्टा सोमदेव ! मित्र की भाँति हम आपकी सभी स्तोत्रों से स्तुति करते हैं. आप इन स्तुतियों से प्रसन्न होकर हमें उत्तम रस प्रदान करें ॥१ ॥

८२४०. **ताभ्यां विश्वस्य राजसि ये पवमान धामनी । प्रतीची सोम तस्थतुः ॥२ ॥**

उन दो धामों (लोकों) से यह पवमान सोम विश्व को प्रकाशित अथवा नियंत्रित करता है । (वहाँ से भू-मण्डलीय क्षेत्र में प्रविष्ट होने पर) सोम पश्चिम में स्थित होता है ॥२ ॥

[द्युलोक एवं अन्तरिक्ष में पवित्र होकर सोम विश्व को अपने तेज से नियंत्रित या प्रकाशित करता है । पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से वह अप्रभावित रहता है । पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में प्रवेश करने पर भी वह पृथ्वी की भ्रमणगति के साथ घूमता नहीं । पृथ्वी पूर्व की ओर घूमती है, इसलिए सोम प्रवाह प्रवेश के बाद अपनी गति की सीध वाले स्थान की अपेक्षा पश्चिम की ओर वाले भू-भाग में जाकर स्थापित होता है । इसी तथ्य की ओर ऋषि इंगित करते हैं ।]

८२४१. **परि धामानि यानि ते त्वं सोमासि विश्वतः । पवमान ऋतुभिः कवे ॥३ ॥**

हे पवित्र ज्ञानी सोमदेव ! सम्पूर्ण विश्व में आपका स्थान ऋतुओं के अनुसार निर्धारित है ॥३ ॥

[सोम विभिन्न ऋतुओं एवं विभिन्न रूपों में अपना प्रभाव डालता है, इसलिए उनका स्थान ऋतुओं के अनुसार कहा गया है ।]

८२४२. **पवस्व जनयन्निषोऽभि विश्वानि वार्या । सखा सखिभ्य ऊतये ॥४ ॥**

हे सोमदेव ! आप सबके मित्र हैं, अतः स्वीकार करने योग्य सम्पूर्ण धन तथा उत्तम अन्न अपने मित्रों के संरक्षण के लिए प्रदान करें ॥४ ॥

८२४३. **तव शुक्रासो अर्चयो दिवस्पृष्ठे वि तन्वते । पवित्रं सोम धामभिः ॥५ ॥**

हे सोम ! आपकी कान्तिमान् किरणें सूर्य और भूमि के पृष्ठ भाग पर अपने तेज से पवित्र प्रकाश फैलाती हैं ॥५ ॥

८२४४. **तवेमे सप्त सिन्धवः प्रशिषं सोम सिस्रते । तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥६ ॥**

हे सोमदेव ! सातों नदियाँ (प्रकृतिगत सप्त प्रवाह) आपकी आज्ञा से प्रवाहित हैं तथा गौएँ (धारक किरणें) दौड़कर आपके पास आती हैं ॥६ ॥

८२४५. **प्र सोम याहि धारया सुत इन्द्राय मत्सरः । दधानो अक्षिति श्रवः ॥७ ॥**

हे अक्षय अन्न के धारणकर्त्ता सोम ! इन्द्र को आनन्द प्रदान करने के लिए आप धारारूप से उनके पास पहुँचें ॥७ ॥

८२४६. **समु त्वा धीभिरस्वरन्हिन्वतीः सप्त जामयः । विप्रमाजा विवस्वतः ॥८ ॥**

हे सोमदेव ! सात याजक यज्ञ कार्य में स्तुतियों द्वारा आपकी महिमा बढ़ाने वाले गुणों का वर्णन करते हैं ॥८ ॥

८२४७. **मृजन्ति त्वा समग्रुवोऽव्ये जीरावधि ष्वणि । रेभो यदज्यसे वने ॥९ ॥**

हे सोमदेव ! ऊन की बनी छलनी से शब्दनाद करते हुए शोधित होते समय हम अँगुलियों से आपको पवित्र बनाते हैं । शोधित होते समय आप शब्द करते हुए जल में मिलाए जाते हैं ॥९ ॥

८२४८. **पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत । अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥१० ॥**

हे बलवर्द्धक सोमदेव ! शुद्ध होते समय आपकी यशस्वी धारा अश्वशाला से निकलने वाले द्रुतगामी अश्वों के समान वेगवती होती है ॥१० ॥

८२४९. अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये । अवावशन्त धीतयः ॥११ ॥

मधुर रस युक्त कलश में हम सोमरस को छानते हैं, जिसे हमारी अँगुलियाँ बार-बार शुद्ध करती हैं ॥११ ॥

८२५०. अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः । अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥१२ ॥

जलयुक्त कलश में छाना गया सोमरस यज्ञस्थल में उसी प्रकार (स्वभावतः) जाता है, जैसे दुधारू गौएँ अपने स्थान (गोष्ठ) में जाती हैं ॥१२ ॥

८२५१. प्र ण इन्दो महे रण आपो अर्षन्ति सिन्धवः । यद् गोभिर्वासयिष्यसे ॥१३ ॥

हे सोमदेव ! हमारे महान् यज्ञ में , आपके रस में मिलाने के लिए नदियों का जल लाया गया है । उस सोमरस को गौ के दूध के साथ मिलाया जाता है ॥१३ ॥

८२५२. अस्य ते सख्ये वयमियक्षन्तस्त्वोतयः । इन्दो सखित्वमुश्मसि ॥१४ ॥

हे सोमदेव ! हम आपके मित्ररूप बनकर रहें । आपकी मित्रता से हम संरक्षण की कामना करते हैं ॥१४ ॥

८२५३. आ पवस्व गविष्टये महे सोम नृचक्षसे । एन्द्रस्य जठरे विश ॥१५ ॥

हे दिव्यद्रष्टा सोमदेव ! आप गौओं का रक्षण करने वाले हैं । अतः इन्द्रदेव के निमित्त प्रवाहित होकर आप उनके उदर में प्रवेश करें ॥१५ ॥

८२५४. महाँ असि सोम ज्येष्ठ उग्राणामिन्द ओजिष्ठः । युध्वा सञ्छश्वज्जिगेथ ॥१६ ॥ /

हे सोमदेव ! आप महान् हैं, आप श्रेष्ठ हैं, शूरों में अधिक श्रेष्ठ वीर हैं । आप शत्रुओं पर हमेशा विजय प्राप्त करते हैं ॥१६ ॥

८२५५. य उग्रेभ्यश्चिदोजीयाञ्छूरेभ्यश्चिच्छूरतरः । भूरिदाभ्यश्चिन्मंहीयान् ॥१७ ॥

यह सोम पराक्रमियों में भी महापराक्रमी , शूरवीरों से भी कहीं अधिक शूरवीर तथा बहुत दान देने वालों से भी महादानी है ॥१७ ॥

८२५६. त्वं सोम सूर एषस्तोकस्य साता तनूनाम् । वृणीमहे सख्याय वृणीमहे युज्याय ॥१८ ॥

हे सोमदेव ! आप पौष्टिक अन्न हमें प्रदान करें । आप पुत्र तथा पौत्रों को देने वाले हैं, अतः मित्रता की कामना करते हुए सहयोग के लिए हम आपका वरण करते हैं ॥१८ ॥

८२५७. अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥१९ ॥

हे अग्निदेव ! हमें लम्बी आयु प्रदान करें । हमें अन्न और बल से पूर्ण करें । श्वान वृत्ति वाले शत्रुओं को आप हमसे दूर करें ॥१९ ॥

८२५८. अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् ॥२० ॥

पंचजनों (समाज के पाँचों वर्गों) का हित चाहने वाले और सब कुछ देखने वाले अग्निदेव, जिसे ऋत्विजों ने यज्ञ के लिए प्रथम स्थापित किया है; उन समर्थ अग्निदेव की हम स्तुति करते हैं ॥२० ॥

८२५९. अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिं मयि पोषम् ॥२१ ॥

हे अग्ने ! आप उत्तम कर्म की प्रेरणा देने वाले हैं । हमें तेज तथा पराक्रम से युक्त शक्ति प्रदान करें । हमें ऐश्वर्य और पोषक तत्त्वों से सम्पन्न बनाएँ ॥२१ ॥

८२६०. पवमानो अति स्रिधोऽभ्यर्षति सुष्टुतिम् । सूरो न विश्वदर्शतः ॥२२ ॥

सोम शत्रुओं को पार करके दूर जाता है । यह सूर्यदेव के सदृश सर्वद्रष्टा सोम उत्तम स्तुतियों से सुशोभित होता है ॥२२ ॥

८२६१. **स मर्मृजान आयुभिः प्रयस्वान्प्रयसे हितः । इन्दुरत्यो विचक्षणः ॥२३ ॥**

शोधित हुआ वह तेजस्वी सोम देवगणों के पास जाने की कामना से यज्ञ में अर्पित किया जाता है ॥२३ ॥

८२६२. **पवमान ऋतं बृहच्छुक्रं ज्योतिरजीजनत् । कृष्णा तमांसि जङ्घनत् ॥२४ ॥**

यह पवित्रकर्त्ता सोम महान् , प्रखर, तेजस्वी प्रकाश प्रकट करता है, और काले (अज्ञानरूपी) अन्धकार को विनष्ट करता है ॥२४ ॥

८२६३. **पवमानस्य जङ्घ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत । जीरा अजिरशोचिषः ॥२५ ॥**

शत्रु विनाशक, सर्वत्र गमनशील, तेजोमय हरिताभ सोम की आह्लादकारी धारा प्रवाहित होती है ॥२५ ॥

८२६४. **पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः । हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥२६ ॥**

उच्च स्थान पर सुशोभित, शुभ्रतेज से कान्तिमान् हरिताभ (सोम) मरुद्गणों की सहायता से पुष्ट होता हुआ सबको आह्लाद युक्त करता है ॥२६ ॥

८२६५. **पवमानो व्यश्नवद्रश्मिभिर्वाजसातमः । दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥२७ ॥**

हे सोम ! असंख्यों प्रकारके अन्न और सामर्थ्य प्रदाता आप स्तोताओं को श्रेष्ठ पुत्रैश्वर्य प्रदान करते हैं ॥२७ ॥

८२६६. **प्र सुवान इन्दुरक्षाः पवित्रमत्यव्ययम् । पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥२८ ॥**

अभिषुत सोम ऊन से बनी छलनी से शोधित होकर इन्द्रदेव की ओर गमन करता है ॥२८ ॥

८२६७. **एष सोमो अधि त्वचि गवां क्रीळत्यद्रिभिः । इन्द्रं मदाय जोहुवत् ॥२९ ॥**

यह सोम भूमि के पृष्ठ भाग पर पत्थरों से कूटे जाते समय क्रीड़ा करते हुए आनन्द प्राप्ति के लिए इन्द्रदेव को आमंत्रित करता है ॥२९ ॥

८२६८. **यस्य ते द्युम्नवत्पयः पवमानाभृतं दिवः । तेन नो मृळ जीवसे ॥३० ॥**

हे सोमदेव ! दुग्ध के समान आपका तेजस्वी रस देवलोक में सर्वत्र व्याप्त है । उस रस से आप दीर्घजीवन प्रदान करते हुए हमें सुखी बनाएँ ॥३० ॥

[सूक्त - ६७]

[**ऋषि** - १-३ भरद्वाज बार्हस्पत्य, ४-६ कश्यप मारीच, ७-९ गोतम राहूगण, १०-१२ अत्रि भौम, १३-१५ विश्वामित्र गाथिन, १६-१८ जमदग्नि भार्गव, १९-२१ वसिष्ठ मैत्रावरुणि, २२-३२ पवित्र आङ्गिरस अथवा वसिष्ठ मैत्रावरुणि अथवा दोनों । **देवता** - पवमान सोम , १०-१२ पवमान सोम अथवा पवमान पूषा, २३ - २४ पवमान अग्नि , २५ पवमान अग्नि अथवा पवमान सविता, २६ पवमान अग्नि अथवा अग्नि और सविता , २७ पवमान अग्नि अथवा विश्वेदेवा, ३१-३२ पावमानी अध्येता स्तुति । **छन्द** - गायत्री, १६-१८ द्विपदा गायत्री, ३० पुर उष्णिक् , २७, ३१, ३२ अनुष्टुप् ।]

८२६९. **त्वं सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे । पवस्व मंहयद्रयिः ॥१ ॥**

हे सोमदेव ! परम सुखप्रदायक, सामर्थ्यवान् आप उत्तम यज्ञ में अपनी धाराओं को ऐश्वर्ययुक्त बनाएँ । धन और बल प्रदायक हे सोमदेव ! आप कलश में शुद्ध हों ॥१ ॥

८२७०. **त्वं सुतो नृमादनो दधन्वान्मत्सरिन्तमः । इन्द्राय सूरिरन्धसा ॥२ ॥**

हे सोमदेव ! आपका रस याजकों का आनन्द बढ़ाता है । यजमानों को धन तथा आनन्द प्रदान करने वाले आप इन्द्रदेव को भी आनन्दयुक्त अन्न प्रदान करें ॥२ ॥

८२७१. **त्वं सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत्। द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम् ॥३ ॥**

हे सोम ! पत्थरों से कूटकर निकाला गया आपका रस घोषणापूर्वक हमें तेजोयुक्त पौष्टिक अन्न प्रदान करे ॥३ ॥

८२७२. **इन्दुर्हिन्वानो अर्षति तिरो वाराण्यव्यया। हरिर्वाजमचिक्रदत् ॥४ ॥**

अनश्वर शोधक यंत्र से नीचे की ओर गमन करता हुआ, वृद्धि को प्राप्त हरिताभ सोमरस शब्दनाद करता हुआ पात्र में एकत्रित होता है ॥४ ॥

८२७३. **इन्दो व्यव्यमर्षसि वि श्रवांसि वि सौभगा। वि वाजान्त्सोम गोमतः ॥५ ॥**

हे सोमदेव ! आप अनश्वर छलनी से शोधित किये जाते हैं। गौओं (किरणों या इन्द्रियों) से युक्त बल तथा हविष्यान्न ग्रहण करते हुए आप अनेक प्रकार का सौभाग्य प्राप्त करते हैं ॥५ ॥

८२७४. **आ न इन्दो शतग्विनं रयिं गोमन्तमश्विनम्। भरा सोम सहस्रिणम् ॥६ ॥**

हे तेजस्वी सोमदेव ! आप हमें सैकड़ों गौओं तथा अनेक अश्वों से युक्त हजारों प्रकार का धन प्रदान करें ॥६ ॥

८२७५. **पवमानास इन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः। इन्द्रं यामेभिराशत ॥७ ॥**

छलनी में शोधित होने के लिए जाने वाला द्रुतगामी सोमरस अपने नियमों के अनुरूप इन्द्रदेव को प्राप्त करता है ॥७ ॥

८२७६. **ककुहः सोम्यो रस इन्दुरिन्द्राय पूर्व्यः। आयुः पवत आयवे ॥८ ॥**

सोम नामक वनस्पति से निकाला गया सोमरस श्रेष्ठ ऐश्वर्यवान् होकर, सर्वत्र गमनशील इन्द्रदेव के निमित्त गमन करता है ॥८ ॥

८२७७. **हिन्वन्ति सूरमुस्रयः पवमानं मधुश्चुतम्। अभि गिरा समस्वरन् ॥९ ॥**

उत्तम, बलशाली, मधुर रस प्रदान करने वाले सोम को अँगुलियाँ विस्तृत करती हैं। याजक उस समय स्तुतियों का गान करते हैं ॥९ ॥

८२७८. **अविता नो अजाश्वः पूषा यामनियामनि। आ भक्षत्कन्यासु नः ॥१० ॥**

अज (अजन्मा-सनातन) जिनका वाहन है, ऐसे पूषा देवता प्रत्येक पवित्र स्थान पर हमारा संरक्षण करें। आप हमें इच्छित सुलक्षणी कन्यायें (शक्तियाँ, पुत्रियाँ या वधुएँ) प्रदान करें ॥१० ॥

८२७९. **अयं सोमः कपर्दिने घृतं न पवते मधु। आ भक्षत्कन्यासु नः ॥११ ॥**

उत्तम मुकुटों से सज्जित पूषा देवता के लिए यह सोम मधुर घृत के समान रस प्रदान करता है। वह हमें श्रेष्ठ कन्याएँ प्रदान करता है ॥११ ॥

८२८०. **अयं त आघृणे सुतो घृतं न पवते शुचि। आ भक्षत्कन्यासु नः ॥१२ ॥**

हे तेजस्वी पूषादेव ! रस प्रदान करने वाला यह सोम शुद्ध घृत के समान रस आपके लिये देता है और हमें श्रेष्ठ कन्याएँ प्रदान करता है ॥१२ ॥

८२८१. **वाचो जन्तुः कवीनां पवस्व सोम धारया। देवेषु रत्नधा असि ॥१३ ॥**

हे सोमदेव ! आप स्तोताओं की स्तुतियों के प्रकाश हैं। आप देवों को रत्नादि से पूर्ण करने वाले हैं। आप हमें धारारूप में रस प्रदान करें ॥१३ ॥

८२८२. **आ कलशेषु धावति श्येनो वर्म वि गाहते। अभि द्रोणा कनिक्रदत् ॥१४ ॥**

जिस प्रकार श्येन पक्षी अपने निवास में जाता है, उसी प्रकार सोमरस शब्दनाद करता हुआ कलश पात्र में जाता है ॥१४ ॥

८२८३. **परि प्र सोम ते रसोऽसर्जि कलशे सुतः। श्येनो न तक्तो अर्षति ॥१५॥**

जिस प्रकार श्येन पक्षी अपने निवास में रहता है, उसी प्रकार कलश में स्थापित सोमरस चारों ओर से सुशोभित होता है ॥१५॥

८२८४. **पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः ॥१६॥**

हे सोमदेव ! इन्द्रदेव को आनन्द प्रदान करने के लिए आप मधुर रस प्रदान करें ॥१६॥

८२८५. **असृग्रन्देववीतये वाजयन्तो रथा इव ॥१७॥**

शत्रुओं को पराजित करने वाले रथ के समान देवगणों के पान हेतु सोमरस निकाला जाता है ॥१७॥

८२८६. **ते सुतासो मदिन्तमाः शुक्रा वायुमसृक्षत ॥१८॥**

हर्षकारक, तेजस्वी सोमरस अभिषुत होते हुए वायु के समान शब्दनाद करता है ॥१८॥

८२८७. **ग्राव्णा तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रं सोम गच्छसि। दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥१९॥**

हे सोमदेव ! पत्थरों से कूटकर निकाला गया, आपका रस पवित्र होने के लिए प्रवाहित होता है। यह रस स्तोताओं को उत्तम बल प्रदान करता है ॥१९॥

८२८८. **एष तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रमति गाहते। रक्षोहा वारमव्ययम् ॥२०॥**

यह स्तुत्य शोधित सोम सर्वोपरि पवित्रता प्रदान करता है। राक्षसों का नाश करने वाला यह सोमरस अविनाशी छलनी में छाना जाता है ॥२०॥

८२८९. **यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह। पवमान वि तज्जहि ॥२१॥**

हे पवित्र सोम ! जो भय हमारे समीप है, जो दूर है तथा जो यहाँ व्याप्त है, आप उस भय को नष्ट करें ॥२१॥

८२९०. **पवमानः सो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः। यः पोता स पुनातु नः ॥२२॥**

वह सर्वद्रष्टा सोम पवित्र करने वाला है, शोधित होते समय हमें भी वह पवित्र बनाये ॥२२॥

८२९१. **यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा। ब्रह्म तेन पुनीहि नः ॥२३॥**

हे अग्निदेव ! आपके अन्दर जो पवित्र करने वाला तेज व्याप्त है, उससे हमारे ज्ञान को पवित्र बनाएँ ॥२३॥

८२९२. **यत्ते पवित्रमर्चिवदग्ने तेन पुनीहि नः। ब्रह्मसवैः पुनीहि नः ॥२४॥**

हे अग्निदेव ! आपका जो पवित्र करने वाला तेज है, उससे तथा ज्ञान के स्तोत्रों से हमें पवित्र बनाएँ ॥२४॥

८२९३. **उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च। मां पुनीहि विश्वतः ॥२५॥**

हे सवितादेव ! आप पवित्र करने वाले ज्ञान तथा सोम इन दोनों से हमें पवित्र करें ॥२५॥

८२९४. **त्रिभिष्ट्वं देव सवितर्वर्षिष्ठैः सोम धामभिः। अग्ने दक्षैः पुनीहि नः ॥२६॥**

हे सवितादेव ! हे अग्निदेव ! हे सोमदेव ! सर्व समर्थ तीनों तेजों के द्वारा आप हमें पवित्र बनाएँ ॥२६॥

८२९५. **पुनन्तु मां देवजनाः पुनन्तु वसवो धिया।**
विश्वे देवाः पुनीत मा जातवेदः पुनीहि मा ॥२७॥

अष्टवसु, जातवेद, दिव्यजन तथा सभी देवगण बुद्धि के द्वारा हमें पवित्र बनाएँ ॥२७॥

८२९६. **प्र प्यायस्व प्र स्यन्दस्व सोम विश्वेभिरंशुभिः। देवेभ्य उत्तमं हविः ॥२८॥**

हे सोम ! देवों को समर्पित करने योग्य सभी प्रकार के हविष्यान्न हमें प्रदान करते हुए हमारी वृद्धि करें ॥२८॥

८२९७. उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम् । अगन्म बिभ्रतो नमः ॥२९ ॥

शब्दनाद करने वाले, उपासकों के प्रिय, आहुतियों से विस्तार पाने वाले तरुण अग्निदेव को हम नमन करते हुए उनके समीप जाते हैं ॥२९ ॥

८२९८. अलाय्यस्य परशुर्ननाश तमा पवस्व देव सोम । आखुं चिदेव देव सोम ॥३० ॥

आक्रान्ता शत्रु के शस्त्र नष्ट हों । हे सोम ! अपना रस प्रदान करते हुए आप हमारे शत्रुओं का नाश करें ॥३० ॥

८२९९. यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम् ।
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥३१ ॥

ऋषियों द्वारा संगृहीत जीवन सूत्रों में रस लेने वाले, पवित्र करने वाले सूक्तों का पाठ करने वाले (साधक) यज्ञ के प्रभाव से वायुदेव द्वारा सुखपूर्वक स्वीकार किया हुआ (यज्ञ से सूक्ष्मीकृत) सब प्रकार से पवित्र अन्न का सेवन करते हैं ॥३१ ॥

८३००. पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम् ।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥३२ ॥

जो ऋषियों द्वारा प्रणीत हुए वेदों का-ऋचाओं का अध्ययन करता है , उसके लिए (उसके ज्ञान को पुष्ट करने के लिए) सरस्वती दुग्ध, घृत, शहद जैसे तत्त्व स्वयं उपलब्ध कराती है ॥३२ ॥

[सूक्त - ६८]

[**ऋषि** - वत्सप्रिभालन्दन । देवता - पवमान सोम । **छन्द** - जगती, १० त्रिष्टुप् ।]

८३०१. प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनवः ।
बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे ॥१ ॥

मधुर सोमरस देवगणों के लिए प्रवाहित होकर पात्र में उसी प्रकार जाता है, जिस प्रकार दुधारू गौएँ अपने बछड़ों के लिए दुग्ध प्रवाहित करती हैं । यज्ञमण्डप में एकत्रित या व्यक्त गौएँ अथवा वाणियाँ शब्द करती हुई अपने सार तत्त्व प्रकट करने वाले भागों-अंगों में परिश्रुत (दुहा गया या श्रवण योग्य) सार तत्त्व (दुग्ध या ज्ञान) धारण करती हैं ॥१ ॥

८३०२. स रोरुवदभि पूर्वा अचिक्रददुपारुहः श्रथयन्त्स्वादते हरिः ।
तिरः पवित्रं परियन्नुरु ज्रयो नि शर्याणि दधते देव आ वरम् ॥२ ॥

वह हरिताभ सोम स्तोताओं की सर्वश्रेष्ठ स्तुतियों को सुनते हुए, समीप आने वालों को विशेष रूप से आनन्द प्रदान करता है । सर्वोत्तम पवित्र बनकर अग्रगामी यह सोम वेगपूर्वक शत्रुओं का नाश करता है और शब्दनाद करते हुए दिव्यता को धारण करता है ॥२ ॥

८३०३. वि यो ममे यम्या संयती मदः साकंवृधा पयसा पिन्वदक्षिता ।
मही अपारे रजसी विवेविददभिव्रजन्नक्षितं पाज आ ददे ॥३ ॥

आनन्द बढ़ाने वाला यह सोम सुनियमों से बँधे तथा परस्पर साथ रहने वाले, क्षीण न होने वाले, महान् द्यावा-पृथिवी को जानता है और उन्हें पय (जल या दुग्ध) से सिंचित करता, आगे बढ़ता (प्रवाहित होता हुआ) , यह सोम अक्षयबल को धारण करता (कराता) है ॥३ ॥

८३०४. **स मातरा विचरन्वाजयन्नपः प्र मेधिरः स्वधया पिन्वते पदम्।**
अंशुर्यवेन पिपिशे यतो नृभिः सं जामिभिर्नसते रक्षते शिरः ॥४॥

वह बुद्धिमान् सोम माता-पिता रूपी पृथिवी लोक तथा द्युलोक के ऊपर विचरण करते हुए जल को प्रेरित करता है। अपनी शक्ति से अपने पद को समृद्ध करते हुए यह सोम जौ आदि अन्नों से पुष्ट होता है। यह सोम मनुष्यों की शक्तियों (अँगुलियों) से मिलकर रहता है तथा श्रेष्ठ (तत्त्वों-प्रवृत्तियों) की रक्षा करता है ॥४॥

८३०५. **सं दक्षेण मनसा जायते कविर्ऋतस्य गर्भो निहितो यमा परः।**
यूना ह सन्ता प्रथमं वि जज्ञतुर्गुहा हितं जनिम नेममुद्यतम् ॥५॥

यह सोम शक्तिशाली मन से भली प्रकार प्रकट होता है। नियमानुसार यह उच्च स्थान पर रहता है। यह सोम यज्ञ का गर्भ है। ये दोनों (सूर्य और चन्द्र अथवा सोम के प्रकट एवं अप्रकट रूप) पहले जान लिए गए हैं। गुह्य स्थान पर रहने वाले इनका जन्म (प्राकट्य) नियमानुसार होता है ॥५॥

[सूर्य-चन्द्र एवं सोम के नियमबद्ध गूढ़ अनुशासनों को ऋषि भली प्रकार जानते हैं।]

८३०६. **मन्द्रस्य रूपं विविदुर्मनीषिणः श्येनो यदन्धो अभरत्परावतः।**
तं मर्जयन्त सुवृधं नदीष्वाँ उशन्तमंशुं परियन्तमृग्मियम् ॥६॥

श्येन पक्षी द्वारा दूर से लाये गये इस आनन्दवर्द्धक सोमरूपी अन्न के स्वरूप को ज्ञानीजन जानते हैं। स्तुति करने योग्य यह सोम नदियों के जल में मिलकर उत्तम रीति से परिष्कृत तथा विस्तृत होकर देवगणों के पास पहुँचने की कामना से उनके पास जाता है ॥६॥

८३०७. **त्वां मृजन्ति दश योषणः सुतं सोम ऋषिभिर्मतिभिर्धीतिभिर्हितम्।**
अव्यो वारेभिरुत देवहूतिभिर्नृभिर्यतो वाजमा दर्षि सातये ॥७॥

हे सोमदेव ! ऋषियों ने यज्ञकर्मों के द्वारा आपके रस को बुद्धिपूर्वक यज्ञस्थल पर स्थापित किया है। हमारी दस अँगुलियाँ सोमरस को पवित्र बनाती हैं। इसे देवगणों की स्तुति करने वाले याजकों ने ऊन की छलनी से छानकर रखा है। यह सोम दान (श्रेष्ठ कार्य) के लिए अन्न प्रदान करता है ॥७॥

८३०८. **परिप्रयन्तं वय्यं सुषंसदं सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभः।**
यो धारया मधुमाँ ऊर्मिणा दिव इयर्ति वाचं रयिषाळमर्त्यः ॥८॥

देवों के इच्छित सुप्रतिष्ठित यज्ञ पात्र में स्थापित होने वाले सोमरस की मन से स्तुतियाँ की जाती हैं। बलशाली यह सोम सर्वोपरि शक्ति के साथ धारारूप में द्युलोक से आता है। शत्रु के धन पर विजय प्राप्त करने वाले इस अविनाशी सोम की याजकगण स्तुति करते हैं ॥८॥

८३०९. **अयं दिव इयर्ति विश्वमा रजः सोमः पुनानः कलशेषु सीदति।**
अद्भिर्गोभिर्मृज्यते अद्रिभिः सुतः पुनान इन्दुर्वरिवो विदत्प्रियम् ॥९॥

यह सोम द्युलोक से पृथ्वी पर जल वृष्टि करता है। परिष्कृत सोमरस यज्ञस्थल पर कलशों में विराजमान होता है। पत्थरों से कूटकर तैयार किया गया यह सोमरस शोधित होने पर स्तोताओं को धन प्रदान करता है ॥९॥

८३१०. **एवा नः सोम परिषिच्यमानो वयो दधच्चित्रतमं पवस्व।**
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥१०॥

हे सोमदेव ! जल और गौ के दुग्ध से मिश्रित हुए आप विविध प्रकार का अन्न हमें प्रदान करें । द्वेष न करने वाले द्युलोक तथा पृथिवी लोक का हम आवाहन करते हैं। ये देवगण हमें शौर्यवान् संतति से युक्त धन प्रदान करें ॥१०॥

[सूक्त - ६९]

[**ऋषि** - हिरण्यस्तूप आङ्गिरस । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - जगती, ९-१० त्रिष्टुप् ।]

८३११. इषुर्न धन्वन् प्रति धीयते मतिर्वत्सो न मातुरुप सर्ज्यूधनि ।
उरुधारेव दुहे अग्र आयत्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते ॥१॥

जिस प्रकार धनुष पर बाण लगाया जाता है, जिस प्रकार माता की गोद में पुत्र बैठता है, उसी प्रकार हम इन्द्रदेव की स्तुति करते हैं । जिस प्रकार दूध देने वाली गौ सबको स्नेहपूर्वक दूध देती है, उसी प्रकार हम इस श्रेष्ठ कर्म में (इन्द्रदेव के लिए) श्रद्धासिक्त सोम अर्पित करते हैं ॥१॥

८३१२. उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।
पवमानः संतनिः प्रघ्नतामिव मधुमान्द्रप्सः परि वारमर्षति ॥२॥

मधुर एवं आनन्ददायक सोमरस स्तुत्य इन्द्रदेव को प्रदान किया जाता है । यजमानों द्वारा निकाला गया यह मधुर सोमरस शत्रु पर आघात करने वाले बाणों के समान बार-बार परिष्कृत किया जाता है ॥२॥

८३१३. अव्ये वधूयुः पवते परि त्वचि श्रथ्नीते नप्तीरदितेर्ऋतं यते ।
हरिरक्रान्यजतः संयतो मदो नृम्णा शिशानो महिषो न शोभते ॥३॥

वधू की कामना करने वाले की भाँति यह सोम अनश्वर त्वचा (अंतरिक्ष के अयनमण्डल के आवरण अथवा पृथ्वी की सतह) पर स्रवित होता है । अदिति की सन्तान रूप यह सोम यजमान को यज्ञ कार्य (प्रकृति या यज्ञस्थल के यज्ञ) को प्रेरित करता है । याज्ञिकों को आनन्दित करते हुए यह गतिशील सोम सबको पार करता हुआ अपनी शक्ति को तीक्ष्ण करके शूरवीरों के समान सुशोभित होता है ॥३॥

[जैसे सूरमा लोग सभी बाधाओं को पार कर जाते हैं, ऐसे ही सोम प्रवाह (कॉस्मिक फ्लो) निर्बाध रूप से अपना कार्य करते हुए आगे बढ़ते रहते हैं ।]

८३१४. उक्षा मिमाति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम् ।
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत ॥४॥

शब्द करते हुए प्रकाशमान सोम की दिव्य वाणी से स्तुति की जाती है । वह सोम शुद्ध होता हुआ दिव्य गुणों को धारण कर लेता है ॥४॥

८३१५. अमृक्तेन रुशता वाससा हरिरमर्त्यो निर्णिजानः परि व्यत ।
दिवस्पृष्ठं बर्हणा निर्णिजे कृतोपस्तरणं चम्वोर्नभस्मयम् ॥५॥

हरिताभ अविनाशी सोम, जल के साथ मिलाये जाने पर शोधित होता है । कान्तिमय, शुद्ध तथा तेजस्वी रूप में वह सोम सर्वत्र व्याप्त है । द्युलोक के पृष्ठभाग पर स्थित सूर्यदेव को तेजस्वी बनाते हुए आकाश तथा भूमि को प्रकाशित करता है ॥५॥

८३१६. सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुपः साकमीरते ।
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन ॥६ ॥

सूर्य रश्मियों के सदृश प्रेरणादायी, आनन्दवर्द्धक सोमधाराएँ शोधक छन्ने से गिरती हुई फैलती हैं । वे इन्द्रदेव (संगठक, धारक शक्तियों) के अतिरिक्त किसी और को प्राप्त नहीं होतीं ॥६ ॥

८३१७. सिन्धोरिव प्रवणे निम्न आशवो वृषच्युता मदासो गातुमाशत ।
शं नो निवेशे द्विपदे चतुष्पदेऽस्मे वाजाः सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥७ ॥

याजकों द्वारा निकाला गया आनन्ददायी सोमरस नदी के प्रवाह की भाँति इन्द्रदेव के पास जाने की कामना करता है । हे सोमदेव ! हमें धन-धान्य तथा सन्तति प्रदान करते हुए आप हम मनुष्यों तथा हमारे पशुओं को संरक्षण प्रदान करें ॥७ ॥

८३१८. आ नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवदश्वावद् गोमद्यवमत्सुवीर्यम् ।
यूयं हि सोम पितरो मम स्थन दिवो मूर्धानः प्रस्थिता वयस्कृतः ॥८ ॥

हे सोमदेव ! द्युलोक के उच्च शिखर पर विराजमान आप हमारे पिता हैं, आप अन्नदाता हैं, अतः हमें अश्वों गौओं, उत्तम पराक्रम तथा सुवर्ण आदि से युक्त धन-धान्य प्रदान करें ॥८ ॥

८३१९. एते सोमाः पवमानास इन्द्रं रथाइव प्र ययुः सातिमच्छ ।
सुताः पवित्रमति यन्त्यव्यं हित्वी वव्रिं हरितो वृष्टिमच्छ ॥९ ॥

जिस तरह शत्रुओं का धन हरण करने के लिये रथ अच्छी तरह जाते हैं , उसी तरह शोधित सोमरस इन्द्रदेव के पास जाता है । यह सोमरस अविनाशी छलनी से प्रवाहित होते हुए वृद्धावस्था दूर करने की शक्ति के साथ सुखों की वृष्टि करता है ॥९ ॥

८३२०. इन्दविन्द्राय बृहते पवस्व सुमृळीको अनवद्यो रिशादाः ।
भरा चन्द्राणि गृणते वसूनि देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥१० ॥

हे सोम ! महान् इन्द्र के लिये आप रस प्रदान करें । आप उत्तम सुख प्रदायक अनिन्दनीय तथा शत्रुनाशक हैं । स्तोताओं को भरपूर अन्न प्रदान करें । हे पृथिवी तथा द्युलोक ! आप उत्तम ऐश्वर्य सहित हमारी रक्षा करें ॥१० ॥

[सूक्त - ७०]

[**ऋषि** - रेणु वैश्वामित्र । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - जगती, १० त्रिष्टुप् ।]

८३२१. त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रे सत्यामाशिरं पूर्व्ये व्योमनि ।
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥१ ॥

परम व्योम में सोम को २१ गौएँ (दिव्य धाराएँ) दुग्ध (पोषण) प्रदान करती हैं , तब यज्ञ से संबन्धित यह सोम चार अन्य सुन्दर भुवनों (लोकों अथवा रसों) का निर्माण करता है ॥१ ॥

[वेदों में गौ पोषक शक्तियों को भी कहा गया है । त्रिसप्त का अर्थ ऋषि दयानन्द ने तीन (वेदत्रयी) सात (गायत्री आदि सात छन्द) किया है । सायणाचार्य के मतानुसार यह ३ X ७ = २१ (१२ माह + ५ ऋतु + ३ लोक एवं + १ आदित्य) हैं । उन्होंने ही तीन लोकों में प्रवाहित सप्त धाराओं से भी इक्कीस की गणना मानी है ।]

८३२२. **स भिक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे।**
तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः ॥२ ॥

श्रेष्ठ रस की इच्छा करने वालों की स्तुतियों से प्रभावित दिव्य सोम द्युलोक और पृथिवीलोक को जल से परिपूर्ण कर देता है । ऋत्विज् जब देवों के स्थान को यज्ञ की हवि से युक्त करते हैं, तो वह (सोम) जल को अपनी महिमा से मंडित कर देता है ॥२ ॥

८३२३. **ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु।**
येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत ॥३ ॥

अदम्य और अमरत्व प्राप्त सोमरस की किरणें दोनों प्रकार के(द्विपद एवं चतुष्पद अथवा स्थावर एवं जंगम) प्राणियों की रक्षक हैं । अपनी सामर्थ्य से यह सोम अन्न को देवों की ओर प्रेरित करता है, तत्पश्चात् राजा सोम की स्तुतियाँ की जाती हैं ॥३ ॥

८३२४. **स मृज्यमानो दशभिः सुकर्मभिः प्र मध्यमासु मातृषु प्रमे सचा।**
व्रतानि पानो अमृतस्य चारुण उभे नृचक्षा अनु पश्यते विशौ ॥४ ॥

श्रेष्ठ कर्म करने वाली दस (दिशाओं या अँगुलियों) से शोधित वह सोम सहयोगी रूप में सभी लोकों को जानता है । माता के समान वह यज्ञस्थल के मध्य में प्रतिष्ठित होता है । सर्वद्रष्टा वह सोम सुनियमों पर चलता हुआ उत्तम जल की वृष्टि करता है तथा दोनों प्रकार के मनुष्यों (उत्तम तथा अधम) का निरीक्षण करता है ॥४ ॥

७३२५. **स मर्मृजान इन्द्रियाय धायस ओभे अन्ता रोदसी हर्षते हितः।**
वृषा शुष्मेण बाधते वि दुर्मतीरादेदिशानः शर्यहेव शुरुधः ॥५ ॥

सबके धारक इन्द्रदेव की सामर्थ्य को बढ़ाने के उद्देश्य से शोधित वह सोमरस द्युलोक तथा पृथिवी लोक के मध्य स्थापित होकर हर्षित होता है । शत्रु सेनाओं को मारने के उद्देश्य से बार-बार शत्रुओं का आवाहन करते हुए अपने पराक्रम से उनका संहार करता है ॥५ ॥

८३२६. **स मातरा न ददृशान उस्रियो नानददेति मरुतामिव स्वनः।**
जानन्नृतं प्रथमं यत्स्वर्णरं प्रशस्तये कमवृणीत सुक्रतुः ॥६ ॥

द्युलोक तथा पृथिवी लोक रूपी दोनों माताओं को बार-बार देखकर, शब्दनाद करते हुए वह सोम सर्वत्र गमनशील है । गाय के बछड़े तथा मरुतों के समान शब्द करते हुए वह सोम द्यावा - पृथिवी के पास जाता है । जल को मानवों का सर्वोत्तम हितकारी जानकर स्वयं को जल में मिलाते हुए, वह सोम स्तुति करने वाले याजकों को प्राप्त होता है ॥६ ॥

८३२७. **रुवति भीमो वृषभस्तविष्यया शृङ्गे शिशानो हरिणी विचक्षणः।**
आ योनिं सोमः सुकृतं नि षीदति गव्ययी त्वग्भवति निर्णिगव्ययी ॥७ ॥

यह भंयकर हरणकर्त्ता की भाँति सूक्ष्म निरीक्षण करने वाला वृषभ (बलशाली-वर्षणशील सोम) अपने बल-वर्द्धन की कामना से दोनों सींगों (दोनों प्रकार के सूक्ष्म एवं स्थूल प्रवाहों) को तीक्ष्ण करता हुआ गर्जन करता है । यह श्रेष्ठ कर्मों (यज्ञादि) के उत्पत्ति केन्द्रों (यज्ञ वेदी या प्रकृति यज्ञ के केन्द्रों) में स्थापित होता है । (इसका माध्यम) निश्चित रूप से अविनाशी गौ की त्वचा (अंतरिक्षीय संरक्षण अयन आवरण अथवा पृथ्वी की सतह) होती है ॥७ ॥

८३२८. **शुचिः पुनानस्तन्वमरेपसमव्ये हरिर्न्यधाविष्ट सानवि।**
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे त्रिधातु मधु क्रियते सुकर्मभिः ॥८॥

शरीर को पवित्र बनाने वाला निष्पाप, शुद्ध, हरि (हरे रंग या गतिशील तेजस्वी) सोम ऊपर स्थित अविनाशी छन्नों में स्थित रहता है। वह सोमरस याज्ञिकों द्वारा मित्र, वरुण, वायु आदि देवगणों के लिए दिया जाता है ॥८॥

८३२९. **पवस्व सोम देववीतये वृषेन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश।**
पुरा नो बाधाद् दुरिताति पारय क्षेत्रविद्धि दिश आहा विपृच्छते ॥९॥

हे बलशाली सोमदेव ! देवों के लिए आप अपना रस प्रदान करें, इन्द्रदेव के निमित्त उनके पात्र में स्थापित हों तथा कष्ट पहुँचाने वाले पापियों से हमारी रक्षा करें। मार्ग का ज्ञाता जिस प्रकार पथिक का मार्गदर्शन करता है, उसी प्रकार आप श्रेष्ठ कर्मों के लिए हमारा मार्गदर्शन करें ॥९॥

८३३०. **हितो न सप्तिरभि वाजमर्षेन्द्रस्येन्दो जठरमा पवस्व।**
नावा न सिन्धुमति पर्षि विद्वाञ्छूरो न युध्यन्नव नो निदः स्पः ॥१०॥

हे सोमदेव ! आप कलश में स्थापित हों। युद्ध में जाने वाले प्रेरक घोड़ों की भाँति आप कलश में गमन करें। हे सोमदेव ! आप इन्द्रदेव के उदर में जाकर उन्हें तृप्त करें। जिस प्रकार नाविक नौका द्वारा नदी को पार करता है, उसी प्रकार आप दुःखों से हमें पार करें, विद्वान् शूरवीर की तरह युद्ध करते हुए हमारे निन्दकों का नाश करें तथा हमारा संरक्षण करें ॥१०॥

[सूक्त - ७१]

[**ऋषि** - ऋषभ वैश्वामित्र। **देवता** - पवमान सोम। **छन्द** - जगती, ९ त्रिष्टुप्।]

विराट् सृष्टि चक्र में चल रहे प्रकृति यज्ञ में विभिन्न रूपों में दी जा रही दक्षिणा का यहाँ पर संकेत किया गया है-

८३३१. **आ दक्षिणा सृज्यते शुष्म्या३सदं वेति द्रुहो रक्षसः पाति जागृविः।**
हरिरोपशं कृणुते नभस्पय उपस्तिरे चम्वो३र्ब्रह्म निर्णिजे ॥१॥

बलवर्द्धक सोम यथास्थान स्थित हो रहा है। वह सोम जाग्रत् रहने वाले याजकों को, द्रोही राक्षसों से संरक्षण प्रदान करता है। द्युलोक और पृथिवी लोक के मध्य में वह सोम सूर्यदेव को प्रकाशित कर रहा है। आकाश से हो रही वृष्टि में वह हरिताभ सोम प्रवेश कर रहा है। (इस प्रकार प्रकृति द्वारा) सोमयज्ञ में दक्षिणा दी जा रही है ॥१॥

८३३२. **प्र कृष्टिहेव शूष एति रोरुवदसुर्यं१ वर्णं नि रिणीते अस्य तम्।**
जहाति वव्रिं पितुरेति निष्कृतमुपप्रुतं कृणुते निर्णिजं तना ॥२॥

सोम विस्तारित (ऊन अथवा अंतरिक्षीय अयन मण्डल) से छनकर, परिष्कृत होकर, पिता (पालनकर्त्ता या पोषक अन्न) के रूप में प्रकट हो रहा है। (इस प्रक्रिया में) दुर्धर्ष शत्रु नाशक वीर की भाँति शब्द करते हुए, सोम अपने असुर (विकार) नाशक बल को प्रकट करता है तथा बुढ़ापे को दूर करता है ॥२॥

८३३३. **अद्रिभिः सुतः पवते गभस्त्योर्वृषायते नभसा वेपते मती।**
स मोदते नसते साधते गिरा नेनिक्ते अप्सु यजते परीमणि ॥३॥

हाथों द्वारा पत्थरों से कूटकर निकाला गया सोमरस यज्ञपात्र में स्थापित होता है । बलवान् होकर स्तुतियों से आनन्दित होते हुए आकाश में सर्वत्र गमन करता है । जल में मिश्रित शोधित सोमरस पात्र में एकत्रित होकर स्तुति करने पर मनोकामनाओं की पूर्ति करते हुए यज्ञ में प्रतिष्ठित होता है ॥३ ॥

८३३४. परि द्युक्षं सहसः पर्वतावृधं मध्वः सिञ्चन्ति हर्म्यस्य सक्षणिम् ।
आ यस्मिन्गावः सुहुताद ऊधनि मूर्धञ्छ्रीणन्त्यग्रियं वरीमभिः ॥४ ॥

यह बलशाली मधुर सोमरस द्युलोक के उच्च शिखर में रहने वाले शत्रु के नगरों को ध्वंस करने वाले इन्द्रदेव को तृप्त करता है । हविष्यान्न का सेवन करने वाली गौएँ (गौ, प्रजाएँ, किरणें) अपने दूध को श्रेष्ठ गुणों के साथ (इन्द्रदेव के लिए) प्रदान करती हैं ॥४ ॥

८३३५. समी रथं न भुरिजोरहेषत दश स्वसारो अदितेरुपस्थ आ ।
जिगादुप ज्रयति गोरपीच्यं पदं यदस्य मतुथा अजीजनन् ॥५ ॥

जिस प्रकार रथ को अँगुलियाँ (इच्छित मार्ग में जाने के लिए) प्रेरित करती हैं, उसी प्रकार दोनों भुजाओं की दसों अँगुलियाँ सोम को यज्ञस्थल की ओर (यज्ञीय कार्य के लिए) प्रेरित करती हैं । स्तोताओं की स्तुतियों से प्रकट हुआ यह सोमरस गाय के दूध में मिश्रित होकर पात्र में एकत्रित होता है ॥५ ॥

८३३६. श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतं हिरण्ययमासदं देव एषति ।
ए रिणन्ति बर्हिषि प्रियं गिराश्वो न देवाँ अप्येति यज्ञियः ॥६ ॥

यह तेजस्वी सोम स्तोताओं द्वारा स्तुति करने पर श्येन पक्षी के अपने निवास में जाने की भाँति सुवर्णमय आसन पर विराजमान होता है । जिस प्रकार अश्व देवगणों के पास जाता है, उसी तरह स्तोताओं की स्तुतियों से यह प्रिय सोम यज्ञस्थल पर जाता है ॥६ ॥

८३३७. परा व्यक्तो अरुषो दिवः कविर्वृषा त्रिपृष्ठो अनविष्ट गा अभि ।
सहस्रणीतिर्यतिः परायती रेभो न पूर्वीरुषसो वि राजति ॥७ ॥

यह तेजस्वी ज्ञानवान् सोम आकाश में सूर्यदेव के समान दूर-दूर तक स्पष्ट रूप में दिखाई देता है । तीनों लोकों में व्याप्त यह बलशाली सोम गो-दुग्ध अथवा वाणी से संयुक्त होता है । हजार नेत्रों वाला, यज्ञपात्र में एकत्रित होने वाला, स्तोता के समान शब्दनाद करता हुआ , यह सोमरस विशेष रूप से उषा काल के पूर्व भी प्रकाशित होता है ॥७ ॥

८३३८. त्वेषं रूपं कृणुते वर्णो अस्य स यत्राशयत्समृता सेधति स्रिधः ।
अप्सा याति स्वधया दैव्यं जनं सं सुष्टुती नसते सं गोअग्रया ॥८ ॥

(सूर्यदेव की) किरणें इस सोम को तेजस्वी रूप प्रदान करती हैं। वह सोम किरणों के स्रोत में रहकर शत्रुओं का विनाश करता है । वह सोम जल के साथ मिलकर हविरूप में देवत्व धारियों को प्राप्त होता है । (ऐसे सोम की) उत्तम स्तुतियाँ की जाती हैं । यह सोम गौ , हव्यों (दुग्धादि) अथवा किरणों के अग्रभाग से संयुक्त होता है ॥८ ॥

८३३९. उक्षेव यूथा परियन्नरावीदधि त्विषीरधित सूर्यस्य ।
दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षत क्षां सोमः परि क्रतुना पश्यते जाः ॥९ ॥

जिस प्रकार अपने चारों ओर गौओं के झुण्ड को देखकर, प्रमत्त बैल शब्दनाद करता है, उसी प्रकार द्युलोक में उत्पन्न हुआ सोम पृथिवी को देखते हुए चारों ओर सूर्यदेव जैसा तेज फैलाता है । यह सोम यज्ञस्थल में याजकों का निरीक्षण करता है ॥९ ॥

[गौओं में वृषभ गर्भस्थापित कर सकता है, उसी प्रकार सोम प्रकृति (वृक्ष, वनस्पतियों) में ओज भरने में समर्थ होता है । सोम देखता है, अर्थात् वह चेतना युक्त है , जो स्वयं सत्पात्रों का चयन करके उन्हें लाभ पहुँचा सकता है ।]

[सूक्त - ७२]

[**ऋषि** - हरिमन्त आङ्गिरस । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - जगती ।]

८३४०. **हरिं मृजन्त्यरुषो न युज्यते सं धेनुभिः कलशे सोमो अज्यते ।**
उद्वाचमीरयति हिन्वते मती पुरुष्टुतस्य कति चित्परिप्रियः ॥१ ॥

हरिताभ सोम को शोधित किया जा रहा है । तेजस्वी सोम धेनुओं (धारक किरणों) अथवा गौ-दुग्ध से संयुक्त होकर जब कलश अथवा विश्वमण्डल में स्थापित होता है, तब वह शब्दनाद करता है, उस समय उसकी स्तुतियाँ की जाती हैं । स्तुत्य सोम याज्ञिकों को प्रिय लगने वाला कई प्रकार का धन प्रदान करता है ॥१ ॥

८३४१. **साकं वदन्ति बहवो मनीषिण इन्द्रस्य सोमं जठरे यदादुहुः ।**
यदी मृजन्ति सुगभस्तयो नरः सनीळाभिर्दशभिः काम्यं मधु ॥२ ॥

इन्द्रदेव (संयोजक शक्ति) की तृप्ति के लिए पवित्र हाथ या पुरुषार्थ युक्त नेतृत्वकर्त्ता (व्यक्ति या चेतना) द्वारा दसों (अँगुलियों अथवा दिशाओं) से सोम को निष्पादित किया जाता है, उस मधुर रस को शोधित किया जाता है, तब ऋषियों द्वारा एक साथ मंत्रों का उच्चारण किया जाता है ॥२ ॥

८३४२. **अरममाणो अत्येति गा अभि सूर्यस्य प्रियं दुहितुस्तिरो रवम् ।**
अन्वस्मै जोषमभरद्विनंगृसः सं द्वयीभिः स्वसृभिः क्षेति जामिभिः ॥३ ॥

वह सोम अन्यत्र रमण न करता हुआ गौ के दुग्ध में जाता है । उषःकाल में यह सोम (स्तोत्रों के अलावा) अन्य शब्दों को दूर करता है । स्तोतागण इस सोम के लिए स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं । दोनों हाथों की अँगुलियों से यह सोमं संगति करता है ॥३ ॥

८३४३. **नृधूतो अद्रिषुतो बर्हिषि प्रियः पतिर्गवां प्रदिव इन्दुर्ऋत्वियः ।**
पुरन्धिवान्मनुषो यज्ञसाधनः शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! यज्ञीय कार्य में उपयोगी मनुष्य के यज्ञ का साधनरूप यह सोम आपके प्रिय यज्ञस्थल में आपके निमित्त शोधित होता है । पत्थरों से कूटकर निकाला गया, याजकों द्वारा शोधित, गाय के दूध के साथ मिश्रित यह सोमरस अनादिकाल से देवगणों के लिए प्रिय है ॥४ ॥

८३४४. **नृबाहुभ्यां चोदितो धारया सुतोऽनुष्वधं पवते सोम इन्द्र ते ।**
आप्राः क्रतून्त्समजैरध्वरे मतीर्वेर्न द्रुषच्चम्वो३रासदद्धरिः ॥५ ॥

जिस प्रकार पक्षी वृक्ष पर रहता है, उसी तरह हरिताभ सोम कलशों अथवा अन्तरिक्ष में स्थित रहता है । हे इन्द्रदेव ! धारा रूप में रस प्रदान करने वाला सोमरस आपका बल बढ़ाने के उद्देश्य से याजकों की भुजाओं से

प्रेरित होकर यज्ञस्थल में शोधित होता है । हिंसा से रहित सोमयज्ञ में आप सोमरस का पान करके अभिमानी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं ॥५ ॥

८३४५. अंशुं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितं कविं कवयोऽपसो मनीषिणः ।
समी गावो मतयो यन्ति संयत ऋतस्य योना सदने पुनर्भुवः ॥६ ॥

बुद्धिमान्, दूरदर्शी, कर्मकुशल, याजकगण क्षीण न होने वाले, शब्दनाद करने वाले, ज्ञानवर्द्धक सोम का रस निकालते हैं । बार-बार प्रसूत होने वाली गौएँ अथवा वाणियाँ एवं उत्तम बुद्धियाँ संयुक्त होकर यज्ञ को प्रकट (सम्पन्न) करती हैं ॥६ ॥

८३४६. नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवो३ऽपामूर्मौ सिन्धुष्वन्तरुक्षितः ।
इन्द्रस्य वज्रो वृषभो विभूवसुः सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥७ ॥

महान् द्युलोक का धारणकर्त्ता, पृथ्वी के उच्च शिखर पर स्थित नदियों के जल में मिश्रित इन्द्रदेव के वज्र की भाँति बलशाली, ऐश्वर्य से युक्त यह उत्तम आनन्ददायी सोम मन को हर्षित करने के लिए रस प्रदान करता है ॥७ ॥

८३४७. स तू पवस्व परि पार्थिवं रजः स्तोत्रे शिक्षन्नाधून्वते च सुक्रतो ।
मा नो निर्भाग्वसुनः सादनस्पृशो रयिं पिशङ्गं बहुलं वसीमहि ॥८ ॥

हे श्रेष्ठकर्मा सोमदेव ! आप पृथ्वी को देखते हुए (मनुष्य मात्र के लिए) अपना रस प्रदान करें । स्तोताओं को धन-धान्य से पूर्ण करें । हमें पर्याप्त साधन प्रदान करें । हम विविध स्वर्णादि धन से सदैव युक्त रहें ॥८ ॥

८३४८. आ तू न इन्दो शतदात्वश्व्यं सहस्रदातु पशुमद्धिरण्यवत् ।
उप मास्व बृहती रेवतीरिषोऽधि स्तोत्रस्य पवमान नो गहि ॥९ ॥

हे सोमदेव ! आप हमें सैकड़ों प्रकार का सुख प्रदान करने वाला, अश्वों से युक्त, हजारों प्रकार के दान के योग्य ऐश्वर्य शीघ्र ही प्रदान करें । हे सोमदेव ! आप हमारे स्तोत्रों को सुनने के लिए पधारें और हमें पशुओं से युक्त तथा सुवर्ण से युक्त महान् धन-धान्य प्रदान करें ॥९ ॥

[सूक्त - ७३]

[ऋषि - पवित्र आङ्गिरस । देवता - पवमान सोम । छन्द - जगती ।]

८३४९. स्रक्वे द्रप्सस्य धमतः समस्वरन्नृतस्य योना समरन्त नाभयः ।
त्रीन्त्स मूर्ध्नो असुरश्चक्र आरभे सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन् ॥१ ॥

यह रस (सोम) धारक स्थल (यज्ञपात्र अथवा विश्वघट) में ऋत (सनातन सत्य या यज्ञ) के उत्पत्ति स्थल से शब्द करते हुए प्रकट होता है । वे बलशाली, नाभि (यज्ञ कुण्ड अथवा पदार्थों के नाभिक- न्यूक्लियस) से संयुक्त होकर उच्च स्तरीय तीनों (लोकों अथवा मेखलाओं) से कार्य आरम्भ करते हैं । सत्य की नाव (साधकों अथवा पदार्थों को सत्य से युक्त करने वाले) सोमदेव सुकृत करने वालों की सहायता करते हैं ॥१ ॥

[सोम ऋत-योनि से प्रकट होता है तथा सत्य की नाव के रूप में सक्रिय होता है । ऋत सनातन-अपरिवर्तनीय सत्य है तथा सत्य उसका व्यावहारिक परिवर्तनशील रूप है । जैसे प्रकाश ऋत है, उसके संयोग से जो आकार उभरते हैं , वे सत्य हैं । सोम ऋत आनन्द-रस रूप है, उसके संयोग से पदार्थों में जो रस प्रकट होता है वह सत्य है ।]

८३५०. **सम्यक् सम्यञ्चो महिषा अहेषत सिन्धोरूर्मावधि वेना अवीविपन्।**
मधोर्धाराभिर्जनयन्तो अर्कमित्प्रियामिन्द्रस्य तन्वमवीवृधन्॥२॥

महान् (याजक अथवा देवगण) संगठित होकर जल तरंगों में सोमरस को मिलाते हैं। वे स्तोत्रों अथवा प्रेरणाओं द्वारा इन्द्रदेव के प्रिय धाम (यज्ञ अथवा शरीर) को सोम की धाराओं से पुष्ट करते हैं॥२॥

८३५१. **पवित्रवन्तः परि वाचमासते पितैषां प्रत्नो अभि रक्षति व्रतम्।**
महः समुद्रं वरुणस्तिरो दधे धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभम्॥३॥

सामर्थ्ययुक्त पवित्र सोम की स्तुति की जाती है। आदिपिता ये सोमदेव अपने व्रतों का निर्वाह करते हुए महान् अन्तरिक्ष को अपने तेज से आवृत कर देते हैं। ज्ञानी याजक उन्हें धारणशील जल में मिश्रित करते हैं॥३॥

८३५२. **सहस्रधारेऽव ते समस्वरन्दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः।**
अस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवः॥४॥

अन्तरिक्ष से हजारों जल धाराओं से युक्त सोम की रश्मियाँ पृथ्वी पर आ रही हैं। ये मधुरता से युक्त सोम-रश्मियाँ द्युलोक से ऊपर रहती हैं। ये सोम - रश्मियाँ प्रत्येक स्थान पर दुष्टों को कष्ट पहुँचाती हैं॥४॥

८३५३. **पितुर्मातुरध्या ये समस्वरन्नृचा शोचन्तः संदहन्तो अव्रतान्।**
इन्द्रद्विष्टामप धमन्ति मायया त्वचमसिक्नीं भूमनो दिवस्परि॥५॥

द्युलोक तथा पृथिवी लोक में उत्पन्न होने वाली सोम की किरणें स्तोताओं की स्तुतियों से प्रकाशित होती हैं। ये कुकर्मियों को पूरी तरह से नष्ट करती हैं। जिनसे इन्द्रदेव द्वेष करते हैं, उन राक्षसों को ये किरणें पृथ्वी तथा आकाश से बहुत दूर कर देती हैं॥५॥

८३५४. **प्रत्नान्मानादध्या ये समस्वरञ्छ्लोकयन्त्रासो रभसस्य मन्तवः।**
अपानक्षासो बधिरा अहासत ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः॥६॥

वेगगामी स्तुत्य सोम किरणें सर्वप्रथम अन्तरिक्ष से प्रवाहित होती हैं। इन किरणों को दृष्टिहीन तथा बधिर (सुप्त तथा अज्ञानी) नहीं देख सकते। ऐसे व्यक्ति इन सोम किरणों को नहीं पा सकते॥६॥

८३५५. **सहस्रधारे वितते पवित्र आ वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः।**
रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः स्पशः स्वञ्चः सुदृशो नृचक्षसः॥७॥

हजारों धाराओं से नीचे प्रवाहित होने वाले सोमरस को शोधित करते समय ज्ञानी जन स्तोत्रों द्वारा स्तुति करके पवित्र बनाते हैं। रुद्र के पुत्र मरुत् के समान यह सोम स्तुत्य, द्रोहरहित, सुन्दर दिखाई देने वाला, सर्वद्रष्टा सुकर्मा तथा शत्रुओं पर उत्तम प्रकार से आक्रमण करने वाला है॥७॥

८३५६. **ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतुस्त्री ष पवित्रा हृद्य१न्तरा दधे।**
विद्वान्त्स विश्वा भुवनाभि पश्यत्यवाजुष्टान्विध्यति कर्ते अव्रतान्॥८॥

श्रेष्ठकर्मा यज्ञरक्षक यह सोम किसी भी ज्ञानीजन को पीड़ित नहीं करता है। वह सोम अग्नि, वायु और सूर्य के तेज को धारण करता है। सभी युवकों को सूक्ष्म दृष्टि से देखते हुए नियमों (मर्यादाओं) का पालन न करने वाले दुष्टों को (दण्ड व्यवस्था के अनुसार) प्रताड़ित करता है॥८॥

८३५७. **ऋतस्य तन्तुर्विततः पवित्र आ जिह्वाया अग्रे वरुणस्य मायया।**
धीराश्चित्तत्समिनक्षन्त आशतात्रा कर्तमव पदात्यप्रभुः ॥९ ॥

यह सोम यज्ञ तथा पवित्रता का विस्तार करने वाला है। वह अपनी शक्ति से वरुण के अग्रभाग (जल के ऊपर) में स्थित है। ज्ञानीजन उसे प्राप्त करते तथा उपयोग करते हैं। अकर्मण्य लोग (उसे प्राप्त न कर पाने के कारण) पतन के मार्ग पर जाते हैं ॥९ ॥

[सूक्त - ७४]

[**ऋषि** - कक्षीवान् दैर्घतमस (औशिज)। **देवता** - पवमान सोम। **छन्द** - जगती, ८ त्रिष्टुप्]

८३५८. **शिशुर्न जातोऽव चक्रदद्वने स्व१र्यद्वाज्यरुषः सिषासति।**
दिवो रेतसा सचते पयोवृधा तमीमहे सुमती शर्म सप्रथः ॥१ ॥

सोम प्रवाह अन्तरिक्ष में जन्म लेने वाले शिशु के समान (नीचे को मुख-रुख करके) शब्द करता है। तेजस्वी सोम दिव्य ओज (ओषधियों आदि के माध्यम से) तथा दुग्ध या जल से संयुक्त होकर वर्द्धित होता है। अश्व की तरह (यज्ञीय माध्यम से) स्वर्ग की ओर जाने की कामना करता है। श्रेष्ठ बुद्धि वाले (याजकगण) सुन्दर स्तुतियों से शुभ आवास एवं ऐश्वर्य सहित सोम की कामना करते हैं ॥१ ॥

८३५९. **दिवो यः स्कम्भो धरुणः स्वातत आपूर्णो अंशुः पर्येति विश्वतः।**
सेमे मही रोदसी यक्षदावृता समीचीने दाधार समिषः कविः ॥२ ॥

यह सोम द्युलोक को स्तम्भवत् थामने वाला, संसार को धारण करने वाला, सर्वत्र फैला हुआ तथा सब ओर से पूर्ण रहकर सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है। वह सोम द्युलोक तथा पृथिवीलोक में अन्न, जल तथा शक्ति का विस्तार करता है। यह ज्ञानी सोम, द्युलोक तथा पृथिवी लोक को संयुक्त रूप से धारण करते हुए सभी प्रकार का अन्न धारण करता है ॥२ ॥

८३६०. **महि प्सरः सुकृतं सोम्यं मधूर्वी गव्यूतिरदितेर्ऋतं यते।**
ईशे यो वृष्टेरित उस्रियो वृषापां नेता य इतऊतिर्ऋग्मियः ॥३ ॥

श्रेष्ठ यज्ञीय कार्य में प्रयुक्त सोमरस यज्ञ में जाने वाले इन्द्रदेव के पान करने के लिए उत्तम होता है। जो इन्द्रदेव यहाँ की वर्षा के स्वामी हैं, उनके लिए पृथिवी का मार्ग विस्तृत होता है। वे गौओं के हितकारी, जल के वृष्टिकर्त्ता तथा सबके नियन्ता हैं। वे इन्द्रदेव सोम यज्ञ में सम्मिलित होने वाले तथा प्रशंसनीय हैं ॥३ ॥

८३६१. **आत्मन्वन्नभो दुह्यते घृतं पय ऋतस्य नाभिरमृतं वि जायते।**
समीचीनाः सुदानवः प्रीणन्ति तं नरो हितमव मेहन्ति पेरवः ॥४ ॥

आकाश से घृत एवं दुग्ध के समान साररूप (सोम) दुहा जाता है। ऋत की नाभि (यज्ञ कुण्ड अथवा सत्यलोक के केन्द्र) से अमृतरूप (सोम) उत्पन्न होता है। एक साथ मिलजुलकर श्रेष्ठ दानी (यज्ञकर्त्ता) उस (सोम) को (स्तुतियों अथवा यज्ञीय प्रक्रिया द्वारा) प्रसन्न करते हैं। वह रक्षक नेता हितकारी पदार्थों की वर्षा करता है ॥४ ॥

८३६२. **अरावीदंशुः सचमान ऊर्मिणा देवाव्यं१ मनुषे पिन्वति त्वचम्।**
दधाति गर्भमदितेरुपस्थ आ येन तोकं च तनयं च धामहे ॥५ ॥

देवों की रक्षा तथा मानवों के हित के लिये यह सोम अपने आप को अर्पित करते हुए जल में मिलाये जाने पर शब्दनाद करता है । पृथ्वी के ऊपर यह सोम अपना गर्भ (ओषधियों के रूप में) स्थापित करता है, जिससे हम संतति को नीरोग बनाकर रक्षण करने में समर्थ होते हैं ॥५ ॥

८३६३. सहस्रधारेऽव ता असश्चतस्तृतीये सन्तु रजसि प्रजावतीः ।
चतस्रो नाभो निहिता अवो दिवो हविर्भरन्त्यमृतं घृतश्चुतः ॥६ ॥

तृतीय लोक अर्थात् स्वर्ग में पृथक्-पृथक् रहने वाला वह सोमरस सहस्रों धाराओं के रूप में पृथिवी पर स्रवित होकर प्रजा का सहायक बनता है । सोम के चार प्रकार के प्रवाह द्युलोक से स्रवित होते हैं । यह घृत (ओजस्) प्रदान करने वाला सोमरस रक्षण- शक्ति से युक्त अमरत्व प्रदान करने वाला तथा हविष्यान्न रूप है ॥६ ॥

[द्युलोक-आकाश से प्रकट सोम वायु , अग्नि, जल एवं पृथ्वी को शक्ति देने के लिए चार प्रकार से प्रवाहित होता है । सोम यज्ञ में चार चरण हैं, पर्वत से सोमलता की प्राप्ति, शोधन स्थल, यज्ञस्थल तथा देवों का उदर ।]

८३६४. श्वेतं रूपं कृणुते यत्सिषासति सोमो मीढ्वाँ असुरो वेद भूमनः ।
धिया शमी सचते सेमभि प्रवद्दिवस्कवन्धमव दर्षदुद्रिणम् ॥७ ॥

जब वह सोम स्वर्ग की कामना से यज्ञ में प्रतिष्ठित होता है, तब श्वेत दिखाई पड़ता है । ऐसा बलशाली सोम याजकों की कामनाओं को पूरा करते हुए अनेक प्रकार का धन प्रदान करता है । वह सोम बुद्धिपूर्वक किए गए श्रेष्ठ कर्मों को पूरा करते हुए जल देने वाले बादलों को (बरसने के लिए) नीचे भेजता है ॥७ ॥

[सोम के यजन से निर्मित अयन, मेघों को जलवर्षण के लिए उत्प्रेरक का कार्य करते हैं ।]

८३६५. अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तं कार्ष्मन्ना वाज्यक्रमीत्ससवान् ।
आ हिन्विरे मनसा देवयन्तः कक्षीवते शतहिमाय गोनाम् ॥८ ॥

जिस प्रकार घोड़ा युद्ध में जाता है, उसी प्रकार वह सोमरस श्वेत वर्ण गौ के दूध में मिलकर कलश में यथा-स्थान स्थापित होता है । जिस प्रकार कक्षीवान् ऋषि द्वारा सैकड़ों प्रकार की स्तुतियाँ करने पर गौएँ प्रदान की गईं, उसी प्रकार देवों को प्राप्त करने वाले याजकों के द्वारा उन सोमदेव की मन से , उत्तम विधियों से स्तुतियाँ की जाती हैं ॥८ ॥

८३६६. अद्भिः सोम पपृचानस्य ते रसोऽव्यो वारं वि पवमान धावति ।
स मृज्यमानः कविभिर्मदिन्तम स्वदस्वेन्द्राय पवमान पीतये ॥९ ॥

हे शोधित सोमदेव ! जल में मिलाया जाने वाला आपका रस ऊन की बनी छलनी में छाना जाता है । हे आनन्ददायी सोमदेव ! याजकों द्वारापरिष्कृत रस को इन्द्रदेव के पान के लिए प्रदान करें ॥९ ॥

[सूक्त - ७५]

[**ऋषि** - कवि भार्गव । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - जगती]

८३६७. अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥१ ॥

दिव्य सोम, सर्वत्रगामी सूर्यदेव के रथ पर आरूढ़ होकर संसार का द्रष्टा बन जाता है । वह प्रिय जल के साथ संयुक्त होकर, अन्नों के लिए हितकारी बनकर विस्तार पाता-प्रवाहित होता है ॥१ ॥

८३६८. **ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः ।**
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यं१ नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥२ ॥

ऋत की जिह्वा स्वरूप (यज्ञ की ज्वाला रूप) सोम मधुर एवं प्रिय (सूक्ष्मीकृत प्रवाह) प्रदान करता है । यह (उत्पन्न प्रवाह) बोलने वाला (स्वयं को व्यक्त करने वाला) है, इसकी बुद्धि (धारणा) अदम्य है । यह पुत्र (उत्पन्न हुआ प्रवाह), पिता (उत्पन्नकर्त्ता) के लिए अज्ञात, तीसरा (निर्माता तथा निर्माण में प्रयुक्त पदार्थ से भिन्न) नाम धारण करके (प्राण-पर्जन्य रूप में) द्युलोक में प्रकाशित होता है ॥२ ॥

८३६९. **अव द्युतानः कलशाँ अचिक्रदन्नृभिर्येमानः कोश आ हिरण्यये ।**
अभीमृतस्य दोहना अनूषताधि त्रिपृष्ठ उषसो वि राजति ॥३ ॥

ऋत्विजों द्वारा स्वर्ण कलश में शोधित होते समय शब्द करने वाले तेजस्वी सोम की स्तुति की जाती है । यह सोम तीनों ही संध्याओं (प्रातः , मध्याह्न, सायं) में प्रकाशित होता है ॥३ ॥

८३७०. **अद्रिभिः सुतो मतिभिश्चनोहितः प्ररोचयन्रोदसी मातरा शुचिः ।**
रोमाण्यव्या समया वि धावति मधोर्धारा पिन्वमाना दिवेदिवे ॥४ ॥

विद्वज्जनों ने पत्थरों से कूटकर निकाले गए परिष्कृत सोमरस को अन्न रूप में रखा। यह सोमरस द्यावा-पृथिवी रूपी माताओं को तेजस्वी बनाता है । यह सोम प्रतिदिन (यज्ञ के माध्यम से) मधुर धाराओं को पवित्र बनाता है ॥४ ॥

८३७१. **परि सोम प्र धन्वा स्वस्तये नृभिः पुनानो अभि वासयाशिरम् ।**
ये ते मदा आहनसो विहायसस्तेभिरिन्द्रं चोदय दातवे मघम् ॥५ ॥

हे सोमदेव ! आप हमारे समीप आकर हमारा कल्याण करें, याज्ञिकों द्वारा परिष्कृत हुए आप दूध में मिश्रित होकर रहें । आपका आनन्ददायी रस महान् शक्ति-सम्पन्न तथा शत्रुनाशक है । आप इन शक्तियों के साथ धन प्रदान करने के लिए इन्द्रदेव को प्रेरित करें ॥५ ॥

[सूक्त - ७६]

[**ऋषि** - कवि भार्गव । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - जगती]

८३७२. **धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।**
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुते नदीष्वा ॥१ ॥

धारक शक्ति से सम्पन्न, कर्मनिष्ठ, देव शक्ति संवर्धक, स्तोताओं द्वारा प्रशंसित, हरित सोम शोधित होता है। यह निष्पन्न सोमरस बलवान् अश्व के समान सहजता से ही अपने आप नदी (जल प्रवाहों) में मिल जाता है ॥१ ॥

८३७३. **शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्व१ः सिषासन्रथिरो गविष्टिषु ।**
इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥२ ॥

हाथों में शस्त्र धारण किये हुए सूरमाओं की तरह रथारूढ़, गौओं के रक्षक, वीरों का एवं इन्द्रदेव का बल बढ़ाते हुए, यह दिव्य सोम, ऋत्विजों द्वारा प्रेरित होकर, गौ दुग्ध के साथ मिलाया जाता है ॥२ ॥

८३७४. इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश ।
प्र णः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया न वाजाँ उप मासि शश्वतः ॥३ ॥

हे संस्कारित सोमदेव ! आप महान् सामर्थ्यवान् बनकर इन्द्रदेव के उदर में प्रवेश करें । मेघों को बरसने के लिए प्रेरित करती विद्युत् की तरह आप आकाश और पृथ्वी को फलदायी बनाएँ । कर्म करते हुए, कर्म के माध्यम से आप हमारे लिए अक्षय पोषकतायुक्त अन्न प्रदान करें ॥३ ॥

८३७५. विश्वस्य राजा पवते स्वर्दृश ऋतस्य धीतिमृषिषाळवीवशत् ।
यः सूर्यस्यासिरेण मृज्यते पिता मतीनामसमष्टकाव्यः ॥४ ॥

यह सोम सम्पूर्ण विश्व का राजा है । ऋषियों द्वारा स्तुत्य यह सोम सर्वद्रष्टा इन्द्रदेव के कर्म को प्रशंसित करता है । सब प्रकार से प्रशंसनीय यह सोम स्तुतियों का संरक्षक है, इसे सूर्य किरणों से शोधित किया जाता है ॥४ ॥

८३७६. वृषेव यूथा परि कोशमर्षस्यपामुपस्थे वृषभः कनिक्रदत् ।
स इन्द्राय पवसे मत्सरिन्तमो यथा जेषाम समिथे त्वोतयः ॥५ ॥

जिस प्रकार बैल अपने समूह में जाता है, उसी प्रकार सोमरस कलश पात्र में जाता है । आकाश में जिस प्रकार जलयुक्त मेघ गर्जना करते हैं, उसी प्रकार शब्दनाद करता हुआ सोमरस यज्ञ पात्र में जाता है । इन्द्रदेव के निमित्त शोधित वह सोम अत्यन्त आनन्ददायी है । हे सोम ! आपके संरक्षण में हम संग्राम में विजय प्राप्त करें ॥५ ॥

[सूक्त - ७७]

[**ऋषि** - कवि भार्गव । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - जगती]

८३७७. एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टरः ।
अभीमृतस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः ॥१ ॥

दुधारू गौओं के घृत युक्त श्रेष्ठ दूध की धार की तरह ध्वनि करता हुआ, इन्द्रदेव के वज्र के समान शक्तिशाली, सुन्दरतम बीजों को अंकुरित करने वाला सोम, शब्द करता हुआ कोश (कलश, पदार्थों) में प्रवेश करता है ॥१ ॥

[प्रकृति के जटिलतम पदार्थों में संचरित होने की क्षमता के कारण वज्र के समान सशक्त तथा पोषण में श्रेष्ठ दुग्ध की तरह सोम को कहा गया है ।]

८३७८. स पूर्व्यः पवते यं दिवस्परि श्येनो मथायदिषितस्तिरो रजः ।
स मध्व आ युवते वेविजान इत्कृशानोरस्तुर्मनसाह बिभ्युषा ॥२ ॥

वह सोम आदिकाल से ही शुद्ध होता है । द्युलोक से प्रेरित श्येन पक्षी द्वारा समस्त बाधाओं को पार करके वह सोम पृथिवी पर लाया गया है । रजोलोक से प्राप्त वह सोम मधुरता से युक्त होकर दुग्धादि से मिश्रित होता है । भयभीत मन से कार्य करने वाले मनुष्य की तरह (दुरुपयोग के भय से) यह सोम यज्ञ में रहता है ॥२ ॥

८३७९. ते नः पूर्वास उपरास इन्दवो महे वाजाय धन्वन्तु गोमते ।
ईक्षेण्यासो अह्यो३न चारवो ब्रह्मब्रह्म ये जुजुषुर्हविर्हविः ॥३ ॥

सर्वोपरि विराजमान, पूर्व से ही लक्ष्य प्राप्त, महान् सोमरस गाय के दूध से युक्त अन्न हमें प्रदान करे । यह हव्य सेवन करने वाला सोमरस सभी प्रकार की स्तुतियों से दर्शनीय तथा रमणीय होता है ॥३ ॥

८३८०. अयं नो विद्वान्वनवद्वनुष्यत इन्दुः सत्राचा मनसा पुरुष्टुतः ।
इनस्य यः सदने गर्भमादधे गवामुरुब्जमभ्यर्षति व्रजम् ॥४ ॥

यह सोम हानि पहुँचाने वाले शत्रुओं (विकारों) को जानकर उनका संहार करे । जो सोम यज्ञ स्थल की अग्नि में, ओषधियों के गर्भ में, गौओं के दुग्ध में तथा जल में मिश्रित होकर रहता है, उस सोम की सत्य मन से , संगठित रूप से स्तुति की जाती है ॥४ ॥

८३८१. चक्रिर्दिवः पवते कृत्व्यो रसो महाँ अदब्धो वरुणो हुरुग्यते ।
असावि मित्रो वृजनेषु यज्ञियोऽत्यो न यूथे वृषयुः कनिक्रदत् ॥५ ॥

सृष्टिकर्त्ता, कर्म-कुशल, रस-रूप यह सोम महान् है । दुष्टों का संहार करने वाले अविनाशी सोम का निष्पादन किया जाता है । समूह के चपल घोड़े की भाँति यज्ञ का मुख्य साधन यह सोम शब्दनाद करता हुआ शत्रुओं के द्वारा हमला होने पर हमारी रक्षा करता है ॥५ ॥

[सूक्त - ७८]

[**ऋषि** - कवि भार्गव । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - जगती]

८३८२. प्र राजा वाचं जनयन्नसिष्यददपो वसानो अभि गा इयक्षति ।
गृभ्णाति रिप्रमविरस्य तान्वा शुद्धो देवानामुप याति निष्कृतम् ॥१ ॥

यह राजा सोम शब्दनाद करता हुआ जल में मिश्रित होकर स्तुतियों को स्वीकार कर रस प्रदान करता है । यह सोम भेड़ के बालों से निर्मित छलनी से शोधित होकर देवों के पास जाता है ॥१ ॥

८३८३. इन्द्राय सोम परि षिच्यसे नृभिर्नृचक्षा ऊर्मिः कविरज्यसे वने ।
पूर्वीर्हि ते स्रुतयः सन्ति यातवे सहस्रमश्वा हरयश्चमूषदः ॥२ ॥

हे सोमदेव ! यज्ञकर्त्ताओं द्वारा इन्द्रदेव के निमित्त आपका रस निकाला जाता है । उस रस को याजकों के द्वारा जल में मिश्रित किया जाता है । अनादिकाल से आप यज्ञ के हव्यरूप में जाने जाते हैं । आपके क्षरण के लिए हजारों मार्ग (छिद्र) हैं तथा अश्व (सूर्य) के समान सहस्रों किरणें हैं ॥२ ॥

८३८४. समुद्रिया अप्सरसो मनीषिणमासीना अन्तरभि सोममक्षरन् ।
ता ईं हिन्वन्ति हर्म्यस्य सक्षणिं याचन्ते सुम्नं पवमानमक्षितम् ॥३ ॥

महान् आकाश में विद्यमान सोम जल में मिश्रित होने के लिए पहुँच रहा है । यह (सोम मिश्रित) जल यज्ञ-स्थल के समीप जाने के लिए सोम को प्रेरित करता है । इस पवित्र सोम से याजकगण सुख की याचना करते हैं ॥३ ॥

८३८५. गोजिन्नः सोमो रथजिद्धिरण्यजित्स्वर्जिदब्जित्पवते सहस्रजित् ।
यं देवासश्चक्रिरे पीतये मदं स्वादिष्ठं द्रप्समरुणं मयोभुवम् ॥४ ॥

हमारे लिए (दूध उपलब्ध कराने के लिए) गौओं को जीतने वाला, (वीर शत्रुओं के विनाश के लिए) रथों को जीतने वाला, सुवर्ण को जीतने वाला, जल को जीतने (अपने अधीन करने) वाला, हजारों प्रकार का धन जीतने वाला सोमरस शोधित किया जाता है । इस अरुणाभ मधुर रस रूपी सोम को देवों के निमित्त आनन्द बढ़ाने के लिए , सुख की वृद्धि के लिए बनाया गया है ॥४ ॥

८३८६. एतानि सोम पवमानो अस्मयुः सत्यानि कृण्वन्द्रविणान्यर्षसि ।
जहि शत्रुमन्तिके दूरके च य उर्वीं गव्यूतिमभयं च नस्कृधि ॥५ ॥

हे सोमदेव ! सत्यपथ पर चलने वालों की सहायता करने वाले आप शोधित होकर धन प्रदान करते हुए आगे जाएँ । जो शत्रु हमारे पास हैं अथवा हमसे दूर हैं, उन्हें पराजित करके, हमारा संरक्षण कर हमें विस्तीर्ण मार्ग में निर्भयता प्रदान करें ॥५ ॥

[सूक्त - ७९]

[**ऋषि** - कवि भार्गव । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - जगती]

८३८७. अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र सुवानासो बृहद्दिवेषु हरयः ।
वि च नशन्न इषो अरातयोऽर्यो नशन्त सनिषन्त नो धियः ॥१ ॥

उत्तेजित न होने वाला सोमरस हमें प्रेरणा प्रदान करे, हरित (हरियाली के कारणभूत) वर्षा का रस प्रदान करे । हमारे अन्न के शत्रु नष्ट हो जाएँ । हमारी भावनाएँ (स्तोत्रों के माध्यम से) देवों तक पहुँचें-फलित हों ॥१ ॥

८३८८. प्र णो धन्वन्त्विन्दवो मदच्युतो धना वा येभिरर्वतो जुनीमसि ।
तिरो मर्तस्य कस्य चित्परिह्वृतिं वयं धनानि विश्वधा भरेमहि ॥२ ॥

सोमरस हमारे आनन्द में वृद्धि करते हुए धन को हमारे पास आने के लिए प्रेरित करे । इस बलवान् सोम की शक्ति से सभी बाधाओं को दूर करते हुए हम शत्रु के साथ मुकाबला कर सकें तथा अनेक प्रकार का धन प्राप्त करने में समर्थ हों ॥२ ॥

८३८९. उत स्वस्या अरात्या अरिर्हि ष उतान्यस्या अरात्या वृको हि षः ।
धन्वन्न तृष्णा समरीत ताँ अभि सोम जहि पवमान दुराध्यः ॥३ ॥

वह सोम अपने तथा दूसरों के शत्रुओं का संहार करने वाला है । मरुदेश में रहने वालों की प्यास की तरह आप (सोमदेव) शत्रुओं के पीछे पड़ जाएँ, उन शत्रुओं (विकारों) को नष्ट करें ॥३ ॥

८३९०. दिवि ते नाभा परमो य आददे पृथिव्यास्ते रुरुहुः सानवि क्षिपः ।
अद्रयस्त्वा बप्सति गोरधि त्वच्य१प्सु त्वा हस्तैर्दुदुहुर्मनीषिणः ॥४ ॥

हे सोमदेव ! आपका हविष्यान्न स्वीकार करने वाला अंश द्युलोक में सर्वोपरि रहता है । पृथिवी के उच्च भाग में रहकर वह विस्तार पाता है । ज्ञानी जनों द्वारा पत्थर से कूटकर आपका रस निकाला जाता है और उसे हाथों से जल में मिलाकर भूमि के पृष्ठ भाग पर स्थापित किया जाता है ॥४ ॥

८३९१. एवा त इन्दो सुभ्वं सुपेशसं रसं तुञ्जन्ति प्रथमा अभिश्रियः ।
निदंनिदं पवमान नि तारिष आविस्ते शुष्मो भवतु प्रियो मदः ॥५ ॥

हे सोमदेव ! इस प्रकार मुख्य याजक एकत्रित होकर ज्येष्ठ यज्ञ स्थल में आपका सौन्दर्ययुक्त रस निकालते हैं । हे सोमदेव ! हमारे शत्रुओं का आप संहार करें । आपका आनन्दवर्द्धक, बलवर्द्धक रस प्रकट हो ॥५ ॥

[सूक्त - ८०]

[ऋषि - वसु भारद्वाज । देवता - पवमान सोम । छन्द - जगती]

८३९२. **सोमस्य धारा पवते नृचक्षस ऋतेन देवान्हवते दिवस्परि ।**
बृहस्पते रवथेना वि दिद्युते समुद्रासो न सवनानि विव्यचुः ॥१ ॥

सोमरस की धाराएँ शोधित हो रही हैं । सर्वद्रष्टा सोमदेव, यज्ञ के द्वारा देवगणों को सुखी बनाते हैं । बृहस्पतिदेव की स्तुतियों से वह सोम द्युलोक में सर्वोपरि प्रकाशित होता है । जैसे पृथिवी पर समुद्र व्याप्त है, उसी प्रकार यज्ञ में सोमरस व्याप्त है ॥१ ॥

८३९३. **यं त्वा वाजिन्नघ्न्या अभ्यनूषतायोहतं योनिमा रोहसि द्युमान् ।**
मघोनामायुः प्रतिरन्महि श्रव इन्द्राय सोम पवसे वृषा मदः ॥२ ॥

हे बलवान् सोमदेव ! जब अविनाशी वाणियाँ (स्तोत्रों द्वारा) आपकी स्तुति करती हैं, तब आप सुवर्ण-आभूषणों (सुनहली किरणों) से युक्त हाथों से सुसंस्कारित होकर यज्ञ स्थल पर प्रतिष्ठित होते तथा तेजस्वी होते हैं । हे सोमदेव ! यज्ञ कर्त्ताओं को आयु तथा भरपूर अन्न प्रदान करते हुए आप इन्द्रदेव के आनन्द और बल की वृद्धि करें ॥२ ॥

८३९४. **एन्द्रस्य कुक्षा पवते मदिन्तम ऊर्जं वसानः श्रवसे सुमङ्गलः ।**
प्रत्यङ् स विश्वा भुवनाभि पप्रथे क्रीळन्हरिरत्यः स्यन्दते वृषा ॥३ ॥

यह सोमरस इन्द्रदेव को तृप्त करने के लिए निकाला जाता है । अन्न वृद्धि के लिए, आनन्ददायी बलवृद्धि के लिए यह सोमरस निकाला जाता है । यह सोमरस सभी भुवनों को प्रत्यक्ष रूप से प्रकाशित करते हुए उनका उत्तम कल्याण करता है । यह हरिताभ सोम चपल घोड़े के समान यज्ञस्थल में खेलते हुए बलशाली होकर दूर-दूर तक संव्याप्त होता है ॥३ ॥

८३९५. **तं त्वा देवेभ्यो मधुमत्तमं नरः सहस्रधारं दुहते दश क्षिपः ।**
नृभिः सोम प्रच्युतो ग्रावभिः सुतो विश्वान्देवाँ आ पवस्वा सहस्रजित् ॥४ ॥

हजारों धाराओं वाले अत्यन्त मधुर सोमरस को देवों के निमित्त याजकों की दसों अँगुलियाँ निकालती हैं । हे सोमदेव ! पत्थरों से कूटकर याजकों द्वारा निकाले गए आप, देवों के निमित्त हजारों प्रकार से विजय दिलाने वाला रस प्रदान करें ॥४ ॥

८३९६. **तं त्वा हस्तिनो मधुमन्तमद्रिभिर्दुहन्त्यप्सु वृषभं दश क्षिपः ।**
इन्द्रं सोम मादयन्दैव्यं जनं सिन्धोरिवोर्मिः पवमानो अर्षसि ॥५ ॥

पत्थरों से कूटकर (सोम निचोड़ने के पश्चात्) उत्तम हाथ वाले (याजकों) की दसों अँगुलियाँ बलशाली , मधुर सोमरस को जल में मिश्रित करती हैं । इन्द्रदेव तथा अन्य देवगणों को आनन्दित करने के लिए हे पवित्र एवं बलशाली सोमदेव ! आप सिन्धु (सिन्धु नदी या समुद्र) की लहरों के समान परिशोधित (पवित्र) होकर प्रवाहित हों ॥५ ॥

[सूक्त - ८१]

[**ऋषि** - वसु भारद्वाज। **देवता** - पवमान सोम। **छन्द** - जगती, ५ त्रिष्टुप्।]

८३९७. **प्र सोमस्य पवमानस्योर्मय इन्द्रस्य यन्ति जठरं सुपेशसः।**
दध्ना यदीमुन्नीता यशसा गवां दानाय शूरमुदमन्दिषुः सुताः ॥१॥

शोधित सोमरस की सुन्दर धाराएँ इन्द्रदेव के पेट में प्रवेश कर रही हैं। यह सोमरस जब गौ के दही के साथ मिलाया जाता है, तब वीर इन्द्रदेव को दान देने के लिए उल्लसित करता है ॥१॥

८३९८. **अच्छा हि सोमः कलशाँ असिष्यददत्यो न वोळ्हा रघुवर्तनिर्वृषा।**
अथा देवानामुभयस्य जन्मनो विद्वाँ अश्नोत्यमुत इतश्च यत् ॥२॥

जिस तरह रथ को खींचने वाला घोड़ा द्रुतगति से जाता है, उसी प्रकार यह सोमरस उत्तम विधि से कलशों में स्थापित होता है। यह बलशाली सोम सूर्यादि लोकों को घुमाने में समर्थ है। द्युलोक तथा भूलोक में व्याप्त वह ज्ञानी सोम, देवों को आनन्दित करने वाला है ॥२॥

८३९९. **आ नः सोम पवमानः किरा वस्विन्दो भव मघवा राधसो महः।**
शिक्षा वयोधो वसवे सु चेतुना मा नो गयमारे अस्मत्परा सिचः ॥३॥

हे शोधित सोमदेव ! आप हमें महान् ऐश्वर्य प्रदान करें। हे अन्नदाता सोमदेव ! आप हमारे लिए कल्याणकारी ज्ञानयुक्त धन प्राप्त कराएँ; वह (धन) कभी भी हमसे दूर न हो ॥३॥

८४००. **आ नः पूषा पवमानः सुरातयो मित्रो गच्छन्तु वरुणः सजोषसः।**
बृहस्पतिर्मरुतो वायुरश्विना त्वष्टा सविता सुयमा सरस्वती ॥४॥

पोषणकारी पूषादेव, पवित्र सोम, मित्र, श्रेष्ठ वरुण, ज्ञान-प्रदाता बृहस्पति, मरुत, वायु, अश्विनीकुमार, त्वष्टादेव, सवितादेव, विद्यादायिनी सरस्वती आदि देवशक्तियाँ हमारे पास आएँ ॥४॥

८४०१. **उभे द्यावापृथिवी विश्वमिन्वे अर्यमा देवो अदितिर्विधाता।**
भगो नृशंस उर्व१न्तरिक्षं विश्वे देवाः पवमानं जुषन्त ॥५॥

सर्वव्यापी द्युलोक तथा पृथिवीलोक, अर्यमा देव, प्रकृति देवी, विधाता देव, भग तथा मानवों द्वारा प्रशंसित यह विशाल अन्तरिक्ष आदि सभी देव समुदाय इस सोमरस का पान करें ॥५॥

[सूक्त - ८२]

[**ऋषि** - वसु भारद्वाज। **देवता** - पवमान सोम। **छन्द** - जगती, ५ त्रिष्टुप्।]

८४०२. **असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत्।**
पुनानो वारं पर्येत्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदम् ॥१॥

ओजस्वी, शक्तिवर्द्धक, हरित वर्ण का सोमरस निकाला जा रहा है। वह सोम सम्राट् के सदृश सौन्दर्ययुक्त है। गौ का दुग्ध मिश्रित करने के बाद सोम ध्वनि करता हुआ, पवित्र होकर छलनी से अभिषुत किया जाता है। उसके बाद श्येन पक्षी के सदृश पानी से युक्त पात्र में स्थित होता है ॥१॥

८४०३. कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि ।
अपसेधन्दुरिता सोम मृळय घृतं वसानः परि यासि निर्णिजम् ॥२ ॥

हे सोमदेव ! यज्ञ की इच्छा से जल से युक्त आप छन्ने में शोधित होकर , युद्ध स्थल पर जाने वाले अश्व के सदृश, वेगपूर्वक स्थिर होते हैं । हे सोमदेव ! आप हमें दुष्प्रवृत्तियों से दूर कर सुखी करें ॥२ ॥

८४०४. पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे ।
स्वसार आपो अभि गा उतासरन्त्सं ग्रावभिर्नसते वीते अध्वरे ॥३ ॥

पर्जन्य की वर्षा करने वाले मेघ ही बड़े-बड़े पत्तों वाले सोम के जनक हैं । वह सोम पृथ्वी के नाभि स्थल पर अवस्थित पर्वतों का निवासक है । वह गौ-दुग्ध, जल और स्तुतियों को प्राप्त करता हुआ यज्ञस्थल पर स्थित होता है ॥३ ॥

८४०५. जायेव पत्यावधि शेव मंहसे पज्राया गर्भ शृणुहि ब्रवीमि ते ।
अन्तर्वाणीषु प्र चरा सु जीवसेऽनिन्द्यो वृजने सोम जागृहि ॥४ ॥

जिस प्रकार पति के लिए पत्नी सुखकारी होती है, उसी प्रकार यजमान के लिए सोम सुखकारी है । हे पर्जन्य पुत्र सोमदेव ! स्तुतियों के अन्दर शुभ गुणों के साथ रहने के लिए हम आपसे कहते हैं, उसे सुनें । हे स्तुत्य सोमदेव ! हमारा जीवन सुखी हो, इसके लिए आप हमारे शत्रुओं पर दृष्टि रखें ॥४ ॥

८४०६. यथा पूर्वेभ्यः शतसा अमृध्रः सहस्रसाः पर्यया वाजमिन्दो ।
एवा पवस्व सुविताय नव्यसे तव व्रतमन्वापः सचन्ते ॥५ ॥

हे सोम ! जिस प्रकार ऋषियों ने सैकड़ों प्रकार का धन दिया, उसी प्रकार हिंसारहित होकर हजारों प्रकार का धन हमें प्रदान करें तथा ज्ञान पिपासुओं को सुखदायी रस दें । आपका व्रत यज्ञीय कर्म के अनुरूप पूरा हो ॥५ ॥

[सूक्त - ८३]

[**ऋषि** - पवित्र आङ्गिरस । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - जगती ।]

८४०७. पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत ॥१ ॥

हे मन्त्राधिपति सोमदेव ! आपके पवित्र अंग (अंश) सर्वत्र विद्यमान हैं । आप शक्तिशाली होने के कारण पान करने वालों के देह में स्फूर्ति की वृद्धि करते हैं । तप से हीन शरीर वाले अपरिपक्व (साधक या वनस्पति आदि) वह फल प्राप्त नहीं कर पाते । परिपक्व होने के पश्चात् ही वे उसे प्राप्त करने में समर्थ होते हैं ॥१ ॥

८४०८. तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे शोचन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन् ।
अवन्त्यस्य पवीतारमाशवो दिवस्पृष्ठमधि तिष्ठन्ति चेतसा ॥२ ॥

सोम के पवित्र अंग शत्रुओं को संताप देने के लिए द्युलोक में फैले हैं । इनकी चमकती हुई रश्मियाँ द्युलोक के पृष्ठ भाग पर विशेष रीति से स्थिर हो गई हैं । यह रश्मियाँ याज्ञिकों की रक्षा करती हैं ॥२ ॥

८४०९. अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा बिभर्ति भुवनानि वाजयुः ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः ॥३ ॥

सूर्य रूप में सोम ही स्वप्रकाशित एवं प्रमुख है । वही वर्षा करके पोषक जल-धाराओं से प्राणिमात्र को पोषण प्रदान करने वाला है । वह सोम ही अपनी क्षमता से जगत् का निर्माण करने वाला है । उसकी आज्ञा से देवमानवों ने ओषधियों में गर्भ की स्थापना की ॥३ ॥

८४१०. गन्धर्व इत्था पदमस्य रक्षति पाति देवानां जनिमान्यद्भुतः ।
गृभ्णाति रिपुं निधया निधापतिः सुकृत्तमा मधुनो भक्षमाशत ॥४ ॥

सत्य रूप सूर्यदेव इस सोम को संरक्षण प्रदान करते हैं । यह सोम देवत्वधारियों के जीवन की रक्षा करता है । शत्रु को जाल से बाँधता है । पाशाधिपति श्रेष्ठ कार्य के लिए इस मधुर सोम का पान करते हैं ॥४ ॥

८४११. हविर्हविष्मो महि सद्म दैव्यं नभो वसानः परि यास्यध्वरम् ।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहः सहस्रभृष्टिर्जयसि श्रवो बृहत् ॥५ ॥

जिस प्रकार राजा श्रेष्ठ रथ में बैठकर संग्राम में जाता है और अनेक अस्त्र-शस्त्रों से युद्ध करके बहुत खाद्यान्न जीतकर लाता है, उसी प्रकार हे जलयुक्त सोमदेव ! महान् जलनिधि में रहने वाले पवित्र जल के साथ आप यज्ञशाला में प्रतिष्ठित हों ॥५ ॥

[सूक्त - ८४]

[**ऋषि** - प्रजापति वाच्य । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - जगती ।]

८४१२. पवस्व देवमादनो विचर्षणिरप्सा इन्द्राय वरुणाय वायवे ।
कृधी नो अद्य वरिवः स्वस्तिमदुरुक्षितौ गृणीहि दैव्यं जनम् ॥१ ॥

हे सोमदेव ! आप आनन्ददायी, सर्वद्रष्टा, जल धाराओं को प्रवाहित करने वाला रस प्रदान करें, इन्द्र , वरुण तथा वायु आदि देवों के लिए रस प्रदान करें । आज ही हमारे धन को आप कल्याणकारी बनायें तथा इस विशाल भूमि में देवत्वधारियों को सुखी बनायें ॥१ ॥

८४१३. आ यस्तस्थौ भुवनान्यमर्त्यो विश्वानि सोमः परि तान्यर्षति ।
कृण्वन्त्सञ्चृतं विचृतमभिष्टय इन्दुः सिषक्त्युषसं न सूर्यः ॥२ ॥

जिस प्रकार उषा के साथ सूर्यदेव रहते हैं, उसी प्रकार इष्ट फल प्रदाता सोम यज्ञ में रहता है । जो अविनाशी सोम सभी भुवनों में व्याप्त है, वह देवत्वधारियों के दिव्य संस्कारों को सुदृढ़ करता है तथा कुविचारों को दूर करते हुए, उनमें प्रवेश करता है ॥२ ॥

८४१४. आ यो गोभिः सृज्यत ओषधीष्वा देवानां सुम्न इषयन्नुपावसुः ।
आ विद्युता पवते धारया सुत इन्द्रं सोमो मादयन्दैव्यं जनम् ॥३ ॥

जो सोम गाय के दूध के साथ ओषधियों में मिलाया जाता है और देवजनों की सुख-वृद्धि के लिए निकाला जाता है, देवों को प्राप्त करने की कामना से शत्रुओं को पराजित करके उनका धन प्राप्त कराता है, वह सोम तेजस्वी धारा के रूप में रस प्रदान करते हुए इन्द्र तथा अन्य देवजनों को आनन्दित करता है ॥३ ॥

८४१५. एष स्य सोमः पवते सहस्रजिद्धिन्वानो वाचमिषिरामुषर्बुधम् ।
इन्दुः समुद्रमुदियर्ति वायुभिरेन्द्रस्य हार्दि कलशेषु सीदति ॥४ ॥

रस प्रदान करने वाला यह सोम हजारों प्रकार के धन पर विजय प्राप्त करता हुआ, स्तोताओं को स्तुति करने के लिए प्रेरित करता है । उषःकाल में जाग्रत् होने की, योग्य इच्छा की प्रेरणा देता है । यह सोम वायु के द्वारा रस-प्रवाह को ऊपर जाने की प्रेरणा देते हुए, इन्द्रदेव के लिए कलश में स्थापित होता है ॥४ ॥

८४१६. अभि त्यं गावः पयसा पयोवृधं सोमं श्रीणन्ति मतिभिः स्वर्विदम् ।
धनञ्जयः पवते कृत्व्यो रसो विप्रः कविः काव्येना स्वर्चनाः ॥५ ॥

दूध के साथ मिलकर विस्तार पाने वाले उस सोम को गौएँ (वाणियाँ) ज्ञानवर्द्धक स्तुतियों के साथ अपने दूध में मिश्रित करती हैं । शत्रुओं के धन पर विजय प्राप्त करने वाला सोम स्तोत्रों के गायन से रस प्रदान करता है । यह कर्म-कौशल बढ़ाने वाला मेधावान् ज्ञानी सोम पौष्टिक अन्न से युक्त रस प्रदान करता है ॥५ ॥

[सूक्त - ८५]

[**ऋषि** - वेन भार्गव । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - जगती, ११-१२ त्रिष्टुप् ।]

८४१७. इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवाऽपामीवा भवतु रक्षसा सह ।
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः ॥१ ॥

हे सोमदेव ! आप श्रेष्ठ रीति से अभिषुत होकर इन्द्रदेव के पीने के लिये प्रवाहित हों और रोगरूपी राक्षसों से रहित हों । दो प्रकार का (छल युक्त) व्यवहार करने वाले दुष्टों को सोमरस न प्राप्त हो । इस यज्ञ में यह सोमरस ऐश्वर्य-युक्त बने ॥१ ॥

८४१८. अस्मान्त्समर्ये पवमान चोदय दक्षो देवानामसि हि प्रियो मदः ।
जहि शत्रूँरभ्या भन्दनायतः पिबेन्द्र सोममव नो मृधो जहि ॥२ ॥

हे सोमदेव ! आप हमें युद्ध के लिए प्रेरित करें, हमारे पास आकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें । आप देवों को पूर्ण दक्ष बनाने वाले तथा हर्षित करने वाले हों । स्तुति की कामना वाले हे इन्द्रदेव ! सोमरस का पान करके आप हमारे शत्रुओं को पराजित करें ॥२ ॥

८४१९. अदब्ध इन्दो पवसे मदिन्तम आत्मेन्द्रस्य भवसि धासिरुत्तमः ।
अभि स्वरन्ति बहवो मनीषिणो राजानमस्य भुवनस्य निंसते ॥३ ॥

हे सोम ! आप हिंसारहित तथा आनन्ददायक रस प्रदान करें । आप सर्वोत्तम धारक तथा इन्द्रदेव के प्रिय अन्तरंग हैं । इन भुवनों के राजा सोम की ज्ञानीजन स्तुति करते हैं तथा अति घनिष्ठ के समान उसे प्राप्त करते हैं ॥३ ॥

८४२०. सहस्रणीथः शतधारो अद्भुत इन्द्रायेन्दुः पवते काम्यं मधु ।
जयन्क्षेत्रमभ्यर्षा जयन्नप उरुं नो गातुं कृणु सोम मीढ्वः ॥४ ॥

सैकड़ों धाराओं से स्रवित होने वाला, हजारों प्रकार से लाया गया अद्‌भुत सोम इन्द्रदेव के निमित्त, उनके द्वारा चाहा गया रस प्रदान करता है । हे सोमदेव ! रणक्षेत्र को जीतकर आगे बढ़ते हुए मेघवत् सुखों की वर्षा करते हुए तथा प्रजा को अपने अनुशासन में रखते हुए हमारे लिए उन्नतिशील मार्ग बनायें ॥४ ॥

८४२१. कनिक्रदत्कलशे गोभिरज्यसे व्य१व्ययं समया वारमर्षसि ।
मर्मृज्यमानो अत्यो न सानसिरिन्द्रस्य सोम जठरे समक्षरः ॥५ ॥

हे सोमदेव ! आप गाय के दूध के साथ मिश्रित होकर शब्दनाद करते हुए ऊन की बनी छलनी में से कलश में स्थापित होते हैं । चपल घोड़े के समान परिष्कृत होकर सेवन के योग्य बनकर आप इन्द्रदेव को तृप्त करें ॥५ ॥

८४२२. **स्वादुः पवस्व दिव्याय जन्मने स्वादुरिन्द्राय सुहवीतुनाम्ने ।**
स्वादुर्मित्राय वरुणाय वायवे बृहस्पतये मधुमाँ अदाभ्यः ॥६ ॥

हे सोम ! आप दिव्यता प्राप्त करने वाले देवों के निमित्त अपना मधुर रस प्रदान करें । पुण्यशील इन्द्र के निमित्त सुस्वादु रस दें । मित्र, वरुण, वायु तथा बृहस्पति आदि के लिए अमृत के समान मधुर रस प्रदान करें ॥६ ॥

८४२३. **अत्यं मृजन्ति कलशे दश क्षिपः प्र विप्राणां मतयो वाच ईरते ।**
पवमाना अभ्यर्षन्ति सुष्टुतिमेन्द्रं विशन्ति मदिरास इन्दवः ॥७ ॥

इस सोम को कलश में सबसे ऊपर रखकर दस अँगुलियाँ शोधित करती हैं । इस समय स्तोतागण स्तुतियाँ करते हैं । इन स्तुतियों को पवित्र सोमरस सुनता है । यह आनन्दप्रदायक सोमरस इन्द्रदेव को प्राप्त होता है ॥७ ॥

८४२४. **पवमानो अभ्यर्षा सुवीर्यमुर्वीं गव्यूतिं महि शर्म सप्रथः ।**
माकिर्नो अस्य परिषूतिरीशतेन्दो जयेम त्वया धनंधनम् ॥८ ॥

हे पवित्र सोमदेव ! आप हमें श्रेष्ठ पराक्रम युक्त महान् सुख प्रदान करने वाला सुविस्तृत मार्ग दिखाएँ । हे सोमदेव ! आपके सान्निध्य में हम हर प्रकार का धन प्राप्त करें । इसे कोई हिंसाकारी अपने अधिकार में न ले ॥८ ॥

८४२५. **अधि द्यामस्थाद्वृषभो विचक्षणोऽरूरुचद्वि दिवो रोचना कविः ।**
राजा पवित्रमत्येति रोरुवद्दिवः पीयूषं दुहते नृचक्षसः ॥९ ॥

यह बलवान्, सर्वद्रष्टा, ज्ञानी सोम द्युलोक में रहकर अपने तेज को विशेष रूप से प्रकाशित करता है एवं अमृत के समान रस प्रदान करता है । छलनी में शोधित होते समय शब्द करता हुआ पात्र में एकत्रित होता है ॥९ ॥

८४२६. **दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतो वेना दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।**
अप्सु द्रप्सं वावृधानं समुद्र आ सिन्धोरूर्मा मधुमन्तं पवित्र आ ॥१० ॥

सुखमय वातावरण में रहनेवाले, मधुरभाषी ऋषिगण पृथक्-पृथक् पर्वतों पर रहने वाले, जल से वृद्धि पाने वाले, रस रूप में विद्यमान मधुर सोमरस को सिन्धु की लहरों (जल) में मिश्रित करके पवित्र बनाते हैं ॥१० ॥

८४२७. **नाके सुपर्णमुपपप्तिवांसं गिरो वेनानामकृपन्त पूर्वीः ।**
शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं हिरण्ययं शकुनं क्षामणि स्थाम् ॥११ ॥

द्युलोक में उत्पन्न सोम की आदिकाल से ज्ञानीजन स्तुतियाँ करते रहे हैं । सुवर्ण जैसा तेजस्वी, शक्तिमान् , शब्द करने वाला , बालक के समान संस्कार के योग्य, सोम यज्ञस्थल में स्थापित होकर स्तुतियाँ प्राप्त करता है ॥११ ॥

८४२८. **ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थाद्विश्वा रूपा प्रतिचक्षाणो अस्य ।**
भानुः शुक्रेण शोचिषा व्यद्यौत्प्रारूरुचद्रोदसी मातरा शुचिः ॥१२ ॥

सूर्य किरणों को धारण करने वाला सोम स्वर्ग के ऊपर ऊँचे स्थान में रहकर सूर्यदेव के अनेक रूपों को देखता है । तेजस्वी प्रकाश से सूर्यदेव चमकते हैं । माता की भाँति द्युलोक तथा पृथिवी लोक को तेजस्वी सूर्यदेव प्रकाशित करते हैं ॥१२ ॥

[सूक्त - ८६]

[**ऋषि** - १-१० अकृष्टामाष ऋषिगण, ११-२० सिकतानिवावरी ऋषिगण, २१-३० पृश्नि-अजा ऋषिगण, ३१-४० अकृष्टमाषादि तीनों ऋषिगण, ४१-४५ अत्रिभौम, ४६-४८ गृत्समद भार्गव शौनक । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - जगती ।]

८४२९. प्र त आशवः पवमान धीजवो मदा अर्षन्ति रघुजा इव त्मना ।
दिव्याः सुपर्णा मधुमन्त इन्दवो मदिन्तमासः परि कोशमासते ॥१ ॥

हे सोमदेव ! द्रुतगामी घोड़े के समान आपका आनन्ददायी रस व्यापक मन के वेग से प्रवाहित हो रहा है । तेज एवं ज्ञान से युक्त यह मधुर सोमरस हर्षित करते हुए कलश में स्थापित होता है ॥१ ॥

८४३०. प्र ते मदासो मदिरास आशवोऽसृक्षत रथ्यासो यथा पृथक् ।
धेनुर्न वत्सं पयसाभि वज्रिणमिन्द्रमिन्दवो मधुमन्त ऊर्मयः ॥२ ॥

गतिमान् रथ के घोड़े की भाँति आपका आनन्ददायी रस स्वतंत्र रूप से प्रवाहित हो रहा है । जिस तरह गौएँ अपने बछड़ों को तृप्त करती हैं, उसी प्रकार मधुर धाराओं में प्रवाहित होने वाला सोमरस वज्रधारी इन्द्रदेव को तृप्त करता है ॥२ ॥

८४३१. अत्यो न हियानो अभि वाजमर्ष स्वर्वित्कोशं दिवो अद्रिमातरम् ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्यये सोमः पुनान इन्द्रियाय धायसे ॥३ ॥

जिस तरह घोड़ा प्रेरणा पाकर युद्ध में जाता है, उसी प्रकार सर्वज्ञ सोम द्युलोक से मेघों द्वारा जल संचार की भाँति कोशों (पात्र या जीवकोशों) में प्रतिष्ठित हो । हे बलशाली सोमदेव ! अनश्वर पवित्र (छलनी) से शोधित होकर आप धारणकर्त्ता इन्द्रदेव के निमित्त तैयार हों ॥३ ॥

[आचार्यों द्वारा अव्यय पवित्र- का अर्थ कर्मकाण्ड की दृष्टि से ऊन की छलनी किया गया है; किन्तु इसका भाव सोम के शोधन की प्रकृतिगत व्यवस्था से भी सिद्ध होता है ।]

८४३२. प्र त आश्विनीः पवमान धीजुवो दिव्या असृग्रन्पयसा धरीमणि ।
प्रान्तर्ऋषयः स्थाविरीरसृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः ॥४ ॥

हे पवित्र सोमदेव ! दिव्य रस से परिपूर्ण आपकी धाराएँ वाणी के प्रवाह के साथ कलश में पहुँचती हैं । संस्कारित करने वाले विद्वान् ऋषि आपको ऊपर के पात्र से नीचे के पात्र में डालते हैं ॥४ ॥

[ऋषि का भावार्थ उत्कृष्ट प्राण - प्रवाह लेने से, प्रकृतिगत ऋषिगण (प्राण-प्रवाह) सोम को ऊर्ध्व लोकों से भूमण्डल में प्रविष्ट कराते हैं, ऐसा भावार्थ निकलता है ।]

८४३३. विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोस्ते सतः परि यन्ति केतवः ।
व्यानशिः पवसे सोम धर्मभिः पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥५ ॥

हे सर्वदर्शी, व्यापक स्वभाव वाले सोमदेव ! आपकी दीर्घ रश्मियों का प्रभाव सर्वत्र फैला हुआ है, अपने स्वाभाविक धर्म से शुद्ध होने वाले आप अखिल विश्व के स्वामी के रूप में सुशोभित हो रहे हैं ॥५ ॥

८४३४. उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः ।
यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योना कलशेषु सीदति ॥६ ।

पवित्रता को प्राप्त हुआ संस्कारित हरिताभ सोम पात्रों में स्थिर होता है । उसकी सुवास चतुर्दिक् फैलती एवं पवित्रता का संचार करती है ॥६ ॥

८४३५. यज्ञस्य केतुः पवते स्वध्वरः सोमो देवानामुप याति निष्कृतम् ।
सहस्रधारः परि कोशमर्षति वृषा पवित्रमत्येति रोरुवत् ॥७ ॥

यज्ञ चक्र को प्रकाशित करने वाला, उत्तम याज्ञिक सोम देवस्थल पर पहुँचकर रस प्रदान करता है । रस प्रदान करने वाला यह सोमरस शब्द नाद करता हुआ हजारों धाराओं से शोधन प्रणाली को पार करके निर्धारित कोशों (पात्रों) में स्थापित होता है ॥७ ॥

८४३६. राजा समुद्रं नद्यो३ वि गाहतेऽपामूर्मिं सचते सिन्धुषु श्रितः ।
अध्यस्थात्सानु पवमानो अव्ययं नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवः ॥८ ॥

अन्तरिक्ष के जल में मिश्रित होकर यह राजा सोम जल के प्रवाह में सम्मिलित होते हुए समुद्र के जल में मिश्रित होता है । महान् द्युलोक को धारण करने वाला यह सोमरस अनश्वर शोधक उपकरण में छनकर पवित्र होता है ॥८ ॥

८४३७. दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदद् द्यौश्च यस्य पृथिवी च धर्मभिः ।
इन्द्रस्य सख्यं पवते विवेविदत्सोमः पुनानः कलशेषु सीदति ॥९ ॥

द्युलोक के सर्वोच्च स्थान की आकांक्षा करता हुआ, यह सोम इन्द्रदेव की मित्रता चाहते हुए शब्दनाद करता है । जिसकी धारण शक्ति से द्युलोक और पृथिवीलोक धारण किए गये हैं, ऐसा सोमरस शोधित होकर कलश में विराजता है ॥९ ॥

८४३८. ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः ।
दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥१० ॥

यज्ञों के प्रकाशक, देवताओं के लिए प्रिय, मधुर रस प्रदायक, पोषक, जनक, वैभवशाली, आनन्दवर्द्धक, उत्साहवर्द्धक, इन्द्रदेव को प्रिय लगने वाले हे सोमदेव ! आप अन्तरिक्ष और भूलोक के गुप्त वैभव को यजमानों के लिए प्रदान करते हैं ॥१० ॥

[यहाँ सोम का सम्बोधन ब्राह्मी चेतना से उद्भूत उन सूक्ष्मतम कणों से है, जिससे सभी पदार्थों के परमाणुओं की संरचना होती है । वही सृष्टि के गुप्त वैभव को प्रकट करने का माध्यम बनता है ।]

८४३९. अभिक्रन्दन्कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः ।
हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥११ ॥

दिव्यलोक के अधिपति सैकड़ों विधियों (धाराओं) द्वारा शोधित, बुद्धिवर्द्धक और बलशाली हरिताभ सोमरस ध्वनियुक्त होकर कलश में स्थापित है । जल मिश्रित होकर शोधन यन्त्र से शोधित हे शौर्यवान् सोमदेव ! आप अभीष्ट पूर्ति हेतु मित्र के समान यज्ञ के पात्र में प्रतिष्ठित होते हैं ॥११ ॥

८४४०. अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षत्यग्रे वाचो अग्रियो गोषु गच्छति ।
अग्रे वाजस्य भजते महाधनं स्वायुधः सोतृभिः पूयते वृषा ॥१२ ॥

हे सोमदेव ! जल मिश्रित होने से पूर्व शोधित होने के लिए और स्तुतियों को प्राप्त करने के लिए

आप पूज्यभाव से आमन्त्रित किये जाते हैं । श्रेष्ठ आयुधों से युक्त होकर शौर्य हेतु गौओं का संरक्षण प्रदान करते हुए आप प्रवाहित होते हैं और प्रचुर वैभव प्रदान करते हैं । हे सोमदेव ! आप याजकों द्वारा शोधित किये जाते हैं ॥१२ ॥

८४४१. अयं मतवाञ्छकुनो यथा हितोऽव्ये ससार पवमान ऊर्मिणा ।
तव क्रत्वा रोदसी अन्तरा कवे शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ॥१३ ॥

स्तोत्रों से स्तुत्य यह सोम यज्ञ स्थल में प्रतिष्ठित है । जिस प्रकार शकुन (पक्षी) द्रुतगामी होते हैं, उसी प्रकार हे सोमदेव ! अनश्वर शोधक यंत्र में से धारा रूप में आप नीचे पात्र में आएँ । हे इन्द्रदेव ! आपके सुकर्मों से ही द्युलोक और पृथिवी लोक के मध्य यह पवित्र सोम स्तुतियों के साथ शोधित होता है ॥१३ ॥

[प्रकृति की हितकारी प्रक्रिया को मंत्रशक्ति द्वारा संवर्द्धित करना सम्भव है, यह मन्त्र में दर्शाया गया है ।]

८४४२. द्रापिं वसानो यजतो दिविस्पृशमन्तरिक्षप्रा भुवनेष्वर्पितः ।
स्वर्जज्ञानो नभसाभ्यक्रमीत्प्रत्नमस्य पितरमा विवासति ॥१४ ॥

यह पूज्य सोम द्युलोक को स्पर्श करने वाले रक्षा कवच को धारण करता है तथा अपने प्रकाश से अन्तरिक्ष को पूर्ण रूप से भर देता है । स्वर्ग तुल्य सुख उत्पन्न करने वाला यह सोम आकाश मार्ग से जल के साथ संचरित होकर (यज्ञ स्थल या भूमण्डल में) आता है । इस प्रकार यह अपने पुरातन पितर (इन्द्र, परब्रह्म अथवा यज्ञ) की परिचर्या - सेवा करता है ॥१४ ॥

८४४३. सो अस्य विशे महि शर्म यच्छति यो अस्य धाम प्रथमं व्यानशे ।
पदं यदस्य परमे व्योमन्यतो विश्वा अभि सं याति संयतः ॥१५ ॥

जो सोम इन्द्रदेव की देह (उदर) में सर्वप्रथम प्रविष्ट होता है, वह उन्हें तृप्त करते हुए महान् सुख प्रदान करता है । द्युलोक में इस सोम का यह परम पवित्र स्थान है । इस सोम से तृप्त होकर इन्द्रदेव सभी संग्रामों में जाते हैं ॥१५ ॥

८४४४. प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम् ।
मर्यइव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयाम्ना पथा ॥१६ ॥

मित्र की तरह यह सोम इन्द्रदेव के पेट में पहुँचकर उन्हें कोई पीड़ा नहीं देता । जिस प्रकार युवा पुरुष स्त्रियों के साथ घुलमिलकर रहता है, उसी प्रकार यह सोम पानी के साथ मिलकर शोधक यंत्र के सैकड़ों छिद्रों से निकलकर कलश में प्रविष्ट होता है ॥१६ ॥

८४४५. प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवसनेष्वक्रमुः ।
सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेमशिश्रयुः ॥१७ ॥

हे सोमदेव ! आपका ध्यान करने वाले, आनन्दपूर्वक स्तुति करने के अभिलाषी, याजक जब यज्ञस्थल में यज्ञ करने लगते हैं, तब मननशील स्तोतागण तरंगित होकर आपकी स्तुतियाँ करते हैं, उस समय धेनुएँ (गौएँ अथवा धारक किरणें) पय (दुग्ध या जल) के साथ आपको संयुक्त करती हैं ॥१७ ॥

८४४६. आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व पवमानो अस्रिधम् ।
या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम् ॥१८ ॥

हे पवित्र होने वाले तेजोमय सोमदेव ! दिन के तीनों सवनों में प्रयुक्त जो अन्न , प्रशंसित, बलवर्द्धक , मधुर तथा उत्तम पुत्र प्रदान करने वाला है, हमारे उस पोषक अन्न को आप अपनी तरंगों से शुद्ध करें ॥१८ ॥

८४४७. वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नः प्रतरीतोषसो दिवः ।
क्राणा सिन्धूनां कलशाँ अवीवशदिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः ॥१९ ॥

स्तोताओं की कामना को पूर्ण करने वाला, द्रष्टा, दिन, उषा और आदित्य का शक्ति संवर्द्धक -- यह सोम छाना जाता है । नदियों के प्राण स्वरूप पानी में मिलाकर मनीषी उद्‌गाताओं द्वारा निष्पन्न यह सोमरस इन्द्रदेव के पेट में प्रवेश करने की इच्छा से पात्र में स्थित होता है ॥१९ ॥

८४४८. मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशाँ अचिक्रदत् ।
त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षरदिन्द्रस्य वायोः सख्याय कर्तवे ॥२० ॥

सर्वज्ञ शोधित सोम याजकों द्वारा कलश में एकत्रित किया जाता है । त्रैलोक्य पूजित इन्द्रदेव की ख्याति बढ़ाता हुआ यह मधुर सोम, उनको तृप्त करने के लिये, वायु के साथ कोशों (पात्रों) में ध्वनि करता हुआ स्रवित होता है ॥२० ॥

८४४९. अयं पुनान उषसो वि रोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत् ।
अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥२१ ॥

जनहितकारी यह पवित्र सोम (अपने दिव्य रूप में) उषा को प्रकाशित करता है, (अपने प्राकृतिक रूप में) नदियों को बढ़ाने वाला है और (अपने जीवगत रूप में) हृदयस्थ होने के लिये इक्कीस घटकों (१० प्राण + १० इन्द्रियाँ + १ मन = कुल २१) को पुष्ट करता हुआ प्रवाहित होता है ॥२१ ॥

८४५०. पवस्व सोम दिव्येषु धामसु सृजान इन्दो कलशे पवित्र आ ।
सीदन्निन्द्रस्य जठरे कनिक्रदन्नृभिर्यतः सूर्यमारोहयो दिवि ॥२२ ॥

हे सर्व प्रकाशक सोमदेव ! यज्ञ स्थल में आप अपना दिव्य रस प्रवाहित करें । कलश में रखा हुआ यह पवित्र सोम इन्द्रदेव के पेट में ध्वनि करता हुआ जाता है । याजकों द्वारा यज्ञ में प्रतिष्ठित इस सोम को , द्युलोक में सूर्यदेव को अर्पित किया जाता है ॥२२ ॥

८४५१. अद्रिभिः सुतः पवसे पवित्र आँ इन्दविन्द्रस्य जठरेष्वाविशन् ।
त्वं नृचक्षा अभवो विचक्षण सोम गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरप ॥२३ ॥

पत्थरों से कूटकर निकाला गया शोधित पवित्र सोमरस इन्द्रदेव के उदर में प्रविष्ट होता है । हे सोमदेव ! आप सर्वद्रष्टा हैं, आप दिव्य द्रष्टा हैं । अंगिराओं (याजकों - अंगधारियों- जीवों) के लिए गो (इन्द्रियों) रक्षक रस आप अपने पास रखते हैं ॥२३ ॥

८४५२. त्वां सोम पवमानं स्वाध्योऽनु विप्रासो अमदन्नवस्यवः ।
त्वां सुपर्ण आभरद्दिवस्परीन्दो विश्वाभिर्मतिभिः परिष्कृतम् ॥२४ ॥

हे सोमदेव ! स्वाध्यायी ब्राह्मण अपने संरक्षण की कामना से आपके द्वारा निकाले गये पवित्र सोमरस की स्तुति करते हैं । हे स्तुतियों द्वारा प्रशंसित सोमदेव ! आपको द्युलोक के ऊपर सुपर्ण (पक्षी या श्रेष्ठ पालनकर्त्ता) लेकर आया है ॥२४ ॥

८४५३. अव्ये पुनानं परि वार ऊर्मिणा हरिं नवन्ते अभि सप्त धेनवः ।
अपामुपस्थे अध्यायवः कविमृतस्य योना महिषा अहेषत ॥२५ ॥

ऊन की छलनी के द्वारा शोधित हरिताभ सोमरस को सात धेनुएँ (धारक प्रवाह या नदियाँ) प्राप्त करती हैं । जल में विद्यमान ज्ञानवर्द्धक सोम को मनीषीगण यज्ञस्थल में जाने के लिए प्रेरित करते हैं ॥२५ ॥

८४५४. इन्दुः पुनानो अति गाहते मृधो विश्वानि कृण्वन्त्सुपथानि यज्यवे ।
गाः कृण्वानो निर्णिजं हर्यतः कविरत्यो न क्रीळन्परि वारमर्षति ॥२६ ॥

यह सोमरस शोधित होते हुए विनाशक प्रवृत्तियों को पार करते हुए जाता है तथा याज्ञिकों के लिए श्रेष्ठ मार्ग विनिर्मित करता है । अपना स्वरूप गौओं के समान पवित्र बनाकर सुशोभित होता है । कान्तिमान् ज्ञानी सोम घोड़े के समान क्रीड़ा करता हुआ वरण योग्य स्थानों पर प्रतिष्ठित होता है ॥२६ ॥

८४५५. असश्चतः शतधारा अभिश्रियो हरिं नवन्तेऽव ता उदन्युवः ।
क्षिपो मृजन्ति परि गोभिरावृतं तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः ॥२७ ॥

सैकड़ों धाराओं से नि:सृत हरिताभ सोम के चारों ओर रहने वाली सूर्यदेव की किरणें परस्पर साथ रहती हैं । दिव्य वाणियों (मंत्रों) से आवृत होकर यह क्षिप्त किरणें (अथवा प्रेरणाएँ) इस सोमरस को शुद्ध करती हैं । यह सोम द्युलोक के तीसरे स्थान (सर्वोच्च पद) पर प्रतिष्ठित होता है ॥२७ ॥

८४५६. तवेमाः प्रजा दिव्यस्य रेतसस्त्वं विश्वस्य भुवनस्य राजसि ।
अथेदं विश्वं पवमान ते वशे त्वमिन्दो प्रथमो धामधा असि ॥२८ ॥

हे सोमदेव ! यह समूचा विश्व आपके अधीन है । आप ही सभी भुवनों के स्वामी हैं । आपकी ही दिव्य शक्ति से सभी प्रजाएँ उत्पन्न हुई हैं । हे सोमदेव ! आप सबसे पहले विश्व को धारण करने वाले हैं ॥२८ ॥

८४५७. त्वं समुद्रो असि विश्ववित्कवे तवेमाः पञ्च प्रदिशो विधर्मणि ।
त्वं द्यां च पृथिवीं चाति जभ्रिषे तव ज्योतींषि पवमान सूर्यः ॥२९ ॥

हे ज्ञानी सोमदेव ! आप जलमय हैं, सर्वज्ञ हैं, आप द्युलोक और पृथिवी लोक को धारण करते हैं । आपकी धारणशक्ति से ही ये पाँचों दिशाएँ विद्यमान हैं । हे सोमदेव ! सूर्यदेव आपके तेज को बढ़ाते हैं ॥२९ ॥

८४५८. त्वं पवित्रे रजसो विधर्मणि देवेभ्यः सोम पवमान पूयसे ।
त्वामुशिजः प्रथमा अगृभ्णत तुभ्येमा विश्वा भुवनानि येमिरे ॥३० ॥

हे शोधित सोमदेव ! रस धारण करने वाली छलनी से देवों के निमित्त आपको पवित्र बनाया जाता है । आपकी इच्छा करने वाले मुख्य याजक आपको (आनन्द प्राप्त करने के लिए) ग्रहण करते हैं । ये सभी भुवन आपके बल से बँधे हुए हैं ॥३० ॥

८४५९. प्र रेभ एत्यति वारमव्ययं वृषा वनेष्वव चक्रदद्धरिः ।
सं धीतयो वावशाना अनूषत शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतम् ॥३१ ॥

बलशाली हरिताभ सोम ध्वनि करता हुआ जल में व्याप्त होता है तथा ऊन की छलनी से शोधित किया जाता है । शोधित करने वाले याजकगण इस सोम की उत्तम विधि से स्तुति करते हैं ॥३१ ॥

८४६०. स सूर्यस्य रश्मिभिः परि व्यत तन्तुं तन्वानस्त्रिवृतं यथा विदे ।
नयन्नृतस्य प्रशिषो नवीयसीः पतिर्जनीनामुप याति निष्कृतम् ॥३२ ॥

सोम सूर्य की रश्मियों को आत्मसात् करके तीन सवनों (प्रातः, मध्याह्न, सायं) से युक्त यज्ञ का विस्तार करता है तथा (याजकों की) यज्ञ में की गई नवीन श्रेष्ठ इच्छाओं को यथा रीति पूर्ण करता है । यह सोमरस जननियों (नारियों अथवा उत्पादक क्षमताओं) का स्वामी है । यह सोम सर्वश्रेष्ठ पद पर प्रतिष्ठित होता है ॥३२ ॥

८४६१. राजा सिन्धूनां पवते पतिर्दिव ऋतस्य याति पथिभिः कनिक्रदत् ।
सहस्रधारः परि षिच्यते हरिः पुनानो वाचं जनयन्नुपावसुः ॥३३ ॥

द्युलोक का स्वामी तथा जल का स्वामी हरिताभ सोम हजारों धाराओं से ध्वनि करता हुआ यज्ञ मार्ग से पात्रों में प्रतिष्ठित होता है । यज्ञ के पास रहने की कामना वाला यह सोम स्तुतियों का निर्माण करता है ॥३३ ॥

८४६२. पवमान मह्यर्णो वि धावसि सूरो न चित्रो अव्ययानि पव्यया ।
गभस्तिपूतो नृभिरद्रिभिः सुतो महे वाजाय धन्याय धन्वसि ॥३४ ॥

हे सोमदेव ! आप जलनिधि के पास जाते हैं । सूर्यदेव की भाँति पूज्य होकर आप ऊन की बनी छलनी से पात्रों में प्रतिष्ठित होते हैं । पत्थरों से कूटकर याजकों के द्वारा निकाला गया यह सोमरस धन प्राप्ति के निमित्त बड़े युद्धों में जाता है ॥३४ ॥

८४६३. इषमूर्जं पवमानाभ्यर्षसि श्येनो न वंसु कलशेषु सीदसि ।
इन्द्राय मद्वा मद्यो मदः सुतो दिवो विष्टम्भ उपमो विचक्षणः ॥३५ ॥

हे सोमदेव ! आप अन्न और बल की वृद्धि करने वाले हैं । जिस प्रकार श्येन पक्षी अपने निवास में आकर रहता है, उसी प्रकार आप कलशों में रहते हैं । द्युलोक को धारण करने वाला यह सोम उदाहरण देने योग्य सर्व द्रष्टा है । यह सोमरस इन्द्रदेव के लिए आनन्द प्रदायक तथा उत्साहवर्धक है ॥३५ ॥

८४६४. सप्त स्वसारो अभि मातरः शिशुं नवं जज्ञानं जेन्यं विपश्चितम् ।
अपां गन्धर्वं दिव्यं नृचक्षसं सोमं विश्वस्य भुवनस्य राजसे ॥३६ ॥

माता तथा बहिनों के समान उपकार करने वाली सात नदियों का जल निकाले गए ज्ञानी सोमरस में मिलाने के लिए लाया जाता है । समस्त भुवनों पर राज्य करने की कामना से देव-मानवों के द्रष्टा, जल मिश्रित सोम को सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित करते हैं ॥३६ ॥

८४६५. ईशान इमा भुवनानि वीयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः ।
तास्ते क्षरन्तु मधुमद्घृतं पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥३७ ॥

हरे वर्ण के तीव्रगामी अश्वों (किरणों) से सभी लोकों में संव्याप्त, जगत् के स्वामी, हे तेजस्वी सूर्यरूप सोमदेव ! मधुर स्निग्ध जलधाराओं में आपका रस (शक्ति) स्थिर रहे । हे दिव्य सोमदेव ! आपकी प्रेरणा से याजक गण सत्कर्म में निरत रहें ॥३७ ॥

८४६६. त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि ।
स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ॥३८ ॥

हे शक्तिवर्द्धक पवित्र सोमदेव ! आप सभी में व्याप्त, साक्षी रूप, आप संस्कारित होते हुए हमारे पास पधारें । आपके अनुग्रह से हम सभी धन-सम्पदा से सम्पन्न होकर सुखी जीवन जियें ॥३८ ॥

८४६७. **गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः ।**
त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा विप्रा उप गिरेम आसते ॥३९ ॥

स्वर्ण - सम्पदा से युक्त, पराक्रम बढ़ाने वाले, सभी भुवनों में व्याप्त गो दुग्ध मिश्रित हे सोमदेव ! आप पवित्र हैं । आप सर्वज्ञ, शूरवीर एवं श्रेष्ठ पथ पर ले जाने वाले हैं । सभी ऋत्विज् (साधक) आपकी प्रार्थना करते हैं ॥३९ ॥

८४६८. **उन्मध्व ऊर्मिर्वनना अतिष्ठिपदपो वसानो महिषो वि गाहते ।**
राजा पवित्ररथो वाजमारुहत्सहस्रभृष्टिर्जयति श्रवो बृहत् ॥४० ॥

जल मिश्रित महान् सोमरस जब कलश में जाता है, तब उसकी मधुर धाराएँ तथा स्तुतियाँ ऊपर उठती (सुनाई देती) हैं । उत्तम रथवाला यह राजा (सोम) जब युद्ध में जाता है, तब हजारों प्रकार का अन्न जीत (अपने अधिकार में कर) लेता है ॥४० ॥

८४६९. **स भन्दना उदियर्ति प्रजावतीर्विश्वायुर्विश्वाः सुभरा अहर्दिवि ।**
ब्रह्म प्रजावद्रयिमश्वपस्त्यं पीत इन्दविन्द्रमस्मभ्यं याचतात् ॥४१ ॥

वह सोम सभी मनुष्यों का स्वामी, उत्तम प्रजा तथा सुख प्रदान करने वाला है, इसे (सोम को) स्तुतियाँ दिन और रात प्रेरित करती हैं । हे सोमदेव ! इन्द्रदेव के द्वारा पान किये जाने पर आप हमारे लिए प्रजायुक्त, धनयुक्त तथा गृहादि से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करें ॥४१ ॥

८४७०. **सो अग्रे अह्नां हरिर्हर्यतो मदः प्र चेतसा चेतयते अनु द्युभिः ।**
द्वा जना यातयन्नन्तरीयते नरा च शंसं दैव्यं च धर्तरि ॥४२ ॥

यह सोम ब्राह्ममुहूर्त में स्तोताओं की स्तुतियों से उत्कृष्ट रूप में जाना जाता है । यह हर्षप्रदायक, प्रिय हरिताभ सोम दो जनों (दाता एवं धारणकर्त्ता) को प्रयत्नरत करता है तथा द्युलोक और पृथिवीलोक के मध्य स्थापित होता है । मनुष्यों तथा देवताओं द्वारा प्रशंसित दिव्य धन, धारणकर्त्ता (सत्पात्रों) को हस्तगत कराता है ॥४२ ॥

८४७१. **अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते ।**
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृभ्णते ॥४३ ॥

स्तोता, सोमरस को गौ के दुग्ध में विशेष ढंग से भली प्रकार मिलाते हैं, जिसका स्वाद देवगण लेते हैं । उस सोम में गोघृत तथा शहद मिश्रित करते हैं । इसके बाद नदी के जल में स्थित सोम को स्वर्ण से शुद्ध करके तेजस्वी रूप प्रदान करते हैं ॥४३ ॥

८४७२. **विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्यन्धो अर्षति ।**
अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो न क्रीळन्नसरद्वृषा हरिः ॥४४ ॥

हे ऋत्विजो ! श्रेष्ठ विचारशील और शुद्ध सोम की स्तुति करो, यह सोम महाधारा के समान वेग से अन्न (पोषण) प्रदान करता है । सर्पतुल्य वह अपनी पुरानी त्वचा (छाल) का त्याग करता है । शक्तिमान् और हरित वर्ण का सोमरस घोड़े की तरह खेल करता हुआ कलश- पात्र में स्थापित होता है ॥४४ ॥

८४७३. **अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः ।**
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ॥४५ ॥

प्रगतिशील राजा सोम जल में मिश्रित होता हुआ प्रशंसित होता है । वह दिवस का मापक (निर्माण करने वाला) सोम जल में स्थापित है । हरित वर्ण का, जल मिश्रित, सुन्दर दर्शनीय और जल में निवास करने वाला, ज्योति स्वरूप रथ वाला सोम धनागार स्वरूप है ॥४५ ॥

८४७४. **असर्जि स्कम्भो दिव उद्यतो मदः परि त्रिधातुर्भुवनान्यर्षति ।**
अंशुं रिहन्ति मतयः पनिप्रतं गिरा यदि निर्णिजमृग्मिणो ययुः ॥४६ ॥

द्युलोक के आधार स्तंभ , पराक्रमी सोम का रस निकालते हैं । तीन कलशों (तीनों लोकों) में यह सोम व्याप्त रहता है । ध्वनि करने वाले सोम की ज्ञानी स्तोता स्तुति करते हैं । याजकगण स्तुतियों के द्वारा तेजस्वी सोम को प्राप्त करते हैं ॥४६ ॥

८४७५. **प्र ते धारा अत्यण्वानि मेष्यः पुनानस्य संयतो यन्ति रंहयः ।**
यद् गोभिरिन्दो चम्वोः समज्यस आ सुवानः सोम कलशेषु सीदसि ॥४७ ॥

हे शोधित सोम ! ध्वनि करने वाली आपकी संयुक्त धाराएँ ऊन की छलनी से परिष्कृत होकर स्रवित हो रही हैं । हे सोम ! जब जल के साथ आपको पात्र में मिश्रित करते हैं, उस समय आप कलशों में प्रतिष्ठित होते हैं ॥४७ ॥

८४७६. **पवस्व सोम क्रतुविन्न उक्थ्योऽव्यो वारे परि धाव मधु प्रियम् ।**
जहि विश्वान् रक्षस इन्दो अत्रिणो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥४८ ॥

सभी कर्मों के ज्ञाता, प्रशंसनीय हे सोमदेव ! आप हमारे यज्ञ के लिए रस प्रदान करें । आनन्दवर्द्धक रस प्रदान करने के लिए अनश्वर शोधक यन्त्र से शीघ्र ही स्रवित हों । हे सोमदेव ! आप दूसरे के अधिकारों का हनन करने वालों का संहार करें । उत्तम वीरों से युक्त होकर हम यज्ञ में स्तुतियों के द्वारा आपका गुणगान करेंगे ॥४८ ॥

[सूक्त - ८७]

[**ऋषि** - उशना काव्य । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

८४७७. **प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।**
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति ॥१ ॥

हे सोमदेव ! याजकों द्वारा पवित्र किये जाते हुए आप शीघ्र ही पात्र में स्थित हों तथा यजमान को पोषक तत्त्व प्रदान करें । शक्तिमान् घोड़े की भाँति शुद्ध करते हुए याजक आपको यज्ञ मण्डप में ले जाते हैं ॥१ ॥

८४७८. **स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजनं रक्षमाणः ।**
पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः ॥२ ॥

उत्तम आयुधों से युक्त, शत्रुनाशक, विघ्नों को दूर कर उनसे रक्षा करने वाला, पालन करने वाला, दिव्यता का विकास करने वाला, उत्तम बलवान् , दिव्य सोम शोधित किया जाता है ॥२ ॥

८४७९. **ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन ।**
स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यं१ गुह्यं नाम गोनाम् ॥३ ॥

नेतृत्व प्रदान करने वाले प्रखर , परमज्ञानी, धैर्यवान् उशना (नियंत्रण में सक्षम) ऋषि इन गौओं (गौओं, इन्द्रियों, वाणियों) में गुप्त रूप से रहने वाले सोम को यत्नपूर्वक प्राप्त करते हैं ॥३ ॥

८४८०. एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णे परि पवित्रे अक्षाः ।
सहस्रसाः शतसा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! बलवर्द्धक आपका यह सोम मधुर और वीर्यवान् होकर शोधक यंत्र से निकलता है । हजारों-सैकड़ों प्रकार का प्रचुर धन प्रदान करने वाला, यह शक्ति- सम्पन्न सोम, लगातार सम्पन्न होने वाले यज्ञ में जाकर स्थित होता है ॥४ ॥

८४८१. एते सोमा अभि गव्या सहस्रा महे वाजायामृताय श्रवांसि ।
पवित्रेभिः पवमाना असृग्रञ्छ्रवस्यवो न पृतनाजो अत्याः ॥५ ॥

जिस प्रकार अन्न की कामना वाले शत्रुजयी अश्व आगे बढ़ते हैं । उसी प्रकार गौ के दूध से मिश्रित हजारों प्रकार का अन्न प्रदान करने वाला सोम छलनी से शोधित हो रहा है । अमृत तुल्य यह सोमरस प्रचुर मात्रा में (पौष्टिक) अन्न देने के लिए तैयार हो रहा है ॥५ ॥

८४८२. परि हि ष्मा पुरुहूतो जनानां विश्वासरद्भोजना पूयमानः ।
अथा भर श्येनभृत प्रयांसि रयिं तुञ्जानो अभि वाजमर्ष ॥६ ॥

मनुष्यों को हर प्रकार का भोज्य पदार्थ प्रदान करने के लिए ज्ञानी जनों द्वारा प्रशंसित परिष्कृत होने वाला सोमरस यज्ञ स्थल में आता है । श्येन पक्षी द्वारा लाये गये हे सोमदेव ! आप धन प्रदान करते हुए प्रचुर मात्रा में अन्न प्रदान करें ॥६ ॥

८४८३. एष सुवानः परि सोमः पवित्रे सर्गो न सृष्टो अदधावदर्वा ।
तिग्मे शिशानो महिषो न शृङ्गे गा गव्यन्नभि शूरो न सत्वा ॥७ ॥

बंधन से मुक्त होकर वेगवान् घोड़ा जिस प्रकार दौड़ता है, उसी प्रकार रस निकालते समय सोमरस शोधन यंत्र में से दौड़ता है । भैंसे द्वारा अपने तीक्ष्ण सींगों को और तीक्ष्ण बनाने के समान यह सोमरस गौ (गाय, पृथ्वी, इन्द्रियादि) से संयुक्त होने की कामना से अपने (निर्धारित) स्थान पर जाता है ॥७ ॥

८४८४. एषा ययौ परमादन्तरद्रेः कूचित्सतीरूर्वे गा विवेद ।
दिवो न विद्युत्स्तनयन्त्यभ्रैः सोमस्य ते पवत इन्द्र धारा ॥८ ॥

यह सोम की धारा परम (सत्ता या लोक) से प्रवाहित होती है । यह अद्रि (पर्वत या मेघों) से निकलकर अन्य प्रदेशों से होती हुई गौ (गौओं, पृथ्वी, वाणी, इन्द्रियों आदि) को जानती - प्राप्त करती है, बादलों से प्रेरित होकर द्युलोक से विद्युत् जैसी ध्वनि करते हुए सोमरस की धाराएँ इन्द्रदेव के लिए प्रवाहित होती हैं ॥८ ॥

८४८५. उत स्म राशिं परि यासि गोनामिन्द्रेण सोम सरथं पुनानः ।
पूर्वीरिषो बृहतीर्जीरदानो शिक्षा शचीवस्तव ता उपष्टुत् ॥९ ॥

हे सोमदेव ! शोधित होते हुए आप गौओं के समूह के समीप जाते हैं । आप इन्द्रदेव के रथ में एक साथ बैठकर त्वरित दान की कामना से स्तुत्य धन, प्रचुर मात्रा में प्रदान करें । हे शक्तिमान् सोमदेव ! वह अन्न आपका ही है ॥९ ॥

[सूक्त - ८८]

[ऋषि - उशना काव्य । देवता - पवमान सोम । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

८४८६. अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि ।
त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! यह सोमरस आपके निमित्त निकालकर शोधित किया जाता है । इस पवित्र हुए सोम का आप पान करें । आप ही इसके उत्पादक हैं, इस दीप्तिमान् सोम को आनन्द के लिए,योग के लिए आप ग्रहण करें ॥१ ॥

८४८७. स ईं रथो न भुरिषाळयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि ।
आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त ॥२ ॥

वे महान् इन्द्रदेव अधिक भार धारण किये हुए रथ के समान हमें अपार वैभव प्रदान करने के निमित्त, नियुक्त किये गये हैं । वे हमारे विरोधी शत्रुओं को संग्राम में विनष्ट करते हैं ॥२ ॥

८४८८. वायुर्न यो नियुत्वाँ इष्टयामा नासत्येव हव आ शम्भविष्ठः ।
विश्ववारो द्रविणोदाइव त्मन्पूषेव धीजवनोऽसि सोम ॥३ ॥

जो सोम वायु की भाँति इच्छानुसार गमन करने वाले घोड़ों के समान है । जो सोम अश्विनीकुमारों की भाँति आमंत्रण पाते ही आता है । जो सोम धनदाता स्वामी के तुल्य अपने को योग्य मानता है । हे सोमदेव ! आप पूषादेव के समान मन के वेग से यज्ञस्थल में पधारें ॥३ ॥

८४८९. इन्द्रो न यो महा कर्माणि चक्रिर्हन्ता वृत्राणामसि सोम पूर्भित् ।
पैद्वो न हि त्वमहिनाम्नां हन्ता विश्वस्यासि सोम दस्योः ॥४ ॥

हे सोमदेव ! आप इन्द्रदेव के समान महान् कर्म करने वाले तथा दुर्विचारों को शत्रुवत् नष्ट करने वाले हैं । आप शत्रु के नगरों को ध्वस्त करने वाले हैं । हे सोमदेव ! आप सभी शत्रुओं का संहार करने वाले हैं । अत: अश्व के समान ही आप 'अहि' नामक शत्रु को नष्ट करें ॥४ ॥

८४९०. अग्निर्न यो वन आ सृज्यमानो वृथा पाजांसि कृणुते नदीषु ।
जनो न युध्वा महत उपब्दिरियर्ति सोमः पवमान ऊर्मिम् ॥५ ॥

जो सोम वन में उत्पन्न होकर वन में उत्पन्न अग्निदेव द्वारा बल प्रदर्शन की भाँति अपनी सामर्थ्य को प्रदर्शित करता है, शूरवीर की तरह बड़े शत्रुओं से लोहा लेता है, वैसा यह शोधित सोम, रस की धाराओं को प्रेरित करता है ॥५ ॥

८४९१. एते सोमा अति वाराण्यव्या दिव्या न कोशासो अभ्रवर्षाः ।
वृथा समुद्रं सिन्धवो न नीचीः सुतासो अभि कलशाँ असृग्रन् ॥६ ॥

बादलों द्वारा की जा रही वर्षा से प्रवाहित नदियाँ जिस प्रकार स्वाभाविक रूप से समुद्र के पास जाती हैं, उसी प्रकार जलमिश्रित यह सोम दिव्य कोशों (पात्र अथवा जीव कोशों) में जाता है । इस सोमरस को अविनाशी अथवा ऊन की छलनी से शोधित किया जाता है ॥६ ॥

८४९२. **शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानऽभिशस्ता दिव्या यथा विट्।**
आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाण्न यज्ञः ॥७॥

हे बलशाली सोमदेव ! आप वायु के समान बल हमें प्रदान करें, जिससे उत्तम प्रजा पीड़ित न हो । ज्ञानी जनों की भाँति हम शीघ्र ही बुद्धिमान् हों । अनेकों रूपों वाले हे सोमदेव ! युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले इन्द्रदेव के समान आप यज्ञ में पूज्य हों ॥७॥

८४९३. **राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम।**
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ॥८॥

हे सोमदेव ! आप श्रेष्ठ राजा हैं, आपके नियमों का हम पालन करते हैं । आप महान् तेजस्वी और गंभीर हैं । आप मित्र देवता के समान पवित्र हैं तथा अर्यमा के समान पूज्य हैं ॥८॥

[सूक्त - ८९]

[**ऋषि** - उशना काव्य । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

८४९४. **प्रो स्य वह्निः पथ्याभिरस्यान्दिवो न वृष्टिः पवमानो अक्षाः।**
सहस्रधारो असदन्न्य१स्मे मातुरुपस्थे वन आ च सोमः ॥१॥

आकाश से होने वाली वर्षा के समान सोम प्रवाहित होता है । वह सोम आगे बढ़ता है । विभिन्न मार्गों से गमन करने वाला वह सोमरस अनेक धाराओं से हमें प्राप्त हो ॥१॥

८४९५. **राजा सिन्धूनामवसिष्ट वास ऋतस्य नावमारुहद्रजिष्ठाम्।**
अप्सु द्रप्सो वावृधे श्येनजूतो दुह ईं पिता दुह ईं पितुर्जाम् ॥२॥

जल का राजा सोम गोदुग्ध में निवास करता है । श्येन पक्षी द्वारा लाया गया सोम, जल में मिश्रित होकर सत्यरूपी नौका पर आसीन होकर गतिशील होता है । द्युलोक से उत्पन्न हुए सोमरस को याज्ञिक निकालते हैं ॥२॥

८४९६. **सिंहं नसन्त मध्वो अयासं हरिमरुषं दिवो अस्य पतिम्।**
शूरो युत्सु प्रथमः पृच्छते गा अस्य चक्षसा परि पात्युक्षा ॥३॥

मधुर जल को प्रेरित करने वाले, शत्रुनाशक, प्रकाशक, द्युलोक के पालक, हरिताभ सोमरस को (याजकगण) निकालते हैं । युद्धों का शूर यह सोमरस सर्वप्रथम गौओं (किरणों) की कुशलता पूछता है । इस सोमरस की सामर्थ्य से ही इन्द्रदेव सभी को संरक्षण प्रदान करते हैं ॥३॥

८४९७. **मधुपृष्ठं घोरमयासमश्वं रथे युञ्जन्त्युरुचक्र ऋष्वम्।**
स्वसार ईं जामयो मर्जयन्ति सनाभयो वाजिनमूर्जयन्ति ॥४॥

उत्तम पीठ वाला मधुर सोम देखने में सुन्दर, गमनशील तथा कर्म में भयंकर है । यज्ञरूपी रथ में इस सोम को अश्व के समान युक्त करते हैं । बहिनें (ज्वालाएँ, अँगुलियाँ) इसका मार्जन करती हैं । समान नाभि (केन्द्र, उद्देश्य, बन्धन) वाले (याजक या प्रकृति प्रवाह) इसे बलवान् बनाते हैं ॥४॥

८४९८. **चतस्र ईं घृतदुहः सचन्ते समाने अन्तर्धरुणे निषत्ताः।**
ता ईमर्षन्ति नमसा पुनानास्ता ईं विश्वतः परि षन्ति पूर्वीः ॥५॥

घृत (तेजस्) का दोहन करने वाली चार गौएँ (चार प्रकार की वाणियाँ) सोम से संयुक्त होती हैं। समान आश्रय में रहने वाली वे सोम को प्राप्त करती हैं। नमनपूर्वक (या अन्न द्वारा) पवित्र होने वाली अनेक गौएँ (किरणें, इन्द्रियाँ) उसे सब ओर से आवृत कर लेती हैं ॥५ ॥

८४९९. विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्या विश्वा उत क्षितयो हस्ते अस्य।
असत्त उत्सो गृणते नियुत्वान्मध्वो अंशुः पवत इन्द्रियाय ॥६ ॥

यह सोम द्यु तथा पृथिवीलोक का आधार है। समस्त मानव सोम के ही हाथ में हैं। इन्द्रदेव को अर्पित करने के लिए मधुर तथा उत्साहवर्द्धक सोम की स्तुतियाँ की जाती हैं। हे सोम ! आप शक्तियों के स्वामी हैं ॥६ ॥

८५००. वन्वन्नवातो अभि देववीतिमिन्द्राय सोम वृत्रहा पवस्व।
शग्धि महः पुरुश्चन्द्रस्य रायः सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥७ ॥

हे अजेय सोमदेव ! यज्ञस्थल पर जाकर वृत्र का वध करने वाले इन्द्रदेव के निमित्त आप रस प्रदान करें। हम उत्तम पराक्रम के स्वामी बनें, इसके लिए आप हमें तेजस्वी धन प्रचुर मात्रा में प्रदान करें ॥७ ॥

[सूक्त - ९०]

[**ऋषि** - वसिष्ठ मैत्रावरुणि। **देवता** - पवमान सोम। **छन्द** - त्रिष्टुप्।]

८५०१. प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजं सनिष्यन्नयासीत्।
इन्द्रं गच्छन्नायुधा संशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥१ ॥

द्युलोक एवं पृथिवीलोक को उत्पन्न करने वाले, शस्त्रों की प्रखरता को बढ़ाने वाले देवताओं के पोषक सोमदेव, वेगपूर्वक इन्द्रदेव के समीप पहुँचते हुए मानो विश्व का अपार वैभव हमें (याजकों को) प्रदान करने के लिए आए हैं ॥१ ॥

८५०२. अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामाङ्गूषाणामवावशन्त वाणीः।
वना वसानो वरुणो न सिन्धून्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥२ ॥

ऋत्विजों की वाणियाँ तीन स्थानों (द्यु, अन्तरिक्ष एवं पृथिवी अथवा अन्तरिक्ष, वनस्पति एवं शरीर) में निवास करने वाले काम्यवर्षक अन्नदाता सोम की तीव्र स्वर से स्तुति करती हैं। जल में अधिष्ठित वरुणदेव की भाँति पानी में मिलकर सोम स्तोताओं को रत्न और धन प्रदान करता है ॥२ ॥

८५०३. शूरग्रामः सर्ववीरः सहावाञ्जेता पवस्व सनिता धनानि।
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाळ्हः साह्वान् पृतनासु शत्रून् ॥३ ॥

हे सोमदेव ! आप शूरों के समूह और अनेक वीरों के प्रेरक, शक्तिशाली, विजेता, धनप्रदाता, आयुधों से युक्त, अतिशीघ्र गतिवाले, शस्त्र प्रहारक, संग्राम में अदम्य तथा युद्ध में शत्रुओं को हराने वाले हैं ॥३ ॥

८५०४. उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्त्समीचीने आ पवस्वा पुरन्धी।
अपः सिषासन्नुषसः स्व१र्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् ॥४ ॥

विस्तीर्ण पथयुक्त, निर्भय बनाने वाले, आकाश और पृथ्वी को जोड़ने वाले हे सोमदेव ! आप अवतरित हों। जल, उषा, सूर्य किरणों और गौओं द्वारा पोषित आप शब्दनाद करते हुए हमें अपार ऐश्वर्य प्रदान करें ॥४ ॥

८५०५. मत्सि सोम वरुणं मत्सि मित्रं मत्सीन्द्रमिन्दो पवमान विष्णुम्।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि महामिन्द्रमिन्दो मदाय ॥५ ॥

हे पवित्र सोमदेव ! आप वरुणदेव, मित्र देव, इन्द्रदेव, विष्णुदेव, मरुत्देव तथा सभी देवों सहित महान् सनातन इन्द्रदेव को आनन्दित करते हैं ॥५ ॥

८५०६. एवा राजेव क्रतुमाँ अमेन विश्वा घनिघ्नद् दुरिता पवस्व ।
इन्दो सूक्ताय वचसे वयो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६ ॥

यज्ञ करने वाले राजा के समान स्तुत्य हे सोमदेव ! आप सभी दुष्टों का विनाश करते हुए रस प्रदान करें तथा अन्न प्रदान करते हुए कल्याणकारी ढंग से हमारा संरक्षण करें, इसके लिए स्तोत्रों से आपकी स्तुति करते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - ९१]

[**ऋषि** - कश्यप मारीच । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

८५०७. असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमो मनीषी ।
दश स्वसारो अधि सानो अव्येऽजन्ति वह्निं सदनान्यच्छ ॥१ ॥

जिस प्रकार युद्ध में अश्वों को भेजा जाता है, उसी प्रकार सबको प्रिय लगने वाला सर्वप्रथम स्तुत्य सोम शब्द करता हुआ यज्ञ कर्म में प्रेरित किया जाता है । दस बहिनें (दस दिशाएँ, इन्द्रियाँ अथवा अँगुलियाँ) सोम को अनश्वर शोधन यंत्र के द्वारा अपने स्थान की ओर प्रेरित करती हैं ॥१ ॥

८५०८. वीती जनस्य दिव्यस्य कव्यैरधि सुवानो नहुष्येभिरिन्दुः ।
प्र यो नृभिरमृतो मर्त्येभिर्मर्मृजानोऽविभिर्गोभिरद्भिः ॥२ ॥

विद्वज्जनों द्वारा शोधित सोमरस देवगणों के पान हेतु गमन करता है । यह अविनाशी सोम याजकों द्वारा परिष्कृत किया जाता है । ऊन की बनी छलनी से शुद्ध होकर गाय के दूध के साथ जल में मिश्रित होकर यह सोमरस यज्ञस्थल पर पहुँचता है ॥२ ॥

८५०९. वृषा वृष्णे रोरुवदंशुरस्मै पवमानो रुशदीर्ते पयो गोः ।
सहस्रमृक्वा पथिभिर्वचोविदध्वस्मभिः सूरो अण्वं वि याति ॥३ ॥

बलशाली सोम ध्वनि करते हुए परिष्कृत रूप में वर्षा करने वाले इन्द्रदेव के लिए अपना तेज प्रदर्शित करता है । वह गाय के दूध में मिलाया जाता है । स्तुत्य, श्रेष्ठ, पराक्रमी सोम हिंसा से रहित हजारों मार्गों वाली छलनी से शोधित किया जाता है ॥३ ॥

८५१०. रुजा दृळ्हा चिद्रक्षसः सदांसि पुनान इन्द ऊर्णुहि वि वाजान् ।
वृश्चोपरिष्टात्तुजता वधेन ये अन्ति दूरादुपनायमेषाम् ॥४ ॥

हे सोमदेव ! आप असुरों के किलों को नष्ट करें, परिष्कृत होकर उनके बल तथा अन्न को भी नष्ट करें । जो (असुर) ऊपर से आते हैं, हमारे समीप हैं अथवा जो दूर से आते हैं, उनके नायकों का संहार करके आप उन्हें समाप्त करें ॥४ ॥

८५११. स प्रत्न वन्नव्यसे विश्ववार सूक्ताय पथः कृणुहि प्राचः ।
ये दुष्षहासो वनुषा बृहन्तस्ताँस्ते अश्याम पुरुकृत्पुरुक्षो ॥५ ॥

सभी के स्तुत्य हे सोमदेव ! आप आदि सूक्तों की तरह नवीन सूक्तों को भी ग्रहण करें । हे बहुकर्मा, स्तुत्य सोमदेव ! आपकी शक्ति शत्रुओं के लिए अजेय और असह्य है । शत्रुनाशक उस सामर्थ्य को हम आप से प्राप्त करें ॥५ ॥

८५१२. एवा पुनानो अपः स्व१र्गा अस्मभ्यं तोका तनयानि भूरि ।
शं नः क्षेत्रमुरु ज्योतींषि सोम ज्योङ्नः सूर्यं दृशये रिरीहि ॥६ ॥

हे सोमदेव ! इस प्रकार परिष्कृत होते हुए आप हमें स्वर्ग, गौएँ, सन्तति तथा जल प्रदान करें । हे सोमदेव ! हमारे क्षेत्र को सुखदायी बनाते हुए आप इन नक्षत्रों का विस्तार करें । हम चिरकाल तक सूर्यदेव के दर्शन कर सकें ॥६ ॥

[सूक्त - ९२]

[**ऋषि** - कश्यप मारीच । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

८५१३. परि सुवानो हरिरंशुः पवित्रे रथो न सर्जि सनये हियानः ।
आपच्छ्लोकमिन्द्रियं पूयमानः प्रति देवाँ अजुषत प्रयोभिः ॥१ ॥

हरितवर्ण (दोषों का हरण करने) वाला सोम शोधक उपकरण में से निकलता है । पवित्र होता हुआ यह सोम स्तुतियों को सुनता (मन्त्रशक्ति से प्रभावित होता) है । यह सोम हव्यरूप में इन्द्रादि देवों की प्रसन्नता के लिए रथ की तरह उनकी ओर प्रेरित किया जाता है ॥१ ॥

[वेद ने रथ शब्द को संवाहक (कैरियर) के रूप में जगह-जगह प्रयुक्त किया है । रथ द्वारा साधनों एवं व्यक्तियों को वाञ्छित स्थल तक पहुँचाया जाता है । सोम द्वारा विभिन्न प्रकारकी क्षमताएँ विभिन्न पदार्थों एवं प्राणियों तक पहुँचाई जाती हैं । इसलिए सोम को रथ संज्ञक मानना ठीक है । वह प्राणाग्नि को प्रदीप्त करता है, इसलिए हव्य भी है ।]

८५१४. अच्छा नृचक्षा असरत्पवित्रे नाम दधानः कविरस्य योनौ ।
सीदन् होतेव सदने चमूषूपेमग्मन्नृषयः सप्त विप्राः ॥२ ॥

दिव्य द्रष्टा ज्ञानी सोम को इस यज्ञ स्थल पर जल में मिलाकर छलनी से अच्छी प्रकार शोधित किया जाता है । होता (यज्ञों में मन्त्रोच्चारण करने वाला) के समान यह सोम यज्ञस्थल पर सुपात्रों में प्रतिष्ठित रहता है । सात ज्ञानवान् याजक ऋषि स्तोत्रों का उच्चारण करते हुए सोम के पास बैठते हैं ॥२ ॥

८५१५. प्र सुमेधा गातुविद्विश्वदेवः सोमः पुनानः सद एति नित्यम् ।
भुवद्विश्वेषु काव्येषु रन्ताऽनु जनान्यतते पञ्च धीरः ॥३ ॥

उत्तम मार्ग का ज्ञाता, प्रकाशमय, ज्ञानी, शोधित सोम सदैव कलश में स्थापित होता है । समस्त स्तोत्रों को ग्रहण करता हुआ यह धैर्यवान् सोम पाँच (पंचभूतों, पंचप्राणों अथवा पाँच प्रकार की प्रजाओं) के अनुकूल होकर उनकी उन्नति का मार्ग बनाता है ॥३ ॥

८५१६. तव त्ये सोम पवमान निण्ये विश्वे देवास्त्रय एकादशासः ।
दश स्वधाभिरधि सानो अव्ये मृजन्ति त्वा नद्यः सप्त यह्वीः ॥४ ॥

हे पवमान सोमदेव ! वे तैंतीस विश्वदेव द्युलोक में आपको अनश्वर शोधन प्रक्रिया द्वारा दसों (दिशाओं-सामर्थ्यों) से शुद्ध करते हैं । सात विशाल धाराएँ जल के द्वारा आपका मार्जन करती हैं ॥४ ॥

८५१७. **तन्नु सत्यं पवमानस्यास्तु यत्र विश्वे कारवः संनसन्त ।**
ज्योतिर्यदह्ने अकृणोदु लोकं प्रावन्मनुं दस्यवे करभीकम् ॥५ ॥

जहाँ सभी कर्त्ता (कर्मनिष्ठ, याजक, क्रियाशील) सम्यक् रूप से एक जुट होते हैं, वहीं इस पवमान-सत्य रूप सोम का निवास होता है । दिन में प्रकाश करने वाली जो सोम की ज्योति है, वह मनुष्यों को संरक्षण प्रदान करती है । दस्युओं-दुष्टों के लिए सोम अपने तेज को विनाशक बनाता है ॥५ ॥

८५१८. **परि सद्मेव पशुमान्ति होता राजा न सत्यः समितीरियानः ।**
सोमः पुनानः कलशाँ अयासीत्सीदन्मृगो न महिषो वनेषु ॥६ ॥

पशु आदि से समृद्ध घर में जिस प्रकार होता जाता है, श्रेष्ठ कर्म करने वाला राजा जिस प्रकार सभागृह में जाता है, भैंसा जिस प्रकार जल में जाता है, उसी प्रकार शोधित होने वाला सोम कलशों में जाता है ॥६ ॥

[सूक्त - ९३]

[**ऋषि** - नोधा गौतम । देवता - पवमान सोम । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

८५१९. **साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।**
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥१ ॥

कर्म करने वाली अँगुलियाँ सोमरस को पवित्र करती हैं । ये दस अँगुलियाँ वीर्यवान् सोम को हिलाती तथा ग्रहण करती हैं । यह हरिताभ सोमरस सभी दिशाओं में जाता हुआ तेजगति से दौड़ने वाले अश्व के समान कलश में स्थित होता है ॥१ ॥

८५२०. **सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः ।**
मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः ॥२ ॥

देवताओं का इष्ट, वरणीय शक्तिशाली सोम, माता द्वारा शिशु से या पुरुष द्वारा स्त्री से मिलने के तुल्य जल में मिलाकर धारण किया जाता है । संस्कार किए जाने वाले स्थान में फिर गौ-दुग्धादि से मिश्रित होता है ॥२ ॥

८५२१. **उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः ।**
मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥३ ॥

गौओं के योग्य पोषक वनस्पतियों में प्रविष्ट हुआ सोम उनके दुग्धाशय को पूर्ण करता है । उत्तम मेधावी यह सोम दुग्ध धाराओं में मिलाया जाता है । जिस प्रकार लोग स्वयं को कपड़ों से आच्छादित करते हैं, उसी प्रकार कलशस्थ सोम को गौएँ अपने दूध से आवृत करती हैं ॥३ ॥

८५२२. **स नो देवेभिः पवमान रदेन्दो रयिमश्विनं वावशानः ।**
रथिरायतामुशती पुरन्धिरस्मद्र्य१गा दावने वसूनाम् ॥४ ॥

हे सोम ! हमारी इच्छाओं की पूर्ति करते हुए अश्वों से युक्त दैवी धन हमें प्रदान करें । आप महारथियों द्वारा धारण की जाने वाली बुद्धि हमें प्रदान करें, जिससे हम अपने धन को श्रेष्ठ कार्य में लगाने का साहस कर सकें ॥४ ॥

८५२३. नू नो रयिमुप मास्व नृवन्तं पुनानो वाताप्यं विश्वश्चन्द्रम्।
प्र वन्दितुरिन्दो तार्यायुः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात्॥५॥

हे शोधित सोमदेव ! हमें सन्ततियुक्त आनन्ददायी तथा शीतल (शान्तिदायक) धन तथा स्तोताओं को दीर्घायुष्य प्रदान करें। बुद्धियुक्त धन प्रदान करने वाले हे सोमदेव ! आप हमारे यज्ञ में शीघ्र ही पधारें॥५॥

[सूक्त - ९४]

[**ऋषि** - कण्व (घौर अथवा आङ्गिरस)। **देवता** - पवमान सोम। **छन्द** - त्रिष्टुप्।]

८५२४. अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूर्ये न विशः।
अपो वृणानः पवते कवीयन्व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म॥१॥

जब इस (सोम) को अश्व की तरह शुभ (संस्कारों) से सज्जित करने, सूर्य को किरणों से सुशोभित करने की तरह संस्कारित करने के लिए बुद्धि (मेधा या मंत्रशक्ति) स्पर्धा करती है, (तब) पशुओं के संवर्धन के लिए विचरण स्थल (चरागाह) की भाँति यह सोम क्रान्तदर्शी की भाँति (कलश या विश्वघट) में संचरित होता है॥१॥

८५२५. द्विता व्यूर्ण्वन्नमृतस्य धाम स्वर्विदे भुवनानि प्रथन्त।
धियः पिन्वानाः स्वसरे न गाव ऋतायन्तीरभि वावश्र इन्दुम्॥२॥

यह सोम अमृततुल्य स्थान प्राप्त करने के लिए (पृथ्वी पर) दो प्रकार (स्थूल रूप में सोमरस, सूक्ष्मरूप में रश्मियों के माध्यम) से अपने तेज को प्रकट करता है। आनन्दमय सोम के लिए समस्त भुवन विस्तृत हो जाते हैं। उस समय यज्ञ की कामना वाली स्तोताओं की वाणियाँ सोम की उसी प्रकार की स्तुति करती हैं, जैसे गौशाला में गौएँ ध्वनि करती हैं॥२॥

८५२६. परि यत्कविः काव्या भरते शूरो न रथो भुवनानि विश्वा।
देवेषु यशो मर्ताय भूषन्दक्षाय रायः पुरुभूषु नव्यः॥३॥

जिस प्रकार युद्ध में शूरवीरों के लिए रथ, आभूषण की तरह होता है, उसी प्रकार दैवी धन मनुष्य को विभूषित करता है। जिस समय ज्ञानी सोम स्तोत्रों का श्रवण करता है, उस समय यज्ञों में धन की वृद्धि होती है॥३॥

८५२७. श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति।
श्रियं वसाना अमृतत्वमायन्भवन्ति सत्या समिथा मितद्रौ॥४॥

सम्पत्ति की वृद्धि करने वाला सोम यज्ञ में धन प्रदान करने के लिए आता है। वह सोम स्तोताओं को धन-धान्य प्रदान करता है। स्तुति करने वाले शोभायमान याजक अमरत्व को प्राप्त करते हैं। नियमित (अभ्यास) करने वाले वीर के संग्राम (जीवन - संग्राम) सत्य (सार्थक) होते हैं॥४॥

८५२८. इषमूर्जमभ्य१र्षाश्वं गामुरु ज्योतिः कृणुहि मत्सि देवान्।
विश्वानि हि सुषहा तानि तुभ्यं पवमान बाधसे सोम शत्रून्॥५॥

हे विचित्र सोमदेव ! हमें अन्न तथा बल बढ़ाने वाला रस प्रदान करें। हमें महान् प्रकाश देने वाली सूर्य किरणें तथा अश्व और गौएँ दें। समस्त राक्षस आपके समक्ष सहज ही पराजित होने वाले हैं, अतः शत्रुओं पर विजय पाप्त करके सभी देवों को हर्षित करें॥५॥

[सूक्त - ९५]

[**ऋषि** - प्रस्कण्व काण्व । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

८५२९. **कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः ।**
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गा अतो मतीर्जनयत स्वधाभिः ॥१ ॥

मनुष्यों द्वारा दबाकर रस निकाला जाने वाला, हरिताभ सोम पवित्र होता है । काष्ठ के बर्तन में गो दुग्ध मिश्रित वह सोमरस शब्द करते हुए गिरता है । याजक इस सोम की हवियुक्त स्तुति करते हैं ॥१ ॥

८५३०. **हरिः सृजानः पथ्यामृतस्येयर्ति वाचमरितेव नावम् ।**
देवो देवानां गुह्यानि नामाविष्कृणोति बर्हिषि प्रवाचे ॥२ ॥

जिस प्रकार नाविक नौका को चलाता है, उसी प्रकार अभिषुत हरिताभ सोम यज्ञ का मार्गदर्शन करने वाले स्तोत्रों को प्रेरित करता है । वह तेजस्वी सोम देवों के गुप्त नामों का गुणगान (गुप्त शक्तियों को प्रकट) करता है ॥२ ॥

८५३१. **अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।**
नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चा च विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥३ ॥

पानी की द्रुतगामी तरंगों के सदृश बोलने में शीघ्रता करने वाले स्तोतागण स्तुति को सोम के पास शीघ्र ही प्रेषित करते हैं । उन्नति की कामना वाली नमनशील स्तुतियाँ कामना करने वाले सोम के निकट जाती हैं और उसी में समाहित हो जाती हैं ॥३ ॥

८५३२. **तं मर्मृजानं महिषं न सानावंशुं दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।**
तं वावशानं मतयः सचन्ते त्रितो बिभर्ति वरुणं समुद्रे ॥४ ॥

शोधित करने वाले याजक पर्वत में उत्पन्न हुए सोम से भैंस को दुहने के समान रस निकालते हैं । तीनों लोकों में व्याप्त शत्रुनाशक इस सोम को अन्तरिक्ष धारण करता है, ऐसे सोम की स्तुति की जाती है ॥४ ॥

८५३३. **इष्यन्वाचमुपवक्तेव होतुः पुनान इन्दो वि ष्या मनीषाम् ।**
इन्द्रश्च यत्क्षयथः सौभगाय सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥५ ॥

हे शोधित सोमदेव ! स्तोताओं को प्रेरित करने वाले याज्ञिकों के समान आप हमारी बुद्धि को यज्ञ के निमित्त प्रेरित करें । जब इन्द्रदेव के साथ आप रहते हैं, तब हम श्रेष्ठ पराक्रमी होने का सौभाग्य प्राप्त करते हैं ॥५ ॥

[सूक्त - ९६]

[**ऋषि** - प्रतर्दन दैवोदासि । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

८५३४. **प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना ।**
भद्रान्कृण्वन्निन्द्रहवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥१ ॥

सेना के नायक (की भाँति) शूरवीर (सोम) शत्रुओं की गौओं (पोषण सामर्थ्यों) को प्राप्त करने की कामना करते हुए रथों के आगे चलते हैं । इस कार्य से इनकी सेना हर्षित होती है । यह सोम इन्द्रदेव की प्रार्थना को मित्रों और याजकों के लिए मंगलमय बनाते हुए तेजस्विता को धारण करता है ॥१ ॥

८५३५. समस्य हरिं हरयो मृजन्त्यश्वहयैरनिशितं नमोभिः ।
आ तिष्ठति रथमिन्द्रस्य सखा विद्वाँ एना सुमतिं यात्यच्छ ॥२ ॥

याजकगण हरिताभ सोमरस का शोधन करते हैं । यह सोमरस, रथ रूपी पात्र में स्तुतियों से हर्षित होकर रहता है । यह ज्ञानी सोम, मित्र इन्द्रदेव के साथ यज्ञ के साधन रूप श्रेष्ठ स्तोताओं के पास पहुँचता है ॥२ ॥

८५३६. स नो देव देवताते पवस्व महे सोम प्सरस इन्द्रपानः ।
कृण्वन्नपो वर्षयन्द्यामुतेमामुरोरा नो वरिवस्या पुनानः ॥३ ॥

हे दिव्य सोमदेव ! हमारे इस दैवी यज्ञ में महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये आप इन्द्रदेव के पान करने योग्य रस प्रदान करें । आकाश की वर्षा के जल के साथ मिश्रित विशाल अन्तरिक्ष से आने वाले हे सोमदेव ! शोधित होकर आप हमें ऐश्वर्य प्रदान करें ॥३ ॥

८५३७. अजीतयेऽहतये पवस्व स्वस्तये सर्वतातये बृहते ।
तदुशन्ति विश्व इमे सखायस्तदहं वश्मि पवमान सोम ॥४ ॥

हे सोमदेव ! शत्रुओं को पराजित करने के लिए प्रजा को पीड़ित न होने देने के लिए, सुख की वृद्धि के लिए तथा महान् यज्ञों के लिए आप हमें शुद्ध सोमरस प्रदान करें । हे पवित्र सोमदेव ! हम तथा हमारे सभी मित्र आपसे यही कामना करते हैं ॥४ ॥

८५३८. सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥५ ॥

द्युलोक, पृथिवी लोक, अग्नि, सूर्य, इन्द्र विष्णु तथा श्रेष्ठ बुद्धि, को उत्पन्न करने वाला सोम शुद्ध किया जा रहा है ॥५ ॥

८५३९. ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥६ ॥

देवताओं, कवियों, विप्रों, पशुओं, पक्षियों एवं हिंसा करने वालों में विभिन्न रूपों से संव्याप्त दिव्य सोम संस्कारित होते हुए ध्वनि के साथ कलश में स्थित हो रहा है ॥६ ॥

८५४०. प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धुर्गिरः सोमः पवमानो मनीषाः ।
अन्तः पश्यन्वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥७ ॥

प्रवाहित नदी की लहरों द्वारा उठ रही मधुर ध्वनि की भाँति पवित्र होता हुआ सोम, मनोरम ध्वनि कर रहा है । अन्तर्दृष्टि से छिपी हुई शक्तियों को जानकर वह सोम कभी कम न होने वाली सामर्थ्य को प्राप्त करता है ॥७ ॥

८५४१. स मत्सरः पृत्सु वन्वन्नवातः सहस्ररेता अभि वाजमर्ष ।
इन्द्रायेन्दो पवमानो मनीष्यं१शोरूर्मिमीरय गा इषण्यन् ॥८ ॥

हे आनन्दवर्द्धक सोमदेव ! आप सूर्यदेव के समान तेजस्वी एवं हजारों बलों से युक्त होकर युद्ध में शत्रु बल पर आक्रमण करके उनका नाश करें । हे शोधित होते हुए ज्ञानी सोमदेव ! आप ईन्द्रदेव के निमित्त स्तुतियों को प्रेरित करते हुए गाय के दूध में मिश्रित सोमरस की धाराएँ प्रवाहित करें ॥८ ॥

८५४२. **परि प्रियः कलशे देववात इन्द्राय सोमो रण्यो मदाय ।**
सहस्रधारः शतवाज इन्दुर्वाजी न सप्तिः समना ज़िगाति ॥९ ॥

देवों का प्रिय रमणीय सोम, इन्द्र को हर्षित करने के लिए कलश में स्थापित होता है । सैंकड़ों बलों से युक्त, हजारों धाराओं से स्रवित होने वाला यह सोम कलश में उसी प्रकार जाता है, जैसे बलवान् अश्व युद्ध में जाते हैं ॥९ ॥

८५४३. **स पूर्व्यो वसुविज्जायमानो मृजानो अप्सु दुदुहानो अद्रौ ।**
अभिशस्तिपा भुवनस्य राजा विदद् गातुं ब्रह्मणे पूयमानः ॥१० ॥

पत्थरों से कूटकर निकाला गया, जल मिश्रित , समस्त भुवनों का राजा , शोधित सोमरस, आदिकाल से याजकों द्वारा यज्ञ में लाया जाता रहा है । वह शत्रुओं से रक्षा प्रदान करने वाला ऐश्वर्ययुक्त सोम यज्ञ के लिए (याजकों का) मार्ग प्रशस्त करता है ॥१० ॥

८५४४. **त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः ।**
वन्वन्नवातः परिधीँरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥११ ॥

हे शोधित सोमदेव ! बुद्धिपूर्वक कार्य करने वाले हमारे पूर्वज अनादिकाल से आपकी सहायता से यज्ञीय कर्म करते रहे हैं । आप शत्रुओं का नाश करते हुए अपराजित होकर, उन्हें दूर करें एवं हमें वीरों तथा घोड़ों से युक्त धन प्रदान करें ॥११ ॥

८५४५. **यथापवथा मनवे वयोधा अमित्रहा वरिवोविद्धविष्मान् ।**
एवा पवस्व द्रविणं दधान इन्द्रे सं तिष्ठ जनयायुधानि ॥१२ ॥

हे सोमदेव ! जिस प्रकार पूर्वकाल में आप मनस्वी याजकों को शत्रु विनाशक ऐश्वर्य तथा हविष्यान्न युक्त धन प्रदान करते थे, उसी प्रकार हमें भी धन प्रदान करें तथा इन्द्रदेव के निमित्त आयुधों का निर्माण करें ॥१२ ॥

८५४६. **पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावापो वसानो अधि सानो अव्ये ।**
अव द्रोणानि घृतवान्ति सीद मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥१३ ॥

हे मधुर सोमदेव ! आप जल में मिलकर , ऊँचे स्थान पर स्थित होकर एवं छलनी से छनकर पवित्र होते हैं । तत्पश्चात् इन्द्रदेव के पीने योग्य यह हर्षप्रदायक सोम जलयुक्त बर्तन में पहुँचकर स्थित रहता है ॥१३ ॥

८५४७. **वृष्टिं दिवः शतधारः पवस्व सहस्रसा वाजयुर्देववीतौ ।**
सं सिन्धुभिः कलशे वावशानः समुस्त्रियाभिः प्रतिरन्न आयुः ॥१४ ॥

हे सोमदेव ! आप द्युलोक से सैकड़ों धाराओं में वर्षा करें । सहस्रों प्रकार का धन तथा अन्न देने की कामना से जल में मिश्रित होकर आप यज्ञस्थल के कलश में स्थापित हों । गाय के दूध में मिश्रित होकर आप यज्ञ में प्रवेश करें तथा हमें दीर्घायु बनायें ॥१४ ॥

८५४८. **एष स्य सोमो मतिभिः पुनानोऽत्यो न वाजी तरतीदरातीः ।**
पयो न दुग्धमदितेरिषिरमुर्विव गातुः सुयमो न वोळहा ॥१५ ॥

मनस्वी याजकों से शोधित यह सोम चपल घोड़े की भाँति शत्रुओं को लाँघकर जाता है । गोदुग्ध के समान यह सोम पवित्र है । लक्ष्य तक पहुँचाने वाला घोड़ा जैसे सुखदायी होता है, वैसे ही यह सोम सुखदायी है ॥१५ ॥

८५४९. **स्वायुधः सोतृभिः पूयमानोऽभ्यर्ष गुह्यं चारु नाम ।**
अभि वाजं सप्तिरिव श्रवस्याऽभि वायुमभि गा देव सोम ॥१६ ॥

याज्ञिकों द्वारा शोधित, श्रेष्ठ यज्ञीय साधनों से युक्त सोम, सुन्दर रसमय स्वरूप प्राप्त करता है । अश्व के समान सर्वत्र गमनशील हे सोमदेव ! आप हमें अन्न प्रदान करें, गाय का दूध प्रदान करें तथा प्राणवान् बनाएँ ॥१६ ॥

८५५०. **शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति वह्निं मरुतो गणेन ।**
कविर्गीर्भिः काव्येना कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥१७ ॥

नवजात शिशु के सदृश सभी को प्रमुदित करने वाले सोम को मरुद्‌गण शुद्ध करते हैं । सप्त गुणों से युक्त यह मेधावर्द्धक सोम स्तुतियों के साथ शब्द करता हुआ शुद्ध हो जाता है ॥१७ ॥

८५५१. **ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रणीथः पदवीः कवीनाम् ।**
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप् ॥१८ ॥

ऋषियों जैसे संस्कार वाला, ऋषित्व प्रदान करने वाला, स्तुत्य, ज्ञानदायी सोम स्वयं महान् है । यह तृतीय धाम स्वर्गलोक में रहने वाले तेजस्वी इन्द्रदेव को और भी अधिक तेजस्- सम्पन्न बनाता है ॥१८ ॥

८५५२. **चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।**
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥१९ ॥

यह प्रशंसनीय, सभी सामर्थ्यों से युक्त, शक्तिमान् , समुद्र की तरंगों के समान गतिमान् तथा गौ दुग्ध में मिलाया जाने वाला प्रवाही सोम चतुर्थ (महः) लोक में स्थापित होता है ॥१९ ॥

८५५३. **मर्यो न शुभ्रस्तन्वं मृजानोऽत्यो न सृत्वा सनये धनानाम् ।**
वृषेव यूथा परि कोशमर्षन्कनिक्रदच्चम्वो३रा विवेश ॥२० ॥

अलंकृत मनुष्य के समान, शरीर को स्वच्छ बनाने के समान, द्रुतगामी अश्व के समान, धन प्राप्ति के इच्छुक के समान, शब्द करते तथा समूह में जाते वृषभ के समान सोमरस कलश में स्थापित होता है ॥२० ॥

८५५४. **पवस्वेन्दो पवमानो महोभिः कनिक्रदत्परि वाराण्यर्ष ।**
क्रीळञ्चम्वो३रा विश पूयमान इन्द्रं ते रसो मदिरो ममत्तु ॥२१ ॥

महान् याजकों के द्वारा शोधित हे सोमदेव ! ध्वनि करते हुए आप कलश में स्थापित हों । पवित्र होकर क्रीड़ा करते हुए यज्ञ पात्र में प्रवेश करें । आपका आनन्ददायी रस इन्द्रदेव को आनन्दित करे ॥२१ ॥

८५५५. **प्रास्य धारा बृहतीरसृग्रन्नक्तो गोभिः कलशाँ आ विवेश ।**
साम कृण्वन्त्सामन्यो विपश्चित्क्रन्दन्नेत्यभि सख्युर्न जामिम् ॥२२ ॥

इस सोमरस की बृहद् धाराएँ विशेष रीति से प्रवाहित होते हुए गाय के दूध में मिश्रित होकर कलशों में प्रवेश करती हैं । सामगान करने वाले ज्ञानी याजक मित्रवत् स्नेह भाव से प्रवाहित सोम की स्तुतियाँ करते हैं ॥२२ ॥

८५५६. **अपघ्नन्नेषि पवमान शत्रून्प्रियां न जारो अभिगीत इन्दुः ।**
सीदन्वनेषु शकुनो न पत्वा सोमः पुनानः कलशेषु सत्ता ॥२३ ॥

जिस प्रकार पक्षी अपने घोंसलों में जाते हैं, जिस प्रकार पुरुष अपनी प्रिय पत्नी के पास जाता है, उसी प्रकार पवित्र, शोधित हुआ, शत्रुओं का संहार करके (विकारों से मुक्त होकर) जल के साथ मिलकर परिष्कृत हुआ सोमरस कलशों में स्थापित होता है ॥२३ ॥

८५५७. आ ते रुचः पवमानस्य सोम योषेव यन्ति सुदुघाः सुधाराः ।
हरिरानीतः पुरुवारो अप्स्वचिक्रदत्कलशे देवयूनाम् ॥२४ ॥

हे पवमान सोमदेव ! आपकी किरणें श्रेष्ठ नारियों एवं उत्तम दूध की धाराओं के समान प्रकट होती हैं । यह हरि (हरे रंग का अथवा विकारनाशक) सोम बहुत बार (बार-बार) जल में, देवों के कलश (यज्ञ कलश या विश्वघट) में शब्द करता हुआ प्रविष्ट होता है ॥२४ ॥

[सूक्त - ९७]

[**ऋषि** - १-३ वसिष्ठ मैत्रावरुणि, ४-६ इन्द्र प्रमति वासिष्ठ, ७-९ वृषगण वासिष्ठ, १०-१२ मन्यु वासिष्ठ, १३-१५ उपमन्यु वासिष्ठ, १६-१८ व्याघ्रपाद वासिष्ठ, १९-२१ शक्ति वासिष्ठ, २२-२४ कर्णश्रुत वासिष्ठ, २५-२७ मृळीक वासिष्ठ, २८-३० वसुक्र वासिष्ठ, ३१-४४ पराशर शाक्त्य, ४५-५८ कुत्स आङ्गिरस । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

८५५८. अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन्मितेव सद्म पशुमान्ति होता ॥१ ॥

जिस प्रकार (गोपालक) पशुओं के घर में जाते हैं, (उसी प्रकार) इस (यज्ञ) का प्रेरक देव (दिव्य) सोम अभिषुत होकर शोधक छन्ने में से प्रवाहित होता है, स्वर्ण (अथवा स्वर्णिम किरणों) से शोधित होता हुआ यह देवों को अपने रस से संपृक्त (तृप्त) कर देता है ॥१ ॥

[जब किसी तरल में कोई घुलनशील पदार्थ इस सीमा तक घोला जाय कि उससे और अधिक घुल न सके, तो उस घोल को सम्पृक्त घोल (सैचुरेटिड सॉलूशन) कहते हैं । देवशक्तियों को सोम से सम्पृक्त किया जाता है ।]

८५५९. भद्रा वस्त्रा समन्या३ वसानो महान्कविर्निवचनानि शंसन् ।
आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥२ ॥

वीरोचित शौर्य एवं शोभा - सम्पन्न - महान् ज्ञानी, स्तुत्य, चैतन्य, विशिष्ट द्रष्टा हे सोमदेव ! आप पवित्र होकर यज्ञशाला के पात्रों में प्रविष्ट हों ॥२ ॥

८५६०. समु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे ।
अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३ ॥

यशस्वियों में श्रेष्ठ, भूमि में प्रकट, तृप्तिदायक सोम छन्ने द्वारा शुद्ध होता है । हे पवित्र होने वाले सोमदेव ! आप शब्द करते हुए कल्याणकारी साधनों से हमारी रक्षा करें ॥३ ॥

८५६१. प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमं हिनोत महते धनाय ।
स्वादुः पवाते अति वारमव्यमा सीदाति कलशं देवयुर्नः ॥४ ॥

मधुर, तेजस्वी सोमरस छन्ने से छनकर पवित्रता को धारण करते हुए पात्र में स्थिर रहे । वैभव प्राप्ति की कामना से हम स्तुत्य सोमरस को प्रेरित करते हुए देवताओं की अर्चना करें ॥४ ॥

८५६२. इन्दुर्देवानामुप सख्यमायन्त्सहस्रधारः पवते मदाय।
नृभिः स्तवानो अनु धाम पूर्वमगन्निन्द्रं महते सौभगाय ॥५ ॥

देवों की मित्रता की कामना से यह सोम आनन्द प्रदान करने के लिए हजारों धाराओं से प्रवाहित होता है। याजकों द्वारा स्तुत्य सोम सनातन स्वरूप को प्राप्त करता हुआ इन्द्र के पास पहुँचकर सौभाग्यशाली बनता है ॥५ ॥

८५६३. स्तोत्रे राये हरिरर्षा पुनान इन्द्रं मदो गच्छतु ते भराय।
देवैर्याहि सरथं राधो अच्छा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६ ॥

हे हरिताभ सोमदेव ! आप परिष्कृत होकर स्तोत्रों को स्वीकार करते हुए हमें ऐश्वर्य प्रदान करें। आपका आनन्द प्रदायक रस युद्ध में इन्द्रदेव को प्राप्त हो। देवों के साथ एक ही रथ पर आरूढ़ होकर श्रेष्ठ साधनों से आप हमारी रक्षा करते हुए हमें धन प्रदान करें ॥६ ॥

८५६४. प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥७ ॥

ऋषि उशना के सदृश स्तोत्रों का पाठ करने वाले ऋत्विज् देवताओं के जन्म वृत्तान्तों का वर्णन करते हैं। महान् व्रती, तेजस्वी और पवित्र करने वाला श्रेष्ठ सोमरस, शब्द करते हुए पात्र में प्रवाहित होता है ॥७ ॥

८५६५. प्र हंसासस्तृपलं मन्युमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः।
आङ्गूष्यं१ पवमानं सखायो दुर्मर्षं साकं प्र वदन्ति वाणम् ॥८ ॥

हंसों के समान (विवेक-सद्वृत्तियुक्त) बलवान् (धीर-वीर पुरुष) त्रस्त (शत्रुओं या दुःखों से पीड़ित) होने पर इस शीघ्र कार्य करने वाले, मन्युयुक्त, शत्रुनाशक सोम के स्थान (यज्ञ स्थल या आवास) पर पहुँचते हैं। सर्वसुलभ, अजेय, पवमान, साथ रहने वाले इस मित्र (को प्रसन्न करने) के लिए वाद्य बजाते हैं ॥८ ॥

[सोमयज्ञ में मन्त्रों के साथ वाद्य बजाने का भी विधान है। दिव्य सोम के शोधन के लिए ध्वनि विज्ञान के अन्तर्गत मन्त्र ध्वनि तथा वाद्य ध्वनि दोनों का प्रयोग किया जाता रहा है।]

८५६६. स रंहत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीळन्तं मिमते न गावः।
परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥९ ॥

क्रीड़ा करते हुए सहजरूप से ही वह सोम प्रशंसनीय गति को प्राप्त करता है। जिसे अन्यों के द्वारा मापा नहीं जा सकता, उसका तेजस्वी प्रकाश, दिन में हरित (हरणशील किरणों वाला) तथा सौम्य आभायुक्त होता है ॥९ ॥

[दिन में सोम प्रवाह सूर्य किरणों के साथ हरणशील अथवा वनस्पतियों के साथ हरा दिखता है। रात्रि में वह चन्द्र किरणों से सौम्य दिखता है।]

८५६७. इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातीर्वरिवः कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥१० ॥

इन्द्रदेव की शक्ति बढ़ाने वाला, होताओं को धन देने वाला , शक्ति का स्वामी सोम हर्ष बढ़ाने के लिए बर्तन में छाना जाता है। वह सोमरस राक्षसों को नष्ट करता है और दुष्टों को मार भगाता है ॥१० ॥

८५६८. अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः।
इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥११ ॥

पत्थरों की सहायता से निकाला गया, तेजस्वी, सुखदायी सोम अपनी मधुर धार से पवित्रता को प्राप्त हो रहा है। इन्द्रदेव का सान्निध्य पाने की इच्छा वाला वह सोम उनके उत्साह को बढ़ाते हुए सभी को तृप्त कर रहा है ॥११॥

८५६९. अभि प्रियाणि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन्।
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये ॥१२॥

ऋतुओं को धारण करने वाला व्रतशील तेजस्वी सोम अपने मधुर रस से देवताओं को तृप्त करता है। अँगुलियों द्वारा पवित्र होते हुए पात्र में स्थिर हो रहा है ॥१२॥

८५७०. वृषा शोणो अभिकनिक्रदद्गा नदयन्नेति पृथिवीमुत द्याम्।
इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचेतयन्नर्षति वाचमेमाम् ॥१३॥

निरन्तर गतिशील सुखों की वर्षा करने वाले हे दिव्य सोमदेव ! आप द्युलोक से पृथिवी तक किरणों के बीच मेघ जैसी गर्जना-प्रतिध्वनियाँ उत्पन्न करते हुए संव्याप्त हैं। हम इन्द्रदेव की तरह आपके निर्देशों को सुनते हैं। आप भी अपनी उपस्थिति का बोध कराते हुए हमारी स्तुतियों को स्वीकार करते हैं ॥१३॥

८५७१. रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम्।
पवमानः संतनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ॥१४॥

अपने आप में मधुर, गाय के दूध में मिश्रित होने के बाद अधिक सुस्वाद हुए हे सोमदेव ! पानी में शोधित होकर आप (निरन्तर) धार रूप में इन्द्रदेव को प्राप्त हों ॥१४॥

८५७२. एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन्वधस्नैः।
परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः ॥१५॥

हे उत्साहवर्द्धक सोमदेव ! आप छाये हुए मेघों को जलवृष्टि के लिए प्रेरित करते हुए आनन्ददायी बनें तथा पानी के साथ श्वेत वर्ण धारण करके गौ दुग्ध के रूप में हमारे चारों ओर स्रवित हों ॥१५॥

८५७३. जुष्ट्वी न इन्दो सुपथा सुगान्युरौ पवस्व वरिवांसि कृण्वन्।
घनेव विष्वग्दुरितानि विघ्नन्नधि ष्णुना धन्व सानो अव्ये ॥१६॥

हे सोमदेव ! स्तुतियों से हर्षित होकर, श्रेष्ठ मार्ग से, सुगमता पूर्वक धन प्रदान करते हुए आप रस रूप में कलश में प्रतिष्ठित हों तथा सभी राक्षसों को आयुधों से नष्ट करके अनश्वर छलनी में उच्च भाग से धारा रूप में प्रवाहित हों ॥१६॥

८५७४. वृष्टिं नो अर्ष दिव्यां जिगत्नुमिळावतीं शंगयीं जीरदानुम्।
स्तुकेव वीता धन्वा विचिन्वन् बन्धूँरिमाँ अवराँ इन्दो वायून् ॥१७॥

हे सोमदेव ! आप हमारे लिए सुखदायक, जीवनप्रद, द्युलोक से आने वाली अन्नयुक्त वृष्टि करें। पृथ्वी पर चलने वाली वायु से सन्तति के समान सम्बन्ध बनाते हुए हम उसे (वृष्टि को) प्राप्त करें ॥१७॥

८५७५. ग्रन्थिं न वि ष्य ग्रथितं पुनान ऋजुं च गातुं वृजिनं च सोम।
अत्यो न क्रदो हरिरा सृजानो मर्यो देव धन्व पस्त्यावान् ॥१८॥

जिस प्रकार ग्रन्थि को खोलते हैं, उसी प्रकार हे सोमदेव ! हमें आप पापों से मुक्ति दिलाएँ तथा हमारे मार्ग को सुगम बनाते हुए हमें बलशाली बनाएँ । हे हरिताभ दिव्य सोमदेव ! शोधित होते समय अश्व के समान ध्वनि करते हुए , शत्रुओं का संहार करते हुए आप अपने निवास स्थल कलश में स्थापित हों ॥१८ ॥

८५७६. **जुष्टो मदाय देवतात इन्दो परि ष्णुना धन्व सानो अव्ये ।**
सहस्रधारः सुरभिरदब्धः परि स्रव वाजसातौ नृषह्ये ॥१९ ॥

हे सोमदेव ! अनश्वर (या उनकी) छलनी पर धारा रूप से प्रवाहित होकर आप आनन्दवर्द्धक स्वरूप प्राप्त करते हुए शोधित हों, हिंसारहित होते हुए सुगन्ध युक्त हजारों धाराओं में प्रवाहित हों तथा संग्राम में जाने वाले वीरों के लिए आप अन्न प्रदान करने वाला रस स्रवित करें ॥१९ ॥

८५७७. **अरश्मानो येऽरथा अयुक्ता अत्यासो न ससृजानास आजौ ।**
एते शुक्रासो धन्वन्ति सोमा देवासस्ताँ उप याता पिबध्यै ॥२० ॥

जिस प्रकार बन्धन एवं रथादि से मुक्त घोड़ा युद्ध में द्रुतगति से लक्ष्य तक पहुँचता है, उसी प्रकार परिष्कृत सोमरस कलशों में शीघ्रता से गतिमान् होता है । देवगण उस आनन्ददायी सोमरस का पान करने के लिए यज्ञस्थल पर जाते हैं ॥२० ॥

८५७८. **एवा न इन्दो अभि देववीतिं परि स्रव नभो अर्णश्चमूषु ।**
सोमो अस्मभ्यं काम्यं बृहन्तं रयिं ददातु वीरवन्तमुग्रम् ॥२१ ॥

हे सोमदेव ! आप द्युलोक के जल से हमारे यज्ञ के कलशों को भर दें तथा वीर सन्तति युक्त धन प्रदान करने वाला सोमरस हमें प्रदान करें ॥२१ ॥

८५७९. **तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग्ज्येष्ठस्य वा धर्मणि क्षोरनीके ।**
आदीमायन्वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ॥२२ ॥

जब बोलने वाले (मंत्र वक्ता) तेजस्वी पुरुष के अन्त:करण से वाणी (स्तुति) निकलती है, मुख से शब्द उच्चरित होते हैं, तभी ज्येष्ठ तेजस्वी सोम लाया जाता है । उसी समय कलश में स्थित श्रेष्ठ, सेवनीय , पालक सोम की इच्छा करने वाले (देवों-याजकों) को गौएँ (इन्द्रियाँ-पोषण सामर्थ्य) प्राप्त होती हैं ॥२२ ॥

८५८०. **प्र दानुदो दिव्यो दानुपिन्व ऋतमृताय पवते सुमेधाः ।**
धर्मा भुवद्वृजन्यस्य राजा प्र रश्मिभिर्दशभिर्भारि भूम ॥२३ ॥

दाताओं (श्रेष्ठ कार्य में धन लगाने वालों) को धन प्रदान करने वाला, द्युलोक से उत्पन्न हुआ, उत्तम ज्ञान से युक्त सोम इन्द्रदेव के निमित्त ज्ञानवर्द्धक रस प्रदान करता है । उत्तम बलों के धारणकर्त्ता राजा सोम को दस रश्मियों (किरणों या अँगुलियों) द्वारा विशेष विधि से धारण किया जाता है ॥२३ ॥

८५८१. **पवित्रेभिः पवमानो नृचक्षा राजा देवानामुत मर्त्यानाम् ।**
द्विता भुवद्रयिपती रयीणामृतं भरत्सुभृतं चार्विन्दुः ॥२४ ॥

दिव्य द्रष्टा , शोधित होने वाला यह पवित्र सोम , देवगणों तथा मनुष्यों का राजा तथा समस्त धनों का स्वामी है । यह उत्तम तथा सुन्दर सोम, विशेष रीति से जल को धारण करते हुए देवगणों तथा मनुष्यों में विद्यमान रहता है ॥२४ ॥

८५८२. अर्वाँ इव श्रवसे सातिमच्छेन्द्रस्य वायोरभि वीतिमर्ष ।
स नः सहस्रा बृहतीरिषो दा भवा सोम द्रविणोवित्पुनानः ॥२५ ॥

हे सोमदेव ! जिस प्रकार अश्व युद्ध क्षेत्र में जाते हैं , उसी प्रकार आप इन्द्रदेव एवं वायुदेव के पान हेतु तथा हमें अन्न और धन का लाभ देने के लिए गतिशील हों । हे सोमदेव ! आप शोधित होकर हमें सभी प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करें ॥२५ ॥

८५८३. देवाव्यो नः परिषिच्यमानाः क्षयं सुवीरं धन्वन्तु सोमाः ।
आयज्यवः सुमतिं विश्ववारा होतारो न दिवियजो मन्द्रतमाः ॥२६ ॥

जल के साथ मिश्रित होकर पात्र में रहने वाला, देवगणों को तृप्त करने वाला सोमरस हमें उत्तम सन्तति युक्त आवास प्रदान करे । संयुक्त रूप से यज्ञ करने वाले , सबके लिए स्वीकार्य हवन करने वाले, द्युलोकवासी देवगणों के निमित्त आहुति देने वाले के समान यह सोमरस अत्यन्त आनन्द प्रदान करने वाला है ॥२६ ॥

८५८४. एवा देव देवताते पवस्व महे सोम प्सरसे देवपानः ।
महश्चिद्धि ष्मसि हिताः समर्ये कृधि सुष्ठाने रोदसी पुनानः ॥२७ ॥

हे सोमदेव !आप इस दैवी यज्ञ में देवों के पान योग्य सोमरस प्रदान करें । सोमरस की प्रेरणा से वे देवगण संग्राम में दुर्दान्त शत्रुओं को भी हरा सकें । हे सोमदेव ! परिष्कृत होकर आप भूलोक तथा पृथ्वी लोक को भली-भाँति रहने के योग्य बनायें ॥२७ ॥

८५८५. अश्वो न क्रदो वृषभिर्युजानः सिंहो न भीमो मनसो जवीयान् ।
अर्वाचीनैः पथिभिर्ये रजिष्ठा आ पवस्व सौमनसं न इन्दो ॥२८ ॥

याजकों द्वारा एकत्रित किया गया सोमरस सिंह के समान भयंकर, मन के समान द्रुतगामी तथा अश्व के समान ध्वनि करने वाला है । हे सोमदेव ! सुगम तथा प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने वाले मार्गों से सद्भावपूर्वक आप हमें रस प्रदान करें ॥२८ ॥

८५८६. शतं धारा देवजाता असृग्रन्त्सहस्रमेनाः कवयो मृजन्ति ।
इन्दो सनित्रं दिव आ पवस्व पुरएतासि महतो धनस्य ॥२९ ॥

हे सोमदेव ! देवगणों के निमित्त उत्पन्न हुई आपकी सौ धाराएँ प्रवाहित हुई, जिन्हें हजारों प्रकार से ज्ञानीजन पवित्र बनाते हैं । हे सोमदेव ! आप महान् ऐश्वर्य के दाता बनकर हमें द्युलोक का धन प्रदान करें ॥२९ ॥

८५८७. दिवो न सर्गा अससृग्रमह्नां राजा न मित्रं प्र मिनाति धीरः ।
पितुर्न पुत्रः क्रतुभिर्यतान आ पवस्व विशे अस्या अजीतिम् ॥३० ॥

जिस प्रकार दिन में सूर्य की किरणें प्रसरित होती हैं, उसी प्रकार सोमरस की धाराएँ प्रवाहित होती हैं । बुद्धिवर्द्धक यह राजा सोम मित्र की भाँति किसी के लिए भी दुःखदायी नहीं हैं , अपने कार्य कौशल से उन्नति करने वाले पुत्र के समान सम्पूर्ण प्रजा को उन्नतिशील बनाने वाला सोमरस हमें प्राप्त हो ॥३० ॥

८५८८. प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन्वारान्यत्पूतो अत्येष्यव्यान् ।
पवमान पवसे धाम गोनां जज्ञानः सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥३१ ॥

हे सोमदेव ! जब आप अनश्वर छन्ने से पार निकलते हैं, तब आपकी मधुर धाराएँ प्रकट होती हैं । गौओं के धाम (किरणों के क्षेत्र) में प्रकट एवं शुद्ध होकर आप सूर्य को तेजस्विता से पूर्ण कर देते हैं ॥३१ ॥

[वैज्ञानिक शोध कर रहे हैं कि सूर्य को ऊर्जा-ईंधन कहाँ से प्राप्त होता है । ऋषि कहते हैं - आकाश में सोम को परिष्कृत करके-सौर ऊर्जा उत्पन्न करने का दिव्य तंत्र चल रहा है ।]

८५८९. **कनिक्रददनु पन्थामृतस्य शुक्रो वि भास्यमृतस्य धाम ।**
स इन्द्राय पवसे मत्सरवान्हिन्वानो वाचं मतिभिः कवीनाम् ॥३२ ॥

वह अमृत तुल्य सोम यज्ञ मार्ग से गमन करता हुआ, ध्वनि करता हुआ यज्ञस्थल को तेजस्वी बनाकर प्रकाशित करता है । ज्ञानीजनों की स्तुतियों को स्वीकार कर वह आनन्दवर्द्धक सोम घोषणापूर्वक इन्द्रदेव को रस प्रदान करता है ॥३२ ॥

८५९०. **दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षि सोम पिन्वन्धाराः कर्मणा देववीतौ ।**
एन्दो विश कलशं सोमधानं क्रन्दन्निहि सूर्यस्योप रश्मिम् ॥३३ ॥

हे सोमदेव ! आप द्युलोक में उत्पन्न होने वाले श्रेष्ठ पत्तों से युक्त हैं । यज्ञीय कर्म के साथ इस दैवी यज्ञ में चारों तरफ देखते हुए, सूर्य किरणों को आत्मसात् करते हुए घोषणापूर्वक आप सोम कलश में रस की धाराओं के रूप में प्रवेश करें ॥३३ ॥

८५९१. **तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।**
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥३४ ॥

याजकगण सत्य को धारण करने वाले, तीनों वेदों के मंत्रों से दिव्य, श्रेष्ठ सोम की स्तुति करते हैं । बैल के पास जाने वाली गौओं की तरह उत्तम सुख की इच्छा करने वाले स्तोता, सोम के पास पहुँचते हैं ॥३४ ॥

८५९२. **सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।**
सोमः सुतः पूयते अज्यमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥३५ ॥

निकालने के बाद शोधित हुआ सोम पात्र में गिरता है । ज्ञानीजन अपनी बुद्धियों द्वारा त्रिष्टुप् छन्द के मंत्र से उसकी स्तुति करते हैं । दुधारू गौएँ (परमार्थ निष्ठ बुद्धियाँ) सोम की इच्छा करती हैं ॥३५ ॥

८५९३. **एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति ।**
इन्द्रमा विश बृहता रवेण वर्धया वाचं जनया पुरंधिम् ॥३६ ॥

हे सोमदेव ! जल मिश्रित तथा शुद्ध होते हुए आप हमारे कल्याण के लिए ध्वनि करते हुए शोधित हों तथा आनन्दपूर्वक इन्द्रदेव को तृप्त करें । हमारी प्रार्थना को स्वीकार करते हुए आप हमें सद्बुद्धि प्रदान करें ॥३६ ॥

८५९४. **आ जागृविर्विप्र ऋता मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।**
सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥३७ ॥

चैतन्य, सत्य स्तुतियों के ज्ञाता सोमदेव शुद्ध होकर पात्र में उतरते हैं । उत्तम कर्म-कुशल, देहधारी, मनोकांक्षी अध्वर्यु इसे एकत्रित करके सुरक्षित रखते हैं ॥३७ ॥

८५९५. **स पुनान उप सूरे न धातोभे अप्रा रोदसी वि ष आवः ।**
प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती स तू धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥३८ ॥

पवित्र होने वाला, वह सोम, इन्द्रदेव को प्राप्त होता है । यह सोम आकाश और पृथ्वी को अपने तेज से पूर्ण करने वाला है; जिसकी अत्यन्त प्रिय रस युक्त धाराएँ हमारा संरक्षण करती हैं और हमें ऐश्वर्य प्रदान करती हैं ॥३८ ॥

८५९६. **स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषावीत् ।**
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमुष्णन् ॥३९ ॥

वृद्धि पाने वाला, देवत्व की वृद्धि करने वाला, इष्ट प्रदायक, शोधित सोम अपने तेज से हमारी रक्षा करे । मंत्रज्ञ, आत्मज्ञानी, पदज्ञ (विभिन्न चरणों को जानने वाले) , सर्वज्ञ हमारे पूर्वज अद्रि (पर्वत या मेघों) से गौओं (खोई गौओं या किरणों) को प्राप्त कर सकें ॥३९ ॥

८५९७. **अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मञ्जनयन्प्रजा भुवनस्य राजा ।**
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुः ॥४० ॥

जलयुक्त, समस्त भुवनों का राजा बलवर्द्धक अभिषुत सोम सर्वप्रथम प्रजाजनों का उत्साह बढ़ाकर उनकी उन्नति करते हुए सबसे महान् हो गया ॥४० ॥

८५९८. **महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।**
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥४१ ॥

महान् शक्तिशाली दिव्य सोम द्वारा महान् कार्य सम्पादित होते हैं । वही जल का गर्भ (धारण करने वाला) और देवताओं को पोषण देने वाला है । शुद्ध होकर वही इन्द्रदेव को सामर्थ्य प्रदान करता है और वही सूर्य में तेज स्थापित करता है ॥४१ ॥

८५९९. **मत्सि वायुमिष्टये राधसे च मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः ।**
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम ॥४२ ॥

हे दिव्य सोमदेव ! हमें अन्न और धन की प्राप्ति कराने हेतु आप वायु को प्रमुदित करें । शोधित किये गये आप मित्र और वरुण को, मरुत् की सामर्थ्यों को, आकाश और पृथ्वी के हर्ष को बढ़ाने वाले हों ॥४२ ॥

८६००. **ऋजुः पवस्व वृजिनस्य हन्तापामीवां बाधमानो मृधश्च ।**
अभिश्रीणन्पयः पयसाभि गोनामिन्द्रस्य त्वं तव वयं सखायः ॥४३ ॥

हे सोमदेव ! आप दुष्ट नाशक, रोग निवारक तथा शत्रुनाशक रस सुगमता से प्रदान करें । हे सोमदेव ! आप इन्द्रदेव के मित्र हैं और हम आपके मित्र हैं , अत: गौ दुग्ध मिश्रित सोमरस हमें भी प्रदान करें ॥४३ ॥

८६०१. **मध्वः सूदं पवस्व वस्व उत्सं वीरं च न आ पवस्वा भगं च ।**
स्वदस्वेन्द्राय पवमान इन्दो रयिं च न आ पवस्वा समुद्रात् ॥४४ ॥

हे सोमदेव ! आप मधुरता से युक्त अन्न तथा धन प्रदान करने वाला रस हमें प्रदान करें । आप सन्तानरूपी धन भी प्रदान करें । हे शोधित सोमदेव ! इन्द्रदेव के लिए रस देते हुए आप हमें भी अन्तरिक्ष से धन प्रदान करने वाला रस दें ॥४४ ॥

८६०२. **सोमः सुतो धारयात्यो न हित्वा सिन्धुर्न निम्नमभि वाज्यक्षाः ।**
आ योनिं वन्यमसदत्पुनानः समिन्दुर्गोभिरसरत्समद्भिः ॥४५ ॥

निकाला गया सोमरस अश्व के समान तीव्रगति से धारा रूप में प्रवाहित होता है । वह बलशाली सोम नीचे रखे कलश में नदी के समान गमन करता है । शोधित सोम वनों की योनि (वनस्पति आदि की उर्वरता में अथवा काष्ठ पात्र) में प्रतिष्ठित होता है । वह सोम गोदुग्ध में मिश्रित होकर जल के साथ शोधित किया जाता है ॥४५ ॥

८६०३. एष स्य ते पवत इन्द्र सोमश्चमूषु धीर उशते तवस्वान् ।
स्वर्चक्षा रथिरः सत्यशुष्मः कामो न यो देवयतामसर्जि ॥४६ ॥

हे इन्द्रदेव ! सर्वद्रष्टा, उत्तम रथी, श्रेष्ठ बलों से युक्त, धैर्यवान् तथा द्रुतगामी सोमरस याजकों की इच्छा के समान (आपकी) इच्छा पूर्ति के लिए कामना करते हुए कलश में प्रतिष्ठित होता है ॥४६ ॥

८६०४. एष प्रत्नेन वयसा पुनानस्तिरो वर्पांसि दुहितुर्दधानः ।
वसानः शर्म त्रिवरूथमप्सु होतेव याति समनेषु रेभन् ॥४७ ॥

यह सोमरस अनादि काल से हविष्यान्न के साथ शोधित किया जाता रहा है । पृथ्वी के रूपों को दूर करता हुआ (देशभेद-रूप भेद मिटाता हुआ सम्पूर्ण पृथ्वी को) शीत, उष्ण और वर्षा इन तीनों कालों में समान रूप से प्राप्त होने वाला यह सोमरस ध्वनि करता हुआ यज्ञ में स्थापित होता है ॥४७ ॥

८६०५. नू नस्त्वं रथिरो देव सोम परि स्रव चम्वोः पूयमानः ।
अप्सु स्वादिष्ठो मधुमाँ ऋतावा देवो न यः सविता सत्यमन्मा ॥४८ ॥

हे सोमदेव ! स्वाद युक्त , मधुर , ज्ञानवान् तथा सर्वप्रेरक बनकर रथ में आरूढ़ होकर आप जल मिश्रित रस के रूप में शोधित होते हुए यज्ञपात्र में स्थापित हों । आप देवों की भाँति सत्य रूप एवं मननीय स्तुतियों को श्रवण करते हुए अपना रस प्रदान करें ॥४८ ॥

८६०६. अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानो३ऽभि मित्रावरुणा पूयमानः ।
अभी नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥४९ ॥

हे सोम ! आप स्तुति के बाद वायुदेव के पान हेतु प्रस्तुत हों । पवित्र होकर मित्र और वरुण को प्राप्त हों । नेतृत्ववान्, बुद्धिप्रदाता, रथ में सवार अश्विनीकुमारों की ओर पहुँचें और वज्रतुल्य भुजाओं वाले इन्द्र के पास जाएँ

८६०७. अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान्रथिनो देव सोम ॥५० ॥

हे दिव्य सोमदेव ! आप हमें उत्तम वस्त्र, तेजस्वी स्वर्ण आदि ऐश्वर्य प्रदान करें । रथों के लिए आप हमें अश्व दें । शुद्ध हुए आप हमें नव प्रसूता दुधारू गौएँ प्रदान करें ॥५० ॥

८६०८. अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः ।
अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः ॥५१ ॥

हे सोमदेव ! शुद्ध हुए आप हमें दिव्य धनों एवं पार्थिव ऐश्वर्यों से युक्त करें । जमदग्नि आदि ऋषियों के समान सम्पत्ति (सामर्थ्य) प्रदान करें । हमें श्रेष्ठ धन के सदुपयोग करने की सामर्थ्य आपसे प्राप्त हो ॥५१ ॥

८६०९. अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।
ब्रध्नश्चिदत्र वातो न जूतः पुरुमेधश्चित्तकवे नरं दात् ॥५२ ॥

हे सोमदेव ! आप पवित्र हुई धारा से हमें ऐश्वर्य प्रदान करें । जिस प्रकार प्रकृति के मूल आधार सूर्यदेव, वायुदेव को प्रवाहित करते हैं, उसी प्रकार आप वसतीवरी नामक कलश में प्रवाहित होकर बुद्धिशाली इन्द्रदेव को प्राप्त हों तथा हमें सुसन्तति प्रदान करें ॥५२ ॥

८६१०. उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।
षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद्रणाय ॥५३ ॥

हे सोमदेव ! सबके लिये स्तुति योग्य स्थल, हमारे यज्ञ में आप पवित्र धारा के साथ शुद्ध हों । हे शत्रुनाशक सोमदेव ! आप पेड़ों से मिलने वाले पके फल की भाँति (सुगमता से प्राप्त होने वाले परिपक्व) साठ हजार धन (स्वर्ण मुद्राएँ) , युद्ध में विजय हेतु हमें प्रदान करें ॥५३ ॥

८६११. महीमे अस्य वृषनाम शूषे माँश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे ।
अस्वापयन्निगुतः स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितो अचेतः ॥५४ ॥

साधकों पर सुखों की वर्षा करना और दुराचारियों को पराजित कर झुकाना ये दो आपके सुखदायी कार्य हैं । हे सोमदेव ! आप संग्राम द्वारा (अस्त्र प्रहार द्वारा) , मल्लयुद्ध द्वारा अथवा छुपकर हानि पहुँचाने वाले शत्रुओं (दोषों) को शक्तिहीन करके नष्ट करें तथा जड़ता को (मूर्खता को) हमसे दूर करें ॥५४ ॥

८६१२. सं त्री पवित्रा विततान्येष्यन्वेकं धावसि पूयमानः ।
असि भगो असि दात्रस्य दातासि मघवा मघवद्भ्य इन्दो ॥५५ ॥

हे सोमदेव ! तीन (अग्नि, वायु, जल) विशाल छलनियों से शोधित होकर, आप एक (कलश या भूमण्डल) के पास दौड़कर पहुँचते हैं । आप ऐश्वर्यवान् हैं , दान योग्य धन के दाता तथा धनवानों के भी धनपति हैं ॥५५ ॥

८६१३. एष विश्ववित्पवते मनीषी सोमो विश्वस्य भुवनस्य राजा ।
द्रप्साँ ईरयन्विदथेष्विन्दुर्वि वारमव्यं समयाति याति ॥५६ ॥

सर्वज्ञ ज्ञानी तथा सभी भुवनों के राजा ये सोमदेव अनश्वर छलनी में दोनों ओर से प्रवाहित होते हुए सभी यज्ञों में रस प्रदान करते हैं ॥५६ ॥

[सोम अन्तरिक्षीय शोधक छन्ने (आयनोस्फियर) से पृथ्वी की ओर प्रकृति यज्ञ द्वारा तथा पृथ्वी से आकाश की ओर देव यज्ञों द्वारा संचरित होता है ।]

८६१४. इन्दुं रिहन्ति महिषा अदब्धाः पदे रेभन्ति कवयो न गृध्राः ।
हिन्वन्ति धीरा दशभिः क्षिपाभिः समञ्जते रूपमपां रसेन ॥५७ ॥

महान् ऋषिगण इस अविनाशी सोमरस का स्वाद लेते हैं । धन की कामना वाले ज्ञानी जनों के समान विद्वान् याजक जल के साथ इस सोमरस को दसों (दिशाओं या अँगुलियों) से मिलाते हुए उनकी स्तुति करते हैं ॥५७ ॥

८६१५. त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥५८ ॥

हे संसार को शुद्ध-पवित्र करने वाले सोमदेव ! आपकी सहायता से हम जीवन-संग्राम में निरन्तर उत्तम कर्मों का चयन करें । इसके कारण अदिति, मित्र, वरुण, पृथ्वी, सिन्धु और द्युलोक हमें यशोभागी बनाएँ ॥५८ ॥

[सूक्त - ९८]

[**ऋषि** - अम्बरीष वार्षागिर और ऋजिश्वा भारद्वाज । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - अनुष्टुप्, ११ बृहती ।]

८६१६. **अभि नो वाजसातमं रयिमर्ष पुरुस्पृहम्।**
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभ्वासहम् ॥१ ॥

सैकड़ों लोगों द्वारा प्रशंसित, हजारों का पोषक, विशेष ओजस्वी, बल बढ़ाने वाला यह सोमरस हमें धन प्रदान करे ॥१ ॥

८६१७. **परि ष्य सुवानो अव्ययं रथे न वर्माव्यत।**
इन्दुरभि द्रुणा हितो हियानो धाराभिरक्षाः ॥२ ॥

जिस प्रकार कवच से युक्त पुरुष रथ में आरूढ़ होता है, उसी प्रकार स्तुत्य सोम कलश से डालने पर धारा रूप में प्रवाहित होता है ॥२ ॥

८६१८. **परि ष्य सुवानो अक्षा इन्दुरव्ये मदच्युतः ।**
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा नैति गव्ययुः ॥३ ॥

सूर्य रश्मियों की कामना करने वाला, स्वाभाविक तेज से युक्त यह श्रेष्ठ सोम धारा रूप में यज्ञार्थ प्रयुक्त होता है । याजकों को आनंदित करने के लिए प्राकृतिक ढंग से परिष्कृत होता है ॥३ ॥

८६१९. **स हि त्वं देव शश्वते वसु मर्ताय दाशुषे।**
इन्दो सहस्रिणं रयिं शतात्मानं विवाससि ॥४ ॥

हे सोमदेव ! आप सदैव दान (श्रेष्ठ कार्यों के लिये धन) देने वाले मनुष्यों को सैकड़ों प्रकार का धन प्रदान करते हैं ॥४ ॥

८६२०. **वयं ते अस्य वृत्रहन्वसो वस्वः पुरुस्पृहः ।**
नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्नस्याध्रिगो ॥५ ॥

हे उत्तम आश्रय देने वाले सोमदेव ! सबके द्वारा सराहनीय, सभी को पोषण देने वाली आपकी विभूतियों का हम सान्निध्य-लाभ चाहते हैं । सूर्य रश्मियों के साथ रहने वाले हे सोमदेव ! आपके द्वारा प्रदत्त अन्नादि (पोषक पदार्थों) के उपयोग से हम सुखी हों ॥५ ॥

८६२१. **द्विर्यं पञ्च स्वयशसं स्वसारो अद्रिसंहतम्।**
प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त्यूर्मिणम् ॥६ ॥

पाषाणों द्वारा कूटकर निष्पन्न, कीर्तिवान्, सबके इष्ट और इन्द्रदेव के प्रिय सोम को दसों अँगुलियाँ भली प्रकार शोधित करती हैं और जलों से युक्त करती हैं ॥६ ॥

८६२२. **परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण।**
यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥७ ॥

हरित और भूरे रंग के सुन्दर सोम को जल से पवित्र बनाते हैं । यह सोम इन्द्र आदि देवताओं के निकट अपने हर्ष प्रदायक गुणों के साथ जाता है ॥७ ॥

८६२३. **अस्य वो ह्यवसा पान्तो दक्षसाधनम् ।**
यः सूरिषु श्रवो बृहद्दधे स्व१र्ण हर्यतः ॥८ ॥

हे देवो ! रक्षण सामर्थ्य से युक्त तथा बलवर्द्धक इस सोमरस का आप पान करें । यह सोमरस ज्ञानी जनों को सूर्य के समान तेजस्विता प्रदान करता है ॥८ ॥

८६२४. **स वां यज्ञेषु मानवी इन्दुर्जनिष्ट रोदसी ।**
देवो देवी गिरिष्ठा अस्रेधन्तं तुविष्वणि ॥९ ॥

हे द्यु तथा पृथिवी लोक ! यज्ञों में मानवों का हितकारी तथा तेजस्वी सोमरस उत्पन्न किया जाता है । यह तेजस्वी सोमरस पर्वत के उच्च शिखरों में रहता है । इसे यज्ञ में याजक तैयार करते हैं ॥९ ॥

८६२५. **इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।**
नरे च दक्षिणावते देवाय सदनासदे ॥१० ॥

हे सोमदेव ! दुष्ट संहारक इन्द्रदेव के पान हेतु, यज्ञ में दक्षिणा देने वाले वीर के लिए और यज्ञ करने वाले यजमान के लिए आप पात्र में प्रवाहित होकर स्थिर हों ॥१० ॥

८६२६. **ते प्रत्नासो व्युष्टिषु सोमाः पवित्रे अक्षरन् ।**
अपप्रोथन्तः सनुतर्हुरश्चितः प्रातस्ताँ अप्रचेतसः ॥११ ॥

प्रातः काल (ब्राह्ममुहूर्त में) अज्ञानी छिपे हुए चोर (आलस्य) को जो सोम भगा देता है, उस सनातन सोम को प्रातः काल में ही शोधित करके पवित्र बनाते हैं ॥११ ॥

८६२७. **तं सखायः पुरोरुचं यूयं वयं च सूरयः ।**
अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् ॥१२ ॥

हे मित्रो ! तुम और हम उस पराक्रमी, पौष्टिक, श्रेष्ठ सुगन्धि से युक्त , शक्ति सामर्थ्य को बढ़ाने वाले सोमरस को प्राप्त करें ॥१२ ॥

[सूक्त - ९९]

[**ऋषि** - रेभसूनू काश्यप । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - अनुष्टुप् , १ - बृहती ।]

८६२८. **आ हर्यताय धृष्णवे धनुस्तन्वन्ति पौंस्यम् ।**
शुक्रां वयन्त्यसुराय निर्णिजं विपामग्रे महीयुवः ॥१ ॥

जिस प्रकार योद्धा धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाते हैं, उसी प्रकार महान् उद्देश्यों वाले ऋत्विग्गण विद्वानों के सम्मुख प्राणशक्ति संवर्द्धन के लिए वाणी (मंत्रों) से तेजस्वी (सोम) का विस्तार करते हैं ॥१ ॥

८६२९. **अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहते ।**
यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे ॥२ ॥

रात्रि की समाप्ति पर उषा काल में जल मिश्रित परिष्कृत सोम पौष्टिकता प्रदान करता है । साधकों की अँगुलियाँ हरित वर्ण के सोम को कलश पात्रों की ओर प्रेरित करती हैं ॥२ ॥

८६३०. **तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः । यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः॥३ ॥**

परिष्कृत सोमरस आनन्ददायक है, इन्द्रदेव के पीने योग्य है । गौएँ और साधकगण , जिसका पूर्व से सेवन करते रहे हैं और आज भी करते हैं, ऐसे सोम को हम परिष्कृत करते हैं ॥३ ॥

८६३१. **तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत । उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः॥४ ॥**

पवित्र सोमरस के प्रचलित स्तवनों से याजक लोग स्तुति करते हैं । यह कर्म के लिए प्रेरित अँगुलियाँ देवताओं के निमित्त सोम को हविरूप में तैयार करती हैं ॥४ ॥

८६३२. **तमुक्षमाणमव्यये वारे पुनन्ति धर्णसिम् ।**
दूतं न पूर्वचित्तय आ शासते मनीषिणः ॥५ ॥

सबके धारण कर्त्ता, दुग्ध से सिंचित सोमरस को बालों की छलनी से शोधित करके पवित्र बनाते हैं । पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने की कामना से दूत के समान उस सोम की ज्ञानी जन स्तुति करते हैं ॥५ ॥

८६३३. **स पुनानो मदिन्तमः सोमश्चमूषु सीदति । पशौ न रेत आदधत्पतिर्वचस्यते धियः ॥६ ॥**

भार वाहक पशुओं पर जिस तरह वजन लादा जाता है, उसी तरह आनन्ददायक पवित्र सोमरस को पात्र में स्थापित किया जाता है । पात्र में स्थापित वह बुद्धियों का अधिष्ठाता सोम स्तुत्य होता है ॥६ ॥

८६३४. **स मृज्यते सुकर्मभिर्देवो देवेभ्यः सुतः । विदे यदासु संददिर्महीरपो वि गाहते ॥७॥**

मनुष्य समुदाय में दाता के रूप में यह सोम जाना जाता है । उत्तम कर्म करने वाले याजकों के द्वारा देवों के निमित्त निकाला गया सोमरस जल में मिश्रित होकर शोधित किया जाता है ॥७ ॥

८६३५. **सुत इन्दो पवित्र आ नृभिर्यतो वि नीयसे । इन्द्राय मत्सरिन्तमश्चमूष्वा नि षीदसि ॥८ ॥**

हे सोमदेव ! आपका निकाला गया अत्यन्त विशाल तथा अति आनन्ददायी रस इन्द्रदेव के पान हेतु याजकों द्वारा छलनी में शोधित और कलश में स्थापित किया जाता है ॥८ ॥

[सूक्त - १००]

[**ऋषि** - रेभसूनू काश्यप । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

८६३६. **अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।**
वत्सं न पूर्व आयुनि जातं रिहन्ति मातरः ॥१ ॥

गौएँ जिस प्रकार नवजात बछड़े को चाटतीं हैं, उसी प्रकार विद्रोह न करने वाला जल, इन्द्रदेव को प्रिय लगने वाले और चाहने योग्य सोम को प्राप्त होता है ॥१ ॥

८६३७. **पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम् ।**
त्वं वसूनि पुष्यसि विश्वानि दाशुषो गृहे ॥२ ॥

हे कान्तिमान् सोमदेव ! पवित्र होते हुए आप दोनों लोकों (इहलोक एवं परलोक) वाला धन हमें प्रदान करें । आप दाता के घर में नाना प्रकार के ऐश्वर्यों को पुष्ट बनाते हैं ॥२ ॥

८६३८. **त्वं धियं मनोयुजं सृजा वृष्टिं न तन्यतुः ।**
त्वं वसूनि पार्थिवा दिव्या च सोम पुष्यसि ॥३ ॥

हे सोमदेव ! जिस तरह बादल वर्षा करते हैं, उसी तरह मन को श्रेष्ठ बनाने वाली बुद्धि आप हमें प्रदान करें । आप द्युलोक तथा पृथिवी लोक के ऐश्वर्यों को बढ़ाते हैं ॥३ ॥

८६३९. **परि ते जिग्युषो यथा धारा सुतस्य धावति ।**
रंहमाणा व्य१व्ययं वारं वाजीव सानसिः ॥४ ॥

हे सोमदेव ! निकाला गया आपका सेवनीय रस अनश्वर छलनी पर द्रुतगामी धारा के रूप में वीर अश्व की भाँति प्रवाहित होता है ॥४ ॥

८६४०. **क्रत्वे दक्षाय नः कवे पवस्व सोम धारया ।**
इन्द्राय पातवे सुतो मित्राय वरुणाय च ॥५ ॥

हे ज्ञानी सोमदेव ! इन्द्र, वरुण तथा मित्रदेवों के पान हेतु निकाला गया आपका रस हमें ज्ञानवान् तथा बलशाली बनाने के लिए धारारूप में प्रवाहित होते हुए पवित्र बने ॥५ ॥

८६४१. **पवस्व वाजसातमः पवित्रे धारया सुतः । इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तमः ॥**

रस रूप में निष्पन्न हे सोमदेव ! आप अपनी मधुर पोषक धारा से इन्द्र, विष्णु आदि सभी देवताओं की तृप्ति के लिए पवित्र होकर सुपात्र में स्थिर हों ॥६ ॥

८६४२. **त्वां रिहन्ति मातरो हरिं पवित्रे अद्रुहः । वत्सं जातं न धेनवः पवम ·· विधर्मणि ॥**

संस्कारित होने वाले (छनने वाले) हे हरिताभ सोम ! आपस में द्वेष न करने वाली अँगुलियाँ आपको उसी प्रकार निचोड़ती हैं अर्थात् साफ करती हैं , जैसे कोई गाय नवजात बछड़े को प्यार से चाटती है ॥७ ॥

८६४३. **पवमान महि श्रवश्चित्रेभिर्यासि रश्मिभिः ।**
शर्धन्तमांसि जिघ्नसे विश्वानि दाशुषो गृहे ॥८ ॥

हे पवित्र सोमदेव ! आप अपनी सुन्दर रश्मियों के साथ सर्वत्र जाते हुए महान् यशस्वी बनते हैं । आप दाताओं के घरों में जाकर अपना शौर्य दिखाते हुए सम्पूर्ण अन्धकार को समाप्त करते हैं ॥८ ॥

८६४४. **त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे । प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना ॥**

पवित्रता को प्राप्त करने वाले हे महान् व्रती सोमदेव ! अन्तरिक्ष और पृथ्वी को भली-भाँति धारण करते हुए आप अपनी महिमा के अनुरूप कवच को धारण करते हैं ॥९ ॥

[सूक्त - १०१]

[**ऋषि** - १-३ अन्धीगु श्यावाश्वि, ४-६ ययाति नाहुष, ७-९ नहुष मानव, १०-१२ मनु सांवरण । १३-१६ प्रजापति (वाच्य अथवा वैश्वामित्र) । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - अनुष्टुप् , २-३ गायत्री ।]

८६४५. **पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।**
अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्वयम् ॥१ ॥

हे मित्रो ! आप आगे रखे हुए, आनन्द प्रदान करने वाले, इस सोमरस के निकट जाने की इच्छा वाले, लम्बी जिह्वा वाले (जूठा करने वाले) श्वान को दूर भगाओ ॥१ ॥

८६४६. **यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः । इन्दुरश्वो न कृत्व्यः ॥२ ॥**

यज्ञ में सहयोगी यह सोमरस शोधित होते समय अश्व की गति से पात्र में गिरता है ॥२ ॥

८६४७. **तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया । यज्ञं हिन्वन्त्यद्रिभिः ॥३ ॥**

हे ऋत्विजो ! दुष्टतानाशक उस सोम को आवाहित करो और यज्ञ के निमित्त सम्पूर्ण बुद्धिमत्ता के साथ पत्थरों से कूटकर रस निकालो ॥३ ॥

८६४८. **सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।**
पवित्रवन्तो अक्षरन्देवान्गच्छन्तु वो मदाः ॥४ ॥

मधुर और हर्ष प्रदायक सोमरस पवित्र होकर इन्द्रदेव के लिये तैयार होता है । हे सोमदेव ! आपका यह आनन्ददायक रस देवगणों के पास पहुँचे ॥४ ॥

८६४९. **इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् ।**
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ॥५ ॥

स्तोताओं के अनुसार सोम, इन्द्र के लिए शोधित होता है । ज्ञान रक्षक, समर्थ सोम, यज्ञ में प्रयुक्त होता है ॥५॥

८६५०. **सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः । सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥६ ॥**

वाणी का प्रेरक, ऐश्वर्यवान्, इन्द्रदेव का मित्र, सोम प्रतिदिन सहस्रों धाराओं से कलश में शोधित होता है ॥६॥

८६५१. **अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति । पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥७ ॥**

परिपोषक, सेवनीय, सुन्दर यह दिव्य सोम छनते हुए नीचे के बर्तन (भूमण्डल) में प्रवाहित होता है । सभी जीवों का पालक यह सोमरस अपने दिव्य तेज से दोनों लोकों (द्यावा-पृथिवी) को प्रकाशित करता है ॥७ ॥

८६५२. **समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः । सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥८ ॥**

हे सोमदेव ! आनन्द प्राप्ति के लिए प्रेम और स्पर्धा प्रदर्शित करने वाली वाणियाँ आपकी स्तुति करती हैं । शोधित तथा ऐश्वर्यवान् सोमरस भी आनन्द के लिए संचरित होता है ॥८ ॥

८६५३. **य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम् । यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहै ॥९ ॥**

हे सोमदेव ! समाज के पंचजनों (समाज के पाँचों वर्णों अर्थात् सम्पूर्ण समाज) को प्राप्त होने वाला शक्ति-वर्द्धक, प्रशंसा के योग्य रस भरपूर मात्रा में आप हमें प्रदान करें ॥९ ॥

८६५४. **सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।**
मित्राः सुवाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥१० ॥

श्रेष्ठ मार्ग को ठीक ढंग से जानने वाला, मित्र के सदृश, पाप रहित, मन को भली प्रकार से एकाग्र करने वाला, आत्मविद् यह अभिषुत सोमरस हमारे लिए शुद्ध किया जाता है ॥१० ॥

८६५५. **सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि ।**
इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन् वसुविदः ॥११ ॥

पृथ्वी के ऊपर निवास करने वाला, पत्थरों से पीसे जाने वाला, धन प्रदायक यह सोम ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥११ ॥

८६५६. **एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।**
सूर्यासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥१२ ॥

देखने में सूर्य के सदृश तेजस्वी , शुद्ध , विलक्षण सोम दधि से युक्त कलश में स्थिर है तथा जल की स्निग्ध धार से मिलकर पवित्र होने वाला है ॥१२ ॥

८६५७. **प्र सुन्वानस्यान्धसो मर्तो न वृत तद्वचः । अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥१३ ॥**

शोधित होते समय सोम का नाद विघ्न सन्तोषी मनुष्य न सुनें । भृगुओं ने जिस प्रकार मख नाम के दानव को हटा दिया था, उसी प्रकार श्वानों को यज्ञस्थल से हटायें ॥१३ ॥

८६५८. **आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः ।**
सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम् ॥१४ ॥

भ्राता सदृश अत्यन्त प्रिय सोम, माता-पिता की भुजाओं में रक्षित पुत्र के तुल्य छन्ने से प्रवाहित होकर कलश में उतरता है, जैसे जार स्त्री की ओर, वरकन्या की ओर उन्मुख होता है; वैसे ही सोम कलश में प्रविष्ट होता है ॥१४ ॥

८६५९. **स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी ।**
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ॥१५ ॥

पौष्टिक तत्त्वों और रसायनों से युक्त वह वीर सोम, द्यावा-पृथिवी को अपने तेज से व्याप्त कर देता है । यजमान के घर में प्रविष्ट होने के तुल्य शोधित हुआ हरिताभ सोम छनकर कलश को प्राप्त करता है ॥१५ ॥

८६६०. **अव्यो वारेभिः पवते सोमो गव्ये अधि त्वचि ।**
कनिक्रदद्वृषा हरिरिन्द्रस्याभ्येति निष्कृतम् ॥१६ ॥

यह सोम ऊन की बनी छलनी से शोधित किया जाता है । भूमि के पृष्ठ भाग पर स्थापित यह बलवान् सोम ध्वनि करते हुए इन्द्रदेव के समीप जाता है ॥१६ ॥

[सूक्त - १०२]

[**ऋषि** - त्रित आप्त्य । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - उष्णिक् ।]

८६६१. **क्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् । विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥१ ॥**

यह सोम, यज्ञ कर्त्ता तथा महान् जल का पुत्र है। यह यज्ञ को प्रकाशित करने वाले अपने रस को प्रेरित करता है । यह सभी हविष्यान्नों (आहुतियों) में व्याप्त होता हुआ द्युलोक तथा पृथ्वी लोक में व्याप्त रहता है ॥१ ॥

८६६२. **उप त्रितस्य पाष्यो३रभक्त यद् गुहा पदम् । यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥२ ॥**

त्रित (महान्) ऋषि की गुफा में चट्टान के समान कठोर दो फलकों के मध्य से प्राप्त होने वाले सोम रस की, ऋत्विजों ने गायत्री आदि सात छन्दों से स्तुति की ॥२ ॥

८६६३. **त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वेरया रयिम् । मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥३ ॥**

त्रित (तीन भुवनों) के तीनों सवनों (कालों) में व्याप्त हे दिव्य सोमदेव ! आप अपनी रस की धारा से इन्द्रदेव को प्रेरित करें । श्रेष्ठ याजक उन (इन्द्र) का उत्तम स्तोत्रों से गुणगान करते हैं ॥३ ॥

८६६४. **जज्ञानं सप्त मातरो वेधामशासत श्रिये । अयं ध्रुवो रयीणां चिकेत यत् ॥४ ॥**

सात माताओं (धाराओं) से समुत्पन्न (वृद्धि को प्राप्त याजकों की) मेधा शक्तिवर्द्धन हेतु प्रयत्नशील यह सोम धन-सम्पदाओं को भली प्रकार जानने वाला है ॥४ ॥

८६६५. **अस्य व्रते सजोषसो विश्वे देवासो अद्रुहः । स्पार्हा भवन्ति रन्तयो जुषन्त यत् ॥५॥**

जब प्रेम करने वाले , प्रसन्न रहने वाले देवगण इस सोमरस का पान करते हैं, तब इस व्रत में लगे हुए परस्पर द्रोह से रहित सभी देवगण संगठित होते हैं ॥५ ॥

८६६६. **यमी गर्भमृतावृधो दृशे चारुमजीजनन् । कविं मंहिष्ठमध्वरे पुरुस्पृहम् ॥६ ॥**

इस व्यापक, ज्ञानी, पूज्य, अभीष्ट सोम को यज्ञ का विस्तार करने वाले याजकों ने स्थापित किया है ॥६ ॥

८६६७. **समीचीने अभि त्मना यह्वी ऋतस्य मातरा । तन्वाना यज्ञमानुषग्यदञ्जते ॥७ ॥**

जब यज्ञ विस्तारक याजक सोमरस को जल से मिश्रित करते हैं, तब वह सोमरस स्वयं ही परस्पर एकत्रित होकर महान् यज्ञ का निर्माण करने वाले द्युलोक और पृथिवी लोक की ओर गमन करता है ॥७ ॥

८६६८. **क्रत्वा शुक्रेभिरक्षभिर्ऋणोरप व्रजं दिवः । हिन्वन्नृतस्य दीधितिं प्राध्वरे ॥८ ॥**

हे सोमदेव ! आप इस अहिंसित यज्ञ में ऋत को तेजस्वी बनाते हुए ज्ञान और कर्म के तेजस्वी सामर्थ्य से द्युलोक के अन्धकार को नष्ट करें ॥८ ॥

[सूक्त - १०३]

[**ऋषि** - द्वित आप्त्य । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - उष्णिक् ।]

८६६९. **प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उद्यतम् । भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥१ ॥**

हे स्तोतागण ! जिस प्रकार पोषण करने वाले (स्वामी या पिता) पोषितों के लिए प्रयत्न करते हैं, उसी प्रकार आप इस पवित्र होते, स्तुतियों से हर्षित होने वाले , ज्ञानी सोम के लिए प्रेरक मंत्रों का गान करें ॥१ ॥

८६७०. **परि वाराण्यव्यया गोभिरञ्जानो अर्षति । त्री षधस्था पुनानः कृणुते हरिः ॥२ ॥**

गौ दुग्ध से मिश्रित सोमरस अनश्वर छलनी की ओर गमन करता है । परिष्कृत होता हुआ हरिताभ सोमरस तीन स्थानों (द्युलोक, पृथ्वीलोक तथा अन्तरिक्ष) में स्थापित होता है ॥२ ॥

८६७१. **परि कोशं मधुश्चुतमव्यये वारे अर्षति । अभि वाणीर्ऋषीणां सप्त नूषत ॥३ ॥**

पवित्र होता हुआ सोम, अपने मधुर रस को पात्र में पहुँचाता है । ऋषियों की सात पदों वाली वाणियाँ (गायत्री आदि सातों छन्द) इन सोमदेव की प्रार्थना करती हैं ॥३ ॥

८६७२. **परि णेता मतीनां विश्वदेवो अदाभ्यः । सोमः पुनानश्चम्वोर्विशद्धरिः ॥४ ॥**

बुद्धियों को श्रेष्ठ मार्ग पर प्रेरित करने वाला, अहिंसित, सभी देवगणों को प्रिय, शोधित हरिताभ सोमरस कूटकर रस निकालने वाले पत्थरों पर पहुँचता है ॥४ ॥

८६७३. **परि दैवीरनु स्वधा इन्द्रेण याहि सरथम् । पुनानो वाघद्वाघद्भिरमर्त्यः ॥५ ॥**

हे सोमदेव ! स्तोताओं के द्वारा स्तुत्य, अविनाशी, शोधित होते हुए आप दैवी बलों के अनुकूल बनकर एक ही रथ पर इन्द्रदेव के साथ बैठकर चलें ॥५ ॥

८६७४. **परि सप्तिर्न वाजयुर्देवो देवेभ्यः सुतः । व्यानशिः पवमानो वि धावति ॥६ ॥**

देवों के निमित्त निकाला गया, सर्वव्यापी, बल की कामना वाला, तेजस्वी, पवित्र सोमरस अश्व के दौड़ने के समान चारों ओर प्रवाहित होता है ॥७ ॥

[सूक्त - १०४]

[**ऋषि** - पर्वतकाण्व और नारद काण्व अथवा शिखण्डिनी (कश्यप की दो अप्सरा पुत्रियाँ) । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - उष्णिक् ।]

८६७५. **सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत । शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥१ ॥**

हे मित्रो ! (ऋत्विजो) आप आकर बैठो । सोम को शोधित करते समय स्तुति करो । जिस प्रकार शिशु को आभूषणों से सजाते हैं, उसी प्रकार (यज्ञ से) यज्ञीय साधनों से इस सोमरस को विभूषित करो ॥१ ॥

८६७६. **समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम् । देवाव्यं१ मदमभि द्विशवसम् ॥२ ॥**

हे ऋत्विग्गण ! घर के साधनभूत, दिव्य गुणों के रक्षक, आनन्दवर्द्धक, दोनों (दिव्य और पार्थिव) प्रकार से बलवर्द्धक इस सोम को उसी प्रकार जल से मिश्रित करो , जैसे माताओं के साथ बच्चे मिलकर रहते हैं ॥२ ॥

८६७७. **पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये । यथा मित्राय वरुणाय शंतमः ॥३ ॥**

जिस प्रकार शक्ति प्राप्त हो, मित्र एवं वरुण आदि सुख पायें, (वैसे) छन्ने से सोम को शोधित करो ॥३ ॥

८६७८. **अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत । गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥४ ॥**

हे सोमदेव ! आप धन देने वाले हैं, आपका धन हमें प्राप्त हो, इसलिए हमारी वाणी आपकी प्रार्थना करती है । हम आपके रस को गौ दुग्ध से युक्त करते हैं ॥४ ॥

८६७९. **स नो मदानां पत इन्दो देवप्सरा असि । सखेव सख्ये गातुवित्तमो भव ॥५ ॥**

हे आनन्द के स्वामी सोमदेव ! आप तेजस्वी स्वरूप वाले हैं । जिस तरह मित्र अपने मित्र का पथ-प्रदर्शन करता है, उसी तरह आप हमारे श्रेष्ठ मार्गदर्शक हों ॥५ ॥

८६८०. **सनेमि कृध्य१स्मदा रक्षसं कं चिदत्रिणम् । अपादेवं द्वयुमंहो युयोधि नः ॥६ ॥**

हे सोमदेव ! आप हमें अपना अभिन्न मित्र बनाएँ । हमारा नाश करने वाले मायावी तथा दो भाव रखने वाले कपटी, वह चाहे जो भी हो; उन्हें मारते हुए हमारे पापों को दूर करें ॥६ ॥

[सूक्त - १०५]

[**ऋषि** - पर्वतकाण्व और नारद काण्व । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - उष्णिक् ।]

८६८१. **तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत । शिशुं न यज्ञैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥१ ॥**

आनन्ददायी, सोमरस का अभिषवण करते समय हे मित्रो ! इसकी प्रार्थना करो । शिशु को जिस प्रकार अलंकृत करते हैं, उसी प्रकार यज्ञों और स्तुतियों से आप इसे ग्राह्य बनाओ ॥१ ॥

८६८२. सं वत्सइव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते । देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥२ ॥

देव संरक्षक, प्रसन्नतादायक, स्तुतियों से शोधित और याजकों के प्रेरक सोमरस को जल से मिश्रित करते हैं । माता के द्वारा शिशु को नहलाने धुलाने की तरह सोम को जल के द्वारा शुद्ध किया जाता है ॥२ ॥

८६८३. अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वीतये । अयं देवेभ्यो मधुमत्तमः सुतः ॥३ ॥

बलवृद्धि के साधन रूप इस मधुरतम सोमरस को देवताओं के पीने हेतु विधिवत् निकालते हैं । वे (देवता) शक्ति-सामर्थ्यवान् बनने के लिए इसका पान करते हैं ॥३ ॥

८६८४. गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धन्व । शुचिं ते वर्णमधि गोषु दीधरम् ॥४ ॥

रस निकालने के पश्चात् हे बलशाली सोमदेव ! आप हमें गौओं, घोड़ों से युक्त धन प्रदान करें । तत्पश्चात् आप गौ दुग्ध में मिलकर पवित्र वर्ण (श्वेत वर्ण) वाले बन जाएँ ॥४ ॥

८६८५. स नो हरीणां पत इन्दो देवप्सरस्तमः । सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ॥५ ॥

हे हरितवर्ण सोमदेव ! तेजस्विता के पुञ्ज, मानव मङ्गलकारी आप हमारी भी तेजस्विता में प्रखरता लाएँ । जिस प्रकार एक मित्र दूसरे मित्र के सहयोग के लिए तत्पर रहता है, ऐसा ही व्यवहार आप हमारे साथ करें ॥५ ॥

८६८६. सनेमि त्वमस्मदाँ अदेवं कं चिदत्रिणम् । साह्वाँ इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ॥६ ॥

हे सोमदेव ! आप पुरातन सुखों को हमारे लिए प्रकट करें तथा आप सुखबाधक रिपुओं का संहार करें । दुहरे व्यवहार वाले दुष्टों को समाप्त करें एवं दिव्य गुणों से रहित स्वार्थी शत्रुओं का भी आप संहार करें ॥६ ॥

[सूक्त - १०६]

[**ऋषि** - १-३, १०-१४ अग्नि चाक्षुष, ४-६ चक्षुमानव, ७-९ मनु आप्सव । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - उष्णिक् ।]

८६८७. इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः । श्रुष्टी जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥१ ॥

तुरन्त तैयार हुआ, आत्मिक ज्ञान की वृद्धि करने वाला, यह हरित सोम पराक्रमी इन्द्रदेव को शीघ्र प्राप्त हो ॥१ ॥

८६८८. अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः । सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥२ ॥

युद्ध के समय सेवन योग्य यह सोमरस इन्द्रदेव के लिए तैयार किया जाता है । जैसा कि सभी जानते हैं, विजय के लिए इच्छुक इन्द्रदेव को यह सोमरस विशेष स्फूर्ति देता है ॥२ ॥

८६८९. अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णीत सानसिम् । वज्रं च वृषणं भरत्समप्सुजित् ॥३ ॥

सेवनीय सोमपान से आनन्दित, जल को जीतने वाले इन्द्रदेव अपने धनुष और वज्र को धारण कर लेते हैं ॥३ ॥

८६९०. प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परि स्रव । द्युमन्तं शुष्ममा भरा स्वर्विदम् ॥४ ॥

हे सोमदेव ! स्फूर्ति से सम्पन्न होकर, आप इन्द्रदेव के निमित्त कलश में प्रवाहित हों । हमें तेजोवर्द्धक एवं ज्ञानवर्द्धक शक्ति से परिपूरित करें ॥४ ॥

८६९१. इन्द्राय वृषणं मदं पवस्व विश्वदर्शतः । सहस्रयामा पथिकृद्विचक्षणः ॥५ ॥

हे सोमदेव ! आप सर्वद्रष्टा , ज्ञानवान् , हजारों मार्गों के निर्माता तथा ज्ञाता हैं, अतः इन्द्रदेव के निमित्त बलशाली तथा आनन्ददायक रस प्रदान करें ॥५ ॥

८६९२. **अस्मभ्यं गातुवित्तमो देवेभ्यो मधुमत्तमः । सहस्रं याहि पथिभिः कनिक्रदत् ॥६ ॥**

हे सोम ! आप श्रेष्ठ पथ-प्रदर्शक तथा देवों को प्रिय हैं, अत: ध्वनि करते हुए हजारों मार्गों से प्रवाहित हों ॥६॥

८६९३. **पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा । आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥७ ॥**

हे सोमदेव ! आप देवगणों के सेवनार्थ वेगपूर्वक धाराओं सहित कलश में प्रवाहित हों । आनन्ददायक हे सोमदेव ! आप हमारे इस कलश में आकर स्थित हों ॥७ ॥

८६९४. **तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः । त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥८ ॥**

जल में मिश्रित किया जाने वाला आपका रस इन्द्रदेव के आनन्द एवं यश को बढ़ाने के लिए है । देवगण अमरत्व प्राप्त करने हेतु सोमरस का पान करते हैं ॥८ ॥

८६९५. **आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम् । वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥९ ॥**

आकाश से प्राण-पर्जन्य की वृष्टि कराने वाले, शोधित रसरूप हे दिव्य सोम ! आप हमें ऐश्वर्य प्रदान करें ॥९ ॥

८६९६. **सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यो वारं वि धावति । अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥१० ॥**

पवित्र होने वाला, स्तुति के पश्चात् ध्वनि करता हुआ, शोधित होने वाला यह सोमरस, प्रवाह के साथ अविनाशी छलनी से छनता चला जाता है ॥१० ॥

८६९७. **धीभिर्हिन्वन्ति वाजिनं वने क्रीळन्तमत्यविम् । अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥११ ॥**

जल मिश्रित, शक्तिशाली सोम स्तुतिगान करते हुए ऋत्विजों द्वारा छन्ने से संशोधित किया जाता है । अन्तरिक्ष, वनस्पति एवं जीव जगत् रूपी तीन पात्रों में विद्यमान उस दिव्य सोम की ज्ञानी जन वन्दना करते हैं ॥११ ॥

८६९८. **असर्जि कलशाँ अभि मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः । पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥१२ ॥**

पोषक तत्त्वों से युक्त, जल में मिलने वाला सोम पात्रों में स्थिर होता है । संस्कारित होता हुआ, वह युद्ध स्थल पर जाते हुए अश्व की भाँति (ध्वनि करता हुआ) तीव्र वेग से पात्रों में पहुँचता है ॥१२ ॥

८६९९. **पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या । अभ्यर्षन्त्स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥१३ ॥**

अभिनन्दनीय हरित वर्ण का सोम अपने वेगयुक्त प्रवाह से अपने अशुद्ध भाग को शुद्ध करता हुआ, नीचे कलश में टपकता है । हे सोमदेव ! आप ऋत्विजों को पुत्र सम्बन्धी या अन्न सम्बन्धी कीर्ति प्रदान करें ॥१३ ॥

८७००. **अया पवस्व देवयुर्मधोर्धारा असृक्षत । रेभन्पवित्रं पर्येषि विश्वतः ॥१४ ॥**

हे सोमदेव ! आप देवगणों से मिलने की इच्छा से शोधित होते समय, अविरल धार के साथ शब्दनाद करते हुए मधुर होकर, प्रचुर मात्रा में स्रवित हों ॥१४ ॥

[सूक्त - १०७]

[**ऋषि** - सप्तर्षिगण (१ भरद्वाज बार्हस्पत्य, २ कश्यप मारीच, ३ गोतम राहूगण, ४ अत्रिभौम, ५ विश्वामित्र गाथिन, ६ जमदग्नि भार्गव, ७ वसिष्ठ मैत्रावरुणि) । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - १-२, ४-७, १०-१५ १७-२६ प्रगाथ (बृहती, सतोबृहती) , ३, १६ द्विपदा विराट् ; ८-९ बृहती ।]

८७०१. **परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।**
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्व१न्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥१ ॥

हे ऋत्विजो ! मनुष्यों के हितैषी पत्थरों द्वारा शोधित जल मिश्रित यह सोम, देवों के लिए उत्तम हवि है ॥१ ॥

८७०२. नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिन्तरः ।
सुते चित्त्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ॥२ ॥

अनश्वर, अति सुगन्धित, शोधित होने वाले हे सोमदेव ! छनने के बाद आपको अन्नादि एवं गौ दुग्ध के साथ मिश्रित किया जाता है, तब आपको जल में संयुक्त कर प्रसन्न (सेवन योग्य) किया जाता है ॥२ ॥

८७०३. परि सुवानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥३ ॥

देवों का आनन्दवर्द्धक , यज्ञों का साधन रूप, ज्ञानसम्पन्न, तेजस्वी सोम सबके दर्शनार्थ कलश में स्थिर हो ॥३ ॥

८७०४. पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देव हिरण्ययः ॥४ ॥

ऐश्वर्यदाता, स्वर्ण के समान दमकने वाले, स्वच्छ हे सोमदेव ! शोधन क्रम में जल से संयुक्त होकर अविरल धारा के रूप में प्रवाहित होते हुए आप यज्ञ पात्र में प्रतिष्ठित होते हैं ॥४ ॥

८७०५. दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत् ।
आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षति नृभिर्धूतो विचक्षणः ॥५ ॥

यज्ञ कर्त्ताओं द्वारा परिष्कृत किया गया मधुर आह्लादक, दिव्यरस सोम यज्ञ वेदी पर स्थापित है। निरीक्षणकर्त्ता यह सोम, श्रेष्ठ यज्ञीय भाव सम्पन्न याजकों को प्राप्त होता है ॥५ ॥

८७०६. पुनानः सोम जागृविरव्यो वारे परि प्रियः ।
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तमो मध्वा यज्ञं मिमिक्ष नः ॥६ ॥

चैतन्य, प्रिय और पवित्र सोम, शोधन यन्त्र से शुद्ध होकर नीचे गिरता है । अंगिरस् (ऋषि) की परम्परा में श्रेष्ठ हे देव सोम ! आप बुद्धिवर्द्धक होकर हमारे यज्ञ को मधुर रस से पवित्र करें ॥६ ॥

८७०७. सोमो मीढ्वान्पवते गातुवित्तम ऋषिर्विप्रो विचक्षणः ।
त्वं कविरभवो देववीतम आ सूर्यं रोहयो दिवि ॥७ ॥

सर्वश्रेष्ठ मार्गदर्शक, ज्ञानी, मेधावी, सर्वद्रष्टा, अत्यन्त आनन्ददायक यह सोमरस परिष्कृत हो रहा है । हे दूरदर्शी सोमदेव ! आप देवों के लिए अत्यन्त प्रिय हैं तथा आपने आकाश में सूर्यदेव को स्थापित किया है ॥७ ॥

८७०८. सोम उ षुवाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥८ ॥

याजकों द्वारा अभिषुत होता हुआ सोम पवित्र होकर नीचे बर्तन में प्रवाहित होता है । यह सोम वेगपूर्वक हरे रंग की आनन्ददायक धारा से पात्र में जाता है ॥८ ॥

८७०९. अनूपे गोमान्गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।
समुद्रं न संवरणान्यग्मन्मन्दी मदाय तोशते ॥९ ॥

आनन्द प्राप्ति के लिए तैयार किया जाने वाला, प्रकाशित, गौ दुग्ध मिश्रित यह सोमरस, पात्र में उसी प्रकार स्थिर हो रहा है, जिस प्रकार सभी नदियाँ अपने आश्रयदाता समुद्र के पास पहुँचतीं और स्थिर होतीं हैं ॥९ ॥

८७१०. **आ सोम सुवानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया।**
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दधिषे ॥१० ॥

पाषाणों द्वारा अभिषुत यह सोमरस शोधन यन्त्र से नीचे के बर्तन में छाना जाता है । हरिताभ सोम इस लकड़ी के बर्तन में उसी प्रकार प्रवेश करके स्थिर रहता है, जैसे नगर में मनुष्य ॥१० ॥

८७११. **स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीळहे सप्तिर्न वाजयुः।**
अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः ॥११ ॥

बलवर्द्धक, परिपुष्ट, अश्व के सदृश प्रिय, ऋत्विजों द्वारा ऊन के छन्ने से छाना जाता हुआ, विद्वानों की स्तुतियों से प्रशंसित होता हुआ सोमरस पवित्रता को प्राप्त हो रहा है ॥११ ॥

८७१२. **प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा।**
अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥१२ ॥

यह सोम देवताओं को पान करने के लिए पानी में मिश्रित किया जाता है । हर्षप्रदायक होने के साथ-साथ यह सोम स्फूर्तिदायक भी है । यह सोमरस जल से मिलकर मधुररस टपकाने वाले बर्तन में स्थित हो ॥१२ ॥

८७१३. **आ हर्यतो अर्जुने अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः।**
तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥१३ ॥

प्रिय शिशु के समान संस्कारित इस स्वच्छ सोमरस को वेगपूर्वक हाथों से जल-पात्र में उसी प्रकार मिलाते हैं, जैसे द्रुतगामी रथ युद्ध में जाता है ॥१३ ॥

८७१४. **अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम्।**
समुद्रस्याधि विष्टपि मनीषिणो मत्सरासः स्वर्विदः ॥१४ ॥

मनुष्यों के हितैषी, ज्ञानदाता, आनन्दप्रदायक, शोधन यंत्र से नीचे प्रवाहित होने वाला, आनन्ददायी सोम, जल से भरे हुए पात्र में स्वतः शुद्ध होकर एकत्रित होता है ॥१४ ॥

८७१५. **तरत्समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत्।**
अर्षन्मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत् ॥१५ ॥

प्रेरणादायी दिव्य सोम शुद्ध होकर, प्रकृति में स्थित विशाल सोम (ऋत) के समुद्र में मित्र और वरुण देवों द्वारा प्रयुक्त किये जाने के लिए स्थापित किया जाता है ॥१५ ॥

८७१६. **नृभिर्येमानो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्रियः ॥१६ ॥**

ऋत्विजों द्वारा शोधित, सबका प्रेम पात्र, विशेष ज्ञानवर्द्धक, राजा दिव्य सोम, इन्द्रदेव के निमित्त शोधित होकर जल में मिलता है ॥१६ ॥

८७१७. **इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः।**
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः ॥१७ ॥

हर्षप्रदायक, अभिषुत किया हुआ सोम, मरुत्वान् इन्द्रदेव के लिए पवित्र होता है । यह सोम पहले सहस्रों धाराओं के रूप में शोधन यंत्र से शुद्ध होता है, इसके बाद पुनः स्तोतागण मंत्रों से इसका शोधन करते हैं ॥१७ ॥

८७१८. पुनानश्चमू जनयन्मतिं कविः सोमो देवेषु रण्यति ।
अपो वसानः परि गोभिरुत्तरः सीदन्वनेष्वव्यत ॥१८ ॥

ज्ञान का प्रकटीकरण करने वाला, स्तुति प्रेरक, क्रान्तदर्शी सोमरस छलनी में से जल पात्र के ऊपर शोधित होता हुआ इन्द्र आदि देवगणों के पास जाता है । जल मिश्रित वह सोम उत्तरोत्तर परिष्कृत होता हुआ दुग्धादि में मिलकर काष्ठ पात्र में प्रतिष्ठित होता है ॥१८ ॥

८७१९. तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीँरति ताँ इहि ॥१९ ॥

हे सोमदेव ! हमें आपकी मित्रता का लाभ प्राप्त हो । जो अनेक प्रकार के दुष्ट व्यक्ति हमें पीड़ा पहुँचाते हैं, उन सबको आप नष्ट करें ॥१९ ॥

८७२०. उताहं नक्तमुत सोम ते दिवा सख्याय बभ्र ऊधनि ।
घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुना इव पप्तिम ॥२० ॥

हे समुज्ज्वल सोमदेव ! हमें दिन-रात आपका सामीप्य प्राप्त हो । हम, सुदूर चमकने वाले सूर्यदेव तथा आपको पक्षी की भाँति (प्रत्यक्ष गतिशील) देखते हैं ॥२० ॥

८७२१. मृज्यमानः सुहस्त्य समुद्रे वाचमिन्वसि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥२१ ॥

श्रेष्ठ हाथों द्वारा निकाले गये पवित्र हुए हे सोमदेव ! आप शुद्ध किये जाने वाले कलश में शब्द करते हुए प्रवाहित होते हैं और स्तोताओं को प्रिय स्वर्णादि धन प्रदान करते हैं ॥२१ ॥

८७२२. मृजानो वारे पवमानो अव्यये वृषाव चक्रदो वने ।
देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि ॥२२ ॥

बलवर्द्धक, पवित्र छन्ने द्वारा शोधित हुआ सोमरस जल में अति वेग से प्रवाहित होता है । हे शुद्धता से युक्त सोमदेव ! आप देवों के लिए गोदुग्ध के साथ मिश्रित किये जाते हैं और पवित्र पात्र में स्थापित किये जाते हैं ॥२२ ॥

८७२३. पवस्व वाजसातयेऽभि विश्वानि काव्या ।
त्वं समुद्रं प्रथमो वि धारयो देवेभ्यः सोम मत्सरः ॥२३ ॥

स्तोत्रों से पवित्र हुए , विशिष्ट अन्न (पोषकता) से युक्त, देवों को आनन्द देने वाले हे सोमदेव ! उदारता आदि विशिष्ट गुणों से युक्त होकर आप इस श्रेष्ठ यज्ञ में पवित्र हों ॥२३ ॥

८७२४. स तू पवस्व परि पार्थिवं रजो दिव्या च सोम धर्मभिः ।
त्वां विप्रासो मतिभिर्विचक्षण शुभ्रं हिन्वन्ति धीतिभिः ॥२४ ॥

हे सोमदेव ! द्युलोक और पृथिवी लोक को अपनी धारक सामर्थ्य के साथ पवित्र बनाएँ । हे विशेष द्रष्टा सोमदेव ! शुभ्रवर्ण वाले आपको बुद्धिमान् स्तोतागण अँगुलियों के द्वारा निचोड़ते हैं ॥२४ ॥

८७२५. पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया ।
मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयांसि च ॥२५ ॥

मरुद्‌गणों का मित्र, हर्ष प्रदाता, इन्द्र प्रिय, बुद्धि और अन्न (पोषकता) से युक्त, यज्ञ में प्रयुक्त होने वाला तथा शुद्ध होने वाला सोमरस शोधन यंत्र से नीचे गिरता है ॥२५ ॥

८७२६. **अपो वसानः परि कोशमर्षतीन्दुर्हियानः सोतृभिः ।**
जनयञ्ज्योतिर्मन्दना अवीवशद्गाः कृण्वानो न निर्णिजम् ॥२६ ॥

ऋत्विजों द्वारा अभिषुत किया गया जल मिश्रित यह सोमरस कलश में एकत्र होता है । ज्योतिष्मान् , प्रकाश का निर्माण करते हुए हे सोमदेव ! आप आनन्ददायी दूध से आच्छादित अपने विशुद्ध रूप को प्रकट करें ॥२६ ॥

[सूक्त - १०८]

[**ऋषि** - १-२ गौरिवीति शाक्त्य, ३, १४-१६ शक्ति वासिष्ठ, ४-५ ऊरु आङ्गिरस, ६-७ ऋजिश्वा भारद्वाज, ८-९ ऊर्ध्वसद्‌मा आङ्गिरस, १०-११ कृतयशा आङ्गिरस, १२-१३ ऋणञ्चय । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - प्रगाथ (विषमा ककुप् , समा सतोबृहती) , १३ यवमध्या गायत्री ।]

८७२७. **पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः । महि द्युक्षतमो मदः ॥१ ॥**

हे सोमदेव ! अत्यंत मधुर हवि (यज्ञ) के विषय में सर्वविद् , श्रेष्ठ, तेजस्वी, आनन्द बढ़ाने वाले आप इन्द्रदेव को आनन्दित करने के लिए पवित्र हों ॥१ ॥

८७२८. **यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीता स्वर्विदः ।**
स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतशः ॥२ ॥

हे सोमदेव ! बलशाली इन्द्रदेव आपका पान करके अधिक बलशाली हो जाते हैं । आत्मज्ञानी भी आपका पान करके अत्यधिक आनन्दित होते हैं । उत्तम ज्ञानी इन्द्रदेव आपके बल से संग्राम में विजयी अश्व की भाँति शीघ्रता से शत्रुओं के धन को अपने अधिकार में ले लेते हैं ॥२ ॥

८७२९. **त्वं ह्य१ङ्ग दैव्या पवमान जनिमानि द्युमत्तमः । अमृतत्वाय घोषयः ॥३ ॥**

हे पवित्र सोम ! आप तेजस्वी, दिव्य जन्मों को जानने वाले तथा अमृत तत्त्व को प्रकट करने वाले हैं ॥३ ॥

८७३०. **येना नवग्वो दध्यङ्ङपोर्णुते येन विप्रास आपिरे ।**
देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्यानशुः ॥४ ॥

जिस सोम की सहायता से दध्यङ् ऋषि ने नवीन गौओं (दिव्य किरणों) का द्वार खोला, जिसकी सहायता से विप्रों (याज्ञिकों-साधकों) ने उन्हें प्राप्त किया, जिसकी सहायता से (यज्ञ द्वारा) देवों के प्रसन्न होने पर याजकगण श्रेष्ठ अमृत, अन्नादि प्राप्त करते हैं, वह सोम देवों के लिए अमरत्व की घोषणा करता है ॥४ ॥

८७३१. **एष स्य धारया सुतोऽव्यो वारेभिः पवते मदिन्तमः । क्रीळन्नूर्मिरपामिव ॥५ ॥**

अतिहर्षप्रदायक, पानी की तरंगों के सदृश क्रीड़ा करता हुआ यह सोम, बालों की छलनी से छाना जाता है ॥५ ॥

८७३२. **य उस्त्रिया अप्या अन्तरश्मनो निर्गा अकृन्तदोजसा ।**
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज ॥६ ॥

यह सोम, विवर्द्धमान् आकाश में बादलों के भीतर जल को अपनी शक्ति से छिन्न-भिन्न करता है तथा गौओं और अश्वों को सब ओर से घेरता है । हे सोम ! कवच से युक्त वीरों की तरह आप रिपुओं का विनाश करें ॥६ ॥

८७३३. **आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् । वनक्रक्षमुदप्रुतम् ॥७ ॥**

हे स्तोताओ ! अश्व के सदृश तीव्र गतिशील, प्रार्थना के योग्य, पानी की तरह प्रवहमान, प्रकाश की किरणों की तरह शीघ्र गमन करने वाले, जलयुक्त सोम का रस अभिषुत करो और उसमें दुग्ध का मिश्रण करो ॥७ ॥

८७३४. **सहस्रधारं वृषभं पयोवृधं प्रियं देवाय जन्मने ।**
ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ॥८ ॥

असंख्य धाराओं से शोधित , सुखवर्द्धक , दुग्ध मिश्रित प्रिय सोम को देवताओं के निमित्त संस्कारित करो । वह दिव्य गुणों से संयुक्त सोम जल से प्रकट हुआ वृद्धि पाता है ॥८ ॥

८७३५. **अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुः । वि कोशं मध्यमं युव ॥९ ॥**

हे अन्नाधिपति एवं देदीप्यमान सोमदेव ! आप देवगणों को प्राप्त होने वाले हैं । आप हमें तेजोमय एवं महान् कीर्ति प्रदान करें तथा कलश-पात्र में जाकर उसे पूर्ण कर दें ॥९ ॥

८७३६. **आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पतिः ।**
वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपां जिन्वा गविष्टये धियः ॥१० ॥

राजा की भाँति सबका पालन करने वाले, बुद्धिशाली हे सोमदेव ! याजकों की बुद्धियों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते हुए, अन्तरिक्ष से बरसने वाले पर्जन्य की तरह नीचे के पात्र में स्थिर होने की कृपा करें ॥१० ॥

८७३७. **एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवो दुहुः । विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥११ ॥**

आनन्ददायी, सहस्रों धाराओं के साथ कलश में टपकने वाले शक्तिवर्द्धक, सब धनों के स्वामी, तेजस्वी इस सोम का रस ऋत्विग्गण निचोड़ते हैं ॥११ ॥

८७३८. **वृषा वि जज्ञे जनयन्नमर्त्यः प्रतपञ्ज्योतिषा तमः ।**
स सुष्टुतः कविभिर्निर्णिजं दधे त्रिधात्वस्य दंससा ॥१२ ॥

अपनी ज्योति से अन्धकार को हटाने वाला, बलोत्पादक सोम को अविनाशी रूप में जाना जाता है । ज्ञानवान् याजकों द्वारा स्तुत्य सोम अपना विशुद्ध रूप धारण करता है । तीनों लोकों में व्याप्त वह सोम यज्ञीय कर्म के लिए प्रवाहित होता है ॥१२ ॥

८७३९. **स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इळानाम् । सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥१३ ॥**

ऋत्विजों ने सम्पत्ति, दुग्ध आदि पदार्थ, भूमि तथा श्रेष्ठ सन्तान प्रदायक उस सोम का रस निकाल लिया है ॥१३ ॥

८७४०. **यस्य न इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः ।**
आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे ॥१४ ॥

हमारे जिस सोमरस का पान इन्द्रदेव करते हैं, जिसका पान मरुत् करते हैं और जिसे अर्यमा तथा भगदेव पीते हैं; मित्र, वरुण एवं इन्द्र को जिस सोम के संरक्षण के लिए बुलाते हैं, उसी सोम का अभिषवण करते हैं ॥१४ ॥

८७४१. **इन्द्राय सोम पातवे नृभिर्यतः स्वायुधो मदिन्तमः । पवस्व मधुमत्तमः ॥१५ ॥**

हे सोमदेव ! याजकों द्वारा एकत्रित, अत्यन्त मधुर, आनन्ददायक , श्रेष्ठ आयुधों से युक्त इन्द्रदेव द्वारा पान किये जाने के निमित्त आप प्रवाहित हों ॥१५ ॥

८७४२. **इन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश समुद्रमिव सिन्धवः ।**
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे दिवो विष्टम्भ उत्तमः ॥१६ ॥

हे सोमदेव ! जिस प्रकार समुद्र में नदियाँ प्रवेश करती हैं, उसी प्रकार आप इन्द्रदेव के हृदय रूपी कलश में प्रवेश करें । आप मित्र, वरुण, वायुदेव तथा इन्द्रदेव के निमित्त स्नेहयुक्त रस प्रवाहित करें ॥१६ ॥

[सूक्त - १०९]

[**ऋषि** - अग्निधिष्ण्य ऐश्वर । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - द्विपदा विराट् ।]

८७४३. **परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥१ ॥**

हे स्वादिष्ट सोमदेव ! आप इन्द्र, मित्र, पूषा और भगदेव के लिए प्रवाहित हों ॥१ ॥

८७४४. **इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयाः क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः ॥२ ॥**

हे सोम ! श्रेष्ठ ज्ञान एवं बल प्राप्त करने के लिए इन्द्रदेव सहित सभी देव निष्पन्न (सोम) रस का पान करें ॥२ ॥

८७४५. **एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः ॥३ ॥**

हे सोमदेव ! प्रकाशमान, दिव्य लोक में देवों के सेवनार्थ प्रकट हुए , आप अमरत्व तक पहुँचने के लिए गतिशील हों ॥३ ॥

८७४६. **पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥४ ॥**

हे सोमदेव ! विस्तृत समुद्र के समान पोषण करने वाले आप देवों के सभी आवास स्थल रूपी पात्रों में विद्यमान रहते हैं ॥४ ॥

८७४७. **शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजायै ॥५ ॥**

हे कान्तिमान् सोमदेव ! आप दिव्य गुणों के लिए प्रवाहित हों , जिससे आकाश, पृथ्वी तथा प्रजाओं (समस्त जीव-जगत्) को सुख प्राप्त हो ॥५ ॥

८७४८. **दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन्वाजी पवस्व ॥६ ॥**

हे सोमदेव ! आप तेजस्वी पेय तथा दिव्य गुणों के धारक हैं । हे बलवान् सोम ! आप सत्य रूप यज्ञकर्मों के बीच परिष्कृत होते चलें ॥६ ॥

८७४९. **पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महामवीनामनु पूर्व्यः ॥७ ॥**

हे सोमदेव ! प्रकाशयुक्त , भली-भाँति सरल धारा से पात्र में गिरते हुए , आप पूर्ववत् श्रेष्ठ ही हैं । आप पात्र में स्वत: ही प्रवाहित हों ॥७ ॥

८७५०. **नृभिर्येमानो जज्ञानः पूतः क्षरद्विश्वानि मन्द्रः स्वर्वित् ॥८ ॥**

वह सोम याजकों के द्वारा निचोड़ कर पवित्र, आनन्दमय तथा सर्वज्ञ रूप में प्रकट किया गया है । वह हमें नाना प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करे ॥८ ॥

८७५१. **इन्दुः पुनानः प्रजामुराणः करद्विश्वानि द्रविणानि नः ॥९ ॥**

वह ऊन की छलनी से छाना गया पवित्र तथा तेजस्वी सोमरस हमें प्रजायुक्त सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्राप्त कराये ॥९ ॥

८७५२. पवस्व सोम क्रत्वे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥१० ॥

हे सोमदेव ! अश्व के समान (प्रयासपूर्वक) स्वच्छ किये गए, शक्तिवर्द्धक आप बल एवं ऐश्वर्य को प्रदान करने के लिए पात्रों में स्थिर रहें ॥१० ॥

८७५३. तं ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥११ ॥

हे सोमदेव ! साधकगण आपके रस को हर्षवर्द्धन के लिए शोधित करते हैं । हम आपको दिव्य तेज रूपी ज्ञान के लिए परिशोधित करते हैं ॥११ ॥

८७५४. शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥१२ ॥

नवजात शिशु को शुद्ध करने के सदृश ऋत्विग्गण, हरिताभ दीप्तिमान् सोम को देवों के निमित्त छन्ने से शोधित करते हैं ॥१२ ॥

८७५५. इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ॥१३ ॥

श्रेष्ठ ज्ञान-सम्पन्न यह सोम सम्पत्ति युक्त हर्ष की प्राप्ति के लिए जल से संयुक्त किया जाता है ॥१३ ॥

८७५६. बिभर्ति चार्विन्द्रस्य नाम येन विश्वानि वृत्रा जघान ॥१४ ॥

जिस शरीर से इन्द्रदेव ने सभी पापी राक्षसों का संहार किया, यह सोम उनके उस कल्याणकारी शरीर को धारण करता है ॥१४ ॥

८७५७. पिबन्त्यस्य विश्वे देवासो गोभिः श्रीतस्य नृभिः सुतस्य ॥१५ ॥

याजकों द्वारा निचोड़कर निकाले गये, गाय के दूध में मिश्रित सोमरस का सभी देवगण पान करते हैं ॥१५ ॥

८७५८. प्र सुवानो अक्षाः सहस्रधारस्तिरः पवित्रं वि वारमव्यम् ॥१६ ॥

बलयुक्त और अनेक धाराओं से छाना जाने वाला सोम ऊन के शोधक (छन्ने) से छनकर टपकता है ॥१६ ॥

८७५९. स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः ॥१७ ॥

बलशाली, जल से शोधित, गोदुग्ध आदि से मिश्रित वह सोम छनता हुआ (पात्र में) जाता है ॥१७ ॥

८७६०. प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभिः सुतः ॥१८ ॥

पाषाणों से कूटकर निष्पादित ऋत्विजों द्वारा विधिपूर्वक पवित्र किये गये हे सोमदेव ! आप इन्द्रदेव के उदर (रूपकलश) में प्रविष्ट हों ॥१८ ॥

८७६१. असर्जि वाजी तिरः पवित्रमिन्द्राय सोमः सहस्रधारः ॥१९ ॥

हजारों धाराओं से प्रवाहित होने वाला, छलनी से शोधित हुआ, बलशाली, ज्ञानवान् सोमरस इन्द्रदेव के निमित्त तैयार किया जाता है ॥१९ ॥

८७६२. अञ्जन्त्येनं मध्वो रसेनेन्द्राय वृष्ण इन्दुं मदाय ॥२० ॥

इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए, सुख की वृष्टि करने वाले सोमरस को याजकगण गाय के मधुर दूध से मिश्रित करते हैं ॥२० ॥

८७६३. देवेभ्यस्त्वा वृथा पाजसेऽपो वसानं हरिं मृजन्ति ॥२१ ॥

हे सोमदेव ! आपके जल मिश्रित, हरिताभ रस को याजकगण देवों के निमित्त शोधित करते हैं ॥२१ ॥

८७६४. **इन्दुरिन्द्राय तोशते नि तोशते श्रीणन्नुग्रो रिणन्नपः ॥२२ ॥**

इस बलशाली सोम को तप से तपाकर इन्द्रदेव के लिए भली-भाँति शोधित किया जाता है । इस सोमरस को शोधित करते समय जल में मिश्रित किया जाता है ॥२२ ॥

[सूक्त - ११०]

[**ऋषि** - त्र्यरुण त्रैवृष्ण और त्रसदस्यु पौरुकुत्स्य । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - १-३ पिपीलिकामध्या अनुष्टुप्, ४-९ ऊर्ध्वबृहती, १०-१२ विराट् ।]

८७६५. **पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।**
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईयसे ॥१ ॥

हे सोमदेव ! आप अन्न प्राप्ति के लिए श्रेष्ठ विधि से कलश में अवस्थित रहें । हमें ऋणों से विमुक्त करने वाले आप शत्रुओं को परास्त करने के लिए उन पर आक्रमण करने जाएँ ॥१ ॥

८७६६. **अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।**
वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥२ ॥

हे सोमदेव ! रस निचोड़ने के बाद हम आपकी विधिपूर्वक अर्चना करते हैं । हे शोधित सोम ! श्रेष्ठ राजा के रक्षण के निमित्त, शक्तिशाली होकर आप विरोधी सेना पर आक्रमण करने के लिए गमन करते हैं ॥२ ॥

८७६७. **अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः ।**
गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ॥३ ॥

हे दिव्य सोमदेव ! आप किरणों के माध्यम से अंतरिक्ष और पृथ्वी लोक में जीवन को गतिशील बनाने वाले हैं । आपने अपनी क्षमता से जल को धारण करने वाले आकाश से ऊपर सूर्यदेव को उत्पन्न किया ॥३ ॥

८७६८. **अजीजनो अमृत मर्त्येष्वाँ ऋतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः ।**
सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥४ ॥

हे अमृत रूपी सोमदेव ! आपने सत्य एवं कल्याणकारी अमृत तत्त्व को धारण करके अन्तरिक्ष लोक में सूर्यदेव को मानवों के निमित्त प्रादुर्भूत किया तथा देवगणों की सेवा की । आप अन्न आदि वैभव के लिए नित्य सक्रिय रहते हैं ॥४ ॥

८७६९. **अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जनपानमक्षितम् ।**
शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥५ ॥

हे सोमदेव ! जिस प्रकार (कोई समर्थ व्यक्ति) हाथों - अँगुलियों से प्रजाजनों के पीने के लिए अक्षय जल-स्रोत उपलब्ध कराता है, (उसी प्रकार) आप अन्नदायक रूप में छन्ने से नीचे आते हैं ॥५ ॥

८७७०. **आदीं के चित्पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत ।**
वारं न देवः सविता व्यूर्णुते ॥६ ॥

कालान्तर में, जब तक सर्वग्राही अंधकार का निवारण नहीं कर देते, (तब तक) इस (सोम) के द्रष्टा वसुरूप भाई की तरह हम इस सोम की स्तुति करते हैं ॥६ ॥

८७७१. त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः ।
स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥७ ॥

हे सोमदेव ! प्रधान ऋत्विज् श्रेष्ठ बल एवं (पोषण) अन्न के निमित्त आपके विषय में श्रेष्ठ विचार से पूर्ण (आश्वस्त) हैं । हे वीर सोमदेव ! आप हमें वीरता की प्राप्ति के लिए प्रेरित करें ॥७ ॥

८७७२. दिवः पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत ।
इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन् ॥८ ॥

सबसे पहले यह स्तुत्य (सोमरस) अमृत, सर्वोच्च एवं सुविस्तृत द्युलोक से प्रकट होता है, तदनन्तर इन्द्रदेव के समक्ष याजकगण सोम की सस्वर स्तुति करते हैं ॥८ ॥

८७७३. अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना ।
यूथे न निःष्ठा वृषभो वि तिष्ठसे ॥९ ॥

हे शोधित सोमदेव ! गौओं के समूह में अवस्थित वृषभ के समान (आप) द्युलोक, पृथ्वीलोक एवं सम्पूर्ण प्राणियों के मध्य विद्यमान रहते हैं ॥९ ॥

८७७४. सोमः पुनानो अव्यये वारे शिशुर्न क्रीळन्पवमानो अक्षाः ।
सहस्रधारः शतवाज इन्दुः ॥१० ॥

यह सोम हजारों धाराओं से छलनी से प्रवाहित होते हुए बच्चों के समान क्रीड़ा करता हुआ असीम सामर्थ्यों से युक्त तथा तेजस्वी रूप में कलश में पहुँचता है ॥१० ॥

८७७५. एष पुनानो मधुमाँ ऋतावेन्द्रायेन्दुः पवते स्वादुरूर्मिः ।
वाजसनिर्वरिवोविद्वयोधाः ॥११ ॥

यह शोधित सोमरस मधुर , सुखद तथा सत्य से युक्त धाराओं के रूप में इन्द्रदेव के निमित्त अन्न, धन तथा आयु प्रदान करते हुए प्रवाहित होता है ॥११ ॥

८७७६. स पवस्व सहमानः पृतन्यून्त्सेधन्रक्षांस्यप दुर्गहाणि ।
स्वायुधः सासह्वान्त्सोम शत्रून् ॥१२ ॥

हे सोमदेव ! आप युद्ध के इच्छुक शत्रुओं को पराजित करते हुए दुष्ट भावों वाले, कठिनता से वश में आने वाले राक्षसों का संहार करें । आप उत्तम अस्त्र-शस्त्रों से युक्त होकर शत्रुओं को विनष्ट करते हुए प्रवाहित हों ॥१२ ॥

[सूक्त - १११]

[**ऋषि** - अनानत पारुच्छेपि । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - अत्यष्टि ।]

८७७७. अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति स्वयुग्वभिः सूरो न स्वयुग्वभिः ।
धारा सुतस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।
विश्वा यद्रूपा परियात्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥१ ॥

हरिताभ शोधित सोमरस अपने तेज से शत्रुओं का नाश करता है । अन्धकार को दूर करने वाली सूर्य रश्मियों जैसी इस सोमरस की उत्तम दिखाई पड़ने वाली धार चमकती है । शोधित हरिताभ सोमरस भी चमकता है, जो प्रकाश के सात मुखों (सतरंगी किरणों) के तेज तथा स्तोत्रों से अनेक रूप धारण करता है ॥१ ॥

८७७८. त्वं त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे । परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः । त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥२ ॥

हे सोमदेव ! आपने व्यापारियों से धन-सम्पदा उपलब्ध की । यज्ञ के आधारभूत जल से यज्ञस्थल में भली प्रकार आप पवित्र होते हैं । आनन्दित हुए याजकगणों के स्थान (यज्ञ स्थल) से गूँजने वाले सामगान दूर से ही सुनाई पड़ते हैं । तीनों स्थानों (पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक) पर देदीप्यमान हे सोमदेव ! आप याजकों को सुनिश्चित रूप से (पोषक) अन्न प्रदान करते हैं ॥२ ॥

८७७९. पूर्वामनु प्रदिशं याति चेकितत्सं रश्मिभिर्यतते दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः । अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन् । वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥३ ॥

हे सर्वज्ञ सोमदेव ! जब आप पूर्व दिशा में प्रस्थान करते हैं, तब दिव्य और दर्शनीय आपका रथ रश्मियों के प्रभाव से और अधिक तेजस्वी दिखाई देता है । पुरुषार्थवर्द्धक स्तोत्र इन्द्रदेव तक पहुँचते हैं, जिनसे स्तोतागण विजय के लिए उन्हें प्रसन्न करते हैं और वे (उसके प्रभाव से) वज्र प्राप्त करते हैं । हे सोम और इन्द्रदेव ! तब आप आपसी सहयोग की स्थिति में युद्ध में पराजित नहीं होते ॥३ ॥

[सूक्त - ११२]

[**ऋषि** - शिशु आङ्गिरस । **देवता** - पवमान सोम । **छन्द** - पंक्ति ।]

८७८०. नानानं वा उ नो धियो वि व्रतानि जनानाम् ।
तक्षा रिष्टं रुतं भिषग्ब्रह्मा सुन्वन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१ ॥

जिस प्रकार शिल्पी लकड़ी के काम की इच्छा करता है, जिस प्रकार वैद्य रोगी की कामना करता है, जिस प्रकार ज्ञानवान् याज्ञिक यजमान की कामना करता है, इसी प्रकार हमारी बुद्धियाँ नाना प्रकार की कामना वाली हैं, मनुष्य के कर्म भी विविध प्रकार के हैं । हे तेजस्वी सोमदेव ! आप इन्द्रदेव के निमित्त प्रवाहित हों ॥१ ॥

[इन्द्र देवशक्तियों के संगठक हैं । विभिन्न विशेषताओं वाली बुद्धियाँ देव शक्तियाँ हैं, उनका संयोग ही अधिक हितकारी है । इसलिए कामना की गई है कि सोम अलग-अलग इकाइयों में न भटके, संगठक को ही सशक्त बनाये ।]

८७८१. जरतीभिरोषधीभिः पर्णेभिः शकुनानाम् ।
कार्मारो अश्मभिर्द्युभिर्हिरण्यवन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥२ ॥

पुरानी परिपक्व लकड़ी, पक्षियों के पंख तथा तीक्ष्ण शिला खण्डों से बाण बनाने वाला शिल्पी जिस प्रकार धनी (साधन-सम्पन्न) व्यक्ति की कामना करता है, उसी प्रकार हम सोम के प्रवाहित होने की कामना करते हैं । हे सोमदेव ! आप इन्द्रदेव के लिए प्रवाहित हों ॥२ ॥

८७८२. कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना।
नानाधियो वसूयवोऽनु गा इव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥३ ॥

हम उत्तम शिल्पों का सम्पादन करने वाले हैं। हमारे पिता तथा पुत्र चिकित्सक हैं। माता तथा कन्या जौ पीसने का कार्य करती हैं। हम सभी भिन्न-भिन्न कार्य करने वाले हैं; फिर भी गौओं की जिस तरह गोपालक सेवा करते हैं, उसी प्रकार हे सोमदेव ! हम आपकी सेवा करते हैं। आप इन्द्रदेव के निमित्त प्रवाहित हों ॥३ ॥

८७८३. अश्वो वोळहा सुखं रथं हसनामुपमन्त्रिणः।
शेपो रोमण्वन्तौ भेदौ वारिन्मण्डूक इच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥४ ॥

जिस प्रकार भारवाहक अश्व अच्छे रथ की कामना करता है, मित्र हास-परिहास की कामना करते हैं, कामी व्यक्ति नारी की कामना करता है, मेढक जलमय तालाब की कामना करता है, उसी प्रकार हम सोम की कामना करते हैं। हे सोमदेव ! आप इन्द्रदेव के निमित्त प्रवाहित हों ॥४ ॥

[सूक्त - ११३]

[**ऋषि** - कश्यप मारीच। **देवता** - पवमान सोम। **छन्द** - पंक्ति।]

८७८४. शर्यणावति सोममिन्द्रः पिबतु वृत्रहा।
बलं दधान आत्मनि करिष्यन्वीर्यं महदिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१ ॥

महान् पराक्रमी, वृत्रहन्ता इन्द्रदेव अपने में श्रेष्ठ बल धारण करते हुए शर्यणावत् सरोवर में स्थित सोम का पान करें। हे सोमदेव ! आप इन्द्रदेव के निमित्त धारा रूप में प्रवाहित हों ॥१ ॥

८७८५. आ पवस्व दिशां पत आर्जीकात्सोम मीढ्वः।
ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥२ ॥

समस्त दिशाओं के स्वामी, कामनाओं की पूर्ति करने वाले हे सोमदेव ! सत्य का पालन करने वाले याजकों ने पवित्र स्तोत्रों से श्रद्धा तथा तप से युक्त होकर आपका पूजन किया है, अतः आप आर्जीक देश से प्रवाहित हों। हे तेजस्वी सोमदेव ! आप इन्द्रदेव के निमित्त प्रवाहित हों ॥२ ॥

८७८६. पर्जन्यवृद्धं महिषं तं सूर्यस्य दुहिताभरत्।
तं गन्धर्वाः प्रत्यगृभ्णन्तं सोमे रसमादधुरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥३ ॥

सूर्य की पुत्री (उषा) द्वारा वर्षा के जल से विस्तृत हुआ वह महान् सोम अन्तरिक्ष से लाया गया है। उसे वसुओं ने ग्रहण करके सोमवल्ली में स्थापित किया है। हे तेजस्वी सोमदेव ! आप इन्द्रदेव की प्रसन्नता के निमित्त प्रवाहित हों ॥३ ॥

८७८७. ऋतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन्त्सत्यकर्मन्।
श्रद्धां वदन्त्सोम राजन्धात्रा सोम परिष्कृत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥४ ॥

वह सोम सत्य कान्ति से युक्त तथा सत्य कर्म कारक है। हे तेजस्वी सोमदेव ! सत्य कर्म करते हुए, श्रद्धा युक्त सत्य वचन बोलते हुए तथा याजक द्वारा शोधित होकर आप राजा इन्द्रदेव के लिए रस प्रवाहित करें ॥४ ॥

८७८८. **सत्यमुग्रस्य बृहतः सं स्रवन्ति संस्रवाः ।**
सं यन्ति रसिनो रसाः पुनानो ब्रह्मणा हर इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥५ ॥

सर्वोपरि सत्य के उद्‌घाटक महान् सोमरस की धाराएँ भली प्रकार एक साथ बह रही हैं । हे हरिताभ सोमदेव ! ब्रह्मपरायणों के द्वारा शोधित होकर आप इन्द्रदेव के निमित्त प्रवाहित हों ॥५ ॥

८७८९. **यत्र ब्रह्मा पवमान छन्दस्यां३ वाचं वदन् ।**
ग्राव्णा सोमे महीयते सोमेनानन्दं जनयन्निन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥६ ॥

सोमरस से देवगणों को आनन्दित करने वाला ब्राह्मण , छन्दों से बनाये स्तोत्रों का उच्चारण करते हुए पत्थरों से कूटकर निकाले गये सोमरस की जहाँ पूजा करता है, हे सोम ! वहाँ इन्द्रदेव के निमित्त आप रस प्रवाहित करें ॥६ ॥

८७९०. **यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिँल्लोके स्वर्हितम् ।**
तस्मिन्मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥७ ॥

हे पवित्र सोमदेव ! जिस लोक में सूर्यदेव के अखण्ड तेज का सुख प्राप्त होता है; उस मृत्युरहित, विनाश-रहित लोक में आप हमें रखें । हे सोमदेव ! आप इन्द्रदेव के निमित्त प्रवाहित हों ॥७ ॥

८७९१. **यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः ।**
यत्रामूर्यह्वतीरापस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥८ ॥

जहाँ विवस्वान् का पुत्र राजा है । जहाँ बड़ी-बड़ी नदियाँ प्रवाहित होती हैं, जहाँ स्वर्ग का द्वार है, उस लोक में आप हमें अमरत्व प्रदान करें । हे सोमदेव ! आप इन्द्रदेव के निमित्त प्रवाहित हों ॥८ ॥

८७९२. **यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः ।**
लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥९ ॥

जिस श्रेष्ठ तीसरे लोक (अन्तरिक्ष) में सूर्यदेव अपनी इच्छा के अनुसार गतिशील हैं, जहाँ की प्रजा तेजस्वी है , वहाँ आप हमें अमरत्व प्रदान करें । हे सोमदेव ! इन्द्रदेव के निमित्त आप प्रवाहित हों ॥९ ॥

८७९३. **यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम् ।**
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१० ॥

जहाँ सब प्रकार की अभिलाषाएँ पूर्ण हों , जहाँ सुख प्रदान करने वाला तथा तृप्तिकारक अन्न है, जहाँ प्रतापी सूर्यदेव का स्थान है, वहाँ आप हमें अमरत्व प्रदान करें । हे सोमदेव ! आप इन्द्रदेव के निमित्त प्रवाहित हों ॥१० ॥

८७९४. **यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते ।**
कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥११ ॥

जिस लोक में ऋद्धियों तथा आनन्द का वास है, जहाँ हर्षदायी सम्पदाएँ और ऐश्वर्य हैं, जहाँ सारी कामनाओं की पूर्ति होती है, वहाँ आप हमें अमरत्व प्रदान करें । हे सोमदेव ! आप इन्द्रदेव के लिए प्रवाहित हों ॥११ ॥

[सूक्त - ११४]

[ऋषि - कश्यप मारीच । देवता - पवमान सोम । छन्द - पंक्ति ।]

८७९५. य इन्दोः पवमानस्यानु धामान्यक्रमीत् ।

तमाहुः सुप्रजा इति यस्ते सोमाविधन्मन इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१ ॥

जो पवित्र तेजस्वी सोम के कार्यों का अनुगमन करता है, जो पवित्र सोम के चित्त के अनुकूल आचरण करता है; उसे श्रेष्ठ सन्तति से युक्त गृह स्वामी कहते हैं । हे सोमदेव ! आप इन्द्रदेव के लिए प्रवाहित हों ॥१ ॥

८७९६. ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन्गिरः ।

सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधां पतिरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥२ ॥

हे मन्त्रों के द्रष्टा कश्यप ऋषे ! आप उस सोम की पूजा करें , जो स्तुति युक्त वाणी से विस्तार पाता है, जो ओषधियों के समान प्रजापालक है । हे सोमदेव ! आप इन्द्रदेव के लिए प्रवाहित हों ॥२ ॥

८७९७. सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः ।

देवा आदित्या ये सप्त तेभिः सोमाभि रक्ष न इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥३ ॥

सूर्यदेव को आश्रय प्रदान करने वाली सात दिशाओं, सात याज्ञिकों तथा सात आदित्यों के साथ हे सोमदेव ! आप हमें संरक्षण प्रदान करें । हे सोमदेव ! आप इन्द्रदेव के लिए प्रवाहित हों ॥३ ॥

८७९८. यत्ते राजञ्छृतं हविस्तेन सोमाभि रक्ष नः ।

अरातीवा मा नस्तारीन्मो च नः किं चनाममदिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥४ ॥

हे राजा सोमदेव ! आपके लिए जिस हविष्यान्न को तैयार किया गया है, उसके द्वारा हमारा पोषण करें । कोई भी शत्रु हमें हिंसित न करे तथा हमारे किसी भी पदार्थ का कोई शत्रु अपहरण न करे । हे सोमदेव ! आप इन्द्रदेव के लिए प्रवाहित हों ॥४ ॥

॥ इति नवमं मण्डलं समाप्तम् ॥

॥ अथ दशम मण्डलम् ॥

[सूक्त - १]

[**ऋषि** - त्रित आप्त्य । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

८७९९. **अग्रे बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थान्निर्जगन्वान्तमसो ज्योतिषागात् ।**
अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्ग आ जातो विश्वा सद्मान्यप्राः ॥१ ॥

प्रभात वेला में सर्वप्रथम अग्निदेव ऊर्ध्वमुखी (प्रज्वलित) होकर (यज्ञ में) स्थित होते हैं । वे अन्धकार को दूर करके, तेजोमय होकर आगे आते हैं तथा अपने श्रेष्ठ तेज से सभी स्थानों को प्रकाशित करते हैं ॥१ ॥

८८००. **स जातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत ओषधीषु ।**
चित्रः शिशुः परि तमांस्यक्तून्प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद्गाः ॥२ ॥

ये अग्निदेव द्यावा -पृथिवी के गर्भ में (गुप्त रूप से) रहते हैं । ओषधियों (अथवा काष्ठादि) से जन्म लेकर सुन्दर स्थानों पर प्रतिष्ठित होते हैं । अन्धकार को परास्त करते हैं तथा शिशु की तरह शब्द करते हुए माताओं (समिधाओं अथवा द्यावा-पृथिवी) के पास जाते हैं ॥२ ॥

८८०१. **विष्णुरित्था परममस्य विद्वाञ्जातो बृहन्नभि पाति तृतीयम् ।**
आसा यदस्य पयो अक्रत स्वं सचेतसो अभ्यर्चन्त्यत्र ॥३ ॥

इस प्रकार (ऊपर के मंत्र के अनुसार) ये विद्वान् विष्णु (पोषणकर्त्ता) देव जन्म लेकर, वृद्धि पाकर इस तृतीय (त्रित ऋषि अथवा तीसरे लोक-द्युलोक) का पालन करते हैं । उनके मुख से उत्पन्न पय (पोषक रस) की अभिलाषा करते हुए यहाँ (यज्ञ में) याजक उनकी अर्चना करते हैं ॥३ ॥

[वृद्धि पाकर अग्निदेव तीसरे लोक का पालन करते हैं । द्युलोक में विकसित अग्नि तीसरे लोक , पृथ्वी को तथा पृथ्वी पर विकसित यज्ञरूप अग्नि तीसरे लोक द्युलोक को पोषण प्रदान करते हैं ।]

८८०२. **अत उ त्वा पितुभृतो जनित्रीरन्नावृधं प्रति चरन्त्यन्नैः ।**
ता ईं प्रत्येषि पुनरन्यरूपा असि त्वं विक्षु मानुषीषु होता ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप विश्व के पालक, ओषधियों और अन्नों के उत्पादनकर्त्ता तथा सूखे काष्ठों की ओर गमनशील हैं आप ही मानवी सभ्यता (प्रजाओं) के लिए यज्ञ- निष्पादक हैं । अन्न वृद्धि के लिए हम हविष्यान्न समर्पित करते हुए आपकी अर्चना करते हैं ॥४ ॥

८८०३. **होतारं चित्ररथमध्वरस्य यज्ञस्ययज्ञस्य केतुं रुशन्तम् ।**
प्रत्यर्धिं देवस्यदेवस्य मह्ना श्रिया त्व१ग्निमतिथिं जनानाम् ॥५ ॥

यज्ञीय कार्यों में पताका रूप, दीप्तिमान् देवताओं का आवाहन करने वाले, सबके स्वामी, यजमानों के लिए वन्दनीय, इन्द्रदेव के समीप पहुँचाने वाले अग्निदेव की, हम उत्तम ऐश्वर्य प्राप्ति के निमित्त स्तुति करते हैं ॥५ ॥

८८०४. स तु वस्त्राण्यध पेशनानि वसानो अग्निर्नाभा पृथिव्याः ।
अरुषो जातः पद इळायाः पुरोहितो राजन्यक्षीह देवान् ॥६ ॥

हे देदीप्यमान अग्निदेव ! आप पृथ्वी के नाभिस्थल पर स्वर्ण के सदृश दीप्तिमान् होकर तेजस्विता को धारण करते हुए प्रादुर्भूत होते हैं । आप यज्ञ स्थल पर उत्तर वेदी में स्थापित होकर अपनी तेज़स्विता से शोभायमान होते हुए हमारे द्वारा देवशक्तियों के लिए समर्पित हविष्यान्न ग्रहण करें ॥६ ॥

८८०५. आ हि द्यावापृथिवी अग्न उभे सदा पुत्रो न मातरा ततन्थ ।
प्र याह्यच्छोशतो यविष्ठाथा वह सहस्येह देवान् ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! आप दिव्यलोक और पृथ्वीलोक को उसी प्रकार व्यापक विस्तार प्रदान करते हैं , जिस प्रकार पुत्र, माता-पिता को धनादि से सुखी करते हैं । हे तरुण पुत्र ! आप यथोचित सहयोगार्थ माता- पिता के समीप जाएँ और उनकी सहायता करें । हे शक्तिमान् अग्ने ! हमारे इस यज्ञ में आप इन्द्रादि देवताओं को भी ले आएँ ॥७ ॥

[सूक्त - २]

[**ऋषि** - त्रित आप्त्य । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

८८०६. पिप्रीहि देवाँ उशतो यविष्ठ विद्वाँ ऋतूँर्ऋतुपते यजेह ।
ये दैव्या ऋत्विजस्तेभिरग्ने त्वं होतॄणामस्यायजिष्ठः ॥१ ॥

सबके लिए कल्याणकारी, नित्य नवीन रूपवान् हे अग्निदेव ! आप कामनापूर्ति करने वाले देवताओं को प्रशंसित करें । हे ऋतुओं के ज्ञाता अग्निदेव ! आप ऋतुओं के अनुसार ही दिव्यज्ञान - सम्पन्न ऋत्विजों के सहयोग से यज्ञ सम्पन्न करें, क्योंकि आप ही होताओं के बीच में सर्वश्रेष्ठ हैं ॥१ ॥

८८०७. वेषि होत्रमुत पोत्रं जनानां मन्धातासि द्रविणोदा ऋतावा ।
स्वाहा वयं कृणवामा हवींषि देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! मनुष्यों के यज्ञ को चाहने वाले आप होता (आवाहन कर्त्ता) , पोता (पवित्र कर्त्ता) , बुद्धिमान् , ऋत (सत्य या यज्ञ) के संरक्षक एवं दाता हैं । हम हव्य पदार्थों से स्वाहाकार करते हैं , आप पूजित होकर देवों का सत्कार करें ॥२ ॥

८८०८. आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनु प्रवोळ्हुम् ।
अग्निर्विद्वान्स यजात्सेदु होता सो अध्वरान्स ऋतून्कल्पयाति ॥३ ॥

हम अपनी सामर्थ्यानुसार देवत्व के उच्च लक्ष्य की ओर गतिमान् हों । हमारा वह (देवमार्ग की ओर बढ़ाने का) कार्य अनुकूलतापूर्वक पूर्ण हो । मनुष्यों के लिए यज्ञों के सम्पादक अग्निदेव ऋतुओं के अनुसार यज्ञों को सम्पन्न करें । वे देवताओं के निमित्त आहुतियों का सेवन करते हैं ॥३ ॥

८८०९. यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्टद्विश्वमा पृणाति विद्वान्येभिर्देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति ॥४ ॥

हे देवो ! हम ज्ञानरहित मनुष्यों ने अज्ञानतावश व्रतों (प्राकृतिक मर्यादाओं) को भंग किया है । इससे परिचित अग्निदेव उन ऋतुओं या यज्ञीय भावनाओं को हमारे अन्दर परिपूर्ण करें, जिनसे वे देवताओं को प्रसन्न करते हैं ॥ ४ ॥

[अज्ञानतावश प्रकृति को हम प्रदूषित करते हैं, यज्ञीय प्रयोगों द्वारा अग्निदेव से इस प्रकार हुई हानियों को पूर्ण करने की प्रार्थना करके जैसे उसका प्रायश्चित्त करते हों ।]

८८१०. यत्पाकत्रा मनसा दीनदक्षा न यज्ञस्य मन्वते मर्त्यासः ।
अग्निष्टद्धोता क्रतुविद्विजानन्यजिष्ठो देवाँ ऋतुशो यजाति ।।५ ।।

अज्ञानग्रस्त मनुष्य मानसिक परिपक्वता लाने वाली विधि (यज्ञीय कर्मो) से अनभिज्ञ रहते हैं, परन्तु उस विधि के विशेषज्ञ अग्निदेव इस विधा से भली प्रकार परिचित हैं । वे ऋतुओं के अनुसार (विधि -विधानपूर्वक) देवताओं के निमित्त यज्ञ करके हमें सुख और आरोग्य प्रदान करते हैं ।।५ ।।

८८११. विश्वेषां ह्यध्वराणामनीकं चित्रं केतुं जनिता त्वा जजान ।
स आ यजस्व नृवतीरनु क्षाःस्पार्हा इषः क्षुमतीर्विश्वजन्याः ।।६ ।।

हे अग्निदेव ! आप सभी यज्ञों के अग्रणी तथा इच्छित विशिष्ट ज्ञान के उत्पादनकर्त्ता हैं । आप प्रजापति द्वारा उत्पन्न किए गये हैं। ऐसे आप स्तवनों से युक्त, सबके लिए कल्याणकारी हविष्यान्न देवताओं को प्रदान करें ।।६ ।।

८८१२. यं त्वा द्यावापृथिवी यं त्वापस्त्वष्टा यं त्वा सुजनिमा जजान ।
पन्थामनु प्रविद्वान्पितृयाणं द्युमदग्ने समिधानो वि भाहि ।।७ ।।

हे अग्निदेव ! आपको श्रेष्ठ सृजेता प्रजापति ने द्युलोक में सूर्यरूप , पृथ्वी में वैश्वानररूप, जल में बड़वानल रूप तथा मेघों में स्थित विद्युतरूप में सर्वत्र संव्याप्त किया है । आप पितरों के गमन मार्ग से भली प्रकार परिचित होते हुए , समिधाओं से तेजस्विता युक्त होकर विशेष रूप से प्रकाशित हों ।।७ ।।

[सूक्त - ३]

[**ऋषि** - त्रित आप्त्य । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

८८१३. इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि ।
चिकिद्वि भाति भासा बृहतासिक्नीमेति रुशतीमपाजन् ।।१ ।।

हे अग्निदेव ! आप सबके स्वामी, दिव्य गुणों से युक्त, देदीप्यमान , शत्रुओं के लिए भयंकर, उपासकों को इच्छित पदार्थ प्रदान करने वाले, सब प्रकार से शक्ति को विकसित करने वाले हैं, ऐसा अनुभव किया गया है । सर्वज्ञाता आप प्रदीप्त होकर अपने प्रकाश को सर्वत्र फैलाते हुए निशाकाल में प्रकट होते हैं ।।१ ।।

८८१४. कृष्णां यदेनीमभि वर्पसा भूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम् ।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन्दिवो वसुभिररतिर्वि भाति ।।२ ।।

ये अग्निदेव पिता रूप सूर्य से उत्पन्न होकर, उषाकाल में प्रकट होकर, अँधेरी रात को अपनी ज्वालाओं से परास्त करते हैं । उस समय गतिशील अग्निदेव द्युलोक में सूर्य की दीप्ति को ऊपर ही स्थापित करके स्वयं भी प्रकाशित होते हैं ।।२ ।।

८८१५. भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ।।३ ।।

हितकारक अग्निदेव कल्याणकारिणी उषा द्वारा सेवित होकर प्रदीप्त होते हैं। रिपुनाशक अग्निदेव अपनी बहिन उषा के पास जाते हैं। अपनी तेजस्विता के प्रभाव से सर्वत्र विचरणशील वे जाज्वल्यमान लपटों से रात्रि के अँधेरे को नष्ट करके प्रतिष्ठित होते हैं ॥३ ॥

८८१६. **अस्य यामासो बृहतो न वग्नूनिन्धाना अग्नेः सख्युः शिवस्य ।**
ईड्यस्य वृष्णो बृहतः स्वासो भामासो यामन्नक्तवश्चिकित्रे ॥४ ॥

अग्निदेव की , प्रज्वलित होकर गमन करने वाली ज्वालारूपी किरणें स्तोताओं के लिए हानिरहित होती हैं। ये स्तोत्रों को प्राप्त, सौख्यप्रद, कल्याणकारिणी किरणें श्रेष्ठ, दर्शनीय तथा अन्धकार को दूर करने वाली हैं। वे शक्तिवर्द्धक और देदीप्यमान किरणें यज्ञस्थल में अग्नि के प्रकाश को फैलाती हैं ॥४ ॥

८८१७. **स्वना न यस्य भामासः पवन्ते रोचमानस्य बृहतः सुदिवः ।**
ज्येष्ठेभिर्यस्तेजिष्ठैः क्रीळुमद्भिर्वर्षिष्ठेभिर्भानुभिर्नक्षति द्याम् ॥५ ॥

अग्निदेव की प्रज्वलित , विशाल, तेजस्वी, ज्वालारूपी किरणें शब्दों के संव्याप्त होने के समान ही सर्वत्र अपनी आभा बिखेर रही हैं। वे अग्निदेव अपनी उत्तम, विस्तृत, तेजस्वी, वायु के प्रभाव से क्रीड़ा करती हुई किरणों के माध्यम से दिव्यलोक को संव्याप्त करते हैं ॥५ ॥

८८१८. **अस्य शुष्मासो ददृशानपवेर्जेहमानस्य स्वनयन्नियुद्भिः ।**
प्रत्नेभिर्यो रुशद्भिर्देवतमो वि रेभद्भिररतिर्भाति विभ्वा ॥६ ॥

दर्शन योग्य तेजस्वी अग्निदेव हवियों को देवताओं की ओर ले जाते हैं। इनकी सामर्थ्यशाली, विकारनाशक किरणें वायु के माध्यम से शब्दायमान होती हैं। गतिशील, ऐश्वर्य - सम्पन्न, महिमायुक्त, शाश्वत काल से तेजस् - सम्पन्न, शब्द करने वाले, उज्ज्वल वर्णयुक्त तथा देवों में प्रमुख ये अग्निदेव अपनी आभा से प्रकाशमान होते हैं ॥६ ॥

८८१९. **स आ वक्षि महि न आ च सत्सि दिवस्पृथिव्योररतिर्युवत्योः ।**
अग्निः सुतुकः सुतुकेभिरश्वै रभस्वद्भी रभस्वाँ एह गम्याः ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे यज्ञ में सभी महान् देवों के साथ आगमन करें। द्युलोक और पृथ्वी के बीच में सूर्य के रूप में गमनशील आप यज्ञ में विराजमान हों। यजमानों के लिए सुगमतापूर्वक प्राप्य गमनशील अग्निदेव शीघ्रगामी वायुरूप अश्वों के सहयोग से हमारे यज्ञ में उपस्थित हों ॥७ ॥

[यहाँ वायु को अग्नि का वाहक कहा गया है। विज्ञान के अनुसार ताप का संवहन (कन्विक्शन) वायु द्वारा होता है। अग्नि को प्रज्वलित करने के लिये भी वायु आवश्यक है।]

[सूक्त - ४]

[**ऋषि** - त्रित आप्त्य । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

८८२०. **प्र ते यक्षि प्र त इयर्मि मन्म भुवो यथा वन्द्यो नो हवेषु ।**
धन्वन्निव प्रपा असि त्वमग्न इयक्षवे पूरवे प्रत्न राजन् ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! हम मननीय स्तोत्रों का उच्चारण करते हुए , आपके निमित्त आहुतियाँ प्रदान करते हैं। हमारे आवाहन को सुनकर , आप यज्ञ स्थल पर विशेष रूप से विराजमान हों। हे प्राचीन दीप्तिमान् अग्निदेव ! आप याज्ञिक मनुष्यों के लिए मरुस्थल में जल उपलब्ध होने के सदृश ही शान्तिप्रद हों ॥१ ॥

८८२१. यं त्वा जनासो अभि सञ्चरन्ति गाव उष्णमिव व्रजं यविष्ठ ।
दूतो देवानामसि मर्त्यानामन्तर्महाँश्चरसि रोचनेन ॥२ ॥

नित्य युवा बलिष्ठ हे अग्निदेव ! जिस प्रकार गौएँ ठंड से बेचैन होकर गोष्ठ (गोशाला) में आश्रय लेती हैं, वैसे ही मनुष्य भी यज्ञरूप आपका आश्रय लेते हैं । आप देवताओं - मनुष्यों के सन्देशवाहक हैं । महिमामय आप द्युलोक और पृथ्वी लोक दोनों के बीच हवि वहन करते हुए अन्तरिक्ष में प्रकाशमान होकर संचरित होते हैं ॥२ ॥

८८२२. शिशुं न त्वा जेन्यं वर्धयन्ती माता बिभर्ति सचनस्यमाना ।
धनोरधि प्रवता यासि हर्यञ्जिगीषसे पशुरिवावसृष्टः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार माता, पुत्र की पुष्टता के लिए उसे अपने सान्निध्य में रखने की इच्छुक होती है, उसी प्रकार धरतीमाता विजयशील आपको संवर्द्धित करके सान्निध्य की कामना से धारण करती है । आप अन्तरिक्ष के विशाल मार्ग से नीचे के लोकों में उसी प्रकार जाते हैं, जिस प्रकार बन्धन - युक्त पशु गोष्ठ में जाने को प्रेरित होते हैं तथा उसमें पहुँचते हैं ॥३ ॥

८८२३. मूरा अमूर न वयं चिकित्वो महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से ।
शये वव्रिश्चरति जिह्वयादन्रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन् ॥४ ॥

ज्ञानवान् हे अग्निदेव ! हम अज्ञानग्रस्त मनुष्य आपकी महिमा से अनभिज्ञ हैं । हे चैतन्य अग्निदेव ! आप स्वयं ही अपनी महिमा के ज्ञाता हैं, आप साकार होकर निश्चिन्त शयन करते हैं तथा ज्वाला रूपी जिह्वा से हविष्यान्न को ग्रहण करके विचरण करते हैं । आप प्रजाजनों के अधिपति रूप राजा के समान ही अपनी पत्नीरूपा आहुति को ग्रहण करते हैं ॥४ ॥

८८२४. कूचिज्जायते सनयासु नव्यो वने तस्थौ पलितो धूमकेतुः ।
अस्नातापो वृषभो न प्र वेति सचेतसो यं प्रणयन्त मर्ताः ॥५ ॥

नूतन अग्निदेव सूखी वनस्पतियों (समिधाओं) में प्रतिदिन कहीं भी प्रकट हो जाते हैं । ये धूम्रयुक्त पताका वाले, पिंगल वर्ण, तेजस्विता से जंगल में स्थित हैं । बिना स्नान के ही शुद्ध हुए वे अग्निदेव जंगल में जल की ओर उसी प्रकार जाते हैं, जैसे तृषित वृषभ जलाशय की ओर गमन करता है - ऐसे अग्निदेव को श्रेष्ठ, जागरूक याजक यज्ञवेदी पर प्रतिष्ठित करते हैं ॥५ ॥

८८२५. तनूत्यजेव तस्करा वनर्गू रशनाभिर्दशभिरभ्यधीताम् ।
इयं ते अग्ने नव्यसी मनीषा युक्ष्वा रथं न शुचयद्भिरङ्गैः ॥६ ॥

जिस प्रकार वन में विचरण करने (शरीर का मोह न करने) वाले दो तस्कर दसों रस्सियों से (अपनी पकड़ में आने वालों को) बाँधते हैं । हे अग्निदेव ! (उसी प्रकार) आपकी (आपके निमित्त) ये नवीन स्तुतियाँ रथ की तरह आपके तेज को धारण करें ॥६ ॥

[शरीर का मोह न करने वाले दो तस्कर दसों रस्सियों से बाँधते हैं - यह सामान्य राहजनी की घटना भी दिखती है । प्रकृतिगत संदर्भ में दो तस्कर कण एवं प्रतिकण कहे जा सकते हैं । ये अपने रूप को त्यागकर पदार्थ बनाते हैं । दसों दिशाओं से पारस्परिक आकर्षण (म्यूचुअल ग्रेविटेशन) , पदार्थों को बाँध कर रखता है । दो तस्कर अहंकार (अस्तित्व की आकांक्षा) तथा मोह (रस या सुख की आकांक्षा) भी कहे जा सकते हैं । ये दस इन्द्रियों से जीव चेतना को बाँधे रहते हैं । सृष्टि की इन प्रक्रियाओं के लिए नवीन संकल्पों के साथ अग्निदेव को प्रयुक्त करने की कामना यहाँ की गयी है ।]

८८२६. ब्रह्म च ते जातवेदो नमश्चेयं च गीः सदमिद्वर्धनी भूत्।
रक्षाणो अग्ने तनयानि तोका रक्षोत नस्तन्वो३ अप्रयुच्छन् ॥७ ॥

हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! हमारे द्वारा आपका स्तुतिगान किया गया । ये स्तोत्र आपके लिए ही वन्दना के साथ समर्पित किए गए हैं । ये स्तोत्र आपकी महिमा को सदैव बढ़ाने वाले (विस्तृत करने वाले) सिद्ध हों । हे तेजस्वी अग्निदेव ! आप हमें संरक्षण प्रदान करें, साथ ही हमारे परिजनों को भी पूर्ण संरक्षण प्रदान करें ॥७ ॥

[सूक्त - ५]

[**ऋषि** - त्रित आप्त्य । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

८८२७. एकः समुद्रो धरुणो रयीणामस्मद्धृदो भूरिजन्मा वि चष्टे ।
सिषक्त्यूधर्निण्योरुपस्थ उत्सस्य मध्ये निहितं पदं वेः ॥१ ॥

वे अद्वितीय अग्निदेव समुद्र के समान विशाल आधार एवं सभी ऐश्वर्यो के धारणकर्ता हैं । वे विविध रूपों में उत्पन्न होने वाली हमारी हार्दिक अभिलाषाओं के ज्ञाता हैं । वे अग्निदेव आकाश और पृथ्वी के बीच अन्तरिक्ष में स्थित हैं और विद्युत् के रूप में मेघमण्डल में संचरित होते हैं ॥१ ॥

८८२८. समानं नीळं वृषणो वसानाः सं जग्मिरे महिषा अर्वतीभिः ।
ऋतस्य पदं कवयो नि पान्ति गुहा नामानि दधिरे पराणि ॥२ ॥

समान नीड़ (आवास) में वास करने वाले बलवान् (पुरुष) महान् चंचल (लपटों या अश्वों) से युक्त (सम्पन्न) होते हैं । कवि (दूरदर्शी लोग) गुहा (हृदय स्थल) में (अग्नि के) अन्य (अप्रचलित) नामों को धारण करते हैं, (इस प्रकार) वे (अग्निदेव) यज्ञ के चरणों (अनुशासनों) की रक्षा करते हैं ॥२ ॥

[समान नीड़-घोंसले जैसे किसी प्रकोष्ठ (चैम्बर या सिलैण्डर) में अग्नि के विशिष्ट प्रयोग से अश्व शक्ति (हार्सपावर) की उत्पत्ति होती है । यह इन्टर्नल कम्बश्चन इञ्जनों का सूत्र हो सकता है तथा यज्ञ कुण्ड में किया गया यज्ञीय प्रयोग भी । अग्नि के पर (श्रेष्ठ) नामों (विशिष्ट प्रयोगों) को विशेष लोग गुप्त विद्या के रूप में रखते हैं ।]

८८२९. ऋतायिनी मायिनी सं दधाते मित्वा शिशुं जज्ञतुर्वर्धयन्ती ।
विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य कवेश्चित्तन्तुं मनसा वियन्तः ॥३ ॥

अन्न, तेज, सत्य और ऐश्वर्य से सम्पन्न द्यावा - पृथिवी अग्नि को धारण करते हैं । शिशु रूप अग्नि को वे माता-पिता के समान ही काल-परिमाण (समय-सीमा) में प्रादुर्भूत करते हैं । समस्त जड़ और चेतन संसार के नाभिरूप ज्ञानवान् व्यापक अग्निदेव का गुणगान करते हुए हव्य समर्पित करते हैं ॥३ ॥

८८३०. ऋतस्य हि वर्तनयः सुजातमिषो वाजाय प्रदिवः सचन्ते ।
अधीवासं रोदसी वावसाने घृतैरन्नैर्वावृधाते मधूनाम् ॥४ ॥

यज्ञादि कर्म करते हुए ऐश्वर्य की अभिलाषा करने वाले यजमान बल की प्राप्ति के लिए भली प्रकार प्रदीप्त अग्निदेव की अर्चना करते हैं । पृथ्वी और द्युलोक ने अग्नि, विद्युत् और सूर्य रूप से तीनों लोकों में स्थित अग्निदेव को मधु , घृत, जल तथा अन्न द्वारा संवर्धित किया ॥४ ॥

८८३१. सप्त स्वसृररुषीर्वावशानो विद्वान्मध्व उज्जभारा दृशे कम् ।
अन्तर्येमे अन्तरिक्षे पुराजा इच्छन्वव्रिमविदत्पूषणस्य ॥५ ॥

विद्वान् (अग्निदेव) ने उज्ज्वल, रमण योग्य सात भगिनी (सप्तवर्णी किरणों अथवा ज्वालाओं) को सहजता से सुखकारक समस्त पदार्थों को देखने के लिए प्रकट किया । इन (सप्तवर्णी किरणों) को पुरातन समय में उत्पन्न अग्निदेव ने द्युलोक और पृथ्वी के मध्य स्थापित किया था । प्रखर यजमानों की कामना से अग्निदेव ने (पर्जन्य वर्षा के रूप में) पृथ्वी को पोषक रस प्रदान किया ॥५ ॥

८८३२. **सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात् ।**
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥६ ॥

नीति-निर्धारकों (विधिवेत्ताओं) ने मनुष्यों के लिए सात मर्यादाओं को निर्धारित किया । उनमें से एक का भी जो उल्लङ्घन करते हैं, वे पापकर्मी कहलाते हैं । पाप रूपी दुष्कर्मों से मनुष्यों को बचाने वाले अग्निदेव हैं । वे अग्निदेव मनुष्यों के समीप यज्ञवेदी पर सूर्य रश्मियों के विचरण मार्ग तथा जल के मध्य तीनों (पृथ्वी, द्यु एवं अन्तरिक्ष) लोकों में विराजमान होते हैं ॥६ ॥

८८३३. **असच्च सच्च परमे व्योमन् दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थे ।**
अग्निर्ह नः प्रथमजा ऋतस्य पूर्व आयुनि वृषभश्च धेनुः ॥७ ॥

(ये अग्नि) असत् (अव्यक्त) तथा सत् (व्यक्त) दोनों रूपों में परम व्योम में संव्याप्त हैं । इन दक्ष (कर्म कुशल) का जन्म अदिति (अखण्ड-एकात्म तत्त्व अथवा सूर्य) के अंक (अंतरिक्ष) में हुआ । वे निश्चित रूप से हमसे एवं हमारे यज्ञ से पहले उत्पन्न हुए । प्रथम सृष्टि में वे ही वृषभ (गर्भ स्थापक) तथा वे ही धेनु (गर्भ धारक) रहे हैं ॥७ ॥

[अग्नि का उद्भव अखण्ड ब्राह्मी चेतना से हुआ । उनके उत्पन्न होने पर ही दृश्य जगत् का विकास हुआ । इसीलिए वे हमसे एवं सृष्टि यज्ञ से प्रथम उत्पन्न हैं । वे लिंग भेद से परे दोनों (पिता-माता की) भूमिकाएँ सम्पन्न करने में समर्थ हैं ।]

[सूक्त - ६]

[**ऋषि** - त्रित आप्त्य । देवता - अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

८८३४. **अयं स यस्य शर्मन्नवोभिरग्नेरेधते जरिताभिष्टौ ।**
ज्येष्ठेभिर्यो भानुभिर्ऋषूणां पर्येति परिवीतो विभावा ॥१ ॥

ये वही अग्निदेव हैं, जिनकी संरक्षण शक्तियों से स्तुतिकर्त्ता अभीष्ट फलों को प्राप्त कर अपने सुख - सौभाग्य को बढ़ाते हैं । अग्निदेव श्रेष्ठ सूर्य किरणों के रूप में दीप्तिमान् तेज से चारों ओर प्रकाशित होकर सर्वत्र विचरण करते हैं ॥१ ॥

८८३५. **यो भानुभिर्विभावा विभात्यग्निर्देवेभिर्ऋतावाजस्रः ।**
आ यो विवाय सख्या सखिभ्योऽपरिह्वृतो अत्यो न सप्तिः ॥२ ॥

जो सत्य और नित्य-शाश्वत अग्निदेव , देवों की तेजस्विता से प्रकाशित होते हैं, वे ही गतिशील अश्व के समान सखारूप यजमानों के कल्याणकारी कार्यों को सम्पन्न करने के लिए निरन्तर उनके समीप पहुँचते हैं ॥२ ॥

८८३६. **ईशे यो विश्वस्या देववीतेरीशे विश्वायुरुषसो व्युष्टौ ।**
आ यस्मिन्मना हवींष्यग्नावरिष्टरथः स्कभ्नाति शूषैः ॥३ ॥

सर्वत्र गतिशील अग्निदेव सम्पूर्ण विश्व में यज्ञीय कर्मों के अधिपति (स्वामी) हैं । सबके प्राणरूप वे उषा काल मे सक्रिय (पोषक प्रवाहों या यज्ञादि कर्मों के) स्वामी हैं । अग्निदेव को साधकगण मानसिक भावनाओं के अनुरूप

हविष्यान्न समर्पित करते हैं। उनका कल्याणकारी यज्ञरूप रथ ही अनिष्टकारी शक्तियों के कुप्रभाव को रोकते हुए विश्व - व्यवस्था को संचालित करने का माध्यम है ॥३ ॥

८८३७. शूषेभिर्वृधो जुषाणो अर्कैर्देवाँ अच्छा रघुपत्वा जिगाति।
मन्द्रो होता स जुह्वा३ यजिष्ठः सम्मिश्लो अग्निरा जिघर्ति देवान् ॥४ ॥

अनेक शक्तियों से संवर्द्धित, स्तोत्रों से स्तुत्य अग्निदेव अपने शीघ्रगामी रथों से देवों के समीप पहुँचते हैं। वे स्तुत्य, देवावाहक, वाणी द्वारा यजन योग्य अग्निदेव देवताओं द्वारा नियुक्त हैं। वे ही सबके सहयोगी रूप में देवताओं के निमित्त हविष्यान्न को समर्पित करते हैं ॥४ ॥

८८३८. तमुस्रामिन्द्रं न रेजमानमग्निं गीर्भिर्नमोभिरा कृणुध्वम्।
आ यं विप्रासो मतिभिर्गृणन्ति जातवेदसं जुह्वं सहानाम् ॥५ ॥

हे ऋत्विजो ! महान् ऐश्वर्य एवं विभिन्न साधनों के प्रदाता देदीप्यमान अग्निदेव को इन्द्रदेव के सदृश ही प्रार्थनाओं और आहुतियों द्वारा अपने समक्ष प्रकट करो। मेधावीजन, शत्रुपराभवकारी देवों का आवाहन करने वाले जातवेदा अग्निदेव की आदरपूर्वक स्तुति करते हैं (जिससे उनकी कृपा प्राप्त हो सके) ॥५ ॥

८८३९. सं यस्मिन्विश्वा वसूनि जग्मुर्वाजे नाश्वाः सप्तीवन्त एवैः।
अस्मे ऊतीरिन्द्रवाततमा अर्वाचीना अग्न आ कृणुष्व ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार तीव्र गतिशील अश्व समर क्षेत्र (युद्ध भूमि) में इकट्ठे होते हैं, उसी प्रकार संसार की समस्त सम्पदाएँ आपके अधीनस्थ होकर आपकी ओर जाती हैं (आपमें संगृहीत होती हैं)। हे अग्निदेव ! आप हमारे निमित्त पराक्रमी इन्द्रदेव से उपलब्ध नवीन संरक्षण - साधन प्रदान करें ॥६ ॥

८८४०. अधा ह्यग्ने मह्ना निषद्या सद्यो जज्ञानो हव्यो बभूथ।
तं ते देवासो अनु केतमायन्नधावर्धन्त प्रथमास ऊमाः ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! आप उत्पन्न होने के साथ ही महिमायुक्त होकर शीघ्रता से प्रज्वलित होते हैं तथा यज्ञस्थल में आहुतियों का सेवन करते हैं। अतएव सभी देवगण आपको देखते ही अनुगमन करते हैं तथा श्रेष्ठ लोग आपसे संरक्षित होकर उत्कर्ष प्राप्त करते हैं ॥७ ॥

[सूक्त - ७]

[**ऋषि** - त्रित आप्त्य। **देवता** - अग्नि। **छन्द** - त्रिष्टुप्।]

८८४१. स्वस्ति नो दिवो अग्ने पृथिव्या विश्वायुर्धेहि यजथाय देव।
सचेमहि तव दस्म प्रकेतैरुरुष्या ण उरुभिर्देव शंसैः ॥१ ॥

हे दिव्यगुण सम्पन्न अग्निदेव ! दिव्यलोक और पृथ्वी से आप हमारे यज्ञ के लिए सम्पूर्ण कल्याणकारी अन्नों को प्रदान करें। हम आपके निमित्त यज्ञीय भाव से साधन अर्पित करें। हे अद्वितीय अग्निदेव ! आप अपनी विशिष्ट ज्ञान - सम्पदा तथा श्रेष्ठ संरक्षण - सामर्थ्यों से हमारा संरक्षण करते हैं ॥१ ॥

८८४२. इमा अग्ने मतयस्तुभ्यं जाता गोभिरश्वैरभि गृणन्ति राधः।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानड्वसो दधानो मतिभिः सुजात ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! ये स्तोत्र आपके निमित्त ही उच्चारित किये गये हैं । हमारे लिये जो गौओं और अश्वों से युक्त धन आपके द्वारा भेंट किया गया है, उसमें भी आपकी ही महिमा है । आप मनुष्यों को उपभोग्य धन-सम्पदा प्रदान करते हैं । हे श्रेष्ठ गुण - सम्पन्न ऐश्वर्यदाता ! आपके प्रति हम प्रार्थनाएँ समर्पित करते हैं ॥२ ॥

८८४३. अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिमग्निं भ्रातरं सदमित्सखायम् ।
अग्नेरनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य ॥३ ॥

हम अग्निदेव को ही संरक्षक रूप पिता, सहायक रूप बन्धु तथा हमेशा से ही अपना हितैषी-मित्र स्वीकार करते रहे हैं । हम महिमायुक्त अग्निदेव की यज्ञस्थल पर उसी प्रकार अर्चना करते हैं, जिस प्रकार दिव्यलोक स्थित, पूजनीय , प्रकाशमान सूर्य मण्डल की लोग उपासना करते हैं ॥३ ॥

८८४४. सिध्रा अग्ने धियो अस्मे सनुत्रीर्यं त्रायसे दम आ नित्यहोता ।
ऋतावा स रोहिदश्वः पुरुक्षुर्द्युभिरस्मा अहभिर्वाममस्तु ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! हमारी बुद्धियाँ (प्रार्थनाएँ) अभीष्ट फलों की प्राप्ति में सहायक सिद्ध हों । होतारूप आप जिन्हें अपने नियन्त्रण एवं संरक्षण में रखते हैं, ऐसे हम आपके सान्निध्य में रहकर यज्ञमय जीवन जियें । हम अश्वादि से युक्त धन तथा प्रचुर सम्पदा के स्वामी बनें । हमें ऐश्वर्यशाली दिनों में हविष्यान्न समर्पित करने का लाभ मिले ॥४ ॥

८८४५. द्युभिर्हितं मित्रमिव प्रयोगं प्रत्नमृत्विजमध्वरस्य जारम् ।
बाहुभ्यामग्निमायवोऽजनन्त विक्षु होतारं न्यसादयन्त ॥५ ॥

तेजोमय, मित्रतुल्य, पुरातन, ऋत्विज्रूप, हिंसारहित, यज्ञसम्पन्न कर्त्ता अग्निदेव को याज्ञिकों ने अपने हाथों से प्रादुर्भूत किया । मनुष्यों ने देवों के आवाहक और यज्ञ के निमित्त अग्नि को प्रजाजनों के मध्य प्रतिष्ठित किया ॥५॥

८८४६. स्वयं यजस्व दिवि देव देवान्किं ते पाकः कृणवदप्रचेताः ।
यथायज ऋतुभिर्देव देवानेवा यजस्व तन्वं सुजात ॥६ ॥

हे तेजस्- सम्पन्न अग्निदेव ! आप दिव्यलोक में स्थित देवताओं के लिए स्वयं यजन करें । मन्द बुद्धि और अबोध मनुष्य आपके बिना कुछ भी करने में सक्षम नहीं । हे श्रेष्ठ जन्मा अग्निदेव ! जिस प्रकार आप समय-समय पर देवताओं के निमित्त यजन करते हैं, उसी प्रकार इस समय भी करें ॥६ ॥

८८४७. भवा नो अग्नेऽवितोत गोपा भवा वयस्कृदुत नो वयोधाः ।
रास्वा च नः सुमहो हव्यदातिं त्रास्वोत नस्तन्वो३ अप्रयुच्छन् ॥७ ॥

हे ज्ञानी अग्निदेव ! आप प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में सभी दुःखों से हमारी रक्षा करें । आप हमारे लिये अन्न के उत्पादनकर्त्ता और दातारूप भी बनें । हे पूजनीय अग्निदेव ! आप हमारे लिए यज्ञ करने की सामग्री प्रदान करें तथा हमारे शरीर को आलस्य , प्रमादादि से बचाएँ ॥७ ॥

[सूक्त - ८]

[**ऋषि** - त्रिशिरा त्वाष्ट्र । **देवता** - अग्नि, ७-९ इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

८८४८. प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्ताँ उपमाँ उदानळपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥१ ॥

वे अग्निदेव धूम्ररूप विशाल पताका से युक्त होकर द्युलोक और पृथ्वी में संव्याप्त होते हैं । वे देवों के आवाहन काल में वृषभ के समान शब्द करते हैं । वे द्युलोक के समीपस्थ प्रदेश में व्याप्त होते हैं तथा जल के आश्रय स्थान अन्तरिक्ष में विद्युत्‌रूप में संवर्द्धित होते हैं ॥१ ॥

८८४९. मुमोद गर्भो वृषभः ककुद्मानस्रेमा वत्सः शिमीवाँ अरावीत्।
स देवतात्युद्यतानि कृण्वन्स्वेषु क्षयेषु प्रथमो जिगाति ॥२ ॥

महान् तेजस्वी और कामनाओं के वर्षक अग्निदेव आकाश और पृथ्वी के बीच प्रसन्नतापूर्वक रहते हैं । ये शब्दायमान अग्निदेव रात्रि और उषा के गर्भ से उत्पन्न होकर यज्ञीय सत्कर्मों का निर्वाह करते हैं । आप आवाहन योग्य स्थानों को उपलब्ध करते हुए यज्ञ में सर्वश्रेष्ठ स्थान पर प्रतिष्ठित होते हैं ॥२ ॥

८८५०. आ यो मूर्धानं पित्रोररब्ध न्यध्वरे दधिरे सूरो अर्णः ।
अस्य पत्मन्नरुषीरश्वबुध्ना ऋतस्य योनौ तन्वो जुषन्त ॥३ ॥

जो माता-पिता पृथ्वी-द्युलोक के शीर्ष (मस्तक) पर अपनी तेजस्विता को फैलाते हैं, उन बलवान् तेजस्वी अग्निदेव के तेज को यज्ञकर्त्ता अपने यज्ञ में प्रतिष्ठित करते हैं । अग्निदेव के यज्ञस्थल में व्याप्त होने,तेजस्-सम्पन्न होने तथा हविष्यान्नों से युक्त होने पर मेधावीजन उनकी अर्चना करते हैं ॥३ ॥

८८५१. उषउषो हि वसो अग्रमेषि त्वं यमयोरभवो विभावा ।
ऋताय सप्त दधिषे पदानि जनयन्मित्रं तन्वे३ स्वायै ॥४ ॥

हे प्रशंसनीय अग्निदेव ! आप उषःकाल से पहले ही यज्ञस्थल पर विराजमान होते हैं । आप दिवस-रात्रि दोनों को सुशोभित करते हैं । आप अपने तेज से सूर्यदेव को उत्पन्न करके यज्ञ के लिए सप्तकिरणों रूपी दिव्यता को धारण करते हैं ॥४ ॥

८८५२. भुवश्चक्षुर्मह ऋतस्य गोपा भुवो वरुणो यदृताय वेषि ।
भुवो अपां नपाज्जातवेदो भुवो दूतो यस्य हव्यं जुजोषः ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप महिमायुक्त यज्ञ अथवा सत्य के नेत्रों के प्रकाशक हैं । जब आप वरुण के रूप में यज्ञस्थल पर जाते हैं, उस समय आप ही उसका संरक्षण करते हैं । हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! आप ही जल के पौत्र रूप (जल से मेघ और मेघ से विद्युत् अथवा जल से काष्ठ एवं काष्ठ से अग्नि की उत्पत्ति के कारण) हैं । आप जिस याज्ञिक की हविष्य को स्वीकार करते हैं, उसके संदेशवाहक होकर देवों तक उसे पहुँचाते हैं ॥५ ॥

८८५३. भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः ।
दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! जब आप हविष्यान्न ग्रहण करने वाली अपनी जिह्वा रूपी ज्वालाओं को प्रदीप्त करते हैं, तब आप यज्ञ और फलश्रुति रूप पर्जन्य के प्रवर्त्तक (नायक) कहलाते हैं । जब आप कल्याण स्वरूप अश्वों के साथ प्राप्त होते हैं, तब दिव्यलोक में विराजमान आदित्य की शोभा को धारण करते हैं ॥६ ॥

आगे के तीन मंत्रों के अर्थ सामान्य रूप से एक पौराणिक कथा के संदर्भ में किये जाते हैं । कथा है - 'आप्त के पुत्र त्रित ने अपने पिता से आयुध प्राप्त किये । इन्द्र की प्रेरणा से प्रबल संग्राम किया । उस क्रम में त्वाष्ट्र के पुत्र विश्वरूप का वध करके उनकी गौओं को अपने अधिकार में ले लिया, इस कथा का आध्यात्मिक अर्थ भी निकलता है- आप्त का अर्थ है- स्वप्रमाणित-सनातन । उसके पुत्र त्रित त्रिगुण सम्पन्न जीव चेतना है । वे परम पिता से विविध आयुध (दिव्य सम्पदाएँ) प्राप्त कर जीवन - संग्राम में रत होते हैं । उसमें तीन शीर्ष, तीन आयामों , सप्त बन्धनों व सप्त धातुओं से युक्त त्वष्टा (कर्मकुशल)

के वंशज विश्वरूप (देहाभिमान) को पराजित करते हैं। उनके अधिकार में जो गौएँ-पोषक शक्तियाँ थीं, उन्हें अपने अधिकार में कर लेते हैं। मंत्रों के अर्थ इस ढंग से करने का प्रयास किया गया है कि वे दोनों सन्दर्भों में सटीक बैठें —

८८५४. **अस्य त्रितः क्रतुना वव्रे अन्तरिच्छन्धीतिं पितुरेवैः परस्य ।**
सचस्यमानः पित्रोरुपस्थे जामि ब्रुवाण आयुधानि वेति ॥७ ॥

त्रित् (ऋषि अथवा जीवात्मा) परम पिता (परमात्मा) से ही अंत:करण में क्रतु (यज्ञकर्म) की इच्छा करता है । पिता की गोद (अनुशासन) में स्थित होकर वह स्तुतियाँ करता हुआ, आयुधों (जीवन समर के लिए प्रभावपूर्ण माध्यमों को प्राप्त करता है ॥७ ॥

८८५५. **स पित्र्याण्यायुधानि विद्वानिन्द्रेषित आप्त्यो अभ्ययुध्यत् ।**
त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान्त्वाष्ट्रस्य चित्रिः ससृजे त्रितो गाः ॥८ ॥

पिता से आयुध प्राप्त करके उस विद्वान् आप्त्य (आप्त का पुत्र त्रित ऋषि अथवा सनातन चेतना से उत्पन्न जीव या अग्नि) ने प्रबल संग्राम किया । तीनशीर्ष (तीन आयामों) सप्त बन्धन (सप्त धातु) युक्त त्वष्टा पुत्र (देहाभिमान) का वध करके उस मित्र ने उसकी गौओं (किरणों, वाणियों) को संचरित किया ॥८ ॥

८८५६. **भूरीदिन्द्र उदिनक्षन्तमोजोऽवाभिनत् सत्पतिर्मन्यमानम् ।**
त्वाष्ट्रस्य चिद्विश्वरूपस्य गोनामाचक्राणस्त्रीणि शीर्षा परा वर्क् ॥९ ॥

सत् के अधिपति इन्द्रदेव ने त्वष्टा के पुत्र भारी बलयुक्त , अभिमानी विश्वरूप (कोई भी रूप धारण करने में समर्थ मेघ या अहंकार) को विदीर्ण कर दिया । उसकी गौओं (किरणों-शक्तियों) को अपने पास बुलाते हुए उसके तीनों शीर्षों का उच्छेदन कर दिया ॥९ ॥

[सूक्त - ९]

[**ऋषि** - त्रिशिरा त्वाष्ट्र अथवा सिन्धुद्वीप आम्बरीष । **देवता** - आपो देवता (जल) । **छन्द** - गायत्री, ५ वर्धमाना गायत्री, ७ प्रतिष्ठा गायत्री, ८-९ अनुष्टुप् ।]

८८५७. **आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥१ ॥**

हे जलदेव ! आप सुखों के मूल स्रोत हैं । आप हमें पराक्रम से युक्त उत्तम कार्य करने के लिए पोषकरस (अन्न) प्रदान करें ॥१ ॥

८८५८. **यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥२ ॥**

हे जलदेव ! अपने अत्यन्त सुखकर पोषकरस का हमें सेवन करने दें । जैसे बच्चे को माताएँ अपने दुग्ध से पोषण देती हैं, वैसे ही आप हमें पोषित करें ॥२ ॥

८८५९. **तस्मा अरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥३ ॥**

हे जलदेव ! आपका वह कल्याणकारी रस हमें शीघ्रता से उपलब्ध हो, जिसके द्वारा आप सम्पूर्ण विश्व को तृप्त करते हैं । आप हमारे वंश को पोषण प्रदान कर उसे आगे बढ़ाएँ ॥३ ॥

८८६०. **शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभि स्रवन्तु नः ॥४ ॥**

हमें, सुख-शान्ति प्रदान करने वाला जल प्रवाह प्रकट हो । वह जल पीने योग्य, कल्याणकारी एवं सुखकर हो, मस्तक के ऊपर क्षरित होकर रोगों को हमसे दूर करे ॥४ ॥

८८६१. ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् । अपो याचामि भेषजम् ॥५ ॥

जल प्रवाह ही मनुष्यों के इच्छित पदार्थों का स्वामी और प्राणिमात्र का आश्रयदाता (आश्रय स्थल) है । हम उस जल से ओषधियों में जीवन रस की कामना करते हैं ॥५ ॥

८८६२. अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा । अग्निं च विश्वशम्भुवम् ॥६ ॥

जलतत्त्व में सम्पूर्ण ओषधिरस और संसार के लिए सुखदायक अग्नितत्त्व भी विद्यमान है, ऐसा सोमदेव ने संकेत किया है ॥६ ॥

८८६३. आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम । ज्योक्च सूर्यं दृशे ॥७ ॥

हे जलदेव ! हमारे शरीर के लिए आप संरक्षक ओषधियाँ प्रदान करें । जिनसे आरोग्य लाभ प्राप्त करके हम चिरकाल तक सूर्य दर्शन से कृतार्थ हों अर्थात् दीर्घायु को प्राप्त करें ॥७ ॥

८८६४. इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि । यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ॥८ ॥

हमारे अन्दर किसी के प्रति द्वेषभाव, आक्रोशवश मारण प्रयोग अथवा असत्य वाणी का प्रयोग आदि कोई विकार हो, तो हे जलदेव ! आप उन्हें पूर्णरूपेण समाप्त करके, हमें शुद्ध- पवित्र बनाएँ ॥८ ॥

८८६५. आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि ।
पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ॥९ ॥

आज हमने जल का आश्रय प्राप्त किया है तथा इस के रस से लाभान्वित हुए हैं । हे अग्निदेव ! आप जल में विद्यमान हैं । हमारे समीप आकर हमें अपनी तेजस्विता से परिपुष्ट करें ॥९ ॥

[सूक्त - १०]

[**ऋषि** - १, ३, ५, ७, ११, १३ यमी वैवस्वती (ऋषिका) ; २, ४, ८-१०, १२, १४ यम वैवस्वत । **देवता** - १, ३, ५, ७, ११, १३ यम वैवस्वत; २, ४, ८-१०, १२, १४ - यमी वैवस्वती । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

इस सूक्त के देवता एवं ऋषि (दोनों ही) 'यम एवं यमी' हैं । सायणादि आचार्यों के मत से ऋषि एवं देवता व्यक्तिवाचक भी हैं; साथ ही उन्हें प्राण की विशिष्ट धाराओं के रूप में भी स्वीकार किया जाता है ।

व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में - पौराणिक सन्दर्भ में यम और यमी विवस्वान् के जुड़वाँ पुत्र एवं पुत्री हैं । अपने प्रवास क्रम में समुद्र के बीच निर्जन प्रदेश में यमी, यम के संयोग से सन्तान प्राप्ति की कामना व्यक्त करती है । यम उसके प्रस्ताव से सहमत नहीं होते । यमी के प्रस्तुत तर्कों और व्यंग्यों को निरस्त करके वे उसे मर्यादा- पालन के लिए प्रेरित करते हैं । पौराणिक कथानक की लौकिक प्रेरणा यह है कि यदि किसी परिस्थिति विशेष में नर-नारी में से एक पक्ष के मन में दुर्बलता आये भी, तो दूसरा पक्ष अविचल रहकर मर्यादा के संरक्षण में समर्थ सिद्ध हो, यही गरिमामय है ।

सूक्त के ऋषि एवं देवता यम और यमी को विशिष्ट प्राण धारा मानकर सृष्टि संरचना के किसी गूढ़ संदर्भ तक पहुँचा जा सकता है । विवस्वान् का अर्थ है- तेजस्-सम्पन्न अथवा विशिष्ट प्रकार से आवृत करने वाला । मान्य तथ्य है कि परम व्योम के सीमित अंश में पदार्थ एवं जीव की संरचना हुई है । परम व्योम तथा सृष्टि युक्त आकाश के बीच एक चेतना का आवरण आवश्यक है । यह आवरण तेजस्- सम्पन्न विवस्वान् है । विवस्वान् ने अपने को विशिष्ट धाराओं में विभक्त किया - 'यम एवं यमी' । यम एवं यमी दोनों अपने नाम के अनुरूप नियमन करने में समर्थ हैं । यम में बीज की क्षमता है तथा यमी में भूमि की सामर्थ्य है ।

यह दोनों प्रवाह सृष्टि की रचना के उद्देश्य से छोड़े गए । विशाल, एकांत व्योम-सागर में गतिमान् उनमें से एक धारा संयुक्त होने के लिए स्वभावतः सक्रिय होना चाहती है; किन्तु यह उचित नहीं है । यदि वे दोनों घटक मिल जाते, तो पुनः वही 'विवस्वान्' तत्त्व बन जाता-सृष्टि का विशिष्ट उद्देश्य नहीं सधता । इसलिए नियामक देवधारा-यम उससे सहमत नहीं होते । वे यमी से कहते हैं कि हम दोनों (प्राण-प्रवाहों) को परस्पर न मिलकर-भिन्न प्रकार प्रकट किये गए असुर अर्थात् शक्तिशाली ऊर्जा कणों से संयुक्त होकर जीव-संरचना का आधार बनाना चाहिए । स्मरणीय तथ्य है- विज्ञान भी यह मानने लगा है कि प्रथम महाविस्फोट

(बिगबैंग) में चेतना कण तथा दूसरे में शक्ति कण बने। शक्ति कणों के परस्पर संयोग से पदार्थकण बने तथा शक्तिकणों और चेतना कणों के संयोग से प्राणि-जगत् की उत्पत्ति हुई। यह सूक्त इसी गूढ़ प्रक्रिया का घटनापरक चित्रण करता प्रतीत होता है। मंत्रार्थ करने में ऐसा प्रयास किया गया है कि उसे उक्त दोनों (पौराणिक एवं प्रकृतिगत) अर्थों पर घटित किया जा सके -

८८६६. **ओ चित्सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान्।**
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः ॥१॥

(यमी ने कहा) हे यमदेव ! विशाल समुद्र (व्योम) के एकान्त प्रदेश में सख्य भाव या मित्र रूप से आपसे मैं मिलना चाहती हूँ। विधाता की इच्छा है कि नौका के समान संसार सागर में तैरने के लिए, पिता के नाती सदृश श्रेष्ठ सन्तति - प्रजननार्थ हम परस्पर संगत हों ॥१॥

८८६७. **न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत्सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति।**
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् ॥२॥

(यम का कथन) हे यमी ! आपका सहयोगी यम आपके साथ इस प्रकार के सम्पर्क (सहयोग) की कामना से रहित है; क्योंकि आप सहोदरा बहिन हैं। हमें यह अभीष्ट नहीं। असुरों (शक्ति- सम्पन्न व्यक्तियों या तत्त्वों) के वीर पुत्र हैं, जो दिव्य लोकादि के धारणकर्त्ता हैं, वे सर्वत्र विचरण करते हैं (उनकी संगति ही अभीष्ट है) ॥२॥

८८६८. **उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित्त्यजसं मर्त्यस्य।**
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्व१मा विविश्याः ॥३॥

(यमी का कथन) हे यम ! यद्यपि मनुष्यों में ऐसा संयोग त्याज्य है, तो भी देवशक्तियाँ इस प्रकार के संसर्ग की इच्छुक होती हैं। मेरी इच्छा का अनुकरण आप भी करें। पतिरूप में आप ही हमारे लिए उपयुक्त हैं ॥३॥

८८६९. **न यत्पुरा चकृमा कद्ध नूनमृता वदन्तो अनृतं रपेम।**
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नो नाभिः परमं जामि तन्नौ ॥४॥

(यम का कथन) हे यमी ! हमने पहले भी इस प्रकार का कृत्य नहीं किया; हम सत्यवादी हैं, असत्य वचन नहीं बोलते। अप् (सृष्टि का मूल तत्त्व) से ही गन्धर्व (धारण करने वाला-पिता) और अप् से ही योषा (नारी-माता) की उत्पत्ति हुई है, वे ही हम दोनों के उत्पादक हैं, यही हमारा विशिष्ट सम्बन्ध है, (जिसे हमें निभाना चाहिए) ॥४॥

[अप् का सामान्य अर्थ जल लिया जाता है, किन्तु विद्वानों ने इसे मूल उत्पादक तत्त्व की क्रियात्मक अवस्था कहा है। वर्तमान भौतिक विज्ञान के सन्दर्भ में इसे पदार्थ की 'क्वान्टम' अवस्था कह सकते हैं। सायण ने भी लिखा है "आपो वै सर्वा देवता"। गोपथ ब्राह्मण ने 'अपांगर्भः पुरुष' 'अप् का गर्भ ब्रह्म' कहा है। पौराणिक सन्दर्भ में गन्धर्व से सूर्य तथा योषा से सूर्य पत्नी सरण्यू का भाव लिया जाता है।]

८८७०. **गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः।**
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ॥५॥

(यमी का कथन) हे यम ! सर्वप्रेरक और सर्वव्यापी उत्पादन कर्त्ता त्वष्टा (गढ़ने वाले) देव ने हमें गर्भ में ही (एक साथ रहकर) दम्पति के रूप में सम्बद्ध किया है। उस प्रजापालक परमेश्वर की इच्छा (विधि- व्यवस्था) को रोकने में कोई सक्षम नहीं, हमारे इस सम्बन्ध का पृथ्वी और द्युलोक को भी परिचय है ॥५॥

८८७१. **को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत्।**
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ॥६॥

हे यम ! इस प्रथम दिवस की बात से कौन परिचित है ? इसे कौन देखता है ? इस पारस्परिक सम्बन्ध को कौन बतलाने में समर्थ है ? मित्र और वरुण देवों के इस महान् धाम में अध: पतन की बात आप किस प्रकार कहते हैं ? ॥६ ॥

८८७२. यमस्य मा यम्यं१ काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय ।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद्वृहेव रथ्येव चक्रा ॥७ ॥

पति के प्रति पत्नी के समर्पण के समान ही, तुम्हें अपने आपको सौंपती हूँ । एक ही स्थान पर साथ-साथ रहकर, कर्म करने की कामना मुझे प्राप्त हुई है । हम रथ के दो पहियों की तरह समान कार्यों में प्रेरित हों ॥७ ॥

८८७३. न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति ।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ॥८ ॥

(यम का कथन) हे यमी ! इस लोक में जो देवताओं के पार्षद हैं, वे रात- दिन विचरण करते हैं, वे कभी रुकते नहीं, उनकी दृष्टि से कुछ भी छुपाने की सामर्थ्य नहीं । हे आक्षेपकारिणि ! आप कृपया इस भावना से मेरे समीप से चली जाएँ और किसी दूसरे को पति रूप में वरण करें ॥८ ॥

८८७४. रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत्सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात् ।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य बिभृयादजामि ॥९ ॥

(यमी का कथन) हे यम ! रात्रि और दिवस दोनों ही हमारी कामनाओं को पूर्ण करें, सूर्य का तेज यम के लिए तेजस्विता प्रदान करे । द्युलोक और पृथ्वी के समान ही हमारा सम्बन्ध अभिन्न साथी का है, अतएव यमी यम का साहचर्य प्राप्त करे, इसमें दोष नहीं है ॥९ ॥

८८७५. आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि ।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥१० ॥

(यम का कथन) हे यमी ! ऐसा समय भविष्य में आ सकता है, जिसमें बहिनें बन्धुत्व भाव रहित भाइयों को ही पतिरूप में स्वीकार करें; किन्तु हे सौभाग्यवती ! आप मुझ से पतित्व सम्बन्ध की अपेक्षा न रखें । आप किसी दूसरे से सन्तानोत्पत्ति की इच्छा करें ॥१० ॥

८८७६. किं भ्रातासद्यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात् ।
काममूता बह्वे३ तद्रपामि तन्वा मे तन्वं१ सं पिपृग्धि ॥११ ॥

(यमी का कथन) हे यम ! वह कैसा भाई, जिसके रहते बहिन अनाथ फिरे ? वह कैसी बहिन, जो लाचार की तरह पलायन कर जाये ? काम भावना से प्रेरित होकर मेरे द्वारा बहुत बात कही जा रही है, इसीलिए परस्पर काया को संयुक्त करो ॥११ ॥

८८७७. न वा उ ते तन्वा तन्वं१ सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।
अन्येन मत्प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥१२ ॥

(यम का कथन) हे यमी ! यह यथार्थ है कि मैं शारीरिक सम्बन्धों की इच्छा नहीं करता, क्योंकि भ्राता और बहिन का सम्बन्ध पवित्र है, आप मेरी आकांक्षा त्याग कर अन्य पुरुष के साथ ही प्रसन्नचित्त हों । हे सुभगे ! भाई होने के नाते आपका निवेदन मुझे कदापि स्वीकार्य नहीं ॥१२ ॥

८८७८. **बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम।**
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ॥१३॥

(यमी का कथन) अरे यम ! तुम बहुत दुर्बल हो । तुम्हारे मन और हृदय के भावों को समझने में मुझसे भूल हुई । क्या रस्सी द्वारा घोड़े को बाँधने के समान तथा लता द्वारा वृक्ष को आच्छादित करने के समान तुम्हें कोई अन्य स्त्री (नारी) स्पर्श कर सकती है (फिर मैं क्यों नहीं ?) ॥१३॥

८८७९. **अन्यमू षु त्वं यम्यन्य उ त्वां परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम्।**
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम् ॥१४॥

(यम का कथन) हे यमी ! जब आप इस जानकारी से परिचित हैं, तो आप भी अन्य पुरुष का वृक्ष की लता के समान आश्रय ग्रहण करें, अन्य पुरुष को पति रूप में आप स्वीकार करें, परस्पर एक दूसरे की हार्दिक इच्छाओं के अनुरूप आचरण करें तथा उसी से अपने मंगलकारी सुखों को प्राप्त करें ॥१४॥

[सूक्त - ११]

[**ऋषि** - हविर्धान आङ्गि । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - जगती, ७-९ त्रिष्टुप् ।]

८८८०. **वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः।**
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजतु यज्ञियाँ ऋतून् ॥१॥

वर्षणशील, महिमायुक्त और अदम्य अग्निदेव ने अन्तरिक्षीय मेघों का दोहन करके यज्ञ - सम्पादक यजमानों के लिए जल बरसाया । जिस प्रकार वरुणदेव अन्तर्ज्ञान से सम्पूर्ण संसार को जानते हैं, उसी प्रकार वे अग्निदेव भी सम्पूर्ण संसार के ज्ञाता हैं । यज्ञ में प्रयुक्त अग्निदेव की ऋचाओं के अनुरूप अर्चना करें ॥१॥

८८८१. **रपद्गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु मे मनः।**
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वोचति ॥२॥

अग्निदेव की महिमा का गान करने वाली गन्धर्व-पत्नी (वाणी) और जल द्वारा शुद्ध हुई हवियों ने अग्निदेव को सन्तुष्ट किया । एकाग्रतापूर्वक स्तोत्र गान करने वाले साधकों को अखण्ड अग्निदेव यज्ञीय सत्कर्मों की ओर प्रेरित करें । यजमानों में प्रमुख हमारे ज्येष्ठ भ्राता के समान, यज्ञ संचालक इन अग्निदेव की प्रार्थना करते हैं ॥२॥

८८८२. **सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती।**
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन् ॥३॥

जिस समय यज्ञ कार्य के इच्छुक और उसकी व्यवस्था जुटाने वाले याजक अग्निदेव की प्रार्थना करते हुए उन्हें यज्ञ के लिए प्रज्वलित करते हैं, उसी अवसर पर कामनाओं को पूर्ण करने वाली, श्रेष्ठ शब्दों वाली (सुन्दर सम्भाषण युक्त) कीर्तिमती, सुविख्यात उषादेवी मनुष्यों के कल्याण के लिए सूर्योदय से पूर्व ही उदित हो जाती हैं ॥३॥

८८८३. **अध त्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषितः श्येनो अध्वरे।**
यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध धीरजायत ॥४॥

इस (दिव्य उषा के आवरण) के बाद यज्ञ प्रेरित श्येन (सुपर्ण - सूर्य) द्वारा बलशाली, महिमामय, दर्शनीय सोम को समुचित मात्रा में लाया गया । जिस समय श्रेष्ठजन, सम्मुख जाने योग्य, दर्शनीय तथा देवों के आवाहन कर्त्ता अग्निदेव की स्तुति करते हैं, उसी (यज्ञ के) समय धी (बुद्धि अथवा धारण करने की क्षमता) उत्पन्न होती है ॥४ ॥

८८८४. सदासि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः ।
विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यं१ वाजं ससवाँ उपयासि भूरिभिः ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! पशुओं के लिए जिस प्रकार घास आदि आहार विशेष रुचिकर होते हैं, उसी प्रकार आप सदैव रमणीय होकर श्रेष्ठ यज्ञों से मनुष्यों के लिए कल्याणप्रद हों । स्तोताओं के स्तोत्रगान से प्रशंसित होकर आप हविष्यान्न ग्रहण करते हुए विभिन्न देवशक्तियों के साथ हमारे यज्ञ को सफल बनाएँ ॥५ ॥

८८८५. उदीरय पितरा जार आ भगमियक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति ।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस्तविष्यते असुरो वेपते मती ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार रात्रि रूपी अन्धकार को विनष्ट करने वाले सूर्यदेव अपने प्रकाश रूपी तेज से सर्वत्र फैलते हैं, उसी प्रकार आप भी अपने ज्वाला रूपी तेज को माता-पिता रूपी पृथ्वी-आकाश में विस्तृत करें । सन्मार्ग के अभिलाषी यजमान दैवी गुणों के संवर्द्धन के लिए अन्तःकरण से यज्ञरूपी सत्कर्मों को करने के इच्छुक हैं । अग्निदेव स्तोत्रों को संवर्द्धित करते हैं । ब्रह्मा यज्ञ कर्म को भली प्रकार संचालित करने की उत्सुकता से स्तोत्रों को बढ़ाते हैं तथा यज्ञकर्म में कोई त्रुटि न रह जाये, इसके लिए सदैव जागरूक रहते हैं ॥६ ॥

८८८६. यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो अक्षत्सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे ।
इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमाँ अमवान्भूषति द्यून् ॥७ ॥

बल से उत्पन्न हे अग्निदेव ! जो मनुष्य आपकी कृपादृष्टि को प्राप्त कर लेते हैं । वे विशेष ख्याति को प्राप्त होते हैं । अन्नादि से सम्पन्न, अश्वादि से युक्त तेजस्-सम्पन्न और शक्तिशाली होकर वे मनुष्य दीर्घजीवन तथा सुख-सौभाग्य को प्राप्त करते हैं ॥७ ॥

८८८७. यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र ।
रत्ना च यद्विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात् ॥८ ॥

हे स्वधायुक्त यज्ञीय अग्निदेव ! जिस अवसर पर हम यजनीय देवताओं के लिए प्रार्थनाओं को सम्पन्न करें तथा आपके द्वारा विभिन्न प्रकार के रत्नादि द्रव्यों को यजमानों में वितरित करते हों, उस समय आप हमारे भी धन का हिस्सा हमें प्रदान करें ॥८ ॥

८८८८. श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! इन सम्पूर्ण देवताओं से सम्पन्न यज्ञ स्थल में रहते हुए आप हमारे द्वारा की गई प्रार्थनाओं के अभिप्राय को जानें । आप अपने अमृतवर्षक रथ को योजित करें । देवशक्तियों के माता-पिता रूप द्यावा- पृथिवी को हमारे यज्ञ में लेकर आएँ । कोई भी देव हमारे यज्ञकर्म से असन्तुष्ट न हों, अतएव आप यहीं रहें । देवों के आतिथ्य से पृथक् न हों ॥९ ॥

[सूक्त - १२]

[ऋषि - हविर्धान आङ्गि । देवता - अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

८८८९. द्यावा हक्षामा प्रथमे ऋतेनाभिश्रावे भवतः सत्यवाचा ।
देवो यन्मर्तान्यजथाय कृण्वन्त्सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन् ॥१ ॥

सत्य वचनों के द्वारा द्युलोक और पृथ्वी, यज्ञीय अवसर पर नियमानुसार सर्वप्रथम अग्निदेव का आवाहन करें । तत्पश्चात् तेजस्-सम्पन्न अग्निदेव भी यज्ञीय कर्मों की ओर मनुष्यों को प्रेरित करें । वे अपनी प्रज्वलित ज्योति से यज्ञ में प्रतिष्ठित होकर देवों के आवाहन के लिए उद्यत हों ॥१ ॥

८८९०. देवो देवान्परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान् ।
धूमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् ॥२ ॥

दिव्यगुण- सम्पन्न, देवताओं में सत्य के प्रमुख ज्ञाता, सर्वोत्तम अग्निदेव, हमारे द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न को देवताओं के समीप पहुचाएँ । धूम्र ध्वजा वाले, समिधाओं द्वारा ऊर्ध्वगामी, कान्ति द्वारा उज्ज्वल, प्रशंसनीय देवों के आवाहक, नित्य अग्निदेव को अभिमन्त्रित आहुतियाँ समर्पित की जाती हैं ॥२ ॥

८८९१. स्वावृग्देवस्यामृतं यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी ।
विश्वे देवा अनु तत्ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः ॥३ ॥

अग्निदेव द्वारा सुखों को प्रदान करने वाले जल का उत्पादन होता है, उससे उत्पादित ओषधियों का द्यावा-पृथिवी द्वारा पोषण किया जाता है । हे अग्निदेव ! आपकी दीप्तिमान् ज्वालाएँ स्वर्गस्थ दिव्य पोषक रस के रूप में जल का दोहन करती हैं । सभी देवताओं द्वारा आपके इस जल-वृष्टि रूपी अनुदान की महिमा का गान किया जाता है ॥३ ॥

८८९२. अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे ।
अहा यद् द्यावोऽसुनीतिमयन्मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम् ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे यज्ञीय कर्मों को उन्नत करें । हे जलवर्षक द्यावा-पृथिवि ! हम आपकी स्तुति करते हैं ।आप इसके अभिप्राय को जानें । स्तोता जिस समय यज्ञ के अवसर पर आपकी प्रार्थना करते हैं, उसी समय माता-पिता रूपी पृथ्वी और द्युलोक यहाँ जल- वृष्टि करके हमारे लिए विशेष सहायक हों ॥४ ॥

८८९३. किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्याति व्रतं चकृमा को वि वेद ।
मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवाञ्छ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति ॥५ ॥

क्या प्रज्वलित अग्निदेव हमारी प्रार्थनाओं और हविष्यान्न को ग्रहण करेंगे ? क्या हमारे द्वारा उनके नियमों-व्रतों का उचित रीति से निर्वाह किया गया है ? इसे जानने में कौन समर्थ है ? श्रेष्ठ मित्र को बुलाने के समान ही अग्निदेव भी हमारे आवाहन पर प्रकट होते हैं । हमारी ये प्रार्थनाएँ और हविष्यान्न देवताओं की ओर गमन करें ॥५ ॥

८८९४. दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति ।
यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् ॥६ ॥

जल इस भूमि पर अमृत स्वरूप गुणों से सम्पन्न और नानाविध रूपों में संव्याप्त है, जो यमदेव के अपराधों को क्षमा करता है । हे महिमावान् तेजस्वी अग्निदेन ! आप उस जल का संरक्षण करें ॥६ ॥

८८९५. यस्मिन्देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते ।
सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्य१क्तून्परि द्योतनिं चरतो अजस्रा ॥७ ॥

यजमान की यज्ञ वेदी (पूजा वेदी) पर प्रतिष्ठित होने वाले देवगण, अग्निदेव के सान्निध्य को प्राप्त करके हर्षित होते हैं । इनके द्वारा ही सूर्य में तेजस्विता (दिवस) तथा चन्द्रमा में रात्रि को स्थापित किया गया है । ये दोनों सूर्य और चन्द्र अनवरत तेजस्विता को धारण किये हुए हैं ॥७ ॥

८८९६. यस्मिन्देवा मन्मनि सञ्चरन्त्यपीच्ये३ न वयमस्य विद्म ।
मित्रो नो अत्रादितिरनागान् त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ॥८ ॥

जिन ज्ञान-सम्पन्न अग्निदेव की उपस्थिति में देवशक्तियाँ अपने कार्यों का निर्वाह करती हैं । हम उनके रहस्यमय स्वरूप को जानने में असमर्थ हैं ॥८ ॥

८८९७. श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आप समस्त देवताओं से सुशोभित यज्ञस्थल में रहते हुए हमारे द्वारा की गई प्रार्थनाओं के अभिप्राय को समझें । आप अपने अमृतवर्षक रथ को योजित करें । देवशक्तियों के माता-पिता रूप द्युलोक और पृथिवी को हमारे यज्ञ में लेकर आएँ । हमारे यज्ञीय कर्मों से कोई भी देव असन्तुष्ट न हों । आप यहीं रहें, देवों के सान्निध्य को छोड़कर कहीं न जाएँ ॥९ ॥

[सूक्त - १३]

[**ऋषि** - विवस्वान् आदित्य । **देवता** - हविर्धान । **छन्द** - त्रिष्टुप् , ५ जगती ।]

८८९८. युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक एतु पथ्येव सूरेः ।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥१ ॥

हे शकटद्वय ! आप दोनों को हम सोम आदि हविष्यान्न से अभिपूरित करके पत्नीशाला (यज्ञशाला में यजमान पत्नी के लिए नियत स्थान) से हविर्धान की ओर लाते हैं, तब यज्ञ को सम्पन्न करते हैं । आहुतियों की तरह हमारे स्तोत्र वचन भी देवों के समीप पहुँचें । दिव्य लोक के उच्च स्थान में प्रतिष्ठित अमरता को प्राप्त देवगण हमारे स्तोत्रों को सुनें ॥१ ॥

[शकट यज्ञशाला में हव्य पहुँचाने वाला यंत्र भी है तथा पृथ्वी पर पोषक-तत्त्व पहुँचाने वाला प्रकृतिगत तंत्र भी है । यह भाव मंत्र क्र०५ में स्पष्ट होता है । जहाँ शकट द्वारा दोनों लोकों को प्रकाशित होने की बात कही गयी है ।]

८८९९. यमे इव यतमाने यदैतं प्र वां भरन्मानुषा देवयन्तः ।
आ सीदतं स्वमु लोकं विदाने स्वासस्थे भवतमिन्दवे नः ॥२ ॥

हे शकटदेव ! जब आप परस्पर जुड़कर (युग्म रूप में) उत्साहपूर्वक यज्ञस्थल में उपस्थित होते हैं । उस समय याजकगण आपके ऊपर सोम आदि हविष्यान्न समर्पित करते हैं । आप अपने यथेष्ट स्थल को प्राप्त करें जिससे सोम भी उत्तम स्थल पर सुशोभित हो ॥२ ॥

८९००. पञ्च पदानि रुपो अन्वरोहं चतुष्पदीमन्वेमि व्रतेन।
अक्षरेण प्रति मिम एतामृतस्य नाभावधि सं पुनामि ॥३ ॥

हम यज्ञ के पाँचों उपकरणों को यथाक्रम रखते हुए चतुष्पदी त्रिष्टुप् आदि छन्दों का नियमपूर्वक प्रयोग करते हैं। यज्ञस्थल की वेदी पर स्थित सोम को पवित्र करते हुए हम परमात्मा के ॐ नाम का उच्चारण करके अपने यज्ञीय कार्यों को पूर्ण करते हैं ॥३ ॥

८९०१. देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै कममृतं नावृणीत।
बृहस्पतिं यज्ञमकृण्वत ऋषिं प्रियां यमस्तन्वं१ प्रारिरेचीत् ॥४ ॥

देवों में किसे मृत्युभय है ? (अर्थात् किसी को नहीं) मनुष्यों में किसे अमरता नहीं चाहिए ? (अर्थात् सभी को चाहिए)। याज्ञिक जन मन्त्रों से पावन यज्ञ को सम्पादित करते हैं, जिससे हमारे शरीर, आरोग्य- लाभ प्राप्त करके मृत्यु के भय से मुक्त रहते हैं ॥४ ॥

८९०२. सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवतन्नृतम्।
उभे इदस्योभयस्य राजत उभे यतेते उभयस्य पुष्यतः ॥५ ॥

पुत्रवत् ऋत्विग्गण प्रशंसनीय श्रेष्ठ पिता स्वरूप सोम के लिए सप्त छन्दों का उच्चारण करते हुए स्तोत्रों का गान करते हैं। ये दोनों शकट दोनों लोकों को प्रकाशित करते हैं। ये दोनों अपने तेज से देवों और मनुष्यों को परिपुष्ट करते हैं ॥५ ॥

[सूक्त - १४]

[**ऋषि** - यम वैवस्वत। **देवता** - यम; ६ लिङ्गोक्त देवता (अङ्गिरा, पितर, अथर्वा, भृगु, सोम) ; ७-९ लिङ्गोक्त देवता अथवा पितृगण, १०-१२ श्वानद्वय। **छन्द** - त्रिष्टुप्, १३, १४, १६ अनुष्टुप्, १५ बृहती ।]

८९०३. परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम्।
वैवस्वतं सङ्गमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य ॥१ ॥

हे यजमान ! आप पितरों के अधिपति यमदेव की पुरोडाश आदि समर्पित करते हुए सेवा करें। यमदेव पुण्य कर्मियों को सुखद धाम में ले जाते हैं। वे अनेकों के लिए कल्याणकारी मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। विवस्वान् के पुत्र यम के समीप ही सभी मनुष्यों को अन्ततः जाना होता है ॥१ ॥

८९०४. यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या३ अनु स्वाः ॥२ ॥

यम देव की नियम व्यवस्था को कोई परिवर्तित करने में सक्षम नहीं है। जिस मार्ग से हमारे पूर्वकालीन पूर्वज गये हैं, उसी मार्ग से सभी मनुष्य भी स्व-स्व कर्मों के अनुसार लक्ष्य की ओर जायेंगे। हे सर्वोत्तम यमदेव ! आप सभी मनुष्यों के पाप रूपी दुष्कर्म और पुण्य रूपी सत्कर्मों को जानने में समर्थ हैं ॥२ ॥

८९०५. मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः।
याँश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति ॥३ ॥

(सारथी) मातलि, अधीश्वर इन्द्रदेव, काव्ययुक्त पितर जनों की सहायता मे यम, अंगिरादि पितरजनों और

बृहस्पतिदेव, ऋक्व नामक पितरजनों के सहयोग से उन्नतिशील होते हैं । जो देवताओं को संवर्द्धित करने वाले हैं अथवा जिन्हें देवता बढ़ाते हैं, वे भली प्रकार प्रगति करते हैं । उनमें से कुछ (देवगण) स्वाहा तथा कुछ (पितर गण) स्वधा द्वारा सन्तुष्ट होते हैं ॥३ ॥

८९०६. **इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।**
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन्हविषा मादयस्व ॥४ ॥

हे यमदेव ! अंगिरादि पितरजनों सहित आप हमारे इस उत्तम यज्ञ में आकर विराजमान हों । ज्ञानी ऋत्विजों के स्तोत्र आपको आमन्त्रित करें । हे मृत्युपति यम ! इन आहुतियों से तृप्त होकर आप हमें आनन्दित करें ॥४ ॥

८९०७. **अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व ।**
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्य ॥५ ॥

हे मृत्युदेव ! नाना स्वरूपों के धारणकर्त्ता पूजनीय अंगिरा देवों के साथ आप यज्ञस्थल पर पधारें और इस यजमान को प्रसन्न करें । जो आपके पिता विवस्वान् हैं, उनको हम यज्ञ में आवाहित करते हैं । वे इस यज्ञस्थल की पूजावेदी पर कुश के आसन पर विराजमान होकर हमें आनन्दित करें ॥५ ॥

८९०८. **अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।**
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥६ ॥

अंगिरा, अथर्वा और भृगु आदि हमारे पितरगण अभी-अभी पधारे हैं । वे सभी सोम के इच्छुक हैं । उन पितरगणों की कृपादृष्टि हमें उपलब्ध हो, हम उनके अनुग्रह से कल्याणकारी मार्ग की ओर बढ़ें ॥६ ॥

८९०९. **प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः ।**
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥७ ॥

हे पिता ! जिन पुरातन मार्गों से हमारे पूर्वज पितरगण गये हैं, उन्हीं से आप भी गमन करें । वहाँ स्वधा रूप अमृतान्न से तृप्त होकर राजा यम और वरुणदेवों के दर्शन करें ॥७ ॥

८९१०. **सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।**
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ॥८ ॥

हे पिता ! आप उत्तम लोक स्वर्ग में यज्ञ आदि दान-पुण्य कर्मों के फलस्वरूप अपने पितरगणों के साथ संयुक्त हों । पाप कर्मों के प्रभाव से मुक्त होकर पुनः घर में प्रविष्ट हों तथा तेजस्वी देवरूप को प्राप्त करें ॥८ ॥

८९११. **अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् ।**
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ॥९ ॥

हे दुष्ट पिशाचो ! पितरगणों ने इस मृतात्मा के लिए यह स्थान निर्धारित किया है अर्थात् दाह स्थल निश्चित किया है । अतः आप इस स्थान को त्याग कर यहाँ से दूर चले जाएँ । यमदेव ने दिन-रात जल से सिंचित इस स्थल को मृत देहों के लिए प्रदान किया है ॥९ ॥

८९१२. **अति द्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा ।**
अथा पितॄन्त्सुविदत्राँ उपेहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥१० ॥

हे मृतात्मा ! चार नेत्रों वाले, अद्‌भुत स्वरूप वाले, जो ये दो सारमेय (सरमा के पुत्र अथवा साथ रमण करने वाले) श्वान हैं, इनके सान्निध्य में आप शीघ्र गमन करें । तदनन्तर जो पितरगण यम के साथ सदैव हर्षित रहते हैं, उन विशिष्ट ज्ञानी पितरों की श्रेणी को आप भी प्राप्त करें ॥१० ॥

[सारमेय श्वान का अर्थ यहाँ सरमा से उत्पन्न कुत्ते करना असंगत लगता है । साथ रमण करने वाले या शीघ्र गमनशील अर्थ यहाँ सटीक बैठता है । मनुष्य के साथ रहने वाले तथा लोकान्तरों तक साथ जाने वाले चित्रगुप्त के दो दूतों-गुप्त संस्कारों के रूप में इन्हें देखा जा सकता है । यह चार अक्षि-चार भाग (मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार) वाले हैं ।]

८९१३. **यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ ।**
ताभ्यामेनं परि देहि राजन्त्स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि ॥११ ॥

हे मृत्युदेव यम ! आपके गृहरक्षक, मार्गरक्षक तथा ऋषियों द्वारा ख्याति प्राप्त चार नेत्रों वाले जो दो श्वान (गमनशील दूत) हैं, उनसे मृतात्मा को संरक्षित करें तथा इस मृतात्मा को कल्याण का भागी बनाकर पापकर्मों से मुक्त करें ॥११ ॥

८९१४. **उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु ।**
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥१२ ॥

यमदेव के ये दो दूत (कुक्कुर) लम्बी नाक वाले, प्राण हन्ता और अति सामर्थ्यवान् हैं । ये मनुष्यों के प्राणहरण को लक्ष्य करके घूमते हैं । दोनों (यमदूत) हमें सूर्य के दर्शन लाभ के लिए इस स्थान पर कल्याणकारी प्राणदान देने की कृपा करें ॥१२ ॥

८९१५. **यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः ॥ यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो**
अरङ्कृतः ॥१३ ॥

हे ऋत्विग्गण ! यमदेव के लिए हविष्यान्न समर्पित करने के साथ ही उन्हें अभिषवित सोम प्रदान करो । अग्निदेव जिस यज्ञ के वाहक (दूत) हैं, वह (यज्ञ) नानाविध मांगलिक ओषधियों से युक्त होकर यमदेव की ओर गमन करता है ॥१३ ॥

८९१६. **यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत । स नो देवेष्वा यमद्दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥१४ ॥**

हे ऋत्विजो ! यमदेव के लिए घृत से परिपूर्ण हविष्य का यजन करते हुए उनकी स्तुति करो । वे यमदेव हमारे दीर्घ जीवन के निमित्त, हमें चिरायु प्रदान करें ॥१४ ॥

८९१७. **यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन ।**
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥१५ ॥

हे ऋत्विजो ! आप मृत्युराज यम के लिए मिष्ठान्न युक्त आहुतियाँ समर्पित करें । प्राचीनकाल में जिन पूर्वज ऋषिगणों ने हमें सन्मार्ग की प्रेरणा दी है, उनके लिए हम नमन करते हैं ॥१५ ॥

८९१८. **त्रिकद्रुकेभिः पतति षळुर्वीरेकमिद्‌बृहत् ।**
त्रिष्टुब्गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता ॥१६ ॥

मृत्युदेव यम त्रिकद्रुक (ज्योति, गौ और आयु) नामक यज्ञ में संरक्षणार्थ उपस्थित हों । वे यमदेव छः स्थानों (द्युलोक, भूलोक, जल, ओषधियाँ, ऋक् और सूनृत) में निवास करने वाले हैं । त्रिष्टुप्, गायत्री एवं दूसरे सभी छन्दों के माध्यम से हम उनका स्तुति गान करते हैं ॥१६ ॥

[सूक्त - १५]

[**ऋषि** - शङ्ख यामायन । **देवता** - पितृगण । **छन्द** - त्रिष्टुप् , ११ जगती ।]

८९१९. उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥१ ॥

हमारे तीनों प्रकार (उत्तम, मध्यम और निम्न) के पितर अनुग्रहपूर्वक इस यज्ञानुष्ठान में उपस्थित हैं । वे पुत्रों की प्राण-रक्षा के उद्देश्य से यज्ञ में समर्पित हविष्यान्न ग्रहण करें तथा हमारी रक्षा करें ॥१ ॥

८९२०. इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु ॥२ ॥

जो पितामहादि पूर्वज या उसके पश्चात् मृत्यु को प्राप्त पितरगण हैं या जो पृथिवी के राजसी भोगों का उपभोग करने के लिए उत्पन्न हुए हैं या जो सौभाग्यवान् वैभव- सम्पन्न बांधवों के रूप में हैं, उन सभी को नमन है ॥२ ॥

८९२१. आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥३ ॥

हमने यज्ञानुष्ठान सम्पन्न करने का विधि- विधान अपने पितरों से ही सीखा है । वे इससे भली- भाँति परिचित हैं । सभी पितर यज्ञशाला में कुश-आसन पर प्रतिष्ठित होकर हविष्यान्न एवं सोमरस ग्रहण करें ॥३ ॥

८९२२. बर्हिषदः पितर ऊत्य१र्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शन्तमेनाथा नः शं योररपो दधात ॥४ ॥

हे पितृगण ! हमारे आवाहन पर आप उपस्थित होकर कुश-आसन पर प्रतिष्ठित हों । विभिन्न यज्ञीय पदार्थ आपके लिए प्रस्तुत हैं, इनको स्वीकार कर आप हमारा हर प्रकार से कल्याण करें । पाप से बचाकर रक्षा करें ॥४ ॥

८९२३. उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥५ ॥

हम अपने पितृगणों का आवाहन करते हैं । कुश-आसन पर विराजमान होकर प्रस्तुत सोमरस आदि हविष्यान्न का उपभोग करें । हमारी प्रार्थना को स्वीकार करके प्रसन्न होते हुए हमारी रक्षा करें ॥५ ॥

८९२४. आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केनचिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ॥६ ॥

हे पितृगण ! हम अबोध बालकों की त्रुटियों को क्षमा करते हुए आप यज्ञशाला में दक्षिण की ओर घुटनों के बल पृथ्वी पर विराजमान होकर यज्ञ की शोभा बढ़ाएँ ॥६ ॥

८९२५. आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ॥७ ॥

अरुणिम ज्वालाओं के सन्निकट बैठने वाले (यज्ञादि कर्म सम्पन्न करने वाले) यजमान को धन-धान्य प्रदान करें । हे पितरो ! आप यजमान के पुत्र-पौत्रों को भी धन-ऐश्वर्य प्रदान करें, जिससे वे यज्ञादि कर्मों के निमित्त धन नियोजित करते रहें ॥७ ॥

८९२६. ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥८ ॥

सोमरस तैयार करने वाले वसिष्ठ आदि (याजक) वैभव-सम्पन्न होकर सोमपायी पितरों को हविरूप सोम प्रदान करते हैं । पितरों के साथ पितृपति यम भी हविष्य की कामना करते हैं । जो भी हवियों की कामना करते हैं, वे सभी उन्हें प्राप्त करते हैं ॥८ ॥

८९२७. ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः ।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् सत्यैः कव्यैः पितृभिर्घर्मसद्भिः ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! यज्ञविधान के ज्ञाता और ऋचाओं के द्रष्टा जो पितरगण देवत्व पद की प्राप्ति कर चुके हैं । यदि वे हमारी श्रद्धा-भावना की अपेक्षा करते हैं, तो हमारे इस यज्ञ में आएँ । उन सम्माननीय, ज्ञानसम्पन्न, सत्यव्रती, मेधावी, तेजस्विता युक्त पितरगणों के साथ आप भी हमारे यहाँ उपस्थित हों ॥९ ॥

८९२८. ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः ।
आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः परैः पूर्वैः पितृभिर्घर्मसद्भिः ॥१० ॥

सत्यव्रती, हविष्य के इच्छुक, सोमरस पानकर्त्ता जो पितरगण हैं, वे इन्द्रदेव और अन्य देवगणों के साथ संयुक्त रूप से रथ पर विराजमान हैं । हे अग्निदेव ! आप उन सभी देव उपासक, प्राचीन यज्ञीय अनुष्ठानों के निर्वाहक पितरगणों के साथ स्तुतियों द्वारा आवाहन किये जाने पर सादर पधारें ॥१० ॥

८९२९. अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं सर्ववीरं दधातन ॥११ ॥

हे अग्नि के समान तेजस्वी पितरो ! आप यहाँ आएँ और निर्धारित आसन में विराजमान हों । हे पूजनीय पितरो ! पात्रों में स्थित हविष्यान्न का सेवन करें तथा सन्तानादि से युक्त ऐश्वर्य एवं साधन हमें प्रदान करें ॥११ ॥

८९३०. त्वमग्न ईळितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥१२ ॥

हे जातवेदा अग्निदेव ! हम आपके प्रति स्तुति- प्रार्थना करते हैं । आप हमारी श्रेष्ठ-सुगन्धित आहुतियों को स्वीकार करके पितरगणों को प्रदान करें । पितरगण स्वधा द्वारा समर्पित आहुतियों को ग्रहण करें । हे अग्निदेव ! आप भी श्रद्धा- भावनापूर्वक समर्पित आहुतियों का सेवन करें ॥१२ ॥

८९३१. ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ उ च न प्रविद्म ।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व ॥१३ ॥

हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! यहाँ जो पितरगण उपस्थित हुए हैं, जो हमसे परिचित हैं, जो हमारे आवाहन पर नहीं आये हैं अथवा जो हमसे अपरिचित हैं, आप उन सभी पितरगणों के सम्पूर्ण ज्ञाता हैं । हे पितरगण ! स्वधायुक्त इस श्रेष्ठ यज्ञ को आप स्वीकार करें ॥१३ ॥

८९३२. ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
तेभिः स्वराळसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व ॥१४ ॥

हे अग्निदेव ! जिन पितरों का अग्नि संस्कार किया गया अथवा जिनका संस्कार सम्पन्न नहीं किया गया है, जो पितरगण स्वधायुक्त अन्न से तृप्ति को प्राप्त करके स्वर्गलोक में हर्षित हैं, आप उनके साथ सुगन्धित द्रव्यों का सेवन करें तथा पितरगणों की आत्माओं को देवत्व प्रदान करें ॥१४ ॥

[सूक्त - १६]

[ऋषि - दमन यामायन । देवता - अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप् , ११-१४ अनुष्टुप् ।]

८९३३. मैनमग्ने वि दहो माभि शोचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् ।
यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेमेनं प्र हिणुतात्पितृभ्यः ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! इस मृतात्मा को पीड़ित किये बिना (अन्त्येष्टि) संस्कार सम्पन्न करें । इस मृतात्मा को छिन्न-भिन्न न करें । हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! जिस समय आपकी ज्वालाएँ इस देह को भस्मीभूत कर दें, उसी समय इसे (मृतात्मा को) पितरगणों के समीप भेज दें ॥१ ॥

८९३४. शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं परि दत्तात्पितृभ्यः ।
यदा गच्छात्यसुनीतिमेतामथा देवानां वशनीर्भवाति ॥२ ॥

हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! जब आप मृतशरीर को पूर्णरूप से दग्ध कर दें, तब इस मृतात्मा को पितरजनों को समर्पित करें । जब यह मृतात्मा पुनः प्राणधारी हो, तो देवाश्रय में ही रहे ॥२ ॥

८९३५. सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा ।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥३ ॥

हे मृत मनुष्य ! आपके प्राण और नेत्र, वायु और सूर्य से संयुक्त हों । आप अपने पुण्य कर्मों के फल की प्राप्ति के लिए स्वर्ग, पृथ्वी अथवा जल में निवास करें । यदि वृक्ष वनस्पतियों में आपका कल्याण निहित है , तो सूक्ष्म शरीरों से उन्हीं में प्रवेश करें ॥३ ॥

८९३६. अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः ।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! इस मृत पुरुष में जो अविनाशी ईश्वरीय अंश है, उसे आप अपने तेज से तपाएँ- प्रखर बनाएँ । आपकी ज्वालाएँ उसे सुदृढ़ बनाएँ। हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! आप अपनी कल्याणकारी विभूतियों से उन्हें पुण्यात्माओं के लोक में ले जाएँ ॥४ ॥

८९३७. अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः ।
आयुर्वसान उप वेतु शेषः सं गच्छतां तन्वा जातवेदः ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! जो मृत पुरुष आपके लिए स्वधायुक्त आहुति के रूप को ग्रहण करता है, उसे आप दुबारा पितरजनों के लिए सृजित करें । हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! इसका जो आयु भाग शेष है, वह प्राण- सम्पन्न हो तथा पुनः सुदृढ़ शरीरधारी बने ॥५ ॥

८९३८. यत्ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः ।
अग्निष्टद्विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥६ ॥

हे मृत मनुष्य ! आपके शरीर (जिस अंग-अवयव) को कौवे, चींटी, साँप अथवा किसी दूसरे हिंसक पशु ने व्यथित किया हो, तो सर्व भक्षक अग्निदेव उस अंग को पीड़ारहित करें । शरीर के अन्दर जो पोषक रस रूप सोम विद्यमान है, वह भी उसे कष्टमुक्त करे ॥६ ॥

८९३९. **अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व पीवसा मेदसा च ।**
नेत्त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग्विधक्ष्यन्पर्यङ्खयाते ॥७ ॥

हे मृतपुरुष ! तुम अपने मेद और मांसादि से पूर्णता युक्त हो । स्वयं अग्नि ज्वाला रूप कवच को धारण कर लेने से शरीर को भस्मीभूत करने को उपस्थित (संलग्न) अग्निदेव आपके समस्त अंगों को नहीं जलायेंगे ॥७ ॥

८९४०. **इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम् ।**
एष यश्चमसो देवपानस्तस्मिन्देवा अमृता मादयन्ते ॥८ ॥

हे अग्ने ! देवों और पितरगणों के प्रिय इस चमसपात्र को आप हिंसित न करें । यह चमसपात्र मात्र देवताओं के सोमपान के निमित्त ही सुरक्षित है । इसी से सम्पूर्ण अविनाशी देव तथा पितरगण आनन्दित होते हैं ॥८ ॥

८९४१. **क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।**
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥९ ॥

मांस भक्षक (चिताग्नि) अग्निदेव को हम यहाँ से दूर करते हैं, वे शवदाहक अग्निदेव मृत्युराज यम के ही समीप रहें । यहाँ पर दूसरे सुप्रसिद्ध जातवेदा अग्निदेव हैं, जो हमारी आहुतियों को देवताओं के समीप पहुँचाएँगे ॥९ ॥

८९४२. **यो अग्निः क्रव्यात्प्रविवेश वो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।**
तं हरामि पितृयज्ञाय देवं स घर्ममिन्वात्परमे सधस्थे ॥१० ॥

जो ये शव-दाहक अग्निदेव चितास्थल में वास करते हैं, पितृयज्ञ के लिए उन्हें दूर करते हुए दूसरे पवित्र यज्ञाग्नि की स्थापना करते हैं । वे सर्वश्रेष्ठ यज्ञ स्थल में प्रतिष्ठित अग्निदेव हमारे तेजस्वी यज्ञ को पूर्ण करें ॥१० ॥

८९४३. **यो अग्निः क्रव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः ।**
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥११ ॥

श्राद्ध कर्म के समय समर्पित हव्य को वहन करने वाले अग्निदेव यज्ञ को समृद्धि-सम्पन्न बनाते हैं । वे देवों एवं पितरों तक हव्य पहुँचाकर उनकी परिचर्या करते हैं ॥११ ॥

८९४४. **उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्तः समिधीमहि । उशन्नुशत आ वह पितॄन्हविषे अत्तवे ॥१२ ॥**

हे पवित्र यज्ञाग्ने ! हम श्रद्धापूर्वक यत्न करते हुए आपको प्रतिष्ठित करते हैं तथा अधिक प्रज्वलित करने का प्रयत्न करते हैं । जो देव एवं पितृगण यज्ञ की कामना करते हैं, आप उन तक समर्पित हव्य को पहुँचाते है ॥१२ ॥

८९४५. **यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः ।**
कियाम्ब्वत्र रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा ॥१३ ॥

हे अग्निदेव ! आपने जिस भूस्थल को दग्ध किया है, उसे पुनः तापरहित (उर्वरक) बनाएँ । यहाँ जलार्द्र युक्त पवित्र और अनेक शाखा युक्त दूर्वा घास उत्पन्न हो ॥१३ ॥

८९४६. **शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति ।**
मण्डूक्या३ सु सं गम इमं स्व१ग्निं हर्षय ॥१४ ॥

शीतल तथा आह्लादप्रद हे पृथिवि ! आप, सबके लिए आनन्दप्रद, मंगलकारी तथा शीतलता प्रदान करने वाली ओषधियों से परिपूर्ण हैं । आप अग्निदेव को संतुष्ट करके मेढक की इच्छानुरूप जल वृष्टि से युक्त हों ॥१४ ॥

[सूक्त - १७]

[**ऋषि** - देवश्रवा यामायन । **देवता** - १-२ सरण्यू ; ३-६ पूषा, ७-९ सरस्वती; १०-१४ आपो देवता; ११-१३ आपो देवता अथवा सोम । **छन्द** - त्रिष्टुप् , १३ अनुष्टुप् अथवा पुरस्ताद् बृहती, १४ अनुष्टुप् ।]

८९४७. **त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोतीतीदं विश्वं भुवनं समेति ।**
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ॥१ ॥

त्वष्टा (स्रष्टा) अपनी पुत्री (प्रकृति) को वहन करने योग्य अथवा विवाहित करते हैं । (इस प्रक्रिया में) समस्त विश्व के प्राणी सम्मिलित होते हैं । यम की माता (सरण्यू) का जब सम्बन्ध हुआ, उस समय विवस्वान् (सूर्य) की महिमामयी पत्नी लुप्त हुई ॥१ ॥

[प्रसिद्धि है कि त्वष्टा की पुत्री अपनी छाया (प्रतिकृति-डुप्लीकेट) को सूर्य के साथ करके लुप्त हो गई थी । यम उसी प्रतिकृति से उत्पन्न हुए थे ।]

८९४८. **अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वी सवर्णामददुर्विवस्वते ।**
उताश्विनावभरद्यत्तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥२ ॥

अमर (सरण्यू) को (देवताओं ने) मनुष्यों से रहस्यमय ढंग से छिपा लिया । सरण्यू के समान ही दूसरी स्त्री को विनिर्मित करके विवस्वान् (सूर्य) को प्रदान किया । उस समय सरण्यू वहाँ पर थीं, उनने आरोग्यप्रद अश्विनी-कुमारों को गर्भ में धारण किया, जिससे ये दोनों जुड़वाँ सन्तान के रूप में पैदा हुए ॥२ ॥

८९४९. **पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।**
स त्वैतेभ्यः परि ददत्पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ॥३ ॥

ज्ञानवान् , सम्पूर्ण विश्व के संरक्षक और पशुधन से सम्पन्न पूषादेव आपको सुन्दर लोक की ओर ले जाएँ । अग्निदेव आपको धनैश्वर्य से सम्पन्न बनाएँ तथा सुखों के दाता देवताओं और पितरगणों के समीप पहुँचाएँ ॥३ ॥

८९५०. **आयुर्विश्वायुः परि पासति त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।**
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥४ ॥

सर्वत्र संचरणशील प्राणवायु आपका सभी प्रकार से संरक्षण करे । श्रेष्ठ मार्गदर्शक, सबसे आगे रहने वाले पूषादेव (सूर्य) आपका संरक्षण करें । जिस श्रेष्ठ लोक में पुण्यात्माएँ प्रतिष्ठित हैं , सवितादेव आपको भी वहीं प्रतिष्ठित करें ॥४ ॥

८९५१. **पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् ।**
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन्पुर एतु प्रजानन् ॥५ ॥

सम्पूर्ण विश्व के पोषक पूषादेव (सूर्य) इन सभी दिशाओं से परिचित हैं, वे हमें भयमुक्त मार्ग से ले जाएँ । कल्याणकारी, सर्वोत्तम, दिव्यता युक्त तथा मेधावी पूषादेव सदैव हमारे अग्रगामी रहें ॥५ ॥

८९५२. **प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।**
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ॥६ ॥

पूषादेव स्वर्ग और पृथ्वी के मध्य स्थित सभी मार्गों में श्रेष्ठ, सर्वोत्तम मार्ग में उत्पन्न हुए । द्यावा-पृथिवी, जो परस्पर स्नेहयुक्त तथा श्रेष्ठ स्थानों से सम्पन्न हैं, उनके बीच मेधावी पूषादेव विशेष रूप से सुशोभित होते हैं ॥६ ॥

८९५३. **सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।**
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥७ ॥

दैवी गुणों के इच्छुक मनुष्य देवी सरस्वती का आवाहन करते हैं । यज्ञ के विस्तारित होने पर वे देवी सरस्वती की ही स्तुति करते हैं । श्रेष्ठ पुण्यात्माओं द्वारा देवी सरस्वती के आवाहन किये जाने पर, वे दानियों की आकांक्षाओं को परिपूर्ण करती हैं ॥७ ॥

८९५४. **सरस्वति या सरथं ययाथ स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।**
आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयस्वानमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥८ ॥

हे सरस्वती देवि ! आप पितरगणों के साथ स्वधायुक्त हविष्यान्न से सन्तुष्ट होकर प्रसन्नतापूर्वक एक ही रथ पर गमन करें । इस यज्ञ में श्रेष्ठ आसन पर विराजमान होकर हमें आरोग्यता और अन्न प्रदान करें ॥८ ॥

८९५५. **सरस्वतीं यां पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।**
सहस्रार्घमिळो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानेषु धेहि ॥९ ॥

यज्ञस्थल के दक्षिण भाग में प्रतिष्ठित पितरगण देवी सरस्वती का आवाहन करते हैं । इस यज्ञ- सम्पादक यजमान के लिए आप प्रचुर मात्रा में दिव्यधन तथा पोषक अन्न प्रदान करें ॥९ ॥

८९५६. **आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।**
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥१० ॥

मातृवत् पोषक जल हमें पावन बनाए । घृतरूपी जल हमारी अशुद्धता का निवारण करे । जल की दिव्यता अपने दिव्य स्रोत से सभी पापों का शोधन करे । जल से शुद्ध और पवित्र बनकर हम ऊर्ध्वगामी हों ॥१० ॥

८९५७. **द्रप्सश्चस्कन्द प्रथमाँ अनु द्यूनिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।**
समानं योनिमनु सञ्चरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥११ ॥

सोमरस प्राचीन ऋषियों तथा देवताओं के लिए अन्तरिक्ष लोक से उत्पन्न हुआ है । जो हमारे प्रखर- तेजस्वी पूर्वज थे, उन्हें ही यह सोमरस उपलब्ध हुआ । हम सात याज्ञिक, समान लोक में रहने वाले, उस दिव्य सोमरस को आहुतिरूप में समर्पित करते हैं ॥११ ॥

८९५८. **यस्ते द्रप्सः स्कन्दति यस्ते अंशुर्बाहुच्युतो धिषणाया उपस्थात् ।**
अध्वर्योर्वा परि वा यः पवित्रात्तं ते जुहोमि मनसा वषट्कृतम् ॥१२ ॥

हे सोमदेव ! तेजस्वी रूप में प्रवाहित होने वाले, पवित्रता से क्षरित होने वाले अथवा अभिषवण फलक के निकट ऋत्विजों के हाथों से गिरने वाले आपके अवयव- रसों को हम नमन करते हुए यज्ञ में समर्पित करते हैं ॥१२ ॥

८९५९. **यस्ते द्रप्सः स्कन्नो यस्ते अंशुरवश्च यः परः स्रुचा।**
अयं देवो बृहस्पतिः सं तं सिञ्चतु राधसे ॥१३॥

हे सोमदेव ! स्रुक् पात्र से नीचे टपकने वाले आपके रस अंश को तथा प्रवाहित होने वाले आपके रस भाग को बृहस्पतिदेव ग्रहण करें, जिससे हमारे ऐश्वर्य में वृद्धि हो ॥१३॥

८९६०. **पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं वचः।**
अपां पयस्वदित्पयस्तेन मा सह शुन्धत ॥१४॥

हे जल देव ! ओषधियाँ आपके पोषणयुक्त रस से ओतप्रोत हैं। हमारे सारगर्भित स्तोत्र के समान जल का सूक्ष्म अंश भी अति सूक्ष्म है। इसके साथ आप हमें पवित्रता प्रदान करें ॥१४॥

[सूक्त - १८]

[**ऋषि** - संकुसुक यामायन। **देवता** - १-४ मृत्यु, ५ धाता, ६ त्वष्टा, ७-१३ पितृमेध, १४ पितृमेध अथवा प्रजापति। **छन्द** - त्रिष्टुप्, ११ प्रस्तार पंक्ति, १३ जगती, १४ अनुष्टुप्।]

८९६१. **परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते स्व इतरो देवयानात्।**
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान् ॥१॥

हे मृत्युदेव ! आप सबसे भिन्न दूसरे ही मार्ग से गमन करें। जो देवयान मार्ग से भिन्न है, उसी से आप प्रस्थान करें। दिव्यदृष्टि सम्पन्न हे सर्वश्रुत देव ! आपसे विनम्र आग्रह है कि हमारे पुत्र-पौत्रादि सन्तानों तथा वीरों को हिंसित न करें ॥१॥

८९६२. **मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः।**
आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः ॥२॥

हे मृत पुरुष के संबन्धियो ! जो मनुष्य मृत्यु मार्ग को त्यागकर चलते हैं, वे दीर्घ और श्रेष्ठ आयु को धारण करते हैं। आप सब ऐसा ही करें। हे याज्ञिक यजमानो ! आप सभी पुत्र-पौत्र, गौ आदि ऐश्वर्यों से सम्पन्न होकर पापों से मुक्त हों तथा शुद्ध और पवित्र जीवन व्यतीत करें ॥२॥

८९६३. **इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद्भद्रा देवहूतिर्नो अद्य।**
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥३॥

ये जीवित मनुष्य मृत बान्धवों के समीप ही स्थित न रहें, हमारा आज का यह पितृमेध यज्ञ कल्याणकारी ढंग से पूर्ण हो। हम दीर्घ आयुष्य का लाभ प्राप्त करके हँसी- खुशी का आनन्दमय जीवन जियें। हम पूर्व दिशा की ओर मुख करके आगे की यात्रा पर बढ़ें ॥३॥

८९६४. **इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम्।**
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥४॥

प्राणधारी मनुष्यों के संरक्षण के लिये हम यह (पत्थर की) परिधि तैयार करते हैं, जिससे कोई भी अल्प मृत्यु को प्राप्त न हो। ये पुत्र-पौत्रादि शतायु का लाभ प्राप्त करें। हम प्रस्तर का व्यवधान उपस्थित करके मृत्यु को अनुबन्धित करते हैं ॥४॥

८९६५. यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथ ऋतव ऋतुभिर्यन्ति साधु।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम्॥५॥

जिस प्रकार दिन एक के बाद एक क्रमानुसार बीतते हैं, जैसे ऋतुएँ एक के बाद एक व्यतीत होती हैं, जिस प्रकार पहले से उत्पन्न वृद्ध पुरुषों के रहते पुत्रादि शरीर नहीं त्यागते, ऐसे ही हे विधाता ! आप हमारे स्वजनों को दीर्घ जीवन के लाभ से वंचित न करें ॥५॥

८९६६. आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यतिष्ठ
इह त्वष्टा सुजनिमा सजोषा दीर्घमायुः करति जीवसे वः॥६॥

हे मृतक के पुत्रादिको ! आप अपनी पूर्ण आयु को भोगते हुए वार्द्धक्य को प्राप्त करें। क्रम से आप प्रगति मार्ग पर बढ़ें। इस लोक में श्रेष्ठ जन्म वाले त्वष्टादेव आपको इन मनुष्यों के साथ जीवन व्यतीत करने के लिए दीर्घायुष्य प्रदान करें ॥६॥

८९६७. इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु।
अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे॥७॥

ये सधवा (सौभाग्यवती) और सुन्दर नारियाँ घृताञ्जन से शोभायमान होकर अपने घरों में प्रविष्ट हों। ये नारियाँ आँसुओं को रोककर, मानसिक विकारों का त्याग करती हुईं, आभूषणों से सुसज्जित होकर आदरपूर्वक आगे-आगे चलती हुई घरों में प्रविष्ट हों ॥७॥

८९६८. उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥८॥

हे मृतक पत्नी ! आपके पति मृत्यु को प्राप्त कर चुके हैं। इन्हें छोड़कर आप अपने पुत्रादि और घर-परिवार पर विचार करती हुई उठें। आप अपने पति के साथ सन्तानोत्पादन आदि स्त्री- कर्त्तव्य का निर्वाह कर चुकी हैं, अतः घर लौट चलें ॥८॥

८९६९. धनुर्हस्तादाददानो मृतस्यास्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम॥९॥

अपनी प्रजा के संरक्षण के लिए आवश्यक बल और तेज हमें उपलब्ध हो, इस हेतु मैं मृतक के हाथ से धनुष को धारण करता हूँ। इस राष्ट्र में हम श्रेष्ठ वीर सन्तानों को प्राप्त करके सभी अहंकारी रिपुओं पर विजयी हों। हे मृतक ! आप यहीं पर निवास करें ॥९॥

८९७०. उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम्।
ऊर्णम्रदा युवतिर्दक्षिणावत एषा त्वा पातु निर्ऋतेरुपस्थात्॥१०॥

हे मृतक ! आप इस मातृस्वरूपा, महिमामयी, सर्वव्यापिनी तथा सुखदायिनी धरती माता की गोद में विराजमान हों। ये धरती माता ऊन के समान कोमल स्पर्शवाली तथा दानी पुरुष की स्त्री के समान ही सभी ऐश्वर्यों की स्वामिनी हैं। ये आपको पापकर्मों के दुष्प्रभाव से मुक्त करें ॥१०॥

८९७१. उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपवञ्चना।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥११॥

हे धरती माता ! मृतक को पीड़ादायक संताप से रक्षित करने के लिए आप इसे ऊपर उठायें । इसका भली प्रकार स्वागत- सत्कार करने वाली तथा सुख में साथ रहने वाली बनें । हे भूमाता ! जिस प्रकार माता, पुत्र को अञ्चल से ढँकती है, उसी प्रकार आप भी इसे सभी ओर से आच्छादित करें ॥११ ॥

८९७२. **उच्छ्‌वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम्।**
ते गृहासो घृतश्चुतो भवन्तु विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥१२ ॥

इस मृतक देह को आच्छादित करने वाली धरती माता भली प्रकार स्थित हो तथा हजारों प्रकार के धूलिकण इसके ऊपर समर्पित करें । यह धरती घृत की स्निग्धता के समान इसे आश्रय प्रदान करने वाली होकर सुखदायी हो ॥१२ ॥

८९७३. **उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत्परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम्।**
एतां स्थूणां पितरो धारयन्तु तेऽत्रा यमः सादना ते मिनोतु ॥१३ ॥

हे अस्थि-कुम्भ ! आपके ऊपर पृथ्वी (मिट्टी) को भली प्रकार स्थापित करते हैं, आप इस भार को वहन करें । यह आपको पीड़ा न पहुँचाए। आपके इस अवलम्बन को पितरगण धारण करें । यमदेव यहाँ आपके निमित्त निवास-स्थल प्रदान करें ॥१३ ॥

८९७४. **प्रतीचीने मामहनीष्वाः पर्णमिवा दधुः । प्रतीचीं जग्रभा वाचमश्वं रशनया यथा ॥१४ ॥**

जिस प्रकार बाण के मूल में पंख लगाते हैं, वैसे ही श्रेष्ठ दिन में देवताओं ने मुझ (संकुसुक) ऋषि को स्थापित किया है । जिस प्रकार तीव्र गतिशील अश्वों को लगाम द्वारा ग्रहण करते हैं (अनुकूल बनाते हैं) , वैसे ही हमारी पूजनीय प्रार्थना को आप ग्रहण करें ॥१४ ॥

[सूक्त - १९]

[**ऋषि** - मथित यामायन अथवा भृगुवारुणि अथवा च्यवन भार्गव । **देवता** - आपो देवता अथवा गौएँ , १ उत्तरार्द्ध ऋचा के अग्नीषोम । **छन्द** - अनुष्टुप् , ६ गायत्री ।]

८९७५. **नि वर्तध्वं मानु गातास्मान्त्सिषक्त रेवतीः ।**
अग्नीषोमा पुनर्वसू अस्मे धारयतं रयिम् ॥१ ॥

हे गौओ ! आप हमें छोड़कर किसी दूसरे के पास न जाएँ, वापस लौट आएँ । हे धन-सम्पन्न गौओ ! आप हमें दुग्ध प्रदान करते हुए परिपुष्ट करें । हे अग्निदेव ! आप निरन्तर धन प्रदान करने वाले हैं , आप और सोमदेव मिलकर हमें ऐश्वर्य- सम्पदा प्रदान करें ॥१ ॥

८९७६. **पुनरेना नि वर्तय पुनरेना न्या कुरु । इन्द्र एणा नि यच्छत्वग्निरेना उपाजतु ॥२ ॥**

हे यजमान ! इन गौओं को बारम्बार हमारे समीप लाएँ, तत्पश्चात् इन्हें अपने नियन्त्रण में रखें । इन्द्रदेव भी इन्हें आपके नियन्त्रण में रखने में सहायक हों तथा अग्निदेव इन्हें दुधारू बनाएँ ॥२ ॥

८९७७. **पुनरेता नि वर्तन्तामस्मिन्पुष्यन्तु गोपतौ । इहैवाग्ने नि धारयेह तिष्ठतु या रयिः ॥३ ॥**

ये गौएँ बार-बार लौटकर हमारे पास आगमन करें । हमारे संरक्षण में रहकर ये परिपुष्ट हों । हे अग्निदेव ! आप इन्हें हमारे इस गोष्ठ में स्थापित करें । ये यहाँ रहती हुई धनैश्वर्य को परिपुष्ट करें ॥३ ॥

८९७८. यन्नियानं न्ययनं संज्ञानं यत्परायणम् । आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे ॥४ ॥

हम गोशाला, गौओं की गोष्ठ, उनकी उपस्थिति, गौओं का निर्धारित समय पर लौटना, चारागृह में गमन, पुनः वापस आगमन आदि गौओं की स्वाभाविक क्रियाओं की स्तुति करते हैं । गो संरक्षक गोपालों की भी स्तुति करते हैं ॥४ ॥

८९७९. य उदानड् व्ययनं य उदानट् परायणम् । आवर्तनं निवर्तनमपि गोपा नि वर्तताम् ॥५ ॥

गौओं को चराने वाले जो चारों ओर उन्हें खोजते रहते हैं, जो उनके साथ-साथ जाने का अनुभव लाभ लेते हैं, वे गोपाल गौओं को चराकर कुशलतापूर्वक घर वापस आएँ ॥५ ॥

८९८०. आ निवर्त नि वर्तय पुनर्न इन्द्र गा देहि । जीवाभिर्भुनजामहै ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे सहायक बनकर गौओं को हमारी ओर प्रेरित करें । ऐसी गौएँ हमें बार-बार प्रदान करें , जिनसे हम सुखों का उपभोग करें ॥६ ॥

८९८१. परि वो विश्वतो दध ऊर्जा घृतेन पयसा ।
ये देवाः के च यज्ञियास्ते रय्या सं सृजन्तु नः ॥७ ॥

हे देवो ! हम आपको प्रचुर अन्न-सामग्री , घृत और दुग्धादि पदार्थों से युक्त हविष्यान्न समर्पित करते हैं । जो भी यज्ञीय सत्कर्मों को पूर्ण करने वाले देवता हैं, वे सभी हमें गौ आदि ऐश्वर्य-सम्पदा प्रदान करें ॥७ ॥

८९८२. आ निवर्तन वर्तय नि निवर्तन वर्तय । भूम्याश्चतस्रः प्रदिशस्ताभ्य एना नि वर्तय ॥८ ॥

हे गौओं को चराने वाले गोपालो ! आप इन गौओं को हमारे समीप लेकर आएँ । हे गौओ ! आप भी आएँ । हे गोपालो ! आप गौओं को वापस लेकर आएँ । (गोपाल प्रश्न करता है) मैं कहाँ से लाऊँ ? (उत्तर) चारों दिशाओं से गौओं को इकट्ठा करके घर वापस लाएँ ॥८ ॥

[सूक्त - २०]

[**ऋषि** - विमद ऐन्द्र अथवा विमद प्राजापत्य अथवा वसुकृत् वासुक्र । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - गायत्री, १ एकपदा विराट् , २ अनुष्टुप् , ९ विराट्, १० त्रिष्टुप् ।]

८९८३. भद्रं नो अपि वातय मनः ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे मन को श्रेष्ठ-मंगलकारी संकल्पों से संयुक्त करें ॥१ ॥

८९८४. अग्निमीळे भुजां यविष्ठं शासा मित्रं दुर्धरीतुम् ।
यस्य धर्मन्त्स्व१रेनीः सपर्यन्ति मातुरूधः ॥२ ॥

हविभक्षक, देवों में तरुणतम, दुर्द्धर्ष, सबके मित्र तथा अपराजेय अग्निदेव की हम प्रार्थना करते हैं । इस यज्ञ में सभी देवता , माता के दूध के समान अपने लिए प्रदत्त आहुतियों का सेवन करते हैं ॥२ ॥

८९८५. यमासा कृपनीळं भासाकेतुं वर्धयन्ति । भ्राजते श्रेणिदन् ॥३ ॥

सत्कर्मों के आश्रयरूप, तेजस्वी अग्निदेव को स्तोतागण विभिन्न स्तोत्रों से संवर्धित करते हैं । वे कल्याणकारी अग्निदेव इन स्तोत्रों से विशेष शोभायमान होते हैं ॥३ ॥

८९८६. अर्यो विशां गातुरेति प्र यदानड् दिवो अन्तान् । कविरभ्रं दीद्यानः ॥४ ॥

यजमानों के आश्रयरूप अग्निदेव जब प्रज्वलित होकर ऊर्ध्वगामी होते हैं, तब दिव्यलोक तक संव्याप्त हो जाते हैं। वे मेघमण्डल को विद्युत्‌रूप से प्रकाशित करके श्रेष्ठ पद पर विराजमान होते हैं ॥४ ॥

८९८७. **जुषद्धव्या मानुषस्योर्ध्वस्तस्थावृभ्वा यज्ञे। मिन्वन्त्सद्म पुर एति ॥५ ॥**

इस श्रेष्ठ यज्ञ में आहुतियों के सेवनकर्त्ता अग्निदेव ज्योति स्वरूप होकर उन्नत होते हैं। ऐसे में वे उत्तर वेदी को पार करते हुए (हमारे-याजक के) सामने उपस्थित होते हैं ॥५ ॥

८९८८. **स हि क्षेमो हविर्यज्ञः श्रुष्टीदस्य गातुरेति। अग्निं देवा वाशीमन्तम् ॥६ ॥**

अग्निदेव ही हव्य तथा आहुतियों को ग्रहण करके कल्याणकारी यज्ञ को सम्पन्न करने वाले हैं। आप ही देवताओं के आवाहनकर्त्ता हैं। देवशक्तियाँ उन्हीं प्रशंसनीय अग्निदेव के साथ यज्ञ में आगमन करती हैं ॥६ ॥

८९८९. **यज्ञासाहं दुव इषेऽग्निं पूर्वस्य शेवस्य। अद्रेः सूनुमायुमाहुः ॥७ ॥**

जिन अग्निदेव को पत्थरों के घर्षण से पैदा होने के कारण पाषाण-पुत्र की संज्ञा से विभूषित किया जाता है, यज्ञ के धारणकर्त्ता उन अग्निदेव की, श्रेष्ठ-सुखमय जीवन की प्राप्ति के लिए, हम श्रद्धापूर्वक अर्चना करते हैं ॥७ ॥

८९९०. **नरो ये के चास्मदा विश्वेत्ते वाम आ स्युः। अग्निं हविषा वर्धन्तः ॥८ ॥**

अग्निदेव को आहुतियों द्वारा संवर्द्धित करते हुए हमारे पुत्र-पौत्रादि श्रेष्ठ सन्तानें सभी प्रकार की श्रेष्ठतम सम्पत्तियों को प्राप्त करें, ऐसी हमारी मंगल कामना है ॥८ ॥

८९९१. **कृष्णः श्वेतोऽरुषो यामो अस्य ब्रध्न ऋज्र उत शोणो यशस्वान्।**
हिरण्यरूपं जनिता जजान ॥९ ॥

अग्निदेव का रथ कृष्णवर्ण, कान्तिमान्, तेजस्विता-सम्पन्न, लालवर्ण युक्त, सहजता से गमनशील, तीव्रगामी एवं कीर्तिमान् है। स्वर्ण के समान उज्ज्वल दीप्तिमान् उस रथ को सृजेता ने विनिर्मित किया है ॥९ ॥

८९९२. **एवा ते अग्ने विमदो मनीषामूर्जो नपादमृतेभिः सजोषाः।**
गिर आ वक्षत्सुमतीरियान इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः ॥१० ॥

हे तेजस्वी अग्ने ! आप अमृत स्वरूप ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं। सद्‌बुद्धि की कामना से प्रेरित विमद ऋषि ने आपके लिए उत्तम स्तोत्रों की रचना की है। हे बलवर्द्धक अग्निदेव ! आप प्रार्थनाओं को स्वीकार करते हुए उनके लिए श्रेष्ठ निवास, उत्तम बल तथा प्राप्त करने योग्य जो भी अन्नादि उपभोग्य सामग्री है, वह सभी प्रदान करें ॥१० ॥

[सूक्त - २१]

[**ऋषि** - विमद ऐन्द्र अथवा विमद प्राजापत्य अथवा वसुकृत् वासुक्र। **देवता** - अग्नि। **छन्द** - आस्तार पंक्ति।]

८९९३. **आग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे।**
यज्ञाय स्तीर्णबर्हिषे वि वो मदे शीरं पावकशोचिषं विवक्षसे ॥१ ॥

हम स्वरचित प्रार्थना मन्त्रों से देवों के आवाहनकर्त्ता, पावन, ज्योतिर्मय तथा सर्वत्र विद्यमान अग्निदेव का वरण करते हैं। कुश के आसनों से सुशोभित यज्ञ तथा आनन्द प्राप्ति के लिए हम उन्हें धारण करते हैं। वे अपनी शोधक प्रदीप्त ज्वालाओं को विमद ऋषि (हमारे आनन्द) के लिए प्रेरित करें ॥१ ॥

८९९४. **त्वामु ते स्वाभुवः शुम्भन्त्यश्वराधसः ।**
वेति त्वामुपसेचनी वि वो मद ऋजीतिरग्न आहुतिर्विवक्षसे ॥२ ॥

प्रखर तेजस्विता-सम्पन्न और ऐश्वर्य-सम्पन्न यजमान आपको शोभायमान करते हैं । हे तेजस्वी अग्निदेव ! सहज गति से क्षरणशील (चलने वाली) आहुतियाँ आपकी सन्तुष्टि के लिए आपके समीप जाती हैं । आप उन्हें धारण करके संवर्द्धित होते हैं ॥२ ॥

८९९५. **त्वे धर्माण आसते जुहूभिः सिञ्चतीरिव ।**
कृष्णा रूपाण्यर्जुना वि वो मदे विश्वा अधि श्रियो धिषे विवक्षसे ॥३ ॥

जिस प्रकार वृष्टिरूप जल के अभिषिञ्चन से पृथ्वी की सेवा होती है, उसी प्रकार यज्ञ के धारणकर्त्ता ऋत्विज् हवन में प्रयुक्त पात्रों से आपको सींचते हैं । आप कृष्णवर्ण की ज्वालाओं से युक्त आभा वाले होकर, देवताओं की प्रसन्नता हेतु अत्यधिक सुशोभित होते हैं । हे अग्निदेव ! इसीलिए आप महिमामय हैं ॥३ ॥

८९९६. **यमग्ने मन्यसे रयिं सहसावन्नमर्त्य ।**
तमा नो वाजसातये वि वो मदे यज्ञेषु चित्रमा भरा विवक्षसे ॥४ ॥

बल-सम्पन्न, अमर, तेजस्वी हे अग्निदेव ! आप जिस ऐश्वर्य को उत्तम और आश्चर्यजनक विधि से स्वीकार करते हैं, उसे देवताओं के आनन्द, हमारे बल और अन्नादि की समृद्धि के लिए यज्ञों में प्रदान करें । आप महिमायुक्त सामर्थ्य से सम्पन्न हैं ॥४ ॥

८९९७. **अग्निर्जातो अथर्वणा विदद्विश्वानि काव्या ।**
भुवद्दूतो विवस्वतो वि वो मदे प्रियो यमस्य काम्यो विवक्षसे ॥५ ॥

सभी प्रकार के स्तोत्रों के ज्ञाता ऋषि अथर्वा ने अग्निदेव को प्रकट किया । सबकी कामना पूर्ण करने वाले वे अग्निदेव, देवावाहन के लिए सन्देशवाहक रूप हैं । वे हर्षित होकर सुखों को प्रदान करें । हे अग्निदेव ! आप महिमामय हैं ॥५ ॥

८९९८. **त्वां यज्ञेष्वीळतेऽग्ने प्रयत्यध्वरे ।**
त्वं वसूनि काम्या वि वो मदे विश्वा दधासि दाशुषे विवक्षसे ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! ऋत्विज् और यजमान यज्ञ की प्रारम्भिक वेला में आपकी स्तुति करते हैं तथा सभी प्रकार के अभीष्ट वैभवों को विशिष्ट रूप से ग्रहण करते हैं । आप यजमानों के आनन्द और मंगल के लिए दान प्रदान करते हैं , अतएव आप महान् हैं ॥६ ॥

८९९९. **त्वां यज्ञेष्वृत्विजं चारुमग्ने नि षेदिरे ।**
घृतप्रतीकं मनुषो वि वो मदे शुक्रं चेतिष्ठमक्षभिर्विवक्षसे ॥७ ॥

घृत से प्रज्वलित, तेजस्वी ऋत्विजों से सम्बद्ध, मनोहर, सामर्थ्यवान् तथा मेधावी रूप हे अग्निदेव ! आपको यजमान आनन्द प्राप्ति के लिए यज्ञ में प्रतिष्ठित करते हैं, अतएव आप पूजनीय हैं ॥७ ॥

९०००. **अग्ने शुक्रेण शोचिषोरु प्रथयसे बृहत् ।**
अभिक्रन्दन्वृषायसे वि वो मदे गर्भं दधासि जामिषु विवक्षसे ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी महिमा महान् है, आप प्रज्वलित तेज से अत्यधिक ख्यातिलब्ध हैं । युद्ध भूमि में मदमत्त वृषभ के समान ध्वनि करते हुए आप अति शक्तिशाली हो जाते हैं । ओषधियों में बीजोत्पत्ति के आप ही कारण हैं । सोम आदि से आनन्द प्राप्त होने पर आप महिमायुक्त होते हैं ॥८ ॥

[सूक्त - २२]

[**ऋषि** - विमद ऐन्द्र अथवा विमद प्राजापत्य अथवा वसुकृत् वासुक्र । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - पुरस्ताद्बृहती; ५, ७, ९ अनुष्टुप्, १५ त्रिष्टुप् ।]

९००१. **कुह श्रुत इन्द्रः कस्मिन्नद्य जने मित्रो न श्रूयते ।**
ऋषीणां वा यः क्षये गुहा वा चर्कृषे गिरा ॥१ ॥

इन्द्रदेव की ख्याति आज कहाँ है ? मित्र के समान हितैषी इन्द्र आज किन व्यक्तियों के बीच ख्याति पा रहे हैं ? जो ऋषि के आश्रमों अथवा गुफाओं में स्तुतियों से उपास्य रहे हैं, वे इन्द्र आज कौन सी स्थिति में होंगे ? ॥१ ॥

९००२. **इह श्रुत इन्द्रो अस्मे अद्य स्तवे वज्र्यृचीषमः ।**
मित्रो न यो जनेष्वा यशश्चक्रे असाम्या ॥२ ॥

आज हमारे इस यज्ञ में इन्द्रदेव प्रमुख प्रतिनिधि हैं । इसमें वज्रधारी और प्रशंसनीय इन्द्रदेव की हम प्रार्थना करते हैं । मित्र के समान कल्याणकारी इन्द्रदेव हमें कीर्तिमान् तथा यशस्वी बनाएँ ॥२ ॥

९००३. **महो यस्पतिः शवसो असाम्या महो नृम्णस्य तूतुजिः ।**
भर्ता वज्रस्य धृष्णोः पिता पुत्रमिव प्रियम् ॥३ ॥

शक्ति के स्वामी इन्द्रदेव स्तोताओं को महान् वैभव प्रदान करते हैं । वे शत्रु संहारक, वज्र के धारण कर्त्ता हैं । जैसे पिता अपने प्रियपुत्र का संरक्षण करता है । वैसे ही आप हमारी रक्षा करें ॥३ ॥

९००४. **युजानो अश्वा वातस्य धुनी देवो देवस्य वज्रिवः ।**
स्यन्ता पथा विरुक्मता सृजानः स्तोष्यध्वनः ॥४ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप देवस्वरूप हैं । आप वायु से भी अधिक गतिशील, श्रेष्ठ मार्ग से जाने वाले दोनों अश्वों को रथ में योजित करके , मार्ग को बनाते हुए सदैव प्रशंसनीय होते हैं ॥४ ॥

९००५. **त्वं त्या चिद्वातस्याश्वागा ऋज्रा त्मना वहध्यै ।**
ययोर्देवो न मर्त्यो यन्ता नकिर्विदाय्यः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप वायु के समान गमनशील हैं । सरल मार्गों से जाने वाले दोनों अश्वों को अपनी सामर्थ्य-शक्ति से गतिमान् करते हुए आप हमारे अभिमुख प्रस्तुत होते हैं । इन दोनों अश्वों के सञ्चालन में देवों और मनुष्यों में कोई भी समर्थ नहीं है तथा इनके सामर्थ्य को कोई जानता भी नहीं है ॥५ ॥

९००६. **अध ग्मन्तोशना पृच्छते वां कदर्था न आ गृहम् ।**
आ जग्मथुः पराकाद्दिवश्च ग्मश्च मर्त्यम् ॥६ ॥

यज्ञ समापन के पश्चात् जिस समय इन्द्रदेव और अग्निदेव अपने धाम को लौटने लगे, उसी समय उशना भार्गव ने प्रश्न किया कि आप दोनों किस उद्देश्य से इतनी दूर से हम यजमानों के घर पर पधारे हैं ? ॥६ ॥

९००७. आ न इन्द्र पृक्षसेऽस्माकं ब्रह्मोद्यतम् । तत्त्वा याचामहेऽवः शुष्णं यद्धन्नमानुषम् ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमें सभी प्रकार से संरक्षण प्रदान करें । हमने महिमामय स्तुतियों के साथ यज्ञीय हविष्यान्न आपके निमित्त समर्पित किया है । हम उसी दिव्य, श्रेष्ठ संरक्षण शक्ति की आपसे कामना करते हैं , जिस सामर्थ्य से शुष्ण राक्षस का आपने संहार किया ॥७ ॥

९००८. अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः ।
त्वं तस्यामित्रहन्वधर्दासस्य दम्भय ॥८ ॥

हे शत्रु संहारकर्त्ता इन्द्रदेव ! जो पुरुषार्थहीन, सबके अपमान कर्त्ता, यज्ञादि सत्कर्मों से रहित, असुरता से ओतप्रोत, दुष्ट दस्यु हमारी सेना को सभी ओर से घेरे हैं, आप उन दस्युओं को उचित दण्ड दें, उनका संहार करें ॥८ ॥

९००९. त्वं न इन्द्र शूर शूरैरुत त्वोतासो बर्हणा । पुरुत्रा ते वि पूर्तयो नवन्तक्षोणयो यथा ॥९ ॥

हे सामर्थ्यशाली इन्द्रदेव ! आप वीर मरुद्‌गणों के सहयोग से हमारा संरक्षण करें । आपसे संरक्षित होकर हम युद्ध भूमि में आपकी सामर्थ्य से शत्रुओं के संहार में सक्षम होंगे । आपकी कामनाओं को पूर्ण करने के सुख-साधन प्रचुर मात्रा में (हमारे पास) हैं । आपके साधक-भक्त, अधिपति के समान ही नानाविध प्रार्थनाओं से आपको प्रशंसित करते हैं ॥९ ॥

९०१०. त्वं तान्वृत्रहत्ये चोदयो नॄन्कार्पाणे शूर वज्रिवः ।
गुहा यदी कवीनां विशां नक्षत्रशवसाम् ॥१० ॥

शूरवीर , वज्रधारी हे इन्द्रदेव ! आप मरुद्‌गणों को वृत्ररूपी शत्रुओं के संहार के लिए उस समय प्रोत्साहित करते हैं, जब आप ज्ञानी स्तोताओं के द्वारा नक्षत्रलोकवासी देवताओं के लिए उच्चरित स्तोत्रों का श्रवण करते हैं ॥१० ॥

९०११. मक्षू ता त इन्द्र दानाप्नस आक्षाणे शूर वज्रिवः ।
यद्ध शुष्णस्य दम्भयो जातं विश्वं सयावभिः ॥११ ॥

वज्रधारी शूरवीर हे इन्द्रदेव ! युद्ध भूमि में आप तीव्रगति से सक्रिय रहते हैं । आपने मरुद्‌गणों के सहयोग से शुष्ण- राक्षस का समूल नाश किया । कृपापूर्वक अनुदान देना ही आपका प्रमुख कर्म है ॥११ ॥

९०१२. माकुध्र्यगिन्द्र शूर वस्वीरस्मे भूवन्नभिष्टयः ।
वयंवयं त आसां सुम्ने स्याम वज्रिवः ॥१२ ॥

हे वीर इन्द्रदेव ! हमारी अभीष्ट कामनाएँ और सम्पत्तियाँ कभी भी सत्प्रयोजन विहीन न हों । हे वज्रधारी देव ! हम आपके दिव्य संरक्षण में पल्लवित-पुष्पित होकर सदा सुखी रहें ॥१२ ॥

९०१३. अस्मे ता त इन्द्र सन्तु सत्याहिंसन्तीरुपस्पृशः ।
विद्याम यासां भुजो धेनूनां न वज्रिवः ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारी शुभ आकाक्षाएँ और प्रार्थनाएँ आपके समीप पहुँचकर सत्यरूप तथा हिंसारहित हों । हे वज्रधारी ! आपकी कृपा से हम गोदुग्ध के समान ही आपके आशीर्वाद के पुण्यफल को प्राप्त करें ॥१३ ॥

९०१४. अहस्ता यदपदी वर्धत क्षाः शचीभिर्वेद्यानाम् ।
शुष्णं परि प्रदक्षिणिद्विश्वायवे नि शिश्नथः ॥१४ ॥

देवताओं के प्रति समर्पित यज्ञादि क्रियाओं द्वारा यह पृथ्वी हाथ-पैरों से रहित होते हुए भी अतिव्यापक (समृद्ध) हुई है । सम्पूर्ण मनुष्यों के हित के लिए पृथ्वी की चारों ओर से परिक्रमा करके राक्षस शुष्ण का आप (इन्द्रदेव) ने वध किया ॥१४ ॥

९०१५. पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मा रिषण्यो वसवान वसुः सन् ।
उत त्रायस्व गृणतो मघोनो महश्च रायो रेवतस्कृधी नः ॥१५ ॥

हे पराक्रमी इन्द्रदेव ! आप सोमरस का शीघ्रतापूर्वक पान करें । हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! आप स्वयं धन-सम्पन्न हैं, अतएव संरक्षक होकर हमें हिंसित न करें । आप स्तुतिकर्त्ता यजमान को संरक्षित करें । हम प्रचुर धन के स्वामी हों । हमें ऐश्वर्य-सम्पन्न बनने का आशीर्वाद प्रदान करें ॥१५ ॥

[सूक्त - २३]

[**ऋषि** - विमद ऐन्द्र अथवा विमद प्राजापत्य अथवा वसुकृत् वासुक्र । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - जगती; १, ७ त्रिष्टुप् , ५ अभिसारिणी ।]

९०१६. यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्यं१ विव्रतानाम् ।
प्र श्मश्रु दोधुवदूर्ध्वथा भूद्वि सेनाभिर्दयमानो वि राधसा ॥१ ॥

वज्रपाणि, गतिमान् रथ पर आसीन, केशों या बाहुओं को हिलाकर शत्रुओं को प्रकम्पित करने वाले, सर्वश्रेष्ठ, सेना के माध्यम से शत्रुओं को भयभीत करने वाले इन्द्रदेव के निमित्त हम आहुति प्रदान करते हैं । वे इन्द्रदेव उपासकों को धन-वैभव प्रदान करते हैं ॥१ ॥

९०१७. हरी न्वस्य या वने विदे वस्विन्द्रो मघैर्मघवा वृत्रहा भुवत् ।
ऋभुर्वाज ऋभुक्षाः पत्यते शवोऽव क्ष्णौमि दासस्य नाम चित् ॥२ ॥

इन्द्रदेव के इन दोनों अश्वों ने यज्ञ के माध्यम से धन अर्जित किया, उन्हीं से प्राप्त प्रचुर धन के अधिपति होकर इन्द्रदेव ने वृत्रासुर को विनष्ट किया । तेजस्विता युक्त, शक्तिसम्पन्न और सहायक इन्द्रदेव बल और धन के अधिपति हैं । हम दस्यु समुदाय का - शत्रुओं का समूल नाश करने के इच्छुक हैं ॥२ ॥

९०१८. यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः ।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः ॥३ ॥

इन्द्रदेव जब अपने तेजस्वी स्वर्णिम वज्र को धारण कर अपने दो अश्वों से जोते गये रथ पर आरूढ़ होते हैं, तब वे विशेष रूप से सुशोभित होते हैं । इन्द्रदेव सभी के द्वारा जाने गये उत्तम अन्नों और ऐश्वर्य-सम्पदा के अधीश्वर हैं ॥३ ॥

९०१९. सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या३ स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते ।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वनम् ॥४ ॥

जिस प्रकार वर्षा के जल से पशुसमूह भीगता है, उसी प्रकार इन्द्रदेव हरितवर्ण सोमरस से अपनी दाढ़ी-मूँछ को भिगोते हैं । तत्पश्चात् वे उत्तम यज्ञस्थल में जाकर प्रस्तुत मधुर सोमरस का पान करते हैं , तत्पश्चात् जैसे वायु वन-वृक्षों को कम्पायमान करती है, वैसे ही वे रिपुओं को संत्रस्त करते हैं ॥४ ॥

९०२०. यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान ।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥५ ॥

अनेक प्रकार की उत्तेजक वाणी का प्रयोग करने वाले शत्रुओं को इन्द्रदेव ने अपनी ललकार से शान्त किया और क्रोध से हजारों शत्रुओं का समूल नाश किया । पिता जिस प्रकार अन्नादि से पुत्रों का पोषण करता है , उसी प्रकार इन्द्रदेव मनुष्यों का पोषण करते हैं । हम उन इन्द्रदेव की महिमा का गुणगान करते हैं ॥५ ॥

९०२१. स्तोमं त इन्द्र विमदा अजीजनन्नपूर्व्यं पुरुतमं सुदानवे ।
विद्मा ह्यस्य भोजनमिनस्य यदा पशुं न गोपाः करामहे ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपको श्रेष्ठ दानी जानकर ही विमद वंशियों ने अति अनुपम स्तोत्रों को विनिर्मित किया है । हम ऐश्वर्य के अधिपति इन्द्रदेव से भली प्रकार परिचित हैं । जिस प्रकार गोपाल गौ आदि पशुओं को अपनी ओर बुलाते हैं, वैसे ही हम ऐश्वर्य-प्राप्ति के लिए आपको आवाहित करते हैं ॥६ ॥

९०२२. माकिर्न एना सख्या वि यौषुस्तव चेन्द्र विमदस्य च ऋषेः ।
विद्मा हि ते प्रमतिं देव जामिवदस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप और विमद ऋषि के बीच जो मैत्री सम्बन्ध है, उसे कोई विच्छिन्न न करे तथा यह सदैव स्थिर रहे । हे देव ! जैसे भाई-बहिन समान मन वाले होते हैं, उसी प्रकार आपका मैत्रीभाव युक्त मन हमारी ओर प्रेरित हो तथा हमारी मित्रता सदैव सुदृढ़ बनी रहे ॥७ ॥

[सूक्त - २४]

[**ऋषि** - विमद ऐन्द्र अथवा विमद प्राजापत्य अथवा वसुकृत् वासुक्र । **देवता** - इन्द्र; ४-६ अश्विनीकुमार । **छन्द** - आस्तार पंक्ति, ४-६ अनुष्टुप् ।]

९०२३. इन्द्र सोममिमं पिब मधुमन्तं चमू सुतम् ।
अस्मे रयिं नि धारय वि वो मदे सहस्रिणं पुरूवसो विवक्षसे ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! पत्थरों से कूट-पीसकर तैयार किया गया मधुर सोमरस प्रस्तुत है, आप इसका पान करें । प्रचुर धन-सम्पन्न हे इन्द्रदेव ! आप असंख्यों प्रकार के विपुल धन हमें प्रदान करें । आप सदैव महिमामय हों ॥१ ॥

९०२४. त्वां यज्ञेभिरुक्थैरुप हव्येभिरीमहे ।
शचीपते शचीनां वि वो मदे श्रेष्ठं नो धेहि वार्यं विवक्षसे ॥२ ॥

हे शचीपते इन्द्रदेव ! यज्ञीय मन्त्रों, यज्ञकर्मों तथा हवन सामग्रियों द्वारा हम आपकी अर्चना करते हैं । आप सभी श्रेष्ठ कर्मों के अभीष्ट फल हमें प्रदान करें, ऐसे इन्द्रदेव वास्तव में महिमामय हैं ॥२ ॥

९०२५. यस्पतिर्वार्याणामसि रध्रस्य चोदिता ।
इन्द्र स्तोतॄणामविता वि वो मदे द्विषो नः पाह्यंहसो विवक्षसे ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अभीष्ट ऐश्वर्यों के अधिपति, साधकों को साधना मार्ग में प्रोत्साहन देने वाले तथा स्तोताओं के पालनकर्त्ता हैं । आप शत्रु रूपी विकारों एवं दुष्कर्म रूपी पापों से हमारी रक्षा करें । ऐसे इन्द्रदेव की महिमा प्रख्यात है ॥३ ॥

९०२६. युवं शक्रा मायाविना समीची निरमन्थतम् ।
विमदेन यदीळिता नासत्या निरमन्थतम् ॥४ ॥

कर्मों के प्रति निष्ठावान्, समर्थ हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों विद्वानों ने परस्पर सहयोग से अरणियों का मंथन करके अग्निदेव को प्रकट किया । जब ऋषि विमद ने आपकी प्रार्थना की, तो सत्यरूप आप दोनों ने अग्नि को प्रज्वलित किया ॥४ ॥

९०२७. विश्वे देवा अकृपन्त समीच्योर्निष्पतन्त्योः । नासत्यावब्रुवन्देवाः पुनरा वहतादिति ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जब दोनों अरणि काष्ठों के परस्पर घर्षण से अग्नि की चिनगारियाँ बाहर निकलने लगीं, तब समस्त देवताओं ने आपकी स्तुति की । सभी देवशक्तियों ने अश्विनीकुमारों से प्रार्थना करते हुए कहा कि आप बार-बार मन्थन करें ॥५ ॥

[अश्विनीकुमार देव वैद्य हैं । वे अपने दिव्य उपचारों से प्राणाग्नि को प्रदीप्त करते हैं, जिससे आरोग्य एवं स्वास्थ्य का लाभ होता है । इसी मन्थन प्रक्रिया को बार-बार सम्पन्न करने की प्रार्थना की जाती है ।]

९०२८. मधुमन्मे परायणं मधुमत्पुनरायनम् । ता नो देवा देवतया युवं मधुमतस्कृतम् ॥६॥

हे अश्विनीकुमारो ! हमारा बहिर्गमन स्नेह भावना से युक्त हो तथा आगमन भी वैसा ही मधुर प्रीति भावना से युक्त हो । हे देव ! आप दोनों अपनी दिव्यशक्तियों से हमें माधुर्ययुक्त प्रीति से सम्पन्न बनायें ॥६ ॥

[सूक्त - २५]

[**ऋषि -** विमद ऐन्द्र अथवा विमद प्राजापत्य अथवा वसुकृत् वासुक्र । **देवता -** सोम । **छन्द -** आस्तार पंक्ति ।]

९०२९. भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।
अधा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणन्गावो न यवसे विवक्षसे ॥१ ॥

हे सोम ! आप हर्षित होते हुए हमारे मन को बल, कार्य कुशलता, कल्याणकारी शक्ति, श्रेष्ठता तथा मित्रता प्राप्त करने के लिए प्रेरित करें । जैसे गौओं की मित्रता हरी घास से है, उसी प्रकार हमें आपकी मित्रता प्राप्त हो ॥१ ॥

९०३०. हृदिस्पृशस्त आसते विश्वेषु सोम धामसु ।
अधा कामा इमे मम वि वो मदे तिष्ठन्ते वसूयवो विवक्षसे ॥२ ॥

हे सोम ! हृदय को हर्षित करने वाली आपकी प्रार्थना करके स्तोता लोग चारों ओर विराजमान होते हैं । इस धन की प्राप्ति के लिए हमारे मन विभिन्न कामनाओं से सम्पन्न होते हैं । वास्तव में आपकी महिमा अपार है ॥२ ॥

९०३१. उत व्रतानि सोम ते प्राहं मिनामि पाक्या ।
अधा पितेव सूनवे वि वो मदे मृळा नो अभि चिद्वधाद्विवक्षसे ॥३ ॥

हे सोमदेव ! हम अपनी श्रेष्ठ (परिपक्व) बुद्धि से आपके कर्मों की गति को जानते हैं । आप प्रसन्नचित्त होकर हमारे शत्रुओं का संहार करके हमें संरक्षित करें । जैसे पिता, पुत्र का संरक्षण करता है, वैसे ही हमारा पोषण करके आप हमें सुख-सौभाग्य प्रदान करें । वास्तव में आपकी कीर्ति महान् है ॥३ ॥

९०३२. समु प्र यन्ति धीतयः सर्गासोऽवताँ इव ।
क्रतुं नः सोम जीवसे वि वो मदे धारया चमसाँ इव विवक्षसे ॥४ ॥

हे सोम ! जैसे जल को निकालने के लिए कलश कुएँ में जाते हैं, वैसे हमारी सभी प्रार्थनाएँ आपको प्राप्त होती हैं । हमारी जीवन रक्षा के निमित्त (या दीर्घ जीवन की प्राप्ति के लिए) इस यज्ञ कर्म को आप सफल बनाएँ । आपकी प्रसन्नता के निमित्त हम सोमरस के पेयपात्रों को समर्पित करते हैं । यथार्थतः आप महिमायुक्त ही हैं ॥४ ॥

९०३३. तव त्ये सोम शक्तिभिर्निकामासो व्यृण्विरे ।
गृत्सस्य धीरास्तवसो वि वो मदे व्रजं गोमन्तमश्विनं विवक्षसे ॥५ ॥

हे सोमदेव ! वे नानाविध फलों की अभिलाषाओं से युक्त , निग्रही, विद्वान् , सामर्थ्यवान् , अनेक प्रकार के कर्मों के निर्वाहक ऋत्विग्गण आपकी प्रार्थना करते हैं । आप प्रशंसित होकर गौ और अश्व से सम्पन्न पशुशाला हमें प्रदान करें । वास्तव में आप महान् और ज्ञान-सम्पन्न हैं ॥५ ॥

९०३४. पशुं नः सोम रक्षसि पुरुत्रा विष्ठितं जगत् ।
समाकृणोषि जीवसे वि वो मदे विश्वा सम्पश्यन्भुवना विवक्षसे ॥६ ॥

हे सोमदेव ! आप हमारे पशुओं से युक्त घरों का संरक्षण करते हैं और विविध रूपों में स्थित आप इस संसार का भी संरक्षण करते हैं । आप ही सम्पूर्ण लोकों का अनुसन्धान करके हमारी प्राण-रक्षा (जीवन-रक्षा) के लिए जीवनोपयोगी सभी पदार्थों का पोषण करते हैं । सभी के आनन्द के लिए आप महानतायुक्त हैं ॥६ ॥

९०३५. त्वं नः सोम विश्वतो गोपा अदाभ्यो भव ।
सेध राजन्नप स्रिधो वि वो मदे मा नो दुःशंस ईशता विवक्षसे ॥७ ॥

हे सोमदेव ! आप अविनाशी, अमृतस्वरूप हैं, अतएव आप सब प्रकार से हमारे संरक्षक बनें । हे राजास्वरूप (देदीप्यमान) सोमदेव ! हमारे शत्रुओं का आप निवारण करें तथा हमारे निन्दक अपने दुष्कृत्यों में सफल न हों, आप महिमायुक्त हैं ॥७ ॥

९०३६. त्वं नः सोम सुक्रतुर्वयोधेयाय जागृहि ।
क्षेत्रवित्तरो मनुषो वि वो मदे द्रुहो नः पाह्यंहसो विवक्षसे ॥८ ॥

हे सोम ! आप श्रेष्ठकर्मा हैं, अन्न प्रदान करने के लिए सदा हमें जागरूक रखें, आश्रय प्रदान करने के लिए आप सुप्रसिद्ध हैं । आप विद्रोही मनुष्यों और पापकर्मों से हमारी रक्षा करें । वास्तव में आपकी कीर्ति महान् है ॥८॥

९०३७. त्वं नो वृत्रहन्तमेन्द्रस्येन्दो शिवः सखा ।
यत्सीं हवन्ते समिथे वि वो मदे युध्यमानास्तोकसातौ विवक्षसे ॥९ ॥

हे वृत्रहन्ता सोमदेव ! जिस समय अपने प्रजाजनों को युद्धभूमि में प्रेरित करने वाले रिपु योद्धा विकराल युद्ध के लिए ललकारते हैं, उस समय इन्द्रदेव के कल्याणकारी सहयोगी आप हमारे लिए भी सहायक बनते हैं । वास्तव में आपकी कीर्ति महान् है ॥९ ॥

९०३८. अयं घ स तुरो मद इन्द्रस्य वर्धत प्रियः ।
अयं कक्षीवतो महो वि वो मदे मतिं विप्रस्य वर्धयद्विवक्षसे ॥१० ॥

वह सोमरस निश्चित ही शीघ्र क्रियाशील, आनन्दवर्द्धक, बलप्रदायक और इन्द्रदेव के लिए प्रीतियुक्त होकर संवर्द्धित होता है । इसने ही महाज्ञानी ऋषि कक्षीवान् की बुद्धि को प्रखर बनाया था । वास्तव में ही सोमदेव महिमायुक्त हैं ॥१० ॥

९०३९. **अयं विप्राय दाशुषे वाजाँ इयर्ति गोमतः ।**
अयं सप्तभ्य आ वरं वि वो मदे प्रान्धं श्रोणं च तारिषद्विवक्षसे ॥११ ॥

ये सोमदेव दानी और ज्ञानसम्पन्न यजमान (साधक) को पशुओं से युक्त अन्न तथा उपभोग्य सामग्री प्रदान करते हैं । यही सात होताओं को जीवनोपयोगी धन-सम्पदा प्रदान करते हैं । इन्होंने नेत्रहीन दीर्घतमा ऋषि को नेत्र और पंगु परावृज ऋषि को पैर प्रदान करके अनुकम्पा की थी । वास्तव में सोमदेव की महिमा अनन्त है ॥११ ॥

[सूक्त - २६]

[**ऋषि** - विमद ऐन्द्र या विमद प्राजापत्य या वसुकृत् वासुक्र । **देवता** - पूषा । **छन्द** - अनुष्टुप्; १, ४ उष्णिक् ।]

९०४०. **प्र ह्यच्छा मनीषाः स्पार्हा यन्ति नियुतः । प्र दस्रा नियुद्रथः पूषा अविष्टु माहिनः ॥१ ॥**

इन अति प्रशंसनीय, स्नेहभाव से प्रेरित स्तोत्रों को पूषादेव के लिए समर्पित करते हैं । वे सदैव रथ में अश्वों को संयुक्त करके पधारते हैं । वे महान् पूषादेव यजमान दम्पती का संरक्षण करें ॥१ ॥

९०४१. **यस्य त्यन्महित्वं वाताप्यमयं जनः । विप्र आ वंसद्धीतिभिश्चिकेत सुष्टुतीनाम् ॥२॥**

यह ज्ञानी मनुष्य, जिन पूषादेव की जीवनी शक्ति प्रदायक जल राशि की महिमायुक्त शक्ति को अपनी प्रार्थना से जलवृष्टि के रूप में उपयोगी बनाता है, वही पूषा ध्यानमग्न होकर यजमान की प्रार्थनाओं का श्रवण करते हैं ॥२ ॥

९०४२. **स वेद सुष्टुतीनामिन्दुर्न पूषा वृषा । अभि प्सुरः प्रुषायति व्रजं न आ प्रुषायति ॥३ ॥**

सोमदेव के सदृश ही ये पूषादेव भी अभीष्ट कामनाओं के पूरक और श्रेष्ठ स्तोत्रों को जानते-सुनते हैं । वे सौन्दर्ययुक्त पूषादेव कृपापूर्वक जल वर्षा करते हैं तथा हमारे गोष्ठों को भी जल से अभिषिञ्चित करते हैं ॥३ ॥

९०४३. **मंसीमहि त्वा वयमस्माकं देव पूषन् । मतीनां च साधनं विप्राणां चाधवम् ॥४ ॥**

हे सबके पोषक पूषादेव ! हम आपको सद्विचारणाओं का प्रेरक और ज्ञानी मनुष्यों का आश्रय मानकर आपकी अर्चना करते हैं ॥४ ॥

९०४४. **प्रत्यर्धिर्यज्ञानामश्वहयो रथानाम् । ऋषिः स यो मनुर्हितो विप्रस्य यावयत्सखः ॥५ ॥**

यज्ञ का अर्द्धभाग पूषादेव ग्रहण करते हैं । वे घोड़ों को अपने रथ से नियोजित करके गमन करते हैं । वे सर्वद्रष्टा, मनुष्यों के हितैषी, मेधावीजनों के मित्र हैं तथा उनके शत्रुओं के निवारणकर्त्ता हैं ॥५ ॥

९०४५. **आधीषमाणायाः पतिः शुचायाश्च शुचस्य च ।**
वासोवायोऽवीनामा वासांसि मर्मृजत् ॥६ ॥

पूषादेव सभी प्रकार की धारणा शक्ति से सम्पन्न, तेजस्वी, नर-मादा पशुओं के अधिपति हैं, वही भेड़ की ऊन से वस्त्रों का निर्माण करने वाले की भाँति (सृष्टि के तन्तुओं को) पवित्र बनाते हैं ॥६ ॥

[वस्त्र बनाने वाले कलाकार ऊन के एक-एक रेशे को अलग-अलग करके , स्वच्छ करके तब कताई-बुनाई करते हैं । इसी प्रकार पूषादेव प्रकृति के तन्तुओं को पवित्र बनाकर अभीष्ट निर्माण करते हैं ।]

९०४६. **इनो वाजानां पतिरिनः पुष्टीनां सखा । प्र श्मश्रु हर्यतो दूधोद्वि वृथा यो अदाभ्यः ॥७॥**

पूषादेव (सूर्यदेव) सभी हविष्य पदार्थों एवं अन्नों के अधिपति, सबके पोषक तथा मित्ररूप हैं । वे उत्तम, तेजस्वी पूषादेव अपने कर्मों में अपने केशों (विकिरणों) को हिलाते हुए चलते हैं ॥७ ॥

९०४७. आ ते रथस्य पूषन्नजा धुरं ववृत्युः । विश्वस्यार्थिनः सखा सनोजा अनपच्युतः ॥८॥

हे पूषा ! आप सभी जिज्ञासुओं की कामनाओं की पूर्ति करने वाले मित्रस्वरूप हैं । आप ही अत्यन्त पुरातन काल में उत्पन्न हुए अविनाशी देव हैं । आपके रथ के धुरे को अज (जिनका जन्म नहीं हुआ वे) वहन करते हैं ॥८ ॥

[पूषा का पोषण-चक्र उन सूक्ष्म कणों-प्रवाहों से चलता है, जो पदार्थ के रूप में उत्पन्न-परिवर्तित नहीं हुए हैं, इसीलिए उन्हें 'अज' कहा गया है ।]

९०४८. अस्माकमूर्जा रथं पूषा अविष्टु माहिनः । भुवद्वाजानां वृध इमं नः शृणवद्धवम् ॥९ ॥

महिमामय पूषादेव अपनी सामर्थ्य से हमारे रथ को संरक्षित करें । वे अन्न को संवर्द्धित करें तथा हमारे निवेदन के अभिप्राय को जानें ॥९ ॥

[सूक्त - २७]

[ऋषि - वसुक्र ऐन्द्र । देवता - इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

इस सूक्त के देवता इन्द्र तथा ऋषि ऐन्द्र (इन्द्र के पुत्र) वसुक्र हैं । व्यक्ति रूप में वे स्वयं इन्द्र के समान योद्धा हैं । सूक्ष्म सत्ता के रूप में वसुक्र का अर्थ होता है ' वसु करोति ' अर्थात् वसु को प्रकट करने वाला । वसु अग्नि को तथा किरणों को भी कहते हैं । वसुक्र का अर्थ हुआ अग्नि या किरणों के उत्पादक । प्रकृति में एक दिव्य धारा इन्द्र के रूप में सूक्ष्म कणों को संगठित करके पदार्थ को स्वरूप देती है । इन्द्र की इस प्रक्रिया से प्रत्येक पदार्थ में वसुक्र (पदार्थ से ऊर्जा उत्पादक) शक्ति पैदा हो जाती है । यह सूक्त इन्द्र एवं वसुक्र के बीच हुए संवाद के रूप में है । उक्त तथ्य समझ लेने से मंत्रार्थों के बोध में सुगमता होगी ।

९०४९. असत्सु मे जरितः साभिवेगो यत्सुन्वते यजमानाय शिक्षम् ।
अनाशीर्दामहमस्मि प्रहन्ता सत्यध्वृतं वृजिनायन्तमाभुम् ॥१ ॥

(इन्द्र का कथन) हे स्तोता ! मेरा यह सत्प्रयास सदैव रहता है कि मेरे द्वारा सोमयाग के अनुष्ठानकर्त्ता साधक को अभीष्ट फलों की प्राप्ति हो । जो यज्ञीय कर्मों से रहित, सत्य जीवन से विहीन होकर चारों ओर दुष्ट-दुष्कर्मियों सा आचरण करते हुए घूमते हैं, उनका समूल नाश कर देता हूँ ॥१ ॥

९०५०. यदीदहं युधये संनयान्यदेवयून्तन्वा३ शूशुजानान् ।
अमा ते तुम्रं वृषभं पचानि तीव्रं सुतं पञ्चदशं नि षिञ्चम् ॥२ ॥

(ऋषि वसुक्र) हे इन्द्र ! जब मैं देवोपासना से रहित और शारीरिक सामर्थ्य से अभिमानी मनुष्यों के साथ संघर्ष के लिए जाता हूँ, तब आपको हव्य द्वारा संतुष्ट करता हूँ । मैं पन्द्रहों तिथियों में सोम समर्पित करता हूँ ॥२ ॥

९०५१. नाहं तं वेद य इति ब्रवीत्यदेवयून्त्समरणे जघन्वान् ।
यदावाख्यत्समरणमृघावदादिद्ध मे वृषभा प्र ब्रुवन्ति ॥३ ॥

(इन्द्र का कथन) ऐसे व्यक्ति को मैं नहीं जानता, जिसने मुझे देव-विद्वेषियों का हत्यारा कहा हो । जब हिंसक शत्रुओं के संग्राम में जाकर मैं संहार करता हूँ, उस समय सभी हमारे वीरतापूर्ण कर्मों का गुणगान करते हैं ॥३ ॥

९०५२. यदज्ञातेषु वृजनेष्वासं विश्वे सतो मघवानो म आसन् ।
जिनामि वेत्क्षेम आ सन्तमाभुं प्र तं क्षिणां पर्वते पादगृह्य ॥४ ॥

जब मैं युद्धक्षेत्र में पहुँचता हूँ, तो सभी महान् सन्त, ऋषि मुझे चारों ओर से घेर लेते हैं । समस्त संसार के मंगल तथा संरक्षण के लिए सभी ओर विस्तृत रूप में फैले हुए शत्रुओं का मैं संहार करता हूँ । उन्हें पैरों से पकड़कर शिला पर पछाड़ता हूँ ॥४ ॥

९०५३. न वा उ मां वृजने वारयन्ते न पर्वतासो यदहं मनस्ये ।
मम स्वनात्कृधुकर्णो भयात एवेदनु द्यून्किरणः समेजात् ॥५ ॥

मुझे युद्ध क्षेत्र में पराजित करने की सामर्थ्य किसी में नहीं । यदि मैं चाहूँ , तो विशाल पर्वत भी मेरे कार्य में बाधक नहीं हो सकते । मेरे शब्द की ललकार से बहरे व्यक्ति भी भयभीत हो जाते हैं, किरणों के स्वामी सूर्य भी प्रतिदिन काँपते हैं ॥५ ॥

९०५४. दर्शन्न्वत्र शृतपाँ अनिन्द्रान्बाहुक्षदः शरवे पत्यमानान् ।
घृषुं वा ये निनिदुः सखायमध्यू न्वेषु पवयो ववृत्युः ॥६ ॥

जो मेरा अनुशासन नहीं मानते, देवों के पेय सोम को स्वेच्छा से, बलपूर्वक पीने वाले, हविष्य पदार्थों के स्वयं उपभोगकर्त्ता तथा हिंसा के लिए भुजाओं को चलाने वाले, ऐसे सभी लोग मेरी दृष्टि से बाहर नहीं , उनसे भलीप्रकार परिचित हूँ , जो अपने मित्र की भी निन्दा करने में नहीं चूकते, उन पर निश्चित ही मेरे वज्र का प्रहार होता है ॥६ ॥

९०५५. अभूर्वौक्षीर्व्यु१ आयुरानड् दर्षन्नु पूर्वो अपरो नु दर्षत् ।
द्वे पवस्ते परि तं न भूतो यो अस्य पारे रजसो विवेष ॥७ ॥

(ऋषि वसुक्र का कथन) हे इन्द्रदेव ! आप दीर्घजीवी (चिरंजीवी) हों । आपने प्रकट होकर दर्शन लाभ दिया तथा जलवृष्टि से अभिषिंचित किया । पुरातन काल से लेकर आज तक आप शत्रुओं के हननकर्त्ता रहे हैं । जो इस संसार के अतिरिक्त दूसरे लोक में भी संव्याप्त होते हैं, ऐसे द्युलोकादि भी आपको मापने में सक्षम नहीं हैं ॥७ ॥

९०५६. गावो यवं प्रयुता अर्यो अक्षन्ता अपश्यं सहगोपाश्चरन्तीः ।
हवा इदर्यो अभितः समायन्कियदासु स्वपतिश्छन्दयाते ॥८ ॥

(इन्द्र का कथन) अनेक गौएँ एकत्रित होकर जौ आदि का भक्षण कर रही हैं , स्वामी के समान मैं गौओं की देखभाल करता हूँ । देखता हूँ कि वे गौएँ चरवाहों के साथ घास चर रही हैं । बुलाये जाने पर वे गौएँ अपने पालनकर्त्ता के चारों ओर इकट्ठी हो जाती हैं । स्वामी ने उनसे प्रचुर दूध का दोहन कर लिया है ॥८ ॥

[गाव: शब्द से गौओं के अतिरिक्त किरणों एवं इन्द्रियों का भाव लेने से भी इस मन्त्र का अर्थ सिद्ध हो जाता है ।]

९०५७. सं यद्वयं यवसादो जनानामहं यवाद उर्वज्रे अन्तः ।
अत्रा युक्तोऽवसातारमिच्छादथो अयुक्तं युनजद्ववन्वान् ॥९ ॥

(ऋषि का कथन) इस विस्तृत संसार में अन्न, जौ और कन्दमूल पर जीवन निर्वाह करने वाले हम ऋषि ही हैं । इस संसार में एकाग्रचित्त होकर (ध्यानस्थ-योगस्थ) मनुष्य ईश्वर की उपासना करते हुए उससे शक्तियों की कामना करे । जो योगरहित और भौतिकवादी हैं, ऐसे मनुष्यों को भी वे इन्द्र सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते हैं ॥९ ॥

९०५८. अत्रेदु मे मंससे सत्यमुक्तं द्विपाच्च यच्चतुष्पात्संसृजानि ।
स्त्रीभिर्यो अत्र वृषणं पृतन्यादयुद्धो अस्य वि भजानि वेदः ॥१० ॥

(इन्द्र का कथन) जो भी यहाँ मेरे विषय में कथन किया जा रहा है , वह यथार्थ है, हरेक मनुष्य को इस पर विश्वास करना चाहिए । जो भी द्विपाद मनुष्य-पक्षी और चतुष्पाद पशु हैं, उनका मैं जन्मदाता हूँ । इस संसार में जो पुरुष अपने शूरों को स्त्रियों से संघर्ष के लिए प्रेरित करते हैं, बिना युद्ध किये ही ऐसे दुष्कर्मी के धन को छीनकर मैं सज्जनों को प्रदान कर देता हूँ ॥१० ॥

[पौराणिक सन्दर्भानुसार त्वष्टा की पुत्री इन्द्रस्नुषा नेत्रहीन किन्तु गुणवान् है। इन्द्र ने उसे अपनी पुत्रवधू (वसुक्र की अर्धाङ्गिनी) बनाकर उसके गुणों का सम्मान किया। प्रकृतिगत संदर्भ में वसुक्र (पदार्थ से ऊर्जा उत्पन्न करने वाले) की पत्नी जड़- प्रकृति है। वह अक्ष (नेत्र या इन्द्रिय) रहित है। जड़ प्रकृति का संरक्षण तथा उसकी प्रचण्ड सामर्थ्य का सुनियोजिन करना प्रशंसनीय है। प्रस्तुत मन्त्र इसी उपाख्यान से सम्बन्धित है।]

९०५९. यस्यानक्षा दुहिता जात्वास कस्तां विद्वाँ अभि मन्याते अन्धाम्।
कतरो मेनिं प्रति तं मुचाते य ईं वहाते य ईं वा वरेयात्॥११॥

जो कन्या अक्ष (आँख या इन्द्रिय) हीन है, उसे कौन विद्वान् (सूक्ष्मदर्शी) आश्रय प्रदान करता है ? जो इस (कन्या) का वरण करता है, उसे धारण करता है, उसके वज्र तुल्य बल को कौन रोक सकता है ? ॥११॥

[जड़ प्रकृति को अक्षहीन कहा जाना उचित है; किन्तु जो वसुक्र (ऊर्जा उत्पादक) उसका वरण करते हैं, उसका सुनियोजन करते हैं, ऐसे भौतिक विज्ञानी के बल को कोई बाधा रोक नहीं पाती।]

९०६०. कियती योषा मर्यतो वधूयोः परिप्रीता पन्यसा वार्येण ।
भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित् ॥१२॥

कितनी स्त्रियाँ इस प्रकार की हैं, जो वधू की कामना करने वाले पुरुष के प्रशंसक वचनों और उसकी धन-सम्पदा को ही पतिवरण का माध्यम मान लेती हैं, परन्तु जो स्त्रियाँ सुशील, स्वस्थ और श्रेष्ठ मानसिक भावनाओं से युक्त हैं, वे अपनी इच्छानुकूल मित्र पुरुष को पतिरूप में वरण करती हैं ॥१२॥

[वर-वधू का वरण स्थूल सम्पदा के आधार पर नहीं;समान, गुणों के आधार पर किया जाना चाहिए।]

९०६१. पत्तो जगार प्रत्यञ्चमत्ति शीर्ष्णा शिरः प्रति दधौ वरूथम्।
आसीन ऊर्ध्वामुपसि क्षिणाति न्यङ्ङुत्तानामन्वेति भूमिम्॥१३॥

आदित्यदेव (सूर्यदेव) अपनी किरणों द्वारा प्रकाश फैलाते हैं और अपने मण्डल में विद्यमान प्रकाश को स्वयं में समाहित करते हैं। वे अपनी आवृत करने वाली किरणों को सांसारिक मनुष्य के मस्तक पर डालते हैं। ऊपर विद्यमान रहते हुए भी वे नीचे से विस्तृत पृथ्वी पर अपनी किरणों से संव्याप्त होते हैं ॥१३॥

९०६२. बृहन्नच्छायो अपलाशो अर्वा तस्थौ माता विषितो अत्ति गर्भः।
अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः॥१४॥

वे महान् (सूर्य) मृत्यु या अंधकाररहित, भोगरहित, गतिशील होकर रहते हैं। माता (अदिति) से पृथक् होकर गर्भ पोषक यज्ञ या परमव्योम से निःसृत प्रवाह का सेवन करता है। धेनु (धारण करने वाली प्रकृति) अपने से भिन्न (अव्यक्त प्रकृति) के वत्स (सूर्य) को स्नेह प्रदान करती है। इस गाय के स्तन ऊपर कहाँ स्थित हैं ? ॥१४॥

[अव्यक्त प्रकृति से सूर्य की उत्पत्ति हुई, व्यक्त प्रकृति उसे स्नेह से धारण करती है। उसे पोषण देने में समर्थ गौ के स्तन रूप प्रकृति के पोषक प्रवाहों का स्रोत ऊपर कहाँ हैं ? यह कहकर ऋषि प्रकृति के गुह्य रहस्यों की ओर संकेत करते हैं।]

९०६३. सप्त वीरासो अधरादुदायन्नष्टोत्तरात्तात् समजग्मिरन्ते।
नव पश्चातात्स्थिविमन्त आयन्दश प्राक्सानु वि तिरन्त्यश्नः ॥१५॥

उस प्रजापति की नाभि से सात वीर (सप्त ऋषि अथवा सप्त धातु) उत्पन्न हुए। उसके उत्तर भाग से आठ (अष्टवसु अथवा बालखिल्यादि) प्रकट होकर एक साथ संगत हुए। पीछे के भाग से नौ (भृगु आदि) उत्पन्न हुए। पूर्व (भाग) से दस (अंगिराओं अथवा दिशाओं) की उत्पत्ति हुई। ये सभी भोजन (दिव्य प्रवाहों या यज्ञांश का सेवन) करते हुए द्युलोक से उत्पन्न क्षेत्रों का संवर्द्धन करने लगे ॥१५॥

९०६४. दशानामेकं कपिलं समानं तं हिन्वन्ति क्रतवे पार्याय।
गर्भं माता सुधितं वक्षणास्ववेनन्तं तुषयन्ती बिभर्ति ॥१६॥

दस अंगिराओं में एक सबके प्रति समभाव रखने वाले कपिल ऋषि हैं। उन्हें उच्च पद पर प्रतिष्ठित करने वाले उत्कृष्ट यज्ञादि सत्कर्मों की साधना के लिए प्रेरित करते हैं। विश्व निर्माण कर्त्री प्रकृति रूपी माता इच्छा शक्ति से अनुप्रेरित उस गर्भ को मानो सुखपूर्वक जल में स्थापित करती है ॥१६॥

९०६५. पीवानं मेषमपचन्त वीरा न्युप्ता अक्षा अनु दीव आसन्।
द्वा धनुं बृहतीमप्स्व१न्तः पवित्रवन्ता चरतः पुनन्ता ॥१७॥

वीरों (अंगिराओं) ने बलशाली मेष (स्पर्धा करने वालों) को परिपक्व किया। क्षेत्र में क्रीड़ा के लिए पाँसे फेंके गये। (उनमें से) दो बलशाली धनुष सहित बृहत् आप: (मूल तत्त्व अथवा जल) में विचरण करने लगे - पवित्रता का संचार करने लगे ॥१७॥

[वीरों का अर्थ प्राण भी लिया जाता है, प्रकृति या शरीरगत प्राण स्पर्धाशील तत्त्वों का संयोग करते हैं। दो मुख्य प्राण-प्राण और अपान अथवा ऋण एवं धन प्रभार युक्त कण भी कहे जा सकते हैं।]

९०६६. वि क्रोशनासो विष्वञ्च आयन्पचाति नेमो नहि पक्षदर्धः।
अयं मे देवः सविता तदाह द्रवन्न इद्वनवत्सर्पिरन्नः ॥१८॥

शब्द (स्तुति) करने वाले विविध मार्गगामी (अंगिरादि अथवा प्राणी) इस लोक में आते हैं। उनमें से एक वर्ग (देवताओं के निमित्त हव्यादि) पकाते हैं। आधे नहीं पकाते; यह तथ्य सवितादेव ने हमसे कहा। काष्ठ एवं घृत का सेवन करने वाले (अग्नि) भी (देवों के लिए हव्य) पकाते हैं ॥१८॥

[विचरणशील सृजित सूक्ष्म कणों में आधे ऐसे हैं, जो परस्पर सहज ही संयुक्त होकर पदार्थों की रचना करते हैं। आधे कण ऐसे हैं, जो संयोजनशील नहीं (इनर्ट) हैं। यह तथ्य सूर्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है।]

९०६७. अपश्यं ग्रामं वहमानमारादचक्रया स्वधया वर्तमानम्।
सिषक्त्यर्यः प्र युगा जनानां सद्यः शिश्ना प्रमिनानो नवीयान् ॥१९॥

भगवान् की स्वचालित जगत् की प्रकृति जो अनादि काल से प्रवहमान रूप में इस प्राणि-समुदाय को वहन कर रही है, उसें हम देख रहे हैं। वे (प्रशंसनीय) नवीन उत्साह से युक्त स्वामी सदैव दु:खों का नाश करते हुए जीवों के जोड़ों को उत्पन्न करते और आपस में मिलाते हैं ॥१९॥

९०६८. एतौ मे गावौ प्रमरस्य युक्तौ मो षु प्र सेधीर्मुहुरिन्ममन्धि।
आपश्चिदस्य वि नशन्त्यर्थं सूरश्च मर्क उपरो बभूवान् ॥२०॥

हे परमेश्वर ! प्राण-रक्षक जो हमारे ये दोनों प्राण और अपान शरीर रूपी रथ में लगे दो बैलों के समान हैं, उन्हें आप कभी इस देह से पृथक् न करें, अपितु इन्हें बार-बार जोड़ें। इस जीव के सूक्ष्म प्राण ही इनको प्राप्य लक्ष्य तक पहुँचाते हैं। वे परमेश्वर सूर्य के समान विश्व के शोधनकर्त्ता तथा मेघ के समान पदार्थों के दाता हैं ॥२०॥

९०६९. अयं यो वज्रः पुरुधा विवृत्तोऽवः सूर्यस्य बृहतः पुरीषात्।
श्रव इदेना परो अन्यदस्ति तदव्यथी जरिमाणस्तरन्ति ॥२१॥

ये जो दु:खों के निवारणकर्त्ता, जीवों को धारण करने में सक्षम, विविध प्रकार से संव्याप्त हैं, वे सूर्य के सदृश ही सर्व संचालक महिमामय स्वामी के ऐश्वर्य से हमें प्राप्त होते हैं। इस लोक में प्रत्यक्ष ऐश्वर्य से उत्कृष्ट दूसरा भी

श्रवणीय परमैश्वर्य है, उसे बिना बाधा के बन्धनों का उच्छेदन करने वाले ईश्वर के उपासक प्राप्त करते हैं ॥२१ ॥

९०७०. वृक्षेवृक्षे नियता मीमयद्गौस्ततो वयः प्र पतान् पूरुषादः ।
अथेदं विश्वं भुवनं भयात इन्द्राय सुन्वदृषये च शिक्षत् ॥२२ ॥

वृक्ष के (विकासमान प्रकृति तक) साथ सम्बद्ध गौ (पोषक शक्ति) शब्द करती है, तब असुरों को नष्ट करने वाले वय (बाण या प्रवाह) छूटते हैं । इससे विश्व भयभीत होकर (रक्षा के लिए) इन्द्रदेव की स्तुति करता है । (इस प्रक्रिया के संदर्भ में) ऋषिगण शिक्षण प्रदान करते हैं ॥२२ ॥

[वृक्ष का अर्थ आचार्यों ने धनुष का दण्ड तथा गौ का अर्थ गौ-चर्म से बनी प्रत्यंचा किया है । यह संगति युक्ति-संगत नहीं लगती । वृक्ष शब्द का उपयोग वंश वृक्ष, विश्व वृक्ष के रूप में भी किया जाता है । प्रत्येक विकास तन्त्र के साथ पोषण प्रक्रिया (गौ के रूप में) जुड़ी है । विकास में बाधकों के नाश की प्रक्रिया भी साथ ही चल रही है । यह दोनों अलग-अलग प्रक्रियाएँ हैं, ऐसा मानकर अर्थ करना स्वाभाविक लगता है ।]

९०७१. देवानां माने प्रथमा अतिष्ठन्कृन्तत्रादेषामुपरा उदायन् ।
त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनूपा द्वा बृबूकं वहतः पुरीषम् ॥२३ ॥

देवों के सृजन-समय में सर्वप्रथम मेघों का उत्पादन हुआ, मेघों के छिन्न-भिन्न होने से जल की उत्पत्ति हुई । तीन गुणों के उत्पादनकर्त्ता पर्जन्य, वायु और सूर्य - ये तीनों ही अनुकूल स्थिति में पृथ्वी को तप्त करते हैं तथा इनमें से वायु और सूर्य ये दोनों ही जल को धारण करते हैं ॥२३ ॥

९०७२. सा ते जीवातुरुत तस्य विद्धि मा स्मैतादृगप गूहः समर्ये ।
आविः स्वः कृणुते गूहते बुसं स पादुरस्य निर्णिजो न मुच्यते ॥२४ ॥

हे ऋषे ! सूर्यदेव ही आपकी प्राणाधार शक्ति हैं और आप भली प्रकार इनके स्वरूप के ज्ञाता हैं । यज्ञ काल में ऐसे प्राणदायक स्वरूप को गोपनीय न करके आप उनके प्रभाव का वर्णन करें । वे सूर्यदेव तीनों लोकों (द्यु , अन्तरिक्ष और पृथ्वी) को प्रकाशित करते हैं । वे जल-शोषण तथा गतिशीलता की प्रक्रिया को कभी त्यागते नहीं ॥ २ ॥

[सूक्त - २८]

[**ऋषि** - १ इन्द्रस्नुषा वसुक्र पत्नी (ऋषिका) २, ६, ८, १०, १२ इन्द्र (ऋषि) , ३, ४, ५, ७, ९, ११ वसुक्र ऐन्द्र । **देवता** - २, ६, ८, १०, १२ वसुक्र ऐन्द्र; १, ३, ४, ५, ७, ९, ११ इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

९०७३. विश्वो ह्य१न्यो अरिराजगाम ममेदह श्वशुरो ना जगाम ।
जक्षीयाद्धाना उत सोमं पपीयात्स्वाशितः पुनरस्तं जगायात् ॥१ ॥

(इन्द्र के पुत्र वसुक्र की पत्नी कहती है) इन्द्रदेव को छोड़कर समस्त देवता हमारे यज्ञ में आए हैं, मेरे श्वसुर इन्द्रदेव केवल नहीं पधारे हैं । यदि वे आए होते, तो भुने हुए जौ के साथ सोमपान करते तथा आहारादि से सन्तुष्ट (प्रशंसित) होकर दुबारा अपने घर लौट जाते ॥१ ॥

९०७४. स रोरुवद्वृषभस्तिग्मशृङ्गो वर्ष्मन्तस्थौ वरिमन्ना पृथिव्याः ।
विश्वेष्वेनं वृजनेषु पामि यो मे कुक्षी सुतसोमः पृणाति ॥२ ॥

(इन्द्र) हे पुत्र वधू ! अभीष्ट फलों को प्रदान करने वाला तेजस्वी मैं पृथ्वी के व्यापक और ऊँचे स्थान में वास करता हूँ । जो सोम अभिषवण कर्त्ता मुझे सोमपान से सन्तुष्ट करते हैं, मैं उनकी सभी प्रकार से सुरक्षा करता हूँ ॥२ ॥

९०७५. अद्रिणा ते मन्दिन इन्द्र तूयान्सुन्वन्ति सोमान्पिबसि त्वमेषाम् ।
पचन्ति ते वृषभाँ अत्सि तेषां पृक्षेण यन्मघवन्हूयमानः ॥३ ॥

(ऋषि का कथन) हे इन्द्रदेव ! आपके लिए पाषाण खण्डों पर शीघ्रतापूर्वक अभिषवित आनन्दप्रद सोम को जब यजमान लोग तैयार करते हैं, ऐसे में आप उनके द्वारा प्रदत्त सोमरस का पान करते हैं । हे ऐश्वर्य-सम्पन्न इन्द्रदेव ! जिस समय सत्कार- पूर्वक हविष्यान्नों से यज्ञ किया जाता है , उस समय साधकगण वृषभ (शक्तिसम्पन्न हव्य) को पकाते (परिपक्व करते) हैं और आप उनका सेवन करते हैं ॥३ ॥

९०७६. इदं सु मे जरितरा चिकिद्धि प्रतीपं शापं नद्यो वहन्ति ।
लोपाशः सिंहं प्रत्यञ्चमत्साः क्रोष्टा वराहं निरतक्त कक्षात् ॥४ ॥

हे शत्रु संहारक , शूरवीर , वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! आपके अनुग्रह से हमारे अन्दर यह सामर्थ्य है कि इच्छा मात्र से नदियाँ उल्टी दिशा की ओर जल प्रवाहित करने लगती हैं , तृण खाने वाला हिरण आगे आते हुए सिंह को पीछे खदेड़कर उसके पीछे दौड़ता है तथा श्रृगाल (सियार) शूकर को घने जंगल से भागने के लिए मजबूर कर देता है ॥४ ॥

९०७७. कथा त एतदहमा चिकेतं गृत्सस्य पाकस्तवसो मनीषाम् ।
त्वं नो विद्वाँ ऋतुथा वि वोचो यमर्धं ते मघवन्क्षेम्या धूः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप ज्ञानवान् , सामर्थ्यवान् और प्राचीन हैं । हम अल्पज्ञ मनुष्य आपकी भक्ति करने में सामर्थ्यहीन हैं । आप सर्वज्ञाता हैं, अतएव यथासमय हमारा विशेष मार्गदर्शन करते रहें । हे वैभवशाली इन्द्रदेव ! जिस आपके अंश का हम स्तोत्र करने में समर्थ हैं , उसे आप स्वीकार करें ॥५ ॥

९०७८. एवा हि मां तवसं वर्धयन्ति दिवश्चिन्मे बृहत उत्तरा धूः ।
पुरू सहस्रा नि शिशामि साकमशत्रुं हि मा जनिता जजान ॥६ ॥

(इन्द्र कहते हैं-) स्तोतागण मेरी प्राचीन महिमा की प्रशंसा इस प्रकार करते हैं कि मेरी स्वर्ग से भी अतिश्रेष्ठ कार्यों के निर्वाह की धारण सामर्थ्य है । मेरे द्वारा असंख्य शत्रुओं का एक साथ ही संहार किया जाता है । सृष्टि-सृजेता प्रजापति ने मुझे अजातशत्रु के रूप में उत्पन्न किया है ॥६ ॥

९०७९. एवा हि मां तवसं जज्ञुरुग्रं कर्मन्कर्मन्वृषणमिन्द्र देवाः ।
वधीं वृत्रं वज्रेण मन्दसानोऽप व्रजं महिना दाशुषे वम् ॥७ ॥

(ऋषि वसुक्र) हे इन्द्रदेव ! मैंने आनन्दित होकर वज्रास्त्र से वृत्रासुर का संहार किया और अपनी सामर्थ्य से दानियों को वैभव प्रदान किया । अतएव देवशक्तियाँ मुझे भी आपके समान ही प्राचीन महिमायुक्त, प्रत्येक कर्म में कुशल, शक्तिशाली और अभीष्ट फलों का दाता मानती हैं ॥७ ॥

९०८०. देवास आयन्परशूँरबिभ्रन्वना वृश्चन्तो अभि विड्भिरायन् ।
नि सुद्र्वं१ दधतो वक्षणासु यत्रा कृपीटमनु तद्दहन्ति ॥८ ॥

हाथ में परशु अस्त्र धारण कर्त्ता, विजय के इच्छुक देवता आते हैं तथा वे लोगों के सहयोग से बादलों को विदीर्ण करके जल वृष्टि करते हैं, वह जल उत्तम नदियों में प्रवाहित होता है । देवता जिस मेघ में जल की सम्भावना देखते हैं , उसी को विद्युत् से विदीर्ण कर जल वृष्टि करते हैं ॥८ ॥

९०८१. शशः क्षुरं प्रत्यञ्चं जगाराद्रिं लोगेन व्यभेदमारात्।
बृहन्तं चिदृहते रन्धयानि वयद्वत्सो वृषभं शूशुवानः ॥९ ॥

इन्द्रदेव की इच्छा मात्र से हिरण भी समक्ष आते हुए सिंह का मुकाबला करता है, हम भी उसी की सामर्थ्य से पत्थर फेंककर पर्वत को भी दूर से तोड़ डालते हैं। इन्द्रदेव की इच्छा से बछड़ा भी साँड़ से मुकाबला करता है तथा बड़े भी छोटे के नियंत्रण में आ जाते हैं ॥९ ॥

९०८२. सुपर्ण इत्था नखमा सिषायावरुद्ध : परिपदं न सिंहः ।
निरुद्धश्चिन्महिषस्तर्ष्यावान्गोधा तस्मा अयथं कर्षदेतत् ॥१० ॥

पिंजड़े में बन्द शेर जिस प्रकार अपने स्थान का परित्याग किये बिना प्रहार के लिए हमेशा अपने पंजों को तैयार रखते हैं, उसी प्रकार बाज़ पक्षी भी नाखूनों को रगड़ते हैं। जैसे बँधा हुआ भैंसा प्यास से बेचैन होता है, वैसे ही गोधा (वैदिक छन्द गायत्री आदि) तृषार्त इन्द्रदेव को तृप्त करते हैं ॥१० ॥

९०८३. तेभ्यो गोधा अयथं कर्षदेतद्ये ब्रह्मणः प्रतिपीयन्त्यन्नैः ।
सिम उक्ष्णोऽवसृष्टाँ अदन्ति स्वयं बलानि तन्वः शृणानाः ॥११ ॥

जो ब्रह्मनिष्ठ लोग अन्न से सन्तुष्ट होकर रिपुओं (मनोविकारों) को दूर करते हैं, ऐसे ब्रह्मवादियों के लिए गायत्री सहज ही अमृतरूपी सोम उपलब्ध कराती है। वे सभी प्रकार के रसों से युक्त अमृतस्वरूप सोम का पान करते हैं तथा स्वयमेव विकाररूपी रिपुओं के शरीरों तथा सामर्थ्य को विनष्ट करते हैं ॥११ ॥

९०८४. एते शमीभिः सुशमी अभूवन्ये हिन्विरे तन्व१: सोम उक्थैः ।
नृवद्वदन्नुप नो माहि वाजान्दिवि श्रवो दधिषे नाम वीरः ॥१२ ॥

जो सोमयाग करके स्तोत्र वाणियों से अपना शारीरिक परिपोषण करते हैं, वे श्रेष्ठ कर्मों के निर्वाहक कहे जाकर सत्कर्मों से स्वयं को कृतार्थ करते हैं। श्रेष्ठ मनुष्यों के समान ही स्पष्टवादी आप हमारे लिए अन्न उपलब्ध कराते हैं तथा देवलोक में दानवीर के नाम से प्रख्यात, आप यहाँ दानपति (धनपति)-नाम को अलंकृत करते हैं ॥१२ ॥

[सूक्त - २९]

[**ऋषि** - वसुक्र ऐन्द्र । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

९०८५. वने न वा यो न्यधायि चाकञ्छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः ।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् ॥१ ॥

हे शीघ्र गमनशील अश्विनीकुमारो ! जिस प्रकार पक्षी फलाहार की इच्छा से अपने शिशु को वृक्ष के नीड में सावधानी- पूर्वक रखते हैं, उसी प्रकार ये अति पवित्र स्तोत्र आपके निमित्त ही समर्पित हैं। अनेक दिनों तक हम इन्हीं स्तोत्रों से इन्द्रदेव का आवाहन करते रहें, वें इन्द्रदेव नेतृत्व प्रदान करने वालों में सर्वश्रेष्ठ, पराक्रमशाली, नायक तथा रात्रिकाल में भी सोमपान करने वाले हैं ॥१ ॥

९०८६. प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नृन्कुत्सेन रथो यो असत्ससवान् ॥२ ॥

हे मनुष्यों को नेतृत्व प्रदान करने वाले ! इन उषाओं और अन्य उषाकालों में आपकी अर्चना से हमारी भी श्रेष्ठता जाग्रत् हो । हे इन्द्रदेव ! त्रिशोक नामक ऋषि ने आपकी स्तुति-प्रार्थना से आपसे सौ मनुष्यों का सहयोग प्राप्त किया तथा कुत्स ऋषि जिस रथ पर आरूढ़ होते हैं, वह भी आपकी सहायता का परिणाम है ॥२ ॥

१०८७. कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद्दुरो गिरो अभ्यु१ग्रो वि धाव ।
कद्वाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्यामुपमं राधो अन्नैः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारी स्तोत्र वाणियों को सुनकर यज्ञस्थल के द्वार की ओर आप शीघ्रता से आएँ । किस प्रकार का हर्षदायक सोम आपको अति प्रसन्नताप्रद तथा रुचिकर है ? हमें कब श्रेष्ठ वाहन मिलेंगे ? हमारे मनोरथ कब पूर्ण होंगे ? हम आपके स्तोता अन्न-धन की प्राप्ति के लिए कौन सी साधना से आपको प्रशंसित कर सकेंगे ? ॥३ ॥

१०८८. कदु द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नॄन्कया धिया करसे कन्न आगन् ।
मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यदसन्मनीषाः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप किस समय हमारे ध्यान में प्रकट होंगे और किस समय हमें साधना की सिद्धि मिलेगी ? किस प्रकार के स्तोत्रों और सत्कर्मों से आप हम मनुष्यों को अपने समान ही सामर्थ्यवान् बनायेंगे ? हे यशस्वी इन्द्रदेव ! आप तो सभी के सच्चे सखारूप हितैषी हैं, यह बात इससे सिद्ध होती है कि सभी साधकों का अन्न से पालन-पोषण करने की आपकी अभिलाषा रहती है ॥४ ॥

१०८९. प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधा इव ग्मन् ।
गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ॥५ ॥

तेजस्वी आपः देवताओं के लिए भली प्रकार प्रवाहित हों । हे ऋत्विजो ! मित्र और वरुण के लिए श्रेष्ठ अन्नरूप सोम संस्कारित करो तथा महावेगशाली इन्द्रदेव के लिए श्रेष्ठ रीति से स्तुतियों का उच्चारण करो ॥५ ॥

१०९०. मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन ।
वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन्भवन्तु पीतये मधूनि ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी विशेष कृपा से प्राचीन समय में विनिर्मित ये जो द्युलोक और पृथ्वी लोक हैं , वही विविध लोकों के निर्माता हैं । आपके लिए घृतयुक्त सोमरस प्रस्तुत किया जा रहा है, इसे पीकर आप हर्षित हों तथा मधुररसों से युक्त अन्न आपके लिए प्रसन्नतादायक हो ॥६ ॥

१०९१. आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः ।
स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च ॥७ ॥

वे इन्द्र निश्चित ही ऐश्वर्यदाता हैं , अतएव ऐसे देव के निमित्त मधुपर्क से परिपूर्ण सोम-पात्र को सादर समर्पित करें । वे मनुष्यों के हितकारी हैं तथा पृथ्वी के व्यापक क्षेत्र में अपने पराक्रम से सभी प्रकार से उन्नतशील हैं ॥७ ॥

१०९२. व्यानळिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः ।
आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ॥८ ॥

अतिशक्तिशाली इन्द्रदेव ने शत्रुसेना को घेर लिया, श्रेष्ठ शत्रु-सेनाएँ भी इन्द्रदेव से मैत्री रूप संधि करने को सदैव प्रयत्नशील रहती हैं । हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार संसार के हित के लिए सत्प्रेरणा से आप समर-क्षेत्र में रथारूढ़ होकर जाते हैं, उसी प्रकार इस समय भी रथ पर आरूढ़ होकर प्रस्थान करें ॥८ ॥

[सूक्त - ३०]

[**ऋषि** - कवष ऐलूष । **देवता** - आपो देवता अथवा अपांनपात् । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

इस सूक्त के देवता आपः हैं । आपः का सामान्य अर्थ जल लिया जाता है, किन्तु शोध समीक्षा के आधार पर केवल जल ही मानने से अनेक मंत्रार्थ सिद्ध नहीं होते । जैसे- प्रथम ऋचा में ही आपः को मन के समान गतिमान् कहा है, जल तो शब्द और प्रकाश की गति से भी नहीं बह पाता है । 'आपो वै सर्वा देवता' जैसे सूत्रों से भी यही भाव प्रकट होता है । मनुस्मृति १/८ के अनुसार ईश्वर ने अप् तत्त्व को सर्व प्रथम रचा । आपः यदि जल है, तो उसके पूर्व वायु और अग्नि की उत्पत्ति आवश्यक है, अन्यथा जल की संरचना संभव नहीं । अस्तु आपः का अर्थ जल भी है, किन्तु उसे विद्वानों ने सृष्टि के मूलतत्त्व की क्रियाशील अवस्था माना है । अखण्ड ब्रह्म के संकल्प से मूलतत्त्व का क्रियाशील स्वरूप पहले प्रकट होता है, उससे ही पदार्थ रचना प्रारम्भ होती है । ऐसे किसी तत्त्व के सतत प्रवाहित होने की परिकल्पना (हाइपोथैसिज) पदार्थ विज्ञानी भी करते हैं । मंत्रार्थों के क्रम में आपः के इस स्वरूप को ध्यान में रखना उचित समझा गया है -

९०९३. प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेत्वपो अच्छा मनसो न प्रयुक्ति ।
महीं मित्रस्य वरुणस्य धासिं पृथुज्रयसे रीरधा सुवृक्तिम् ॥१ ॥

(यज्ञकाल में) स्तुतियों से प्रशंसित मन की गति के समान शीघ्रता से तेजस्वी आपः देवताओं के लिए भली प्रकार प्रवाहित हों । हे ऋत्विजो ! मित्र और वरुणदेव के लिए श्रेष्ठ अन्नरूप सोम संस्कारित करो तथा महावेगशाली इन्द्रदेव के लिए श्रेष्ठ रीति से स्तुतियों का उच्चारण करो ॥१ ॥

९०९४. अध्वर्यवो हविष्मन्तो हि भूताच्छाप इतोशतीरुशन्तः ।
अव याश्चष्टे अरुणः सुपर्णस्तमास्यध्वमूर्मिमद्या सुहस्ताः ॥२ ॥

हे पुरोहितगण ! आप हव्यपदार्थों से सम्पन्न रहें । प्रीतियुक्त सुख की कामना करते हुए आप सोम की इच्छा से आपः (जल) की ओर शीघ्रतापूर्वक गमन करें । लालरंग के पक्षी के समान यह श्रेष्ठ आपः जो नीचे क्षरित होता है, आप उसे सत्कर्म-शील हाथों से , तरङ्गरूप में यज्ञ में समर्पित करें ॥२ ॥

[जल या सोम दोनों ही लोहितवर्ण के नहीं होते, इसलिए यहाँ आपः को जल एवं सोम से भिन्न ही मानना होगा ।]

९०९५. अध्वर्यवोऽप इता समुद्रमपां नपातं हविषा यजध्वम् ।
स वो दददूर्मिमद्या सुपूतं तस्मै सोमं मधुमन्तं सुनोत ॥३ ॥

हे ऋत्विग्गण ! आप 'अप्' के सागर को प्राप्त करें और अपांनपात्देव का हविष्यान्न से अर्चन करें । वे आपको अति पवित्र और स्वच्छ तरंगें प्रदान करें । अतएव आप उनके लिए मधुर सोमरस समर्पित करें ॥३ ॥

[विद्वानों ने अपांनपात् के दो अर्थ किए हैं, एक है- स्व स्वरूपे न पाति - अपने आप स्वरूप की रक्षा नहीं करता - अर्थात् अतिशीघ्र क्रियाशील- परिवर्तनशील है । दूसरा है - न पात् अर्थात् पतित नहीं होता - उद्देश्य के प्रति अविचल है- कालप्रभाव से क्षरित नहीं होता - अविनाशी है ।]

९०९६. यो अनिध्मो दीदयदप्स्व१न्तर्यं विप्रास ईळते अध्वरेषु ।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्याय ॥४ ॥

स्तोतागण जिसकी यज्ञकाल में प्रार्थना करते हैं तथा जो बिना काष्ठ के अन्तरिक्ष में विद्युत्रूप में प्रदीप्त होते हैं , वे हमें वृष्टिरूप जल प्रदान करें , जिससे इन्द्र तेजस्वी होकर अपनी पराक्रम शक्ति को उत्पन्न करें ॥४ ॥

९०९७. याभिः सोमो मोदते हर्षते च कल्याणीभिर्युवतिभिर्न मर्यः ।
ता अध्वर्यो अपो अच्छा परेहि यदासिञ्चा ओषधीभिः पुनीतात् ॥५ ॥

जिस प्रकार युवापुरुष मात्र समवयस्क सुन्दर स्त्रियों से ही सुशोभित और हर्षित होते हैं , वैसे ही इस अप् (जल) से मिलकर सोम सुशोभित होता है । हे ऋत्विग्गण ! आप ऐसे ही जल को सुदूर से प्राप्त करें, जिसके साथ मिलकर सोम स्वच्छ और पवित्र होता है ॥५ ॥

९०९८. एवेद्यूने युवतयो नमन्त यदीमुशन्नुशतीरेत्यच्छ ।
सं जानते मनसा सं चिकित्रेऽध्वर्यवो धिषणापश्च देवीः ॥६ ॥

जिस प्रकार युवतियाँ युवापुरुषों के प्रति सहजढंग से आकर्षित होती हैं तथा जिस प्रकार सहज स्नेहभावना से युवा पुरुष प्रेयसी युवतियों को उपलब्ध करते हैं, उसी प्रकार ऋत्विज् और उनकी स्तुतियाँ दिव्य अप्देवता को जानती हैं तथा दोनों विचारशीलतापूर्वक अपने कार्यों को सम्पन्न करते हैं ॥६ । ।

९०९९. यो वो वृताभ्यो अकृणोदु लोकं यो वो मह्या अभिशस्तेरमुञ्चत् ।
तस्मा इन्द्राय मधुमन्तमूर्मिं देवमादनं प्र हिणोतनापः ॥७ ॥

हे अप्देव ! जो आपके अवरुद्ध मार्ग को आपके गमन के लिए खोलते हैं और जो आपको भंयकर मार्ग से विमुक्त करते हैं, आप देवताओं के साथ उन इन्द्रदेव को आनन्दप्रद और मधुर सोमरस प्रदान करें ॥७ ॥

९१००. प्रास्मै हिनोत मधुमन्तमूर्मिं गर्भो यो वः सिन्धवो मध्व उत्सः ।
घृतपृष्ठमीड्यमध्वरेष्वापो रेवतीः शृणुता हवं मे ॥८ ॥

हे प्रवाहशील अप्देव ! आपका बीजरूप जो मधुररस युक्त सोमप्रवाह है , उसकी मधुर गुणों से युक्त श्रेष्ठ तरंगों को इन्द्रदेव के लिए प्रेरित करें । हे अनेक ओषधियों से युक्त वैभवशाली अप्देव ! यज्ञ के निमित्त घृताहुति और स्तोत्रोच्चारण किया जा रहा है । आप हमारे इन श्रेष्ठ वचनों को सुनें ॥८ ॥

९१०१. तं सिन्धवो मत्सरमिन्द्रपानमूर्मिं प्र हेत य उभे इयर्ति ।
मदच्युतमौशानं नभोजां परि त्रितन्तुं विचरन्तमुत्सम् ॥९ ॥

हे प्रवाहशील अप्देव ! जो दोनों लोकों के लिए कल्याणप्रद है, उस आनन्दप्रद और इन्द्रदेव के पेय-योग्य सोम-प्रवाह को अति संवर्द्धित रूप में हमें प्रदान करें । वे आनन्ददायक समृद्धि की कामनाओं को पूर्ण करने वाले आकाश में उत्पादित, तीनों लोकों के आश्रय, सहजमार्ग पर गमनशील तथा निरन्तर प्रवाहित होते हैं ॥९ ॥

९१०२. आवर्वृततीरध नु द्विधारा गोषुयुधो न नियवं चरन्तीः ।
ऋषे जनित्रीर्भुवनस्य पत्नीरपो वन्दस्व सवृधः सयोनीः ॥१० ॥

जिस प्रकार इन्द्रदेव बादलों के बीच से अनेक धाराओं का सृजन करते हैं , उसी प्रकार जल की अनेक धाराओं में सोम समाहित होता है । जल संसार की संरक्षक माता सदृश है, वह सोम के साथ समान रूप से मिलता है, वह स्वयं तत्त्वरूप है, हे ऋषियो ! ऐसे जल की आप प्रार्थना करें ॥१० ॥

९१०३. हिनोता नो अध्वरं देवयज्या हिनोत ब्रह्म सनये धनानाम् ।
ऋतस्य योगे वि ष्यध्वमूधः श्रुष्टीवरीर्भूतनास्मभ्यमापः ॥११ ॥

हे अप्देव ! आप देवों के प्रति यज्ञीय अर्चन करने के लिए यज्ञकार्य में सहयोग प्र ·, करें तथा धनार्जन के लिए स्तोत्रोच्चारण करें । सृष्टि के नियम-व्यवस्थानुसार अवरोधों को दूर करके जल की वर्षा करें तथा हम सभी के लिए कल्याणदायक सिद्ध हों ॥११ ॥

९१०४. आपो रेवतीः क्षयथा हि वस्वः क्रतुं च भद्रं बिभृथामृतं च।
रायश्च स्थ स्वपत्यस्य पत्नीः सरस्वती तद्गृणते वयो धात् ॥१२ ॥

हे समृद्धिप्रदा पदार्थों से सम्पन्न अप्देव ! आप अनेक ऐश्वर्यों के अधिपति हैं, आप कल्याणकारी कर्मों और अन्नादि को धारण करें। आप सुसन्तति और ऐश्वर्य के संरक्षक हों। देवी सरस्वती हम स्तोताओं को श्रेष्ठ धन-सम्पदा प्रदान करें ॥१२ ॥

९१०५. प्रति यदापो अदृश्रमायतीर्घृतं पयांसि बिभ्रतीर्मधूनि।
अध्वर्युभिर्मनसा संविदाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तीः ॥१३ ॥

हे अप्देव ! जब आप घृत , दूध और मधुरूप अन्न धारण करते हुए आगमन करते हैं, यज्ञीय ऋत्विजों के साथ हार्दिक भावनाओं से युक्त होकर वार्तालाप करते हैं तथा इन्द्रदेव के लिए विशेष रीति से अभिषवित सोमरस प्रदान करते हैं, तब हम आपका भली प्रकार दर्शन करते और आपकी प्रार्थना करते हैं ॥१३ ॥

९१०६. एमा अग्मन्रेवतीर्जीवधन्या अध्वर्यवः सादयता सखायः।
नि बर्हिषि धत्तन सोम्यासोऽपां नप्त्रा संविदानास एनाः ॥१४ ॥

हमें श्रेष्ठ ऐश्वर्यों से सम्पन्न और प्राणियों के लिए कल्याणकारी अप् (जल) उपलब्ध हुआ है। हे याज्ञिको ! जल को भली प्रकार आप प्रतिष्ठित करें। आप वृष्टि के अधिष्ठाता रूप देव से श्रेष्ठ ढंग से परिचित हैं, सोमरस के लिए उपयुक्त इस जल को श्रेष्ठ कुशा के आसन पर प्रतिष्ठित करें ॥१४ ॥

९१०७. आग्मन्नाप उशतीर्बर्हिरेदं न्यध्वरे असदन्देवयन्तीः।
अध्वर्यवः सुनुतेन्द्राय सोममभूदु वः सुशका देवयज्या ॥१५ ॥

देवताओं की ओर उमड़ता हुआ 'अप्' तत्परतापूर्वक (शीघ्रतापूर्वक) कुशाओं के बीच यज्ञस्थल में प्रतिष्ठित हुआ है। हे ऋत्विग्गण ! इन्द्रदेव के निमित्त आप सोमरस समर्पित करें। जल आने से देवों के प्रति पूजा-उपासना का कर्म सहज-सरलतापूर्वक पूर्ण हो गया है ॥१५ ॥

[सूक्त - ३१]

[**ऋषि** - कवष ऐलूष। **देवता** - विश्वेदेवा। **छन्द** - त्रिष्टुप्।]

९१०८. आ नो देवानामुप वेतु शंसो विश्वेभिस्तुरैरवसे यजत्रः।
तेभिर्वयं सुषखायो भवेम तरन्तो विश्वा दुरिता स्याम ॥१ ॥

हमारी स्तुतियाँ देवताओं को उपलब्ध हों। स्तुत्य यज्ञदेव सभी शत्रुओं (विकारों) से हमारा संरक्षण करें। देवताओं के साथ हम स्नेहपूर्ण मैत्री स्थापित करेंगे तथा सभी प्रकार की विपदाओं से मुक्त होंगे ॥१ ॥

९१०९. परि चिन्मर्तो द्रविणं ममन्यादृतस्य पथा नमसा विवासेत्।
उत स्वेन क्रतुना सं वदेत श्रेयांसं दक्षं मनसा जगृभ्यात् ॥२ ॥

सभी प्रकार के ऐश्वर्यों के आकांक्षी मनुष्य अन्तःप्रेरणा से सत्यमार्ग द्वारा सत्कर्मों से संलग्न हों, वे श्रेष्ठज्ञान (सद्ज्ञान) युक्त विवेक-बुद्धि से देवताओं की उपासना करें तथा उनके कल्याणकारी (मंगलकारी) विराट् स्वरूप को हृदयक्षेत्र (अन्तः करण) में धारण करें ॥२ ॥

९११०. अधायि धीतिरससृग्रमंशास्तीर्थे न दस्ममुप यन्त्यूमाः ।
अभ्यानश्म सुवितस्य शूषं नवेदसो अमृतानामभूम ॥३ ॥

हमने यज्ञकर्म सम्पन्न किया है । यज्ञ में प्रयुक्त पदार्थ तीर्थ के अंशों की तरह देवताओं की ओर पहुँचते हैं । वे देव सबके संरक्षक और शत्रुओं के संहारक हैं । हम स्वाभाविक रूप से उपलब्ध होने योग्य सुखों को सभी ओर से प्राप्त करें तथा सभी देवों के स्वरूप से परिचित हों ॥३ ॥

९१११. नित्यश्चाकन्यात् स्वपतिर्दमूना यस्मा उ देवः सविता जजान ।
भगो वा गोभिरर्यमेमनज्यात्सो अस्मै चारुश्छदयदुत स्यात् ॥४ ॥

विश्व के सृजेता सवितादेव ने जिस यजमान को पैदा किया, ऐश्वर्यों के अधिपति और दानशील प्रजापति उसे श्रेष्ठ फल प्रदान करें । भग और अर्यमादेव स्तुतियों से प्रशंसित होकर इस (यजमान) के प्रति प्रीतियुक्त हों तथा सभी देवता यजमान पर सभी प्रकार से अनुग्रह करें ॥४ ॥

९११२. इयं सा भूया उषसामिव क्षा यद्ध क्षुमन्तः शवसा समायन् ।
अस्य स्तुतिं जरितुर्भिक्षमाणा आ नः शग्मास उप यन्तु वाजाः ॥५ ॥

जब स्तोत्रों के इच्छुक देवगण सामर्थ्ययुक्त होकर द्रुतगति से आते हैं , तब प्रभातवेला के समान ही यह पृथ्वी हमारे लिए प्रकाशमयी होती है । हमारी प्रार्थनाओं के अभिलाषी देवगण हमें स्नेह करते रहें और हम आनन्दप्रद अन्नादि उपभोग-सामग्री प्राप्त कर सकें ॥५ ॥

९११३. अस्येदेषा सुमतिः पप्रथानाभवत्पूर्व्या भूमना गौः ।
अस्य सनीळा असुरस्य योनौ समान आ भरणे बिभ्रमाणाः ॥६ ॥

देवताओं की ओर जाने के लिए इस समय हमारी सनातन, विस्तृत (महिमायुक्त) स्तुतियाँ प्रोत्साहित होकर वृद्धि को प्राप्त हो रही हैं, अतएव हमारे इस देवत्व-संवर्द्धक यज्ञ में सम्पूर्ण देव अपने-अपने स्थान पर स्थित होकर सत्परिणाम देने हेतु आगमन करें ॥६ ॥

९११४. किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
संतस्थाने अजरे इतऊती अहानि पूर्वीरुषसो जरन्त ॥७ ॥

वह कौन सा वन और कौन सा वृक्ष है, जिससे उपादान (कच्चा माल) प्राप्त करके दिव्यलोक और पृथिवी लोक को रचा गया है ? ये दोनों लोक परस्पर आश्रित, देवताओं से संरक्षित तथा जीर्णतारहित हैं, दिन और रात्रि दोनों इनसे परिचित हैं ॥७ ॥

९११५. नैतावदेना परो अन्यदस्त्युक्षा स द्यावापृथिवी बिभर्ति ।
त्वचं पवित्रं कृणुत स्वधावान्यदीं सूर्यं न हरितो वहन्ति ॥८ ॥

द्यावा-पृथिवी के परे भी इस (रचयिता) के समान और कोई नहीं है । जो ईश्वर सृष्टि का निर्माता और द्युलोक-पृथ्वी का धारण कर्त्ता है , वही अन्नादि पोषक पदार्थों का स्वामी है । सूर्य के अश्वों ने जिस समय सूर्य का वहन करना शुरू नहीं किया था, उसी बीच उसने अपने आवरण की रचना कर ली थी ॥८ ॥

९११६. स्तेगो न क्षामत्येति पृथ्वीं मिहं न वातो वि ह वाति भूम ।
मित्रो यत्र वरुणो अज्यमानोऽग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम् ॥९ ॥

रश्मिधारी सूर्य पृथ्वी का उल्लंघन नहीं करते और वायुदेव पृथ्वी को अति वृष्टि से छिन्न-भिन्न नहीं करते । वन के बीच उत्पन्न अग्नि के समान प्रकट होकर मित्र और वरुण अपने प्रकाश को सभी ओर विस्तारित करते हैं ॥९ ॥

९११७. स्तरीर्यत्सूत सद्यो अज्यमाना व्यथिरव्यथीः कृणुत स्वगोपा ।
पुत्रो यत्पूर्वः पित्रोर्जनिष्ट शम्यां गौर्जगार यद्ध पृच्छान् ॥१० ॥

जैसे वृषभ द्वारा संयुक्त हुई गाय बछड़ा उत्पन्न करने में सक्षम होती है, उससे वह स्वयं कष्ट सहती हुई भी अपने संरक्षकों को सुख प्रदान करती है, वैसे ही प्राचीनकाल में पितरों द्वारा पुत्र, अरणियों द्वारा अथवा द्यावा-पृथिवी द्वारा अग्नि की उत्पत्ति हुई । जिस समय ऋत्विग्गण उसकी तलाश करते हैं , उस समय शमी वृक्ष से गौ (अग्नि उत्पादक अरणी) उत्पन्न होती है ॥१० ॥

९११८. उत कण्वं नृषदः पुत्रमाहुरुत श्यावो धनमादत्त वाजी ।
प्र कृष्णाय रुशदपिन्वतोधर्ऋतमत्र नकिरस्मा अपीपेत् ॥११ ॥

कण्व ऋषि नृषद के पुत्र के रूप में जाने जाते हैं । उन कृष्णवर्ण कण्व ने हविष्यान्न समर्पित करके अग्निदेव से ऐश्वर्य- सम्पदा उपलब्ध की । इस यज्ञ में तेजस्वी अग्निदेव ने कृष्णवर्ण कण्व के लिए अपने कान्तिमान् स्वरूप को प्रकट किया । ऋषि कण्व के यज्ञ के समान अग्निदेव के निमित्त किसी दूसरे ने ऐसा यज्ञ नहीं किया ॥११ ॥

[सूक्त - ३२]

[**ऋषि** - कवष ऐलूष । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - जगती, ६-९ त्रिष्टुप् ।]

९११९. प्र सु ग्मन्ता धियसानस्य सक्षणि वरेभिर्वराँ अभि षु प्रसीदतः ।
अस्माकमिन्द्र उभयं जुजोषति यत्सोम्यस्यान्धसो बुबोधति ॥१ ॥

इन्द्रदेव साधक की अर्चना को स्वीकार करने के लिए यज्ञस्थल की ओर अपने अश्वों को प्रेरित करते हैं । वे यजमान के सत्कर्मों से प्रशंसित होकर श्रेष्ठ हविष्य और प्रार्थना को ग्रहण करने के लिए यहाँ पधारें । यहाँ आकर वे हमारी प्रार्थनाओं और प्रदत्त आहुतियों को स्वीकार करें, तत्पश्चात् वे सोमरूपी अन्न (हव्य) ग्रहण करें ॥१ ॥

९१२०. वीन्द्र यासि दिव्यानि रोचना वि पार्थिवानि रजसा पुरुष्टुत ।
ये त्वा वहन्ति मुहुरध्वराँ उप ते सु वन्वन्तु वग्वनाँ अराधसः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप दिव्य और दीप्तिमान् धामों में घूमते रहते हैं । हे बहुसंख्यकों द्वारा पूजित इन्द्रदेव ! आप पृथ्वी के श्रेष्ठ स्थानों में वास करते हैं । आपके जो अश्व बार-बार हमारे यज्ञीय कार्यों में आपको यहाँ लेकर आते हैं , वे हम स्तोताओं को ऐश्वर्य-सम्पन्न बनायें ॥२ ॥

९१२१. तदिन्मे छन्त्सद्वपुषो वपुष्टरं पुत्रो यज्जानं पित्रोरधीयति ।
जाया पतिं वहति वग्नुना सुमत्पुंस इद्भद्रो वहतुः परिष्कृतः ॥३ ॥

जिस प्रकार पुत्र, माता-पिता के धन को ग्रहण करते हैं, वैसे ही इन्द्रदेव भी अद्भुत धन को उत्कृष्ट यज्ञ-कर्मों द्वारा हमें उपलब्ध कराएँ । जैसे कल्याणकारी मधुरवाणी से स्त्री, पति को अपना स्नेहपात्र बनाती है और श्रेष्ठ सुसंस्कृत पुरुष भी स्त्री को धर्मपत्नी के रूप में स्वीकार कर साथ-साथ रहते हैं, वैसे ही इन्द्रदेव शोधित सोमरस को पीकर हमारे स्नेहपात्र बनें अथवा हमें अपना स्नेहपात्र बनायें ॥३ ॥

९१२२. तदित्सधस्थमभि चारु दीधय गावो यच्छासन्वहतुं न धेनवः ।
माता यन्मन्तुर्यूथस्य पूर्व्याभि वाणस्य सप्तधातुरिज्जनः ॥४ ॥

जिस प्रकार गौएँ गोशाला की ओर जाने की इच्छुक रहती हैं , उसी प्रकार इस पवित्र यज्ञ में इन्द्रदेव के आने की प्रतीक्षा (इच्छा) में स्तोत्रों का उच्चारण किया जा रहा है । हे इन्द्रदेव ! आप अपनी उज्ज्वल दीप्ति से यज्ञस्थल को प्रकाशित करें तथा हमारे स्तोत्र मंत्रों की श्रेष्ठता यज्ञकर्त्ताओं में प्रथम स्थान पर रहे , साथ ही सप्त वाणियों (सप्त छन्दों-सप्तस्वरों) से स्तुति करने वालों को मिलने वाले श्रेष्ठ पद हमें भी प्रदान करें ॥४ ॥

९१२३. **प्र वोऽच्छा रिरिचे देवयुष्पदमेको रुद्रेभिर्याति तुर्वणिः ।**

जरा वा येष्वमृतेषु दावने परि व ऊमेभ्यः सिञ्चता मधु ॥५ ॥

हे याज्ञिको ! देवों की प्राप्ति के अभिलाषी व्यक्ति आपके सहयोग से देवत्वपद प्राप्त करते हैं । इन्द्रदेव रुद्रगणों के साथ अकेले ही शीघ्रता से यज्ञस्थल में पहुँचते हैं । प्रार्थनाएँ ही अमृतस्वरूप देवों से ऐश्वर्यरूपी अनुदान उपलब्ध करने के लिए सक्षम हैं । आप सभी संरक्षणकर्त्ता देवताओं के निमित्त मधुर सोमरस को जल में मिश्रित करके प्रदान करें ॥५ ॥

९१२४. **निधीयमानमपगूळहमप्सु प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।**

इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ॥६ ॥

अप्तत्त्व अथवा जल में अग्नि रहस्यमय स्वरूप में विद्यमान है । देवताओं के पुण्यकर्मों के संरक्षणकर्त्ता इन्द्रदेव ने यह रहस्य हमें बताया है । हे अग्निदेव ! मेधावी इन्द्रदेव ही आपका साक्षात्कार करने में समर्थ हैं, उनसे परामर्श लेकर हम आपके समीप आये हैं ॥६ ॥

९१२५. **अक्षेत्रवित्क्षेत्रविदं ह्यप्राट् स प्रैति क्षेत्रविदानुशिष्टः ।**

एतद्वै भद्रमनुशासनस्योत स्रुतिं विन्दत्यञ्जसीनाम् ॥७ ॥

किसी गन्तव्यपथ से अपरिचित व्यक्ति निश्चित ही पथप्रदर्शक से परामर्श लेते हैं तथा अपने लक्ष्य को उपलब्ध करते हैं । श्रेष्ठ मार्गदर्शक के मार्गदर्शन का यही कल्याणकारी प्रतिफल (सत्परिणाम) है कि अपरिचित (अज्ञानी) व्यक्ति भी ज्ञानरूपी कल्याणमार्ग को उपलब्ध करते हैं ॥७ ॥

९१२६. **अद्येदु प्राणीदममन्निमाहापीवृतो अधयन्मातुरूधः ।**

एमेनमाप जरिमा युवानमहेळन्वसुः सुमना बभूव ॥८ ॥

ये गोवत्सरूप अग्निदेव प्रकट होकर (प्रज्वलित होकर) कुछ समय से लगातार बढ़ रहे हैं । उन्होंने अपनी माता का दुग्धपान किया है । वे सभी कार्यों को सुगम करने वाले, अपार वैभव-सम्पन्न तथा श्रेष्ठमन की व्यवस्था से पूर्णतायुक्त हैं , तत्पश्चात् इन्हें युवावस्था के साथ ही जीर्णता प्राप्त हुई है ॥८ ॥

९१२७. **एतानि भद्रा कलश क्रियाम कुरुश्रवण ददतो मघानि ।**

दान इद्वो मघवानः सो अस्त्वयं च सोमो हृदि यं बिभर्मि ॥९ ॥

हे सम्पूर्ण कलाज्ञानयुक्त स्तुतियाँ सुनने वाले इन्द्रदेव ! आप स्तोत्र, प्रार्थनाओं को सुनकर श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करते हैं । हे स्तोतारूप वैभव-सम्पन्न (ऋत्विजो) इन्द्रदेव आपके लिए ऐश्वर्य दाता हों, जिसे हम अपने हृदय में धारण करें , ऐसा सोमरस भी वे (आपको) प्रदान करें ॥९ ॥

[सूक्त - ३३]

[**ऋषि** - कवष ऐलूष । **देवता** - १ विश्वेदेवा, २-३ इन्द्र, ४-५ कुरुश्रवण त्रासदस्यव, ६-९ उपमश्रवा मैत्रातिथि । **छन्द** - १ त्रिष्टुप् , २-३ प्रगाथ (समाबृहती, विषमा सतोबृहती) , ४-९ गायत्री ।]

इस सूक्त के ऋषि कवष ऐलूष हैं । ऐलूष का सीधा अर्थ हुआ इलूष के पुत्र; किन्तु कवष को पौराणिक सन्दर्भ में त्रसदस्यु का पुत्र कहा गया है, अस्तु ऐलूष उनका विशेषण कहा जाना चाहिए । उन्हें त्रसदस्यु पुत्र राजा कुरुश्रवण का सभासद भी कहा

गया है। ऋषि को प्रकृतिगत विशिष्ट प्राण-प्रवाह के रूप में वेदज्ञों ने माना है। उस सन्दर्भ में कवष का अर्थ होता है - कवच या ढाल। ऐलूष का अर्थ होता है- स्तुति मंत्रों द्वारा पापों का अन्त करने वाला। इस आधार पर कवष ऐलूष वह दिव्य प्राण है, जो स्तुति मंत्रों के आधार पर निर्मित-प्रेरित होकर विकारों से साधकों या प्रकृति के रक्षा-कवच के रूप में स्थापित होता है। उसे कुरुश्रवण से जोड़ा गया है। कुरुश्रवण का अर्थ होता है - की गई स्तुति को सुनने वाला। इन सन्दर्भों को ध्यान में रखकर सही मंत्रार्थ सही ढंग से स्पष्ट होते हैं। सूक्त के प्रथम मंत्र में यह वर्णन है कि स्तुतियों से दिव्य रक्षा-कवच का विकास कैसे होता है-

९१२८. प्र मा युयुज्रे प्रयुजो जनानां वहामि स्म पूषणमन्तरेण।
विश्वे देवासो अध मामरक्षन्दुःशासुरागादिति घोष आसीत् ॥१ ॥

(ऋषि कवष कहते हैं-) प्रजाओं को प्रेरित करने वाले (देवों या परमात्मा) ने मुझे (कुरुश्रवण) के साथ इस प्रयोजन में नियोजित किया है। मैंने अन्तःकरण में पूषादेव को धारण किया। इसके बाद सभी देवों ने मेरी (कवष की) रक्षा की। तब यह उक्ति सुनी गई कि अदम्य (कवष ऋषि अथवा दिव्य संरक्षक) आवरण प्राप्त हुआ ॥१ ॥

[देवों से प्रेरित पोषण के लिए संकल्पित होने वाले ऋषि को देवों का संरक्षण मिलता है, तब वे प्रतिष्ठा पाते हैं। प्रकृति में देवों से प्रेरित अन्तरिक्षीय कवच (आयनोस्फियर) आकाश के अवाञ्छनीय प्रवाहों से भूमण्डल की रक्षा करता है, यह मंत्रों से पुष्ट होता है। पूषादेव (पोषण देने वाली दिव्य शक्तियों) को यह अपने अन्दर धारण करता है, सभी देव शक्तियाँ उसकी रक्षा करती हैं, तब वह अदम्य कवच प्रतिष्ठित होता है।]

९१२९. सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः।
नि बाधते अमतिर्नग्नता जसुर्वेर्न वेवीयते मतिः ॥२ ॥

सपत्नियों की तरह मेरे पार्श्व (पसली या आजू-बाजू वाले) पीड़ा देते हैं। दुर्मति, अज्ञान, नग्नता, अभाव, मृत्युभय तथा अशक्तता मुझे सताते हैं। पक्षी की भाँति मेरा मन चंचल हो रहा है ॥२ ॥

९१३०. मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो।
सकृत्सु नो मघवन्निन्द्र मृळयाधा पितेव नो भव ॥३ ॥

जैसे चूहा रस से गीले हुए तन्तुओं को खा जाता है, वैसे ही हे असंख्य कर्मों के निर्वाहक इन्द्रदेव ! आपके उपासक होने पर भी हमारी मानसिक व्यथाएँ ही हमें खोखला कर रही हैं। हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप हमें अभीष्ट फल प्रदान करके हमारे लिए अति सुखदायक हों तथा पिता के समान ही आप हमारा संरक्षण करें ॥३ ॥

९१३१. कुरुश्रवणमावृणि राजानं त्रासदस्यवम्। मंहिष्ठं वाघतामृषिः ॥४ ॥

मैं ऋषि कवष, त्रसदस्यु के पुत्र, श्रेष्ठ दानी राजा कुरुश्रवण के समीप ऋत्विग्गणों के लिए दान प्राप्ति की इच्छा से आया हूँ ॥४ ॥

[इस मंत्र के देवता कुरुश्रवण हैं। देवशक्तियों में एक वर्ग वह है, जो सूर्य-वायु आदि की तरह सतत क्रियाशील है। एक वर्ग ऐसा भी होता है, जो आवाहन करने पर क्रियाशील होता है। कुरुश्रवण का अर्थ है 'की गई प्रार्थना को सुनने वाले' अर्थात् भाव-भरे आवाहन के आधार पर अनुदान देने वाले। ऋषि कवष ऐलूष को उनके समानधर्मी कुरुश्रवण अनुदान देकर सक्षम बनाते हैं।]

९१३२. यस्य मा हरितो रथे तिस्रो वहन्ति साधुया। स्तवै सहस्रदक्षिणे ॥५ ॥

जिस राजा कुरुश्रवण के आरूढ़ होने पर तीन अश्व मुझे वहन करते हैं, उस सहस्रों दक्षिणाएँ देने वाले राजा की स्तुति मैं (कवष) इस यज्ञ में करता हूँ ॥५ ॥

९१३३. यस्य प्रस्वादसो गिर उपमश्रवसः पितुः। क्षेत्रं न रण्वमूचुषे ॥६ ॥

(पुनः कवष ऋषि मित्रातिथि के पुत्र के पास पहुँचते हैं । उनकी उदासीनता देखकर कहते हैं-) हे राजन् उपमश्रवस् ! आपके पिता की वाणी बड़ी सरस थी। वे (दान के लिए) आकर्षक खेत के समान (उदार) थे ॥६ ॥

९१३४. अधि पुत्रोपमश्रवो नपान्मित्रातिथेरिहि। पितुष्टे अस्मि वन्दिता ॥७ ॥

हे मित्रातिथि के पुत्र उपमश्रवस्‌ ! मित्रातिथि के लिए मैं (स्तोता) स्तोत्र गान करता हूँ। आप शोक न करते हुए हमारे समीप पहुँचें। आपके पिताजी के हम प्रशंसक हैं ॥७ ॥

९१३५. यदीशीयामृतानामुत वा मर्त्यानाम्। जीवेदिन्मघवा मम ॥८ ॥

देवता अमृत स्वरूप अमर हैं। यदि देवों और मनुष्यों के संरक्षक यहाँ विद्यमान होते, तो ऐश्वर्यवान्‌ मित्रातिथि के निश्चित ही जीवित होने की संभावना की जा सकती थी ॥८ ॥

९१३६. न देवानामति व्रतं शतात्मा चन जीवति। तथा युजा वि वावृते ॥९ ॥

दैवी अनुशासनों की अवहेलना करते हुए कोई शतायु जीवन का लाभ नहीं पा सकता। हमारे सहयोगी जो असमय ही साथ छोड़कर चल देते हैं, उसका कारण भी दैवीसत्ता के अनुशासन की अवज्ञा ही है ॥९ ॥

[सूक्त - ३४]

[**ऋषि** - कवष ऐलूष अथवा अक्ष मौजवान्‌। **देवता** - १,७,९,१२ अक्ष समूह; १३ कृषि; २-६, ८,१०,११,१४ अक्ष-कितव। **छन्द** - त्रिष्टुप्‌; ७ जगती।]

इस सूक्त में जुआ खेलने के दोष बतलाते हुए, उससे विरत रहने तथा पुरुषार्थपूर्वक धनोपार्जन करने की प्रेरणा दी गयी है। लोग जुए में धन ही नहीं, जीवन भी नष्ट करते हैं। जीवन में गुणों का विकास करके सुख-सुविधाएँ जुटाने की जगह थोड़ी लागत से तुरन्त बड़ी कमाई के लालच में जीवन को कृषि-साधना की तरह नहीं, जुए की तरह जीना चाहते हैं। प्रस्तुत सूक्त में इस विडम्बना से बचकर जीवन को साधनामय ढंग से जीने की प्रेरणाएँ प्रदान की गई हैं-

९१३७. प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे वर्वृतानाः।
सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान्‌ ॥१ ॥

नीचे की भूमि (निम्न स्तर की मनोभूमि) में उपजे (लोभ रूप) बड़े-बड़े प्रभाव-सम्पन्न गतिशील पाँसे मुझे उत्साहित करते हैं। मौजवान्‌ (पर्वत पर उत्पन्न अथवा तरंगित करने वाला) सोम पीने से जैसी प्रसन्नता होती है, वैसी ही विभीतक से बने पाँसे मुझे उन्मत्त कर देते हैं ॥१ ॥

९१३८. न मा मिमेथ न जिहीळ एषा शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत्‌।
अक्षस्याहमेकपरस्य हेतोरनुव्रतामप जायामरोधम्‌ ॥२ ॥

मेरी यह सुन्दर, सुशीला पत्नी मुझसे कभी भी असंतुष्ट नहीं होती, वह हमेशा मेरी और मेरे पारिवारिक परिजनों, मित्रों की अथक सेवा करती रही है। मात्र इस अक्षक्रीड़ा (जुआ के खेल) ने ही मुझसे अति स्नेहमयी पत्नी को छीन लिया ॥२ ॥

९१३९. द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि न नाथितो विन्दते मर्डितारम्‌।
अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम्‌ ॥३ ॥

जुआ खेलने वाले व्यक्ति को उसकी सास कोसती है और उसकी सुन्दर पत्नी उसका परित्याग तक कर देती है। वह भिखारी बनकर किसी से कुछ माँगता भी है, तो उसे अविश्वस्त मानकर सभी उसका तिरस्कार करते हैं। जैसे बूढ़े घोड़े की कोई कीमत नहीं रहती, वैसे ही जुआरी भी अपनी मान-प्रतिष्ठा खो देता है ॥३ ॥

९१४०. अन्ये जायां परि मृशन्त्यस्य यस्यागृधद्वेदने वाज्य१क्षः।
पिता माता भ्रातर एनमाहुर्न जानीमो नयता बद्धमेतम्‌ ॥४ ॥

जिस जुआरी के धन पर इन बलशाली पाँसों की दृष्टि पड़ जाये, उसकी पत्नी को भी दूसरे लोग हथिया लेते हैं। उसके माता, पिता और भाई भी उसके सम्बन्ध से कतराने लगते हैं, यहाँ तक कि पहचानने से भी इन्कार करते पाये जाते हैं। कहते हैं, इसे बाँधकर ले जाओ, हमारा इससे कोई सम्बन्ध नहीं है ॥४ ॥

९१४१. यदादीध्ये न दविषाण्येभिः परायद्भ्योऽव हीये सखिभ्यः ।
न्युप्ताश्च बभ्रवो वाचमक्रतँ एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव ॥५ ॥

जब कभी मैं मन में विचार करता हूँ कि अब द्यूतक्रीड़ा रूपी पापकर्मों से पीछा छुड़ा लूँगा, क्योंकि मेरे साथी भी मुझे बार-बार अपमानित करते हैं, तभी ये लाल-पीले रंग के पाँसे मुझे आकर्षित कर लेते हैं तथा मैं कुलटा-स्त्री की भाँति उनके पास पुनः चला जाता हूँ ॥५ ॥

९१४२. सभामेति कितवः पृच्छमानो जेष्यामीति तन्वा३ शूशुजानः ।
अक्षासो अस्य वि तिरन्ति कामं प्रतिदीव्ने दधत आ कृतानि ॥६ ॥

शरीर से प्रफुल्लित जुआरी, किस धनवान् को अपनी जीत का निशाना बनाऊँ, ऐसा मन ही मन सोचता हुआ द्यूत-सभा में पहुँचता है । विरोधी (प्रतिपक्षी) जुआरी को हराने के लिए प्रस्तुत किये गये वे पाँसे, धन की अभिलाषा को उत्तरोत्तर बढ़ाते हैं ॥६ ॥

९१४३. अक्षास इदङ्कुशिनो नितोदिनो निकृत्वानस्तपनास्तापयिष्णवः ।
कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणो मध्वा सम्पृक्ताः कितवस्य बर्हणा ॥७ ॥

जब जुआरी की चाल उसके अनुकूल नहीं चलती तो वही पाँसे जुआरी को अंकुश के समान चुभते, बाण के समान छेदते, छुरे के समान काटते तथा संताप देते हैं । सर्वस्व हार जाने पर परिवार-परिजनों को भारी कष्टकर होते हैं । इसके विपरीत विजयी जुआरी के लिए ये पाँसे पुत्रजन्म के समान हर्षप्रदायक होते हैं, माधुर्य से युक्त तथा मधुर वचनों से अपने चंगुल में फँसाने वाले होते हैं ; लेकिन पराजित जुआरी को तो मार ही डालते हैं ॥७ ॥

९१४४. त्रिपञ्चाशः क्रीळति व्रात एषां देवइव सविता सत्यधर्मा ।
उग्रस्य चिन्मन्यवे ना नमन्ते राजा चिदेभ्यो नम इत्कृणोति ॥८ ॥

तिरपन पाँसों का समूह सत्यधर्मपालक सूर्यदेव की किरणों की भाँति क्रीड़ा करता है । वे उग्रस्वभाव युक्त मनुष्य के क्रोध से भी अप्रभावित रहते हुए, न उसके सामने झुकते हैं, न ही उनके वश में आते हैं । बड़े-बड़े राजा भी इन्हें प्रणाम ही करते हैं ॥८ ॥

९१४५. नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्त्यहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते ।
दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति ॥९ ॥

ये द्यूतक्रीड़ा के पाँसे कभी ऊपर उठते हैं, तो कभी नीचे जाते हैं । हाथों से रहित होते हुए भी पाँसे हाथों से युक्त जुआरियों को पराजित करते देखे जाते हैं । ये जुए के पाँसे दिव्य क्षमता-सम्पन्न होते हुए भी जले हुए अंगारों के समान ही संतप्त करते हैं । ये स्पर्श में शीतल होते हुए भी हृदय को दग्ध करते रहते हैं ॥९ ॥

९१४६. जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क्व स्वित् ।
ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानोऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति ॥१० ॥

जुआरी की परित्यक्ता स्त्री दुःख पाती है और कहीं तो अनावश्यक घूमने वाले (जुआरी) पुत्र की माता उसकी चिन्ता में दुःखी पायी जाती है । ऋणी जुआरी भयग्रस्त होकर दूसरों के घर में रात्रि बिताता है ॥१० ॥

९१४७. स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं ततापान्येषां जायां सुकृतं च योनिम् ।
पूर्वाह्णे अश्वान्युयुजे हि बभ्रून्त्सो अग्नेरन्ते वृषलः पपाद ॥११ ॥

जुआरी दूसरों की स्त्रियों को श्रेष्ठ घरों एवं सुख-सौभाग्य से युक्त देखकर अपनी पत्नी की दुर्दशा पर मन

ही मन दुःखी होता है; परन्तु सुबह होते ही गेरु (भूरे) रंग के पाँसों से वह फिर से द्यूतक्रीड़ा में शामिल हो जाता है। सायंकाल उसके शरीर पर वस्त्र तक न रह जाने की स्थिति में जुआरी रात को ठण्डक में आग के समीप समय गुजारता है ॥११॥

९१४८. यो वः सेनानीर्महतो गणस्य राजा व्रातस्य प्रथमो बभूव।
तस्मै कृणोमि न धना रुणध्मि दशाहं प्राचीस्तदृतं वदामि ॥१२॥

हे अक्ष-समूह ! आपके महासंघ (विशाल समूह) का जो मुख्य नायक है और जो सर्वोत्तम राजा है, उसे मैं अपनी दसों अँगुलियों को जोड़कर प्रणाम करता हूँ। ऐसे जुए से प्राप्त धन की भी हमारी कामना नहीं, मेरा यह कथन यथार्थ है ॥१२॥

९१४९. अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः ॥१३॥

हे द्यूतक्रीड़क ! जुआ कभी मत खेलो, कृषि जैसे उत्पादक कार्यों को करो। (इस प्रकार प्राप्त) धन को ही पर्याप्त मानकर संतुष्ट रहो। इसी से पत्नी और गौओं की प्राप्ति होगी। ऐसा परामर्श हमें साक्षात् सवितादेव ने दिया है ॥१३॥

[जुए से धन केवल इधर का उधर होता है, जबकि उत्पादन बढ़ाने से ही अभाव दूर हो सकता है। इसलिए ऋषि उत्पादक कार्यों में समय एवं शक्ति लगाने का परामर्श देते हैं।]

९१५०. मित्रं कृणुध्वं खलु मृळता नो मा नो घोरेण चरताभि धृष्णु।
नि वो नु मन्युर्विशतामरातिरन्यो बभ्रूणां प्रसितौ न्वस्तु ॥१४॥

हे अक्षो ! हमें अपना सखारूप मानकर हमारे लिए आप कल्याणकारी हों। हमारे ऊपर कष्टकारी, उग्र, क्रोधी स्वभाव से प्रहार की बात न सोचें। आपके ऐसे क्रोध हमारे विरोधियों को प्राप्त हों, शेष हमारे शत्रु ही भूरे रंग के जुए के पाँसों के बन्धन में जकड़े रहें ॥१४॥

[सूक्त - ३५]

[**ऋषि** - लुश धानाक। **देवता** - विश्वेदेवा। **छन्द** - जगती, १३-१४ त्रिष्टुप्।]

९१५१. अबुध्रमु त्य इन्द्रवन्तो अग्नयो ज्योतिर्भरन्त उषसो व्युष्टिषु।
मही द्यावापृथिवी चेततामपोऽद्या देवानामव आ वृणीमहे ॥१॥

इन्द्रदेव के साथ आवाहित अग्निदेव भी प्रभातवेला में अन्धकार को समाप्त करते हैं तथा तेजस्वितायुक्त होकर प्रदीप्त होते हैं। महिमायुक्त (विस्तृत) द्युलोक और पृथिवीलोक अपने कार्यों में जागरणशील हों। इन्द्रादि देवगण हमारी प्रार्थनाएँ सुनकर हमें संरक्षण प्रदान करें ॥१॥

९१५२. दिवस्पृथिव्योरव आ वृणीमहे मातॄन्त्सिन्धून्पर्वताञ्छर्यणावतः।
अनागास्त्वं सूर्यमुषासमीमहे भद्रं सोमः सुवानो अद्या कृणोतु नः ॥२॥

हमारी प्रार्थना है कि द्युलोक और भूलोक हमारे संरक्षक हों, उसी प्रकार लोकों के निर्माण में सहायक सागर, सरोवर, पर्वत, सूर्य और उषा से भी विनम्र निवेदन है कि वे सभी हमें पापकर्मों से मुक्त करें। इस समय जो सोम अभिषुत करके श्रेष्ठ रीति से बनाया गया है, वह भी हमारे लिए कल्याणकारी हो ॥२॥

९१५३. द्यावा नो अद्य पृथिवी अनागसो मही त्रायेतां सुविताय मातरा ।
उषा उच्छन्त्यप बाधतामघं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥३ ॥

अतिवंदनीय माता-पिता के समान निष्पाप द्यावा-पृथिवी श्रेष्ठ सुखों की प्राप्ति के लिये हमारा संरक्षण करें । अन्धकार की विनाशक उषा हमारे पापकर्मों को विनष्ट करे । हम तेजस्वी अग्नि से कल्याण की कामना करते हैं ॥३ ॥

९१५४. इयं न उस्रा प्रथमा सुदेव्यं रेवत्सनिभ्यो रेवती व्युच्छतु ।
आरे मन्युं दुर्विदत्रस्य धीमहि स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥४ ॥

धनप्रदात्री, पापों की निवारणकर्त्री, सूर्यदेव से पहले उत्पन्न होने वाली उषा, हम साधकों को सौभाग्यशाली ऐश्वर्य प्रदान करें । निर्धनता से पीड़ित लोगों के क्रोध का भाजन हमें न बनना पड़े । तेजस्वी अग्निदेव से हम कल्याण कामना करते हैं ॥४ ॥

९१५५. प्र याः सिस्रते सूर्यस्य रश्मिभिर्ज्योतिर्भरन्तीरुषसो व्युष्टिषु ।
भद्रा नो अद्य श्रवसे व्युच्छत स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥५ ॥

सूर्य की किरणों के साथ आने वाली उषाएँ विशेष प्रकाशमयी होकर अन्धकार को विनष्ट करती हैं । इस समय वे हमें अन्नादि प्रदान करके, हमारे लिये कल्याणकारी होकर, अन्धकार को विनष्ट करें । तेजस्वी अग्निदेव से हम मंगल की कामना करते हैं ॥५ ॥

९१५६. अनमीवा उषस आ चरन्तु न उदग्नयो जिहतां ज्योतिषा बृहत् ।
आयुक्षातामश्विना तूतुजिं रथं स्वस्त्य१ ग्निं समिधानमीमहे ॥६ ॥

जिस समय आरोग्यदायिनी उषा हमारी ओर आगमन करती हैं, उस समय में विशेष प्रकाशमान यज्ञीय अग्नि भी प्रज्वलित होती है । दोनों अश्विनीकुमार भी शीघ्रगामी रथ में अपने अश्वों को नियोजित कर यहाँ पधारें । तेजस्वी अग्निदेव से हम कल्याण की प्रार्थना करते हैं ॥६ ॥

९१५७. श्रेष्ठं नो अद्य सवितर्वरेण्यं भागमा सुव स हि रत्नधा असि ।
रायो जनित्रीं धिषणामुप ब्रुवे स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥७ ॥

हे सवितादेव ! आप हमें धारण करने योग्य धन प्रदान करें, क्योंकि आप श्रेष्ठ ऐश्वर्यों के दातारूप हैं । धन को उत्पन्न करने वाली प्रार्थनाओं से हम स्तवन करते हैं । तेजस्वी अग्निदेव से हम सुख की कामना करते हैं ॥७ ॥

९१५८. पिपर्तु मा तदृतस्य प्रवाचनं देवानां यन्मनुष्या३ अमन्महि ।
विश्वा इदुस्राः स्पळुदेति सूर्यः स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥८ ॥

सत्कर्मशील मनुष्य जिस देवयज्ञ को करने के इच्छुक रहते हैं, वही यज्ञ हमें भी संरक्षित करे । सूर्यदेव सभी उषाओं को प्रकाशमान करते हुए प्रकट होते हैं । प्रदीप्त अग्निदेव से हम कल्याण की कामना करते हैं ॥८ ॥

९१५९. अद्वेषो अद्य बर्हिषः स्तरीमणि ग्राव्णां योगे मन्मनः साध ईमहे ।
आदित्यानां शर्मणि स्था भुरण्यसि स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥९ ॥

इस यज्ञस्थल में आज कुश के आसन बिछाये गये हैं । अभीष्ट फल प्राप्तिरूप सोम अभिषुत करने के लिये दो पत्थर धारण किये गये हैं । हे यजमानो ! अपनी अभीष्टपूर्ति के लिए विद्वेषरहित, स्नेहमूर्ति आदित्यगणों का

आश्रय ग्रहण करो । आपके कर्तव्यकर्म-अनुष्ठान से हर्षित हुए आदित्यदेव आपको सुख प्रदान करने वाले हों । प्रदीप्त अग्निदेव से हम सुख की प्रार्थना करते हैं ॥९ ॥

९१६०. आ नो बर्हिः सधमादे बृहद्दिवि देवाँ ईळे सादया सप्त होतॄन्।
इन्द्रं मित्रं वरुणं सातये भगं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! हमारे अतिविस्तृत, दिव्यतायुक्त यज्ञीय सत्कर्मों में देवगण संगठित होकर आनन्दित होते हैं । इस प्रगति प्रदायक यज्ञ में सप्त होताओं के साथ इन्द्र, मित्र, वरुण, भगदेव तथा अतिरिक्त देवों को भी बुलाकर आप प्रतिष्ठित करें । यज्ञ में उपस्थित सम्पूर्ण देवों से ऐश्वर्य के लिये हम प्रार्थना करते हैं तथा अग्निदेव से हम कल्याण की कामना करते हैं ॥१० ॥

९१६१. त आदित्या आ गता सर्वतातये वृधे नो यज्ञमवता सजोषसः ।
बृहस्पतिं पूषणमश्विना भगं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥११ ॥

हे आदित्यदेवो ! आप जगद्विख्यात हैं, हम सबके कल्याण के लिये आप हमारे यज्ञस्थल में पधारें । आप सभी पारस्परिक सहयोग से ऐश्वर्य-वृद्धि के लिये हमारे यज्ञों को संरक्षण प्रदान करें । बृहस्पतिदेव, पूषादेव, अश्विनीकुमारों, भगदेव तथा प्रदीप्त अग्निदेव से हम कल्याण की कामना करते हैं ॥११ ॥

९१६२. तन्नो देवा यच्छत सुप्रवाचनं छर्दिरादित्याः सुभरं नृपाय्यम्।
पश्वे तोकाय तनयाय जीवसे स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥१२ ॥

हे आदित्य देवो ! आप हमारे यज्ञ को सर्वसुख-सम्पन्न बनायें । हमें ऐश्वर्यशाली, सुखप्रद , मनुष्यों के पालन में सक्षम राजभवन प्रदान करें । हम तेजस्वी अग्निदेव से पुत्र-पौत्रादि , गवादि पशु तथा दीर्घजीवनादि सभी प्रकार के कल्याण की कामना करते हैं ॥१२ ॥

९१६३. विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः ।
विश्वे नो देवा अवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे ॥१३ ॥

आज सभी मरुद्देव और रुद्रादिदेव हमारा संरक्षण करें, सम्पूर्ण अग्नियाँ प्रज्वलित हों । सभी इन्द्रादिदेवगण हमारे संरक्षण के लिये यज्ञ में पधारें । हमें सभी प्रकार की ऐश्वर्य-सम्पदा एवं अन्न सामग्री उपलब्ध हो ॥१३ ॥

९१६४. यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं त्रायध्वे यं पिपृथात्यंहः ।
यो वो गोपीथे न भयस्य वेद ते स्याम देववीतये तुरासः ॥१४ ॥

हे शीघ्र अभीष्टफलपूरक देवो ! आप युद्ध क्षेत्र में जिसका संरक्षण करते हुए शत्रुपक्ष से सुरक्षित करते हैं, पापकृत्यों का निवारण करके जिसे ऐश्वर्य-सम्पन्न बनाते हैं तथा जो आप के संरक्षण में निर्भय रहते हैं, हम देवाराधक मनुष्य इसी प्रकार के गुणों को धारण करें ॥१४ ॥

[सूक्त - ३६]

[**ऋषि** - लुश धानाक । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - जगती, १३-१४ त्रिष्टुप् ।]

९१६५. उषासानक्ता बृहती सुपेशसा द्यावाक्षामा वरुणो मित्रो अर्यमा ।
इन्द्रं हुवे मरुतः पर्वताँ अप आदित्यान्द्यावापृथिवी अपः स्वः ॥१ ॥

हम अपने यज्ञस्थल में महिमामय एवं श्रेष्ठ शोभायुक्त प्रभातवेला, रात्रि, द्यावा, पृथ्वी, वरुण, मित्रगण, अर्यमा, इन्द्र, मरुद्गण, पर्वत, जल, आदित्यगण, अन्तरिक्ष तथा देवलोक आदि को सादर आमन्त्रित करते हैं ॥१ ॥

९१६६. द्यौश्च नः पृथिवी च प्रचेतस ऋतावरी रक्षतामंहसो रिषः ।
मा दुर्विदत्रा निर्ऋतिर्न ईशत तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥२ ॥

यज्ञ के अधिष्ठाता स्वरूप तथा विशाल हृदयवाले द्यावा-पृथिवी हमें सभी पापों से संरक्षित करें । पापबुद्धि युक्त (पाप वृत्ति रूप) मृत्युदेव हमें अपने नियन्त्रण से निवृत्त करें । आज हम देवशक्तियों से श्रेष्ठ संरक्षण की कामना करते हैं ॥२ ॥

९१६७. विश्वस्मान्नो अदितिः पात्वंहसो माता मित्रस्य वरुणस्य रेवतः ।
स्वर्वज्ज्योतिरवृकं नशीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥३ ॥

ऐश्वर्य - सम्पन्न मित्रावरुण तथा देवों की माता देवी अदिति हमें संम्पूर्ण पापकर्मों से बचायें, जिससे हम अविनाशी , संरक्षणयुक्त तेजस्विता को प्राप्त करें । हम देवशक्तियों से पूर्ण - संरक्षण की प्रार्थना करते हैं ॥३ ॥

९१६८. ग्रावा वदन्नप रक्षांसि सेधतु दुष्ष्वप्न्यं निर्ऋतिं विश्वमत्रिणम् ।
आदित्यं शर्म मरुतामशीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥४ ॥

सोम अभिषवण में प्रयुक्त पाषाण, अभिषवण क्रिया के समय शब्दायमान होते हुए यज्ञ में विघ्नकारी असुरों, कष्टदायक स्वप्नों, मृत्युरूप पापों तथा सभी पैशाचिक दुष्कृत्यों में संलग्न शत्रुओं का संहार करें । इस प्रकार विघ्नों से रहित यज्ञ में हम आदित्यों और मरुद्गणों से सुख प्राप्त करें । हम आज सभी देवताओं से पूर्ण संरक्षण की कामना करते हैं ॥४ ॥

९१६९. एन्द्रो बर्हिः सीदतु पिन्वतामिळा बृहस्पतिः सामभिर्ऋक्वो अर्चतु ।
सुप्रकेतं जीवसे मन्म धीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥५ ॥

इन्द्रदेव हमारे यज्ञ में आकर आसन ग्रहण करें । वाणी और पृथ्वी हमें श्रेष्ठ फल प्रदायिनी हों । सामगान से प्रशंसायुक्त बृहस्पतिदेव उनकी स्तुति करें । हम जीवनोपयोगी , श्रेष्ठ अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले धन उपलब्ध करें । हम देव शक्तियों से भलीप्रकार संरक्षण की प्रार्थना करते हैं ॥५ ॥

९१७०. दिविस्पृशं यज्ञमस्माकमश्विना जीराध्वरं कृणुतं सुम्नमिष्टये ।
प्राचीनरश्मिमाहुतं घृतेन तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥६ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! हमारा सत्कर्मरूपी यज्ञ अति तेजस्वी अग्नि से युक्त, हिंसारहित तथा अनिष्टरहित होकर हमारे अभीप्सित लाभ के लिये कल्याणप्रद हो, ऐसी आपकी कृपा रहे । जिस अग्नि में घृतयुक्त हवियाँ प्रदान की जाएँ, उनकी ज्योतियों को देवों के प्रति प्रेरित करें । आज हम देवशक्तियों से पूर्ण संरक्षण की कामना करते हैं ॥६ ॥

९१७१. उप ह्वये सुहवं मारुतं गणं पावकमृष्वं सख्याय शंभुवम् ।
रायस्पोषं सौश्रवसाय धीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥७ ॥

यज्ञ सम्पादनशील, पवित्रतायुक्त, दर्शनीय और सुखदायक मरुद्गणों की हम प्रार्थना करते हैं । धन के दानकर्त्ता उन्हें हम, मैत्री भावना से आवाहित करते हैं । सुखदाता, कीर्तिवान् , अन्नों के दानकर्त्ता मरुद्गणों को हम हृदय में धारण करते हैं । हम तेजस्वी अग्निदेव से रक्षा की प्रार्थना करते हैं ॥७ ॥

९१७२. अपां पेरुं जीवधन्यं भरामहे देवाव्यं सुहवमध्वरश्रियम्।
सुरश्मिं सोममिन्द्रियं यमीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥८॥

जल के संरक्षक, प्राणियों के लिए सन्तोषप्रद (आनन्दप्रद), देवों के तुष्टिदायक, प्रशंसनीय, श्रेष्ठ संज्ञक, यज्ञ की शोभा तथा श्रेष्ठ रश्मिधाराओं से युक्त सोम को हम धारण करते हैं। उनसे हम शक्ति की प्राप्ति के लिए कामना करते हैं तथा सभी देव शक्तियों से आज हम संरक्षण की प्रार्थना करते हैं ॥८॥

९१७३. सनेम तत्सुसनिता सनित्वभिर्वयं जीवा जीवपुत्रा अनागसः।
ब्रह्मद्विषो विष्वगेनो भरेरत तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥९॥

अपनी और अपनी सन्तानों के दीर्घायुष्य से युक्त एवं दुष्कर्मों से रहित होकर हम उपभोग्य सामग्रियों और श्रेष्ठ सत्कर्मों द्वारा परमात्मा की सच्ची आराधना करें। परमात्मज्ञान से रहित लोग सभी प्रकार के पापकर्मों में संलग्न होकर शीघ्र विनाश को प्राप्त हों। हम देवशक्तियों से आज श्रेष्ठ संरक्षण की कामना करते हैं ॥९॥

९१७४. ये स्था मनोर्यज्ञियास्ते शृणोतन यद्वो देवा ईमहे तद्ददातन।
जैत्रं क्रतुं रयिमद्वीरवद्यशस्तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥१०॥

हे आराध्य देवगण! आप सम्पादित यज्ञ भाग को उपलब्ध करने के अधिकारी हैं। आप हमारी प्रार्थना-स्तुतियों का श्रवण करें। हम आपसे जिन मनोरथों की कामना करते हैं, उन सभी ज्ञान, बल, ऐश्वर्य तथा सन्तानादि से युक्त यश आप हमें उपलब्ध करायें। आज हम देवों से संरक्षण की कामना करते हैं ॥१०॥

९१७५. महदद्य महतामा वृणीमहेऽवो देवानां बृहतामनर्वणाम्।
यथा वसु वीरजातं नशामहै तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥११॥

आज हम महिमायुक्त, व्यापक तथा अविचल-इन्द्रादि देवताओं से संरक्षण की प्रार्थना करते हैं, जिससे हम ऐश्वर्य और वीर सन्तानों को प्राप्त करें। आज हम देवशक्तियों से श्रेष्ठ संरक्षण की प्रार्थना करते हैं ॥११॥

९१७६. महो अग्नेः समिधानस्य शर्मण्यनागा मित्रे वरुणे स्वस्तये।
श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥१२॥

सवितादेव की आज्ञा के अनुगत होकर हम देवों के उत्तम संरक्षण का वरण करते हैं। हम प्रदीप्त अग्निदेव के आश्रय को प्राप्त होते हुए मित्र और वरुणदेव के मध्य में अपराधरहित होकर सदा कल्याण को प्राप्त करें ॥१२॥

९१७७. ये सवितुः सत्यसवस्य विश्वे मित्रस्य व्रते वरुणस्य देवाः।
ते सौभगं वीरवद्गोमदप्नो दधातन द्रविणं चित्रमस्मे ॥१३॥

जो देवगण सत्यकर्मों के प्रेरक सवितादेव, मित्र और वरुण के व्रत - नियमों में संलग्न हैं, वे वीर सन्तानों से सम्पन्न, पशुओं से युक्त सम्पदा, ज्ञान-धन, पूजा योग्य सम्पत्तियाँ तथा सत्कर्म की प्रेरणा हमें प्रदान करें ॥१३॥

९१७८. सविता पश्चातात्सविता पुरस्तात्सवितोत्तरात्तात्सविताधरात्तात्।
सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः ॥१४॥

जो सर्व उत्पादक सवितादेव पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण सभी दिशाओं में विस्तृत हैं, वे सवितादेव हमें सभी प्रकार की ऐश्वर्य - सम्पदा उपलब्ध करायें। वे सवितादेव हमें दीर्घायुष्य प्रदान करें ॥१४॥

[सूक्त - ३७]

[ऋषि - अभितपा सौर्य । देवता - सूर्य । छन्द - जगती, १० त्रिष्टुप् ।]

११७९. नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतं सपर्यत ।
दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत ॥१ ॥

हे ऋत्विग्गण ! आप मित्र और वरुणदेवों को देखने वाले, महान् दिव्यतायुक्त, अति दूर से सभी वस्तुओं के दर्शक, देवों के कुल में उत्पन्न, जगत् के प्रकाशक तथा द्युलोक के पुत्रस्वरूप सूर्यदेव को नमन करें । उनके सत्यपथ का अनुगमन करें तथा उनकी अर्चना करें ॥१ ॥

११८०. सा मा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च ।
विश्वमन्यन्नि विशते यदेजति विश्वहापो विश्वाहोदेति सूर्यः ॥२ ॥

जिसके आश्रय से द्युलोक - पृथ्वी और दिन-रात उत्पन्न होते हैं, जो गतिमान हैं, जड़ से पृथक् चेतन भी जिसके आश्रय में निवास करते हैं, जिसके प्रभाव से जल निरन्तर प्रवाहित रहता है और सूर्योदय होता है, सत्य से युक्त ऐसे वचन हमें सभी प्रकार से संरक्षित करें ॥२ ॥

११८१. न ते अदेवः प्रदिवो नि वासते यदेतशेभिः पतरै रथर्यसि ।
प्राचीनमन्यदनु वर्तते रज उदन्येन ज्योतिषा यासि सूर्य ॥३ ॥

हे सूर्यदेव !जब आप वेगशील अश्वों को रथ से योजित करके आकाशमार्ग में गमन करते हैं, तब कोई अदेव आपके निकट नहीं पहुँच सकता । आप जिस तेजस्विता के साथ उदित होते हैं, वही आपका अनुगमन करती है ॥ ३ ॥

११८२. येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना ।
तेनास्मद्विश्वामनिरामनाहुतिमपामीवामप दुष्वप्न्यं सुव ॥४ ॥

हे सूर्यदेव ! आप जिस तेजस्विता से अन्धकार को विनष्ट करते हैं तथा जिन प्रकाशकिरणों से सम्पूर्ण विश्व को आलोकित करते हैं, उसी तेजस्विता के प्राण से पापकर्मों का निवारण करें; अन्न-जल की अभावग्रस्तता, रोगों-व्याधियों तथा कुविचारों आदि मानसिक कष्टों का निवारण करें ॥४ ॥

११८३. विश्वस्य हि प्रेषितो रक्षसि व्रतमहेळयन्नुच्चरसि स्वधा अनु ।
यदद्य त्वा सूर्योपब्रवामहै तं नो देवा अनु मंसीरत क्रतुम् ॥५ ॥

हे सूर्यदेव ! आप सर्वप्रेरक होकर सहज-स्वभाव से विश्व के व्रतों - कर्मों का संरक्षण करते हैं और प्रात: कालीन यज्ञों की आहुतियों को ग्रहण करते हैं । हे सूर्यदेव ! आज जिस समय हम आपके पावन नाम से आपकी प्रार्थना करते हैं, उस यज्ञीय क्रम का इन्द्रादि देवगण समर्थन प्रदान करें ॥५ ॥

११८४. तं नो द्यावापृथिवी तन्न आप इन्द्रः शृण्वन्तु मरुतो हवं वचः ।
मा शूने भूम सूर्यस्य सन्दृशि भद्रं जीवन्तो जरणामशीमहि ॥६ ॥

इन्द्रदेव, मरुद्गण, जल तथा द्यावा-पृथिवी हमारे आवाहन पर हमारी वाणी को सुनें । हमारे ऊपर सूर्यदेव की कृपा बनी रहे, उनके दर्शन से लाभान्वित होकर हम कष्टों से बचे रहें । हम दीर्घायुष्य को प्राप्त करके कल्याणकारी-सुखी जीवन को भोगते हुए वृद्धावस्था की ओर बढ़ें ॥६ ॥

९१८५. विश्वाहा त्वा सुमनसः सुचक्षसः प्रजावन्तो अनमीवा अनागसः ।
उद्यन्तं त्वा मित्रमहो दिवेदिवे ज्योग्जीवाः प्रति पश्येम सूर्य ॥७ ॥

हे आदित्यदेव ! आपकी कृपा से हम सदैव सुविचारों से सम्पन्न, शोभनदृष्टि से युक्त, सुसन्ततियों से सम्पन्न, आरोग्य-सम्पन्न तथा पाप कर्मों से रहित हों । हे मित्रगणों से पूजनीय ! हम जीवन्त रहकर प्रतिदिन उदय होते हुए आपके ज्योतित स्वरूप के दर्शन करें ॥७ ॥

९१८६. महि ज्योतिर्बिभ्रतं त्वा विचक्षण भास्वन्तं चक्षुषेचक्षुषे मयः ।
आरोहन्तं बृहतः पाजसस्परि वयं जीवाः प्रति पश्येम सूर्य ॥८ ॥

हे सूर्यदेव ! महिमामय ज्योति के धारणकर्त्ता, देदीप्यमान, सबके नेत्रों के लिए सुखद, अतिशक्तिमान् , समुद्र के जल से ऊपर आकाशमण्डल में उदित होते हुए हम सभी आपके दर्शन लाभ से प्रतिदिन लाभान्वित हों ॥८ ॥

९१८७. यस्य ते विश्वा भुवनानि केतुना प्र चेरते नि च विशन्ते अक्तुभिः ।
अनागास्त्वेन हरिकेश सूर्याह्नाह्ना नो वस्यसावस्यसोदिहि ॥९ ॥

हे हरिकेश सूर्यदेव ! आपकी जिस ज्ञानरूप (प्रकाशरूप) ध्वजा से सम्पूर्ण विश्व प्रकाशमान होता है और जिससे आप प्रत्येक रात्रि का अन्धकार दूर करते हैं, आप उसी ध्वजा के सहित प्रतिदिन उदित हों । हमें पापकर्मों से निवृत्त करके श्रेयमार्ग पर चलायें , आप हमारे लिए श्रेयस्कर हों ॥९ ॥

९१८८. शं नो भव चक्षसा शं नो अह्ना शं भानुना शं हिमा शं घृणेन ।
यथा शमध्वञ्छमसद्दुरोणे तत्सूर्य द्रविणं धेहि चित्रम् ॥१० ॥

हे सूर्यदेव ! आप अपनी तेजस्विता से हमारे लिए कल्याणकारी हों; अपने दिवस, रश्मियाँ, शीतलता तथा उष्णता से हमें सुखी करें । आप हमारे जीवन-पथ तथा घरों में भी शान्तिवर्षा करें; हमें आप ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१० ॥

९१८९. अस्माकं देवा उभयाय जन्मने शर्म यच्छत द्विपदे चतुष्पदे ।
अदत्पिबदूर्जयमानमाशितं तदस्मे शं योररपो दधातन ॥११ ॥

हे देवगण ! आप द्विपाद मनुष्यों-पक्षियों तथा चतुष्पाद पशुओं , सभी प्राणियों को सुख प्रदान करें । सभी के खान-पान ऊर्जावर्द्धक (बलवर्द्धक) हों, हितकारी हों । सभी को हितकारी, निष्पाप एवं स्वावलम्बी जीवन प्रदान करें ॥११ ॥

९१९०. यद्वो देवाश्चकृम जिह्वया गुरु मनसो वा प्रयुती देवहेळनम् ।
अरावा यो नो अभि दुच्छुनायते तस्मिन्तदेनो वसवो नि धेतन ॥१२ ॥

हे ऐश्वर्यवान् देवगण ! वाणी या मन से हमारे द्वारा देवताओं को कुपित करने वाले जो पाप हो जाते हैं, उनका दोष आप उन पर डालें, जो यज्ञरहित-अदानशील तथा हमारा अनिष्ट करने वाले हैं ॥१२ ॥

[सूक्त - ३८]

[ऋषि - इन्द्र मुष्कवान् । देवता - इन्द्र । छन्द - जगती ।]

९१९१. अस्मिन्न इन्द्र पृत्सुतौ यशस्वति शिमीवति क्रन्दसि प्राव सातये ।
यत्र गोषाता धृषितेषु खादिषु विष्वक्पतन्ति दिद्यवो नृषाह्ये ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! ऐसे संग्राम में, जो यशस्वितायुक्त हैं, जिसमें हमले पर हमले का क्रम चलता है, उसमें आप वीरोचित शौर्य से उद्घोष करते हैं तथा रिपुओं द्वारा जीती गयी गौओं को सुरक्षित करते हैं । इस युद्ध में एक तरफ तीक्ष्णधार युक्त बाण, योद्धा शत्रुओं पर गिरते हैं, इसे देखकर लोग विस्मित हो जाते हैं ॥१ ॥

९१९२. स नः क्षुमन्तं सदने व्यूर्णुहि गोअर्णसं रयिमिन्द्र श्रवाय्यम् ।
स्याम ते जयतः शक्र मेदिनो यथा वयमुश्मसि तद्वसो कृधि ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्रचुर धन-धान्य और गोधन से हमारे घरों को परिपूर्ण करें । हे सबके आश्रयभूत इन्द्रदेव ! आपके विजयी होने पर हम आपके कृपापात्र बनें, जिस ऐश्वर्य की हम कामना करते हैं, वह हमें उपलब्ध हो ॥२ ॥

९१९३. यो नो दास आर्यो वा पुरुष्टुतादेव इन्द्र युधये चिकेतति ।
अस्माभिष्टे सुषहाः सन्तु शत्रवस्त्वया वयं तान्वनुयाम सङ्गमे ॥३ ॥

हे असंख्यों के स्तुतियोग्य इन्द्रदेव ! जो दासजाति, आर्यजाति या जो कोई भी देवविरोधी असुर हमारे साथ संग्राम के आकांक्षी हैं, वे शत्रु आपकी अनुकम्पा से पराभूत हों । हम आपके सहयोग से उन्हें पराजित करें ॥३ ॥

९१९४. यो दभ्रेभिर्हव्यो यश्च भूरिभिर्यो अभीके वरिवोविन्नृषाह्ये ।
तं विखादे सस्निमद्य श्रुतं नरमर्वाञ्चमिन्द्रमवसे करामहे ॥४ ॥

जिनकी अर्चना अल्पसंख्यक तथा बहुसंख्यक सभी मनुष्य करते हैं, जो भयंकर संग्राम में विजयी बनकर श्रेष्ठधनों को प्राप्त करते हैं । उन पवित्रतायुक्त और सुप्रसिद्ध नायक इन्द्रदेव को हम अपने संरक्षण के लिए आवाहित करते हैं ॥४ ॥

९१९५. स्ववृजं हि त्वामहमिन्द्र शुश्रवानानुदं वृषभ रध्रचोदनम् ।
प्र मुञ्चस्व परि कुत्सादिहा गहि किमु त्वावान्मुष्कयोर्बद्ध आसते ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अपने साधकों को प्रोत्साहित करते हैं । हमें किसके द्वारा प्रोत्साहन प्राप्त होगा ? यह हमें ज्ञात है कि आप अपनी सामर्थ्य से ही अपने बन्धनों को काटने में सक्षम हैं, अतएव स्वयं को तथा दूसरों को शीघ्र विमुक्त करें । कुत्स के बन्धन से आप हमें मुक्त करें तथा यहाँ उपस्थित हों । क्या आपके समान समर्थ व्यक्ति मुष्कद्वय के बन्धन में जकड़े रह सकते हैं ? ॥५ ॥

[सूक्त - ३९]

[**ऋषि** - घोषा काक्षीवती । **देवता** - अश्वनीकुमार । **छन्द** - जगती, १४ त्रिष्टुप् ।]

९१९६. यो वां परिज्मा सुवृदश्विना रथो दोषामुषासो हव्यो हविष्मता ।
शश्वत्तमासस्तमु वामिदं वयं पितुर्न नाम सुहवं हवामहे ॥१ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपका सर्वत्र विचरणशील जो श्रेष्ठ सुखद रथ है, उस रथ को आवश्यक कार्य हेतु रात-दिन यजमान लोग आदरपूर्वक आवाहित करते हैं, हम ऐसे रथ का नामोच्चारण करते हैं । जैसे पिता का नाम लेने से हृदय आनन्दित होता है, वैसे ही इस रथ के साथ आपको आवाहित करते हुए प्रसन्नता होती है ॥१ ॥

९१९७. चोदयतं सूनृताः पिन्वतं धिय उत्पुरन्धीरीरयतं तदुश्मसि ।
यशसं भागं कृणुतं नो अश्विना सोमं न चारुं मघवत्सु नस्कृतम् ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप हमें श्रेष्ठ सम्भाषण की ओर प्रेरित करें; हमारे श्रेष्ठ कर्मों को सफल बनाएँ । आप दोनों नानाविध प्रेरणाओं को प्रकट करें, हम यही आकांक्षा करते हैं । हमें कीर्तियुक्त उपयोगी ऐश्वर्य प्रदान करें । जिस प्रकार सोमरस कल्याणकारी है, वैसे ही ऐश्वर्य-सम्पन्नों में हमें सर्वश्रेष्ठ बनाएँ ॥२ ॥

९१९८. अमाजुरश्चिद्भवथो युवं भगोऽनाशोश्चिदवितारापमस्य चित् ।
अन्धस्य चिन्नासत्या कृशस्य चिद्युवामिदाहुर्भिषजा रुतस्य चित् ॥३ ॥

हे सत्यनिष्ठ अश्विनीकुमारो ! पिता के घर में जब एक असहाय नारी वार्द्धक्य को प्राप्त कर रही थी, तब आप दोनों के सहयोग से उसे अपने सौभाग्यस्वरूप वर की प्राप्ति हुई । जो चलने में असमर्थ हैं, उसके लिए आप आश्रयरूप हैं । आपको लोग नेत्रहीन, दुर्बलकाय तथा रोग से दुःखी मनुष्यों का चिकित्सक मानते हैं ॥३ ॥

९१९९. युवं च्यवानं सनयं यथा रथं पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः ।
निष्टौग्र्यमूहथुरद्भ्यस्परि विश्वेत्ता वां सवनेषु प्रवाच्या ॥४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने शरीर से जर्जर च्यवनऋषि को उसी प्रकार यौवन प्रदान किया, जिस प्रकार कोई पुराने रथ को नये ढंग से विनिर्मित करके दुबारा गतिशील होने के लिए तैयार कर देता है । आपने ही तुग्र - पुत्र भुज्यु को जल के ऊपर से सुरक्षित किया । आप दोनों के ये कार्य यज्ञादि कर्मों में विशेष वर्णनीय हैं ॥४॥

९२००. पुराणा वां वीर्या३ प्र ब्रवा जनेऽथो हासथुर्भिषजा मयोभुवा ।
ता वां नु नव्याववसे करामहेऽयं नासत्या श्रदरिर्यथा दधत् ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों के प्राचीनकाल के वीरतापूर्ण किये गये कार्यों का हम लोगों में प्रसार करते हैं । हे सत्यनिष्ठ ! आप दोनों ही अतिकुशल चिकित्सक हैं । आपके आश्रय को प्राप्त करने के लिए हम आपकी प्रार्थना करते हैं । जिससे यजमान श्रद्धा - भावना से युक्त हों, आप ऐसी कृपा करें ॥५ ॥

९२०१. इयं वामह्वे शृणुतं मे अश्विना पुत्रायेव पितरा मह्यं शिक्षतम् ।
अनापिरज्ञा असजात्यामतिः पुरा तस्या अभिशस्तेरव स्पृतम् ॥६ ॥

हे अश्विनीदेवो ! आप दोनों का, यह घोषा आवाहन करती है, उसके निवेदन पर ध्यान दें । जैसे पिता, पुत्र को मार्गदर्शन देते हैं, वैसे ही आप मुझे परामर्श दें । मेरा कोई सहायक बन्धु नहीं । मैं ज्ञान से रहित, परिवार परिजनों से रहित तथा अल्पज्ञा हूँ । मेरे दुर्गतिग्रस्त होने से पूर्व ही आप दोनों मुझे इस दुर्दशा से उबारें ॥६ ॥

९२०२. युवं रथेन विमदाय शुन्ध्युवं न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषणाम् ।
युवं हवं वध्रिमत्या अगच्छतं युवं सुषुतिं चक्रथुः पुरन्धये ॥७ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने पुरुमित्र नामक राजा की शुन्ध्युव नाम की पुत्री को रथारूढ़ करके उसके पति विमद को सौंप दिया था । आप दोनों ही वध्रिमती के आवाहन पर उसके समीप आये थे, उसके निवेदन को सुनकर तथा प्रसव-वेदना को दूर करके प्रसव में सहायक हुए थे ॥७ ॥

९२०३. युवं विप्रस्य जरणामुपेयुषः पुनः कलेरकृणुतं युवद्वयः ।
युवं वन्दनमृश्यदादुदूपथुर्युवं सद्यो विश्पलामेतवे कृथः ॥८ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने जर्जरकाया वाले ऋषि को पुनः यौवन प्रदान किया । आपने पत्नी शोक से दुःखी वन्दन नामक ऋषि को कुएँ से बाहर निकाला था । उसी प्रकार आपने लँगड़ी (अपंग) विश्पला को लोहे

की जङ्घा प्रत्यारोपित करके उसे चलने-फिरने के लिए उपयोगी बनाया ॥८ ॥

[वैदिक काल में कायाकल्प तथा कृत्रिम अङ्गों के प्रत्यारोपण की विद्या होने का प्रमाण इस मंत्र से मिलता है ।]

९२०४. **युवं ह रेभं वृषणा गुहा हितमुदैरयतं ममृवांसमश्विना ।**
युवमृबीसमुत तप्तमत्रय ओमन्वन्तं चक्रथुः सप्तवध्रये ॥९ ॥

हे अभीष्ट फलदायक अश्विनीकुमारो !जब रेभ नामक ऋषि को दुष्ट शत्रुओं ने मरणासन्न स्थिति में गुफा के बीच छिपा लिया था, तब आपने ही उन्हें कष्टमुक्त किया था । जिस समय अत्रि ऋषि सात बन्धनों से बाँधे जाकर प्रज्वलित अग्निकुण्ड में झोंक दिये गये थे, उस समय भी आप दोनों ने ही उन्हें अग्निकुण्ड से मुक्त किया था ॥९ ॥

९२०५. **युवं श्वेतं पेदवेऽश्विनाश्वं नवभिर्वाजैर्नवती च वाजिनम् ।**
चर्कृत्यं ददथुर्द्रावयत्सखं भगं न नृभ्यो हव्यं मयोभुवम् ॥१० ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने ही राजा पेदु को निन्यानवे अश्वों के साथ एक श्वेतवर्ण का उत्तम अश्व भी प्रदान किया था । ये सभी शत्रुपक्ष को पराभूत करने के लिए ही प्रदान किये थे । यह विचित्र अश्व शत्रुसेनाओं को खदेड़ देने वाला, बुलाये जाने पर शीघ्र आने वाला, योद्धाओं के लिए बहुमूल्य ऐश्वर्यप्रद था । उसके नामोच्चारण से प्रसन्नता होती थी तथा देखने से मन पुलकित हो जाता था ॥१० ॥

९२०६. **न तं राजानावदिते कुतश्चन नांहो अश्नोति दुरितं नकिर्भयम् ।**
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी पुरोरथं कृणुथः पत्न्या सह ॥११ ॥

हे अविनाशी राजास्वरूप अश्विनीकुमारो ! आप दोनों के नाम लेने से भी आनन्द की अनुभूति होती है । जिस समय आप मार्ग में गमन करते हैं, उस समय सभी ओर से आपकी प्रार्थना होती है । यदि आप दम्पती को रथ के अगले हिस्से में चढ़ाकर आश्रय दें, तो उन्हें कोई भी पाप, दुर्गति और संसार के भय स्पर्श नहीं कर सकेंगे ॥१ ॥

९२०७. **आ तेन यातं मनसो जवीयसा रथं यं वामृभवश्चक्रुरश्विना ।**
यस्य योगे दुहिता जायते दिव उभे अहनी सुदिने विवस्वतः ॥१२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपके निमित्त जो रथ ऋभुदेवों ने प्रदान किया, जिसके प्रकट होने पर तेजस्वी अन्तरिक्ष की पुत्री देवी उषा का उदय होता है और सूर्यदेव से अति मनोहर दिन तथा रात्रि जन्म लेते हैं, ऐसे मन से भी अति गतिशील रथ से आप आगमन करें ॥१२ ॥

९२०८. **ता वर्तिर्यातं जयुषा वि पर्वतमपिन्वतं शयवे धेनुमश्विना ।**
वृकस्य चिद्वर्तिकामन्तरास्याद्युवं शचीभिर्ग्रसितामुञ्चतम् ॥१३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप उस विजयी रथ से पर्वत की ओर प्रस्थान करें, शंयु की वृद्धा गाय को पुनः दुधारू बनाएँ । आपने अपनी सामर्थ्य से भेड़िये के मुँह से पति वर्तिका (चटका) को मुक्त करके उसका संरक्षण किया था ॥१३ ॥

९२०९. **एतं वां स्तोममश्विनावकर्मातक्षाम भृगवो न रथम् ।**
न्यमृक्षाम योषणां न मर्ये नित्यं न सूनुं तनयं दधानाः ॥१४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस प्रकार भृगु वंशजों द्वारा रथों का निर्माण किया जाता है, वैसे ही हम यह रथ (स्तोत्र) आपके लिए समर्पित करते हैं । जैसे दामाद को कन्या देने के समय लोग उसे वस्त्राभूषण से सुशोभित करते हैं, वैसे ही हम इन स्तोत्रों को भावना से समर्पित करते हैं । हमारे पुत्र-पौत्रादि सन्तानें सदैव सुख-सौभाग्य युक्त हों ॥१४ ॥

[सूक्त - ४०]

[**ऋषि** - घोषा काक्षीवती । **देवता** - अश्विनीकुमार । **छन्द** - जगती ।]

९२१०. रथं यान्तं कुह को ह वां नरा प्रति द्युमन्तं सुविताय भूषति ।
प्रातर्यावाणं विभ्वं विशेविशे वस्तोर्वस्तोर्वहमानं धिया शमि ॥१ ॥

हे कर्मों के द्रष्टा अश्विनीकुमारो ! आपका तेजस्वी रथ जिस समय प्रात:काल गमन करता है और प्रत्येक साधक के पास सुखोपभोग के साधन ले जाता है, उस समय अपने यज्ञ की सफलता के लिये कौन याजक उस तेजस्वी रथ का स्तुतिगान नहीं करता ? आपका वह रथ किस स्थान पर स्थित है ? ॥१ ॥

९२११. कुह स्विद्दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः ।
को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों रात्रि में किन स्थानों तथा दिन में भी किस स्थान की ओर गमन करते हैं ? कहाँ पर अपना समय व्यतीत करते हैं ? जैसे विधवा स्त्री द्वितीय वर तथा सुन्दर स्त्री अपने पति को सम्मानित करती है, उसी प्रकार यज्ञकाल में आदर सहित आपका कौन आवाहन करते हैं ? ॥२ ॥

९२१२. प्रातर्जरेथे जरणेव कापया वस्तोर्वस्तोर्यजता गच्छथो गृहम् ।
कस्य ध्वस्रा भवथः कस्य वा नरा राजपुत्रेव सवनाव गच्छथः ॥३ ॥

हे नेतृत्व क्षमता-सम्पन्न अश्विनीकुमारो ! जिस प्रकार प्रात:काल वैभवशाली राजाओं को , चारण (प्रशंसक) स्तोत्रों द्वारा जगाते हैं, वैसे ही आप दोनों के लिए प्रात: काल ही स्तोतागण स्तोत्रगान करते हैं । यज्ञ भाग को प्राप्त करने के लिए आप प्रतिदिन किस यजमान के गृह में प्रवेश करते हैं ? आप यजमान के किन दोषों का निवारण करते हैं ? आप दोनों राजपुत्रों के समान ही किस यजमान के यज्ञ में जाते हैं ? ॥३ ॥

९२१३. युवां मृगेव वारणा मृगण्यवो दोषा वस्तोर्हविषा नि ह्वयामहे ।
युवं होत्रामृतुथा जुह्वते नरेषं जनाय वहथः शुभस्पती ॥४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जैसे व्याध, हाथी और शेर की आकांक्षा करते हैं, वैसे ही हम आपको रात-दिन हविर्द्रव्यों के साथ आवाहित करते हैं । हे उत्तम नायको ! आपके निमित्त यथाकाल यजमान-साधक आहुतियाँ समर्पित करते हैं, आप दोनों मनुष्यों के लिए अन्नादि प्रदान करते हैं । आप कल्याणकारी उद्देश्यों के स्वामी हैं ॥४ ॥

९२१४. युवां ह घोषा पर्यश्विना यती राज्ञ ऊचे दुहिता पृच्छे वां नरा ।
भूतं मे अह्न उत भूतमक्तवेऽश्वावते रथिने शक्तमर्वते ॥५ ॥

हे उपदेशक अश्विनीकुमारो ! मैं कक्षीवान् की पुत्री राजकुमारी घोषा हूँ । जो चारों ओर भ्रमणशील होकर आपका ही यशोगान करती हूँ । आप दोनों के प्रति ही जिज्ञासु भावनाएँ रखती हूँ । दिन और रात आप मेरे कल्याण के निमित्त नित्य कर्मों में सहायक बनें ॥५ ॥

९२१५. युवं कवी ष्ठः पर्यश्विना रथं विशो न कुत्सो जरितुर्नशायथः ।
युवोर्ह मक्षा पर्यश्विना मध्वासा भरत निष्कृतं न योषणा ॥६ ॥

हे क्रान्तदर्शी अश्विनीकुमारो ! आप दोनों रथारूढ़ हों । कुत्स के समान ही आप स्तुतिकर्त्ता के गृह में रथ

पर विराजमान होकर जाते हैं । हे अश्विनीकुमारो ! आपके पास प्रचुर मात्रा में मधु है । नारियों की तरह मक्खियाँ भी उसे मुँह में ग्रहण करती हैं ॥६ ॥

९२१६. युवं ह भुज्युं युवमश्विना वशं युवं शिञ्जारमुशनामुपारथुः ।
युवो ररावा परि सख्यमासते युवोरहमवसा सुम्नमा चके ॥७ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! दु:खद स्थिति में समुद्र में पड़े हुए भुज्यु नामक व्यक्ति को आपने ही सुरक्षित किया था । आपने राजा वश और ऋषि अत्रि के श्रेष्ठ स्तोत्र से प्रशंसित होकर उनका उद्धार किया था । आपकी मित्रता श्रेष्ठ दानी ही प्राप्त कर सकते हैं । आपके संरक्षण में जो सुख-शान्ति मिलती है, उसकी अभिलाषा घोषा करती है ॥७ ॥

९२१७. युवं ह कृशं युवमश्विना शयुं युवं विधन्तं विधवामुरुष्यथः ।
युवं सनिभ्यः स्तनयन्तमश्विनाप व्रजमूर्णुथः सप्तास्यम् ॥८ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपने अपने सहायक कृश, ऋषि शंयु तथा विधवा नारी को संरक्षित किया था । यज्ञ सम्पादनशील के लिये आप ही बादलों को खुला करते हैं, जिससे बादल ध्वनि करते हुए जल बरसाते हैं ॥८ ॥

९२१८. जनिष्ट योषा पतयत्कनीनको वि चारुहन्वीरुधो दंसना अनु ।
आस्मै रीयन्ते निवनेव सिन्धवोऽस्मा अह्ने भवति तत्पतित्वनम् ॥९ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपकी सामर्थ्य से ही यह घोषा, नारी लक्षणों से युक्त होकर सौभाग्यवती हुई, यथेच्छित वर-श्रेष्ठ की उसे प्राप्ति हुई । आपकी कृपावृष्टि से ही श्रेष्ठ वनस्पतियाँ हरी-भरी हुई हैं । नीचे की ओर अपने प्रवाह को करके, नदियाँ प्रवहमान हैं, इन सभी को सामर्थ्य एवं आरोग्य लाभ प्राप्त हुआ है ॥९ ॥

९२१९. जीवं रुदन्ति वि मयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः ।
वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे ॥१० ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जो पुरुष अपनी पत्नी की जीवन रक्षा के लिए रोदन तक करते हैं, उन्हें यज्ञादि सत्कर्मों में नियोजित करते हैं, गर्भाधानादि संस्कार से सन्तानोत्पादन करके पितृ-यज्ञ में नियोजित करते हैं, उनकी स्त्रियाँ उन्हें सुख और सहयोग प्रदान करती हैं ॥१० ॥

९२२०. न तस्य विद्म तदु षु प्र वोचत युवा ह यद्युवत्याः क्षेति योनिषु ।
प्रियोस्त्रियस्य वृषभस्य रेतिनो गृहं गमेमाश्विना तदुश्मसि ॥११ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! मैं उस सुख से अपरिचित हूँ । आप ही उन सुखों का वर्णन करें, जो युवा पति-युवा पत्नी के साथ रहकर प्राप्त करते हैं । मेरी इच्छा है कि पत्नी से प्रेम करने वाले स्वस्थ-बलिष्ठ पति के गृह में पहुँचूँ ॥११ ॥

९२२१. आ वामगन्त्सुमतिर्वाजिनीवसू न्यश्विना हृत्सु कामा अयंसत ।
अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया अर्यम्णो दुर्यॉं अशीमहि ॥१२ ॥

हे अन्न और ऐश्वर्ययुक्त अश्विनीकुमारो ! आप हमारे प्रति कृपा दृष्टि करें, हमारी मानसिक इच्छाओं की पूर्ति में सहायक हों, आप हमारे लिए कल्याणकारी हों । हम अपने पति की प्रेमपात्र बनकर पतिगृह को सुशोभित करें ॥१२ ॥

९२२२. ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ धत्तं रयिं सहवीरं वचस्यवे ।
कृतं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथेष्ठामप दुर्मतिं हतम् ॥१३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप मेरी प्रार्थना से प्रशंसित होकर मेरे पतिगृह को ऐश्वर्य एवं सन्तानादि से परिपूर्ण करें । हे कल्याणकारी अश्विनीकुमारो ! आप हमें सुख से सेवन करने योग्य जल प्रदान करें । हमारे पतिगृह के गमनमार्ग में यदि कोई दुष्ट , विघ्न उपस्थित करे , तो उसका निवारण करें ॥१३ ॥

९२२३. क्व स्विदद्य कतमास्वश्विना विक्षु दस्रा मादयेते शुभस्पती ।
क ईं नि येमे कतमस्य जग्मतुर्विप्रस्य वा यजमानस्य वा गृहम् ॥१४ ॥

हे दर्शनीय एवं कल्याणकारी अश्विनीकुमारो ! आजकल आप कहाँ, किनके गृहों में मनोविनोद करते हुए संरक्षण प्रदान करने के गुण से स्वयं को सन्तुष्ट करते हैं ? कौन यजमान आप दोनों को बाँधकर रखने में समर्थ हैं ? किस ज्ञानवान् यजमान के गृह में आप गये हैं ? ॥१४ ॥

[सूक्त - ४१]

[**ऋषि** - सुहस्त्य घौषेय । **देवता** - अश्वनीकुमार । **छन्द** - जगती ।]

९२२४. समानमु त्यं पुरुहूतमुक्थ्यं१ रथं त्रिचक्रं सवना गनिग्मतम् ।
परिज्मानं विदथ्यं सुवृक्तिभिर्वयं व्युष्टा उषसो हवामहे ॥१ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों के पास एक ही रथ है, उस उत्तम रथ की स्तुति करते हुए अनेक लोग उसका आवाहन करते हैं । वह रथ तीन चक्रों से युक्त है, जो यज्ञ स्थलों में जाता है । वह चारों ओर विचरते हुए यज्ञों को सफल बनाता है, प्रतिदिन प्रभात वेला में हम श्रेष्ठ स्तुतियों से उसी रथ का आवाहन करते हैं ॥१ ॥

९२२५. प्रातर्युजं नासत्याधि तिष्ठथः प्रातर्यावाणं मधुवाहनं रथम् ।
विशो येन गच्छथो यज्वरीर्नरा कीरेश्चिद्यज्ञं होतृमन्तमश्विना ॥२ ॥

हे सत्यनिष्ठ एवं नायक अश्विनीकुमारो ! आप प्रभात वेला में ही मधु वहन करके ले जाने वाले अश्वों से जोते गये रथ पर विराजमान हों । उसके द्वारा यज्ञशील यजमानों के समीप जाएँ , जो आपकी प्रार्थनाएँ करते हैं, उसके होतृयुक्त यज्ञ में भी आप भाग लें ॥२ ॥

९२२६. अध्वर्युं वा मधुपाणिं सुहस्त्यमग्निधं वा धृतदक्षं दमूनसम् ।
विप्रस्य वा यत्सवनानि गच्छथोऽत आ यातं मधुपेयमश्विना ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों हाथ में मधु धारण किये हुए अध्वर्यु , सुहस्त अथवा अग्निध नामक जो जितेन्द्रिय ऋत्विज् दान भावना से प्रेरित हैं , उनके समीप पहुँचें । आप सदैव विद्वान्-ज्ञानी यजमानों के यज्ञों में गमन करते हैं । मधुपान करने के लिए आप हमारे घर में भी अवश्य पधारें ॥३ ॥

[सूक्त - ४२]

[**ऋषि** - कृष्ण आङ्गिरस । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

९२२७. अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन्भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै ।
वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम इन्द्रम् ॥१ ॥

जिस प्रकार धनुर्धारी उत्तम रीति से लक्ष्यवेधी बाणों का प्रहार करते हैं तथा पुरुष आभूषणों से सुसज्जित होते हैं, वैसे ही इन्द्रदेव के लिए श्रेष्ठ स्तुतियों का प्रयोग करें । हे ज्ञानी मनुष्यो ! प्रतिस्पर्धा करने वालों के लिये

ऐसी स्तुतियों का प्रयोग करें, जिससे वे पराजित हो जाएँ । हे स्तोताओ ! पराक्रमी इन्द्रदेव को सोमपान की ओर आप लोग आकर्षित करें ॥१ ॥

९२२८. दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम् ।
कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम् ॥२ ॥

हे स्तुतिकर्त्ता ! जिस प्रकार गौओं का दोहन करके अपना प्रयोजन पूर्ण किया जाता है, वैसे ही मित्रस्वरूप इन्द्रदेव से अपने अभीष्टफलों को उपलब्ध करें, प्रशंसा योग्य इन्द्रदेव को जाग्रत् करें । जैसे मनुष्य अन्न से भरे हुए पात्र के मुख को नीचे की ओर करके उसके अन्न को निकालते हैं, वैसे ही शूर इन्द्रदेव को अभीष्ट सिद्धि के लिए अनुकूल बनायें ॥२ ॥

९२२९. किमङ्ग त्वा मघवन्भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा शृणोमि ।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ॥३ ॥

हे वैभवशाली इन्द्रदेव ! आपको ज्ञानी लोग कामनापूरक क्यों कहते हैं ? आप हमें धन से सम्पन्न बनाएँ, हम आपको प्रोत्साहित करने वाला मानते हैं । हे इन्द्रदेव ! हमारी विवेक-बुद्धि,कार्यों को कुशलता से सम्पादित करे, आप हमें श्रेष्ठ ऐश्वर्य-सम्पदा से सौभाग्ययुक्त करें ॥३ ॥

९२३०. त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र सन्तस्थाना वि ह्वयन्ते समीके ।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! योद्धा लोग समरभूमि में जाते हुए सहयोगार्थ आपका स्मरण करते हैं । वे साधक युद्ध में वीर की सहायता करते हैं । जो वीर इन्द्र के लिए सोम प्रस्तुत नहीं करते, वे इन्द्र की मैत्रीभावना से वञ्चित रहते हैं ॥४ ॥

९२३१. धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान् ।
तस्मै शत्रून्त्सुतुकान्प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान्युवति हन्ति वृत्रम् ॥५ ॥

जो हविष्यान्नयुक्त यजमान असंख्य गौ-अश्वादि देने वाले वैभवशाली के समान ही उदार हृदय से इन्द्रदेव को तीव्र सोमरस समर्पित करते हैं, वे इन्द्रदेव का सहयोग प्राप्त करते हैं । वृत्रहननकर्त्ता इन्द्रदेव उस यजमान के सामर्थ्यवान् एवं अनेक आयुधों से युक्त सैन्यदल वाले शत्रुओं को भी शीघ्रातिशीघ्र परास्त कर देते हैं तथा विघ्नकारी असुरों का संहार करते हैं ॥५ ॥

९२३२. यस्मिन्वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे ।
आराच्चित्सन्भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् ॥६ ॥

जिन इन्द्रदेव की हम स्तोत्रों से प्रार्थना करते हैं तथा जो ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव हमें अभीष्ट ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, उनके सामने से शत्रु भयभीत होकर पलायन करें तथा शत्रुपक्ष की ऐश्वर्य-सम्पदा इन्द्रदेव को उपलब्ध हो ॥६ ॥

९२३३. आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन ।
अस्मे धेहि यवमद्गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! असंख्य साधक आपको आमन्त्रित करते हैं । जो आपका तीक्ष्ण वज्रास्त्र है, उससे आप हमारे समीपस्थ शत्रुओं को खदेड़ कर दूर करें तथा हमें अन्न-जौ एवं गवादि से युक्त सम्पदा प्रदान करें । अपने स्तुतिकर्त्ता की प्रार्थना को अन्न-रत्नप्रसविनी बनाएँ । ॥७ ॥

९२३४. प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन्तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम् ।
नाह दामानं मघवा नि यंसन्नि सुन्वते वहति भूरि वामम् ॥८ ॥

तीक्ष्ण सोमरस, मधुररस के रूप में विभिन्नधाराओं से गिरता हुआ, जिस समय इन्द्रदेव की देह में प्रविष्ट होता है, उस समय वैभव-सम्पन्न इन्द्रदेव सोमरस प्रदाता यजमान का विरोध नहीं करते, अपितु प्रचुर (पर्याप्त) मात्रा में सोमरस के प्रस्तुतकर्त्ता को (इच्छित) सम्पत्ति प्रदान करते हैं ॥८ ॥

९२३५. उत प्रहामतिदीव्या जयाति कृतं यच्छ्वघ्नी विचिनोति काले ।
यो देवकामो न धना रुणद्धि समित्तं राया सृजति स्वधावान् ॥९ ॥

जैसे पराजित जुआरी, विजयी जुआरी को खोजकर अपनी पिछली पराजय का बदला, उसे पराजित करके लेता है, वैसे इन्द्र भी अनिष्टकारी शत्रु के ऊपर पराक्रमी हमला करके उसे पराजित करते हैं । जो साधक देवपूजन (यज्ञादि) में आर्थिक कंजूसी नहीं दिखाते, ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव उस साधक को धन-सम्पदा से सम्पन्न बनाते हैं ॥९ ॥

९२३६. गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१० ॥

हे बहुसंख्यकों द्वारा आवाहनीय इन्द्रदेव ! आपकी कृपादृष्टि से हम गोधन द्वारा दुःख-दारिद्र्यों से निवृत्त हो; जौ आदि अन्नों से क्षुधा को शान्त करें । हम शासनाध्यक्षों के साथ अग्रसर होते हुए अपनी सामर्थ्य-क्षमता से शत्रुओं की विपुल सम्पदाओं को अपने (आधिपत्य) में ले सकें ॥१० ॥

९२३७. बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११ ॥

दुष्ट-पापी शत्रुओं से बृहस्पतिदेव हमें पश्चिम से, उत्तर से तथा दक्षिण से संरक्षित करें । इन्द्रदेव पूर्वदिशा और मध्यभाग से आगमन करने वाले शत्रुओं से हमें संरक्षित करें । वे इन्द्रदेव सबके मित्र तथा हम भी उनके प्रिय सखा हैं, वे इन्द्रदेव हमारे अभीष्टों को सिद्ध करें ॥११ ॥

[सूक्त - ४३]

[ऋषि - कृष्ण आङ्गिरस । देवता - इन्द्र । छन्द - जगती, १०-११ त्रिष्टुप् ।]

९२३८. अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥१ ॥

पवित्र, आत्मशक्ति की वृद्धि करने , एक साथ रहने तथा उन्नति की कामना करने वाली हमारी स्तुतियाँ ऐश्वर्यवान् इन्द्र को वैसे ही आवृत करती हैं, जैसे स्त्रियाँ आश्रय पाने के लिए अपने पति का आलिंगन करती हैं ॥१॥

९२३९. न घा त्वद्रिगप वेति मे मनस्त्वे इत्कामं पुरुहूत शिश्रय ।
राजेव दस्म नि षदोऽधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमेऽवपानमस्तु ते ॥२ ॥

हे असंख्यों द्वारा स्तुतियोग्य इन्द्रदेव ! आपको त्यागकर हमारा मन दूसरी ओर नहीं जाता । आप में ही हम अपनी आकांक्षाओं को केन्द्रित करते हैं । जैसे राजा राजसिंहासन पर विराजमान होते हैं, वैसे ही आप कुशा के आसन पर प्रतिष्ठित हों । इस श्रेष्ठ सोमरस से आपके , पान करने की इच्छा की पूर्ति हो ॥२ ॥

९२४०. **विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इद्रायो मघवा वस्व ईशते ।**
तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः ॥३ ॥

हमें दुर्दशायुक्त कुमति तथा अन्नाभाव से संरक्षण प्रदान करने के लिए इन्द्रदेव हमारे चारों ओर विराजमान हों । ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ही सभी सम्पदाओं और धनों के अधिपति हैं । अभीष्टवर्षक और तेजस्वी इन्द्रदेव के निर्देशन में ही गंगादि सप्त सरिताएँ उस देश को अनादि से समृद्ध करती हैं ॥३ ॥

९२४१. **वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः ।**
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद्विदत्स्व१र्मनवे ज्योतिरार्यम् ॥४ ॥

जिस प्रकार सुन्दर पत्तों का अवलम्बन पक्षी लेते हैं, उसी प्रकार पात्रों में विद्यमान हर्षदायक सोमरस इन्द्रदेव का आश्रय लेते हैं । सोमरस के प्रभाव एवं तेज से इन्द्रदेव का मुख तेजोमय होता है । इन्द्रदेव अपनी सर्वोत्तम तेजस्विता मनुष्यों को प्रदान करें ॥४ ॥

९२४२. **कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।**
न तत्ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन्नोत नूतनः ॥५ ॥

जैसे जुआरी जुए के अड्डे पर अपने विजेता को खोजकर पराजित करता है, वैसे ही वैभवशाली इन्द्र जलवृष्टि अवरोधक सूर्य को पराजित करते हैं अर्थात् इन्द्रदेव सूर्य को जल बरसाने के लिए प्रेरित करते हैं । हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! कोई भी पुरातन या नवीन (नूतन) मनुष्य आपके पराक्रम की बराबरी करने में सक्षम नहीं है ॥५ ॥

९२४३. **विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद्वृषा ।**
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ॥६ ॥

अभीष्टदाता इन्द्रदेव सभी मनुष्यों में स्थित हैं । वे स्तोताओं की स्तुतियों को ध्यानपूर्वक सुनते हैं । इन्द्रदेव जिस यजमान के सोमयाग में हर्षित होते हैं, वे यजमान तीक्ष्ण सोमरस द्वारा युद्धाभिलाषी रिपुओं को पराभूत करने में सक्षम होते हैं ॥६ ॥

९२४४. **आपो न सिन्धुमभि यत्समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुल्याइव ह्रदम् ।**
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥७ ॥

जिस प्रकार नदियाँ सागर की ओर स्वाभाविक रूप में प्रवाहित होती हैं तथा छोटे-छोटे नाले सरोवर की ओर बहते हैं, वैसे ही सोमरस भी सहज क्रम से इन्द्रदेव को प्राप्त होता है । जैसे दिव्य वृष्टि करने वाले पर्जन्य जौ की कृषि को संवर्द्धित करते हैं, वैसे ही इन्द्रदेव की महिमा को यज्ञस्थल में ज्ञानी लोग बढ़ाते हैं ॥७ ॥

९२४५. **वृषा न क्रुद्धः पतयद्रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः ।**
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥८ ॥

जिस प्रकार क्रोधित बैल दूसरे बैल की ओर दौड़ते हैं, उसी प्रकार इन्द्रदेव क्रोधित होकर मेघ की ओर दौड़ते हैं, उन्हें तोड़कर अपने आश्रित वृष्टि से युक्त जल को हमारे लिए विमुक्त करते हैं । वे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव सोम अभिषवण कर्त्ता, दानी और हविष्यान्न समर्पित करने वाले यजमानों को तेजस्विता प्रदान करते हैं ॥८ ॥

९२४६. **उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।**
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्व१र्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ॥९ ॥

इन्द्रदेव का वज्रास्त्र तेजस्विता के साथ प्रकट हो, पुरातनकाल के समान ही यज्ञ में स्तोत्रवाणी का प्रादुर्भाव हो । स्वयं देदीप्यमान इन्द्रदेव तेजस्विता से शोभायुक्त और पवित्र हों । सज्जनों के पालक इन्द्रदेव सूर्य के समान ही शुभ्रज्योति से प्रकाशमान हों ॥९ ॥

९२४७. गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१० ॥

हे अनेकों द्वारा आवाहनीय इन्द्रदेव ! आपकी कृपा दृष्टि से हम गोधन द्वारा दुःख-दारिद्र्यों से निवृत्त हों । जौ आदि अन्नों से हम क्षुधा की आपूर्ति करें । शासनाध्यक्षों (सत्ताधीशों) के कृपापात्र बनकर अपनी सामर्थ्य से शत्रुओं की विपुल सम्पदाओं को हम अपने आधिपत्य में ले सकें ॥१० ॥

९२४८. बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११ ॥

दुष्कर्मी पापियों से बृहस्पतिदेव हमें पश्चिम से, उत्तर से तथा दक्षिण से संरक्षित करें । इन्द्रदेव पूर्व दिशा और मध्य भाग से आने वाले शत्रुओं से हमें बचायें । वे इन्द्रदेव सबके सखा हैं । हम भी उनके प्रति मित्रभावना को सुदृढ़ करें । वे इन्द्रदेव हमारे अभीष्टों को पूर्ण करें ॥११ ॥

[सूक्त - ४४]

[**ऋषि** - कृष्ण आङ्गिरस । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - जगती १-३, १०-११ त्रिष्टुप् ।]

९२४९. आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान् ।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥१ ॥

जो इन्द्रदेव शारीरिक दृष्टि से स्थूल हैं और जो अपनी विशाल तथा पराक्रमी सामर्थ्य से सम्पूर्ण शक्तिशाली पदार्थों को शक्तिहीन कर देते हैं, वे ऐश्वर्य-सम्पन्न इन्द्रदेव रथारूढ़ होकर, यहाँ आकर हर्ष को प्राप्त करें ॥१ ॥

९२५०. सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि ॥२ ॥

हे मनुष्यों के पालक इन्द्रदेव ! आपका रथ उत्तम रीति से विनिर्मित है, आपके रथ के दोनों अश्व भली प्रकार से नियंत्रित हैं और आप हाथ में वज्रास्त्र को धारण किये हुए हैं । हे अधिपति इन्द्रदेव ! ऐसे सुशोभित आप श्रेष्ठ मार्ग से शीघ्रतापूर्वक हमारे समीप आएँ । आपके सेवनार्थ सोमरस प्रस्तुत है, जिसे पिलाकर हम आपकी सामर्थ्य को संवर्द्धित करेंगे ॥२ ॥

९२५१. एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रमुग्रासस्तविषास एनम् ।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ॥३ ॥

मनुष्यों के पालक, हाथ में वज्रधारण कर्ता, शत्रु सैन्यबल को क्षीण करने वाले, अभीष्टवर्षक तथा सत्यनिष्ठ वीर इन्द्रदेव के रथ के वाहक उग्र, बलिष्ठ तथा अति उत्साहित अश्व हमारे समीप लेकर आएँ ॥३ ॥

९२५२. एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्जः स्कम्भं धरुण आ वृषायसे ।
ओजः कृष्व सं गृभाय त्वे अप्यसो यथा केनिपानामिनो वृधे ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस सोमरस द्वारा शरीर परिपुष्ट होता है, जो कलश में मिश्रित होकर बल को संचारित करने वाला है, ऐसे सोमरस को आप अपने अन्दर समाहित करें तथा हमारी सामर्थ्य-शक्ति में वृद्धि करें । आप हमें अपना आत्मीयजन बना लें, क्योंकि आप ज्ञानशीलों की धन-सम्पदा को समृद्ध करने वाले हैं ॥४ ॥

९२५३. **गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।**
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम स्तोताओं को आप विपुल सम्पदा प्रदान करें, सोम से युक्त हमारे यज्ञ में शुभाशीर्वाद देते हुए आएँ, क्योंकि आप ही सबके स्वामी हैं । आप हमारे यज्ञ में कुशा के आसन पर विराजमान हों । आपके सेवनार्थ सज्जित सोमपात्र को कोई बलपूर्वक छीन सके, ऐसी सामर्थ्य किसी में नहीं है ॥५ ॥

९२५४. **पृथक् प्रायन्प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा ।**
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! जो श्रेष्ठ लोग पुरातनकाल से ही देवताओं को आमन्त्रित करते रहे हैं, उन्होंने कीर्तिजनक तथा दुष्कर कार्यों को सम्पन्न करते हुए भिन्न-भिन्न देवलोकों को प्राप्त किया; परन्तु जो यज्ञ-उपासना रूपी नौका पर आरूढ़ न हो पाये, वे दुष्कृत्य रूपी पापों में फँसकर, ऋण-बोझ से दबकर दुर्गतिग्रस्त होकर पड़े रहते हैं ॥६ ॥

९२५५. **एवैवापागपरे सन्तु दूढ्योऽश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे ।**
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ॥७ ॥

इस समय जो भी दुर्बुद्धिग्रस्त , यज्ञ विरोधी लोग हैं, जिनके (जीवन रूपी) रथ में पतन मार्ग में घसीटने वाले अश्व जोते गये हैं, वे अधोगामी होते हैं -नरकगामी होते हैं । जो मनुष्य पहले से ही देवताओं के निमित्त हविष्यान्न समर्पित करने में संलग्न हैं, वे वास्तव में स्वर्गधाम को प्राप्त करते हैं, जहाँ पर प्रचुर मात्रा में आश्चर्यप्रद उपभोग्य सामग्रियाँ उपलब्ध हैं ॥७ ॥

९२५६. **गिरीँरज्रान्रेजमानाँ अधारयद् द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।**
समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति ॥८ ॥

जिस समय इन्द्रदेव सोमपान करके आनन्दित होते हैं, उस समय वे सब जगह घूमने वाले और काँपते हुए बादलों को सुस्थिर करते हैं । वे आकाश को विचलित कर देते हैं, जिससे वह गर्जना करने लगता है । जो द्युलोक और पृथ्वी आपस में सम्बद्ध हैं, उन्हें उसी स्थिति में धारण करते हुए वे उत्तम वचन उच्चारित करते हैं ॥८ ॥

९२५७. **इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः ।**
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन्बोध्याभगः ॥९ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपके इस श्रेष्ठ ढंग से बनाये गये अंकुश को हम धारण करते हैं । अंकुश रूपी स्तोत्रवाणी से हाथियों (दुष्टजनों) को दण्डित करते हुए , आप उन्हें अपने नियन्त्रण में रखते हैं । आप हमारे इस सोमयाग में पधारकर अपने स्थान पर प्रतिष्ठित हों । हे इन्द्रदेव ! आप श्रेष्ठरीति से सम्पन्न किये गये सोमयज्ञ में हमारी प्रार्थनाओं पर ध्यान दें ॥९ ॥

९२५८. **गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।**
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१० ॥

हे अनेकों के द्वारा आवाहनीय इन्द्रदेव ! आपकी कृपा दृष्टि से हम गोधन के द्वारा दु:ख-दारिद्र्यों से निवृत्त हों तथा जौ आदि अन्नों से क्षुधा की पूर्ति करें । शासनाध्यक्षों के स्नेहपात्र बनकर अपनी क्षमता से शत्रुओं की विपुल सम्पदाओं को हम अपने आधिपत्य में ले सकें ॥१० ॥

९२५९. बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११ ॥

दुष्कर्मी पापियों से बृहस्पतिदेव हमें पश्चिम से, उत्तर से तथा दक्षिण से संरक्षित करें । इन्द्रदेव पूर्वदिशा और मध्य भाग से प्रहारक शत्रुओं से हमें बचाएँ । इन्द्रदेव हमारे सखा हैं । हम भी उनके मित्र हैं । वे हमारे अभीष्ट की पूर्ति में सहायक हों ॥११ ॥

[सूक्त - ४५]

[**ऋषि** - वत्सप्रि भालन्दन । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

९२६०. दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः ।
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमिन्धान एनं जरते स्वाधीः ॥१ ॥

सबसे पहले अग्निदेव आकाश मण्डल में विद्युत्‌रूप में प्रादुर्भूत हुए । उनका द्वितीय जन्म 'जातवेदा' (ज्ञानी) नाम से हमारे बीच पार्थिव रूप में प्रकट हुआ । तृतीय बड़वानल के रूप में समुद्री जल में वे उत्पन्न हुए । मनुष्यों के लिए कल्याणकारी अग्निदेव निरंतर प्रदीप्त रहते हैं । ध्यानपटु लोग उन्हीं अग्निदेव की प्रार्थना करते हैं ॥१ ॥

९२६१. विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा ।
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सं यत आजगन्थ ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! हम आपके (उपर्युक्त) तीन प्रकार के स्वरूपों को जानते हैं । अनेक स्थानों में आपकी जो स्थिति है, उससे भी हम परिचित हैं । आपके जो अतिगूढ़ परमश्रेष्ठ नाम हैं, उनसे भी हम परिचित हैं । आपका जो उत्पादन-स्थल है, उस कारणभूत स्थान से भी हम परिचित हैं ॥२ ॥

९२६२. समुद्रे त्वा नृमणा अप्स्व१न्तर्नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊधन् ।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवांसमपामुपस्थे महिषा अवर्धन् ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! मनुष्यों के कल्याणकारी वरुणदेव ने आपको समुद्री जल के भीतर प्रज्वलित किया है । मनुष्यों के निरीक्षक सूर्यदेव आपको दिव्य स्थान (आकाश या यज्ञ) में प्रज्वलित करते हैं । आप अपने तृतीय स्थान मेघमण्डल में वृष्टि उत्पादक विद्युत् अग्नि के रूप में स्थित हैं । प्रधान देवगण स्तुतियों से आपके तेज को संवर्द्धित करते हैं ॥३ ॥

९२६३. अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप आकाश में मेघों के मध्य विद्युत् के रूप में चमकते एवं गर्जना करते हुए पृथ्वी को गुंजायमान करते हैं । प्राण-पर्जन्य के रूप में वृक्ष-वनस्पतियों को अंकुरित करते हैं । आप शीघ्र उत्पन्न और प्रज्वलित होकर सभी को प्रकाशित करते हैं । पृथ्वी और द्युलोक के मध्य विद्युत् के रूप में सुशोभित होने वाले आप सभी के लिए स्तुत्य हैं ॥४ ॥

९२६४. श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः ।

वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा वि भात्यग्र उषसामिधानः ॥५ ॥

उदार सम्पत्तिवान्, ऐश्वर्य धारणकर्त्ता, मनीषियों के प्रेरक, सोम के संरक्षक, धन प्रदायक, बल के पुत्र, जल के स्वामी अग्निदेव उषाओं के अग्रभाग में प्रज्वलित होकर शोभायमान होते हैं । ॥५ ॥

९२६५. विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ।

वीळुं चिदद्रिमभिनत्परायञ्जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥६ ॥

सम्पूर्ण विश्व के प्रकाशक, जल के भीतर से उत्पन्न अग्निदेव प्रकट होते ही द्युलोक और भूलोक को संव्याप्त करते हैं । जिस समय पाँचों वर्णों के मनुष्य अग्निदेव की (यज्ञ द्वारा) अर्चना करते हैं, उस समय वे भली प्रकार सुदृढ़ पर्वत के समान बादलों का भेदन करके जल वृष्टि करते हैं ॥६ ॥,

[सभी वर्णों द्वारा यज्ञ करने की पुष्टि इस मन्त्र से होती है ।]

९२६६. उशिक्पावको अरतिः सुमेधा मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि ।

इयर्ति धूममरुषं भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ॥७ ॥

देखने में ज्योतिष्मान् अग्निदेव की दीप्ति महान् है । वे अदम्य प्राण युक्त प्रकाश के साथ शोभायमान होते हैं । वे अन्न एवं वनस्पतियाँ पाकर अमर होते हैं । अग्नि के जन्मदाता द्युलोक की उत्पादक-शक्ति कितनी मनोरम है ? ॥७ ॥

९२६७. दृशानो रुक्म उर्विया व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः ।

अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौर्जनयत्सुरेताः ॥८ ॥

जिस प्रकार समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने वाले, तेजस्वी सूर्यदेव इस लोक में सहज दर्शनीय हैं तथा विभिन्न प्रकार से धन, ऐश्वर्य को बढ़ाते हुए शोभायमान होते हैं, उसी प्रकार ये अग्निदेव श्रेष्ठ, शक्ति-सम्पन्न, अमृत स्वरूप, दु:खनाशक तथा आयुष्य के संवर्द्धक हैं । देवताओं द्वारा इन्हें प्रकट किया गया है ॥८ ॥

९२६८. यस्ते अद्य कृणवद्भद्रशोचेऽपूपं देव घृतवन्तमग्ने ।

प्र तं नय प्रतरं वस्यो अच्छाभि सुम्नं देवभक्तं यविष्ठ ॥९ ॥

हे मंगलमय ज्योतिस्स्वरूप, (तरुण रूप) अग्निदेव ! जो यजमान आपके निमित्त घृतयुक्त पुरोडाश समर्पित करते हैं, ऐसे श्रेष्ठ याज्ञिक को आप श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करें । देवों के उपासक तथा हविष्य समर्पित करने वाले उस साधक को सभी प्रकार के सुख-सौभाग्य की ओर ले चलें ॥९ ॥

९२६९. आ तं भज सौश्रवसेष्वग्न उक्थउक्थ आ भज शस्यमाने ।

प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवात्युज्जातेन भिनददुज्जनित्वैः ॥१० ॥

हे अग्ने ! जब श्रेष्ठ अन्न द्वारा शास्त्रोक्त क्रियाकलाप सम्पादित होते हैं, उसी समय आप उस यजमान को श्रेष्ठ अभीष्टफल प्रदान करते हैं । स्तुति योग्य आप प्रत्येक उक्थ (स्तोत्र) में उन्हें अभीष्टफल प्रदान करें । वे यजमान स्तुतिकर्त्ता सूर्य तथा अग्निदेव के प्रीतिपात्र हों । पुत्र-पौत्रादि सन्तानों के साथ वे शत्रुओं का संहार करें ॥१० ॥

९२७०. त्वामग्ने यजमाना अनु द्यून्विश्वा वसु दधिरे वार्याणि ।

त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! आपके साधक नित्य ही सभी प्रकार की श्रेष्ठतम पूजन-सामग्रियाँ आपके निमित्त समर्पित करते हैं । आपके साथ गोधन की आकांक्षा से प्रेरित देवस्वरूप ज्ञानियों ने गौओं से परिपूर्ण गोशाला का द्वार आपके लिए खोल दिया है॥११ ॥

९२७१. अस्ताव्यग्निर्नरां सुशेवो वैश्वानर ऋषिभिः सोमगोपाः ।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥१२ ॥

मनुष्यों में जिन अग्निदेव की सुन्दर आभा (ज्योति) स्थित है और जो सोम-संरक्षक हैं; उन्हीं अग्निदेव की ऋषियों द्वारा स्तुति की जाती है । विद्वेष भावना से रहित द्यावा-पृथिवी का हम आवाहन करते हैं । हे देवगण ! हमें श्रेष्ठ वीर सन्तानों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१२ ॥

[सूक्त - ४६]

[**ऋषि** - वत्सप्रि भालन्दन । देवता - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

९२७२. प्र होता जातो महान्नभोविन्नृषद्वा सीददपामुपस्थे ।
दधिर्यो धायि स ते वयांसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः ॥१ ॥

जो समस्त मनुष्यों तथा मेघों के बीच विद्युत् के रूप में रहता है, वही यज्ञाग्नि के स्वरूप में प्रतिष्ठित है । वे (यज्ञकुण्ड में) भली प्रकार प्रतिष्ठित अग्निदेव उपासकों को अन्न-धन देने वाले एवं शरीर के संरक्षक सिद्ध हों ॥१ ॥

९२७३. इमं विधन्तो अपां सधस्थे पशुं न नष्टं पदैरनु ग्मन् ।
गुहा चतन्तमुशिजो नमोभिरिच्छन्तो धीरा भृगवोऽविन्दन् ॥२ ॥

जिस प्रकार चुराए हुए पशुओं को उनके पदचिह्नों के आधार पर खोज लिया जाता है, उसी प्रकार अप् तत्त्व (अथवा जल) के बीच गुह्य रूप में स्थित अग्नि को अनुसंधानरत, तपस्वी तथा ज्ञानवान् भृगुवंशियों ने स्तोत्रों से उपलब्ध किया ॥२ ॥

९२७४. इमं त्रितो भूर्यविन्ददिच्छन्वैभूवसो मूर्धन्यघ्न्यायाः ।
स शेवृधो जात आ हर्म्येषु नाभिर्युवा भवति रोचनस्य ॥३ ॥

महान् अग्निदेव के अभिलाषी विभूवसु के पुत्र त्रितऋषि ने उन्हें भूमि में उपलब्ध किया । सुखों को देने वाले अग्निदेव यजमानों के द्वारा यज्ञस्थल में प्रकट हुए । वे देव प्रकाशवान् पदार्थों (स्वर्गलोक) के नाभि रूप हैं ॥३ ॥

९२७५. मन्द्रं होतारमुशिजो नमोभिः प्राञ्चं यज्ञं नेतारमध्वराणाम् ।
विशामकृण्वन्नरतिं पावकं हव्यवाहं दधतो मानुषेषु ॥४ ॥

आनन्दरूप, सभी के सुखदायक, अतिस्तुत्य, यजनीय, यज्ञ के प्रतिरूप, तीव्रगतिशील, पवित्रकर्त्ता, हविर्वाहक तथा मनुष्यों के श्रेष्ठ अधिपति जैसे गुणों से सुशोभित अग्निदेव को अभिलाषी ऋत्विग्गणों ने प्रार्थनाओं द्वारा हर्षित किया ॥४ ॥

९२७६. प्र भूर्जयन्तं महां विपोधां मूरा अमूरं पुरां दर्माणम् ।
नयन्तो गर्भं वनां धियं धुर्हिरिश्मश्रुं नार्वाणं धनर्चम् ॥५ ॥

हे स्तोताओ ! शत्रुओं के विजेता महिमायुक्त तथा ज्ञानियों के धारणकर्त्ता अग्निदेव की स्तुति करने योग्य

बनो । सभी ज्ञानी मनुष्य शत्रु नगरों के विनाशक, अरणिगर्भ रूप (अन्तर्भूत) , प्रशंसनीय हरितकेश युक्त, तेजस्वी ज्वालायुक्त तथा स्तुतिप्रेमी अग्निदेव को हविष्यान्न समर्पित करके अपने अभीष्ट फलों को उपलब्ध करते हैं ॥५ ॥

९२७७. नि पस्त्यासु त्रितः स्तभूयन्परिवीतो योनौ सीददन्तः ।
अतः सङ्गृभ्या विशां दमूना विधर्मणायन्त्रैरीयते नॄन् ॥६ ॥

गार्हपत्यादि तीन रूप वाले, यजमान के घरों को सुस्थिर करने वाले अग्निदेव लपटों से संव्याप्त होकर यज्ञस्थल में अपनी वेदिका पर प्रतिष्ठित होते हैं । अग्निदेव , प्रजाजनों द्वारा दी गई आहुतियाँ लेकर, यजमानों के निमित्त दानदाता बनकर तथा प्रजाजनों के लिए ही शत्रुओं को विनष्ट करते हुए , देवों के समीप जाते हैं ॥६ ॥

९२७८. अस्याजरासो दमामरित्रा अर्चद्धूमासो अग्नयः पावकाः ।
श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवो वनर्षदो वायवो न सोमाः ॥७ ॥

यजमान-साधक अनेक अग्नियों से युक्त हैं । वे अग्निदेव जरारहित, शत्रुओं के दमनकर्त्ता, वन्दनीय, धूम्ररूपी ज्वालाओं से युक्त, पावनस्वरूप, उज्ज्वल वर्ण, शीघ्र सहायक, भरण-पोषणकर्त्ता, वन में आश्रित, वायु के समान उत्साहप्रद तथा सोम के समान फलदायी हैं ॥७ ॥

९२७९. प्र जिह्वया भरते वेपो अग्निः प्र वयुनानि चेतसा पृथिव्याः ।
तमायवः शुचयन्तं पावकं मन्द्रं होतारं दधिरे यजिष्ठम् ॥८ ॥

जो अग्निदेव ज्वालारूपी जिह्वा से अपने सुकर्मों का निर्वाह करते हैं और जो प्रकृति के संरक्षण के लिए अनुकूलता- पूर्वक स्तोत्रों को धारण करते हैं, प्रगतिशील मनुष्य उन्हीं तेजस्वी, परमशोधक, स्तवनीय, होता तथा यजनीय अग्निदेव को प्रतिष्ठित करते हैं ॥८ ॥

९२८०. द्यावा यमग्निं पृथिवी जनिष्टामापस्त्वष्टा भृगवो यं सहोभिः ।
ईळेन्यं प्रथमं मातरिश्वा देवास्ततक्षुर्मनवे यजत्रम् ॥९ ॥

ये वही अग्निदेव हैं , जिन्हें द्यावा-पृथिवी ने प्रादुर्भूत किया, भृगुवंशियों ने जिन्हें स्तोत्र इत्यादि साधनों से उपलब्ध किया तथा त्वष्टादेव ने अप् में से जिन्हें उत्पन्न किया, मातरिश्वा वायु ने जिन्हें प्रमुख स्तुतियोग्य तथा अन्य सम्पूर्ण देवों ने मनुष्यों के यज्ञार्थ विनिर्मित किया है ॥९ ॥

९२८१. यं त्वा देवा दधिरे हव्यवाहं पुरुस्पृहो मानुषासो यजत्रम् ।
स यामन्नग्ने स्तुवते वयो धाः प्र देवयन्यशसः सं हि पूर्वीः ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! आप हव्यवाहक हैं, देवताओं ने आपको धारण किया हुआ है । अभिलाषा युक्त मनुष्यों ने यज्ञीय कार्यों के लिए आपको स्वीकार किया है । हे अग्निदेव ! आप यज्ञ में हम स्तोताओं के लिए अन्नादि प्रदान करें । देवाराधक यजमान आपकी कृपा से यशस्वी बनते हैं ॥१० ॥

[सूक्त - ४७]

[**ऋषि** - सप्तगु आङ्गिरस । **देवता** - इन्द्र वैकुण्ठ । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

९२८२. जगृभ्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम् ।
विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥१ ॥

हे सम्पत्तिवान् - शूरवीर, वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! ऐश्वर्य की कामना से हम आपके दाएँ हाथ का आश्रय लेते हैं। आप गौ (गौओं-इन्द्रियों अथवा किरणों) के स्वामी हैं। आप हमें चित्र-विचित्र कामनाओं को पूर्ण करने वाला धन-वैभव प्रदान करें ॥१ ॥

९२८३. स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतुः समुद्रं धरुणं रयीणाम्।
चर्कृत्यं शंस्यं भूरिवारमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥२ ॥

सुन्दर वज्रादि अस्त्रों से युक्त, श्रेष्ठ, संरक्षक, सुन्दर नेत्रों वाले, चारों समुद्रों को जल से परिपूर्ण करने वाले, धन-धारण कर्ता, बारम्बार धनों के सम्पादनशील, स्तुत्य तथा दुःख-क्लेशों के निवारणकर्त्ता हे इन्द्रदेव ! आप हमें सुखदायक तथा विलक्षण ऐश्वर्य प्रदान करें ॥२ ॥

९२८४. सुब्रह्माणं देववन्तं बृहन्तमुरुं गभीरं पृथुबुध्नमिन्द्र।
श्रुतऋषिमुग्रमभिमातिषाहमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपको हम स्तवनीय, देवाराधक, महान्, अति गम्भीर, सुविस्तृत, अतिज्ञानवान्, तेजस्वी और शत्रु- संहारक मानते हैं। आप हमें श्रेष्ठ और बलशाली सन्तानादि ऐश्वर्य प्रदान करें ॥३ ॥

९२८५. सनद्वाजं विप्रवीरं तरुत्रं धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम्।
दस्युहनं पूर्भिदमिन्द्र सत्यमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम अन्न-सम्पन्न, सर्वोत्तमज्ञानी, तारणकर्त्ता, ऐश्वर्यपूरक, उत्कर्षशाली, श्रेष्ठ, शक्तिमान् शत्रु-संहारक, शत्रुनगरियों के विध्वंसक तथा सत्यकर्मनिष्ठ आपको स्वीकार करते हैं। आप हमें विलक्षण एवं कामनापूरक सन्तान सहित सम्पदा प्रदान करें ॥४ ॥

९२८६. अश्वावन्तं रथिनं वीरवन्तं सहस्रिणं शतिनं वाजमिन्द्र।
भद्रव्रातं विप्रवीरं स्वर्षामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपको अश्व सम्पन्न रथ एवं शूरवीर योद्धाओं से युक्त, सैकड़ों-हजारों गौओं अथवा सहायकों से युक्त, अन्नादियुक्त, हितैषी सेवकों से युक्त अतिश्रेष्ठ वीर तथा सर्वसुखदायक रूप में स्वीकार करते हैं। आप हमें अभीष्टपूरक एवं शक्तिशाली सन्ततियुक्त ऐश्वर्य प्रदान करें ॥५ ॥

९२८७. प्र सप्तगुमृतधीतिं सुमेधां बृहस्पतिं मतिरच्छा जिगाति।
य आङ्गिरसो नमसोपसद्योऽस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥६ ॥

सत्यकर्म निष्ठ, श्रेष्ठ, मेधावी, मंत्र विद्या के विशेषज्ञ (स्वामी) अंगिरावंशज मुझ सप्तगु को श्रेष्ठ सद्ज्ञान-सम्पन्न सुमति उपलब्ध हो। मैं नमन करते हुए देवों के अनुग्रह को प्राप्त करने के लिए उनके समीप जाता हूँ। आप हमारे लिए अद्भुत और अभीष्टपूरक सन्तानसहित ऐश्वर्य प्रदान करें ॥६ ॥

९२८८. वनीवानो मम दूतास इन्द्रं स्तोमाश्चरन्ति सुमतीरियानाः।
हृदिस्पृशो मनसा वच्यमाना अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥७ ॥

सुन्दर, स्नेह भावनाओं से ओतप्रोत, सद्बुद्धि की अभिलाषा से प्रेरित होकर हमारी प्रार्थनाएँ दूतरूप में इन्द्रदेव के समीप जाएँ। ये प्रार्थनाएँ अन्तःस्पर्शी हैं, मनोयोगपूर्वक रचित हैं। आप हमें सुखदायक एवं आश्चर्ययुक्त ऐश्वर्य प्रदान करें ॥७ ॥

९२८९. यत्त्वा यामि दद्धि तन्न इन्द्र बृहन्तं क्षयमसमं जनानाम्।
अभि तद् द्यावापृथिवी गृणीतामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारी अभीष्ट कामनाओं की पूर्ति करें । हमें निवास योग्य ऐसा विशाल गृह भी प्रदान करें , जो अद्वितीय हो, द्युलोक-पृथिवी लोक भी इस बात का अनुमोदन करें । आप हमें आश्चर्यप्रद, अभीष्टपूरक ऐश्वर्य प्रदान करें ॥८ ॥

[सूक्त - ४८]

[ऋषि - इन्द्र वैकुण्ठ । देवता - इन्द्र वैकुण्ठ । छन्द - जगती, ७, १०-११ त्रिष्टुप् ।]

९२९०. अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि शश्वतः ।
मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे वि भजामि भोजनम् ॥१ ॥

मैं इन्द्रदेव ही ऐश्वर्य का अधिपति हूँ तथा असंख्य शत्रुओं के धन पर एक साथ आधिपत्य करने में समर्थ हूँ। जैसे पिता को पुत्र बुलाता है, वैसे ही सम्पूर्ण प्राणी मेरा आवाहन करते हैं । दानी यजमान (हव्यादि दाता यजमान) को मैं अन्नादि सम्पदा प्रदान करता हूँ ॥१ ॥

९२९१. अहमिन्द्रो रोधो वक्षो अथर्वणस्त्रिताय गा अजनयमहेरधि ।
अहं दस्युभ्यः परि नृम्णमा ददे गोत्रा शिक्षन् दधीचे मातरिश्वने ॥२ ॥

मैं (इन्द्र) ने (अथर्वण के पुत्र) आथर्वण दध्यङ् ऋषि का शीश उतारा था (क्योंकि दध्यङ् ने इन्द्र की अस्वीकृति पर भी गुप्त मधु विद्या को अश्विनीकुमारों को बताया) । सूखे कुएँ में पतित त्रित के संरक्षणार्थ बादलों से जलवृष्टि की थी । शत्रुओं की धन-सम्पदा को ग्रहण किया तथा मातरिश्वा के पुत्र दधीचि के निमित्त जल को अवरुद्ध किए हुए बादलों को तोड़कर जलवृष्टि की ॥२ ॥

९२९२. मह्यं त्वष्टा वज्रमतक्षदायसं मयि देवासोऽवृजन्नपि क्रतुम् ।
ममानीकं सूर्यस्येव दुष्टरं मामार्यन्ति कृतेन कर्त्वेन च ॥३ ॥

त्वष्टा देव ने मेरे निमित्त ही लोहे का वज्रास्त्र निर्मित किया, देव शक्तियाँ भी मेरे लिए ही यज्ञकर्म करती हैं । मेरी सैन्यशक्ति सूर्य के समान ही जीतने में दुष्कर है । वृत्र के संहार के कारण मेरे समीप सभी आगमन करते हैं ॥३ ॥

९२९३. अहमेतं गव्ययमश्व्यं पशुं पुरीषिणं सायकेना हिरण्ययम् ।
पुरू सहस्रा नि शिशामि दाशुषे यन्मा सोमास उक्थिनो अमन्दिषुः ॥४ ॥

जिस समय यजमान लोग सोमरस एवं स्तवन वाणियों से मुझ (इन्द्रदेव) को सन्तुष्ट करते हैं, उस समय मैं शत्रुओं के अश्व, गौ, हविर्द्रव्य तथा दुधारू पशुओं को आयुधों से जीतता हूँ । दानी यजमान के शत्रुओं के संहार के लिए अपने अनेक शस्त्रों को तीक्ष्ण करता हूँ ॥४ ॥

९२९४. अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽव तस्थे कदा चन ।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन ॥५ ॥

मैं इन्द्र ही सभी ऐश्वर्यों का स्वामी हूँ, मेरे ऐश्वर्यशाली प्रभुत्व को कोई प्रभावित नहीं कर सकता । मैं कभी भी मृत्यु के समक्ष पराजित नहीं होता (उनके साधक मृत्यु भय से मुक्त होते हैं) , अतएव हे सोमाभिषव कर्त्ता

यजमानो ! मनोवांछित तथा अभीष्टपूरक ऐश्वर्य की मुझसे कामना करो । हे मनुष्यो ! मेरे प्रति मित्र भावना को कभी क्षीण न होने दो ॥५ ॥

९२९५. अहमेताञ्छाश्वसतो द्वाद्वेन्द्रं ये वज्रं युधयेऽकृण्वत ।
आह्वयमानाँ अव हन्मनाहनं दृळहा वदन्ननमस्युर्नमस्विनः ॥६ ॥

जो दीर्घश्वास युक्त दो-दो शत्रुओं के युग्म मुझ शस्त्रधारी इन्द्र के समक्ष युद्ध भावना से प्रेरित होकर प्रस्तुत हुए, जिन्होंने मुकाबले के लिए मुझे ललकारा, उन पर वाणी का कठोर प्रयोग करते हुए ऐसा प्रहार किया गया, जिससे वे परलोक सिधार गए । वे ही झुके, मैं किसी के समक्ष झुकने वाला नहीं हूँ ॥६ ॥

९२९६. अभी३दमेकमेको अस्मि निष्षाळभी द्वा किमु त्रयः करन्ति ।
खले न पर्षान् प्रति हान्म भूरि किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः ॥७ ॥

मैं (इन्द्र) एक शत्रु को परास्त करने में समर्थ हूँ , दो असह्य शत्रुओं को भी परास्त करने के लिए समर्थ हूँ तथा तीन शत्रु भी मेरे मुकाबले कुछ नहीं हैं । जैसे कृषक धान मलने के समय सूखे पौधों को आसानी से मसल डालता है, वैसे ही मैं शत्रुओं को मसल डालता हूँ । मेरे विरोधी शत्रु मेरी (इन्द्र की) निन्दा कैसे कर सकते हैं ? ॥७ ॥

९२९७. अहं गुङ्गुभ्यो अतिथिग्वमिष्करमिषं न वृत्रतुरं विक्षु धारयम् ।
यत्पर्णयघ्न उत वा करञ्जहे प्राहं महे वृत्रहत्ये अशुश्रवि ॥८ ॥

मैंने गुंगुओं के देश के संरक्षणार्थ अतिथिग्व के पुत्र दिवोदास को प्रजाजनों के बीच अन्न के समान संरक्षण के लिए स्थापित किया था । मैं गुंगुओं के शत्रुओं के संहारक तथा विपत्ति- निवारणकर्त्ता हूँ । पर्णय और करञ्ज नामक शत्रुओं के विध्वंस से समर भूमि में मेरी ख्याति हुई थी ॥८ ॥

९२९८. प्र मे नमी साप्य इषे भुजे भूद्गवामेषे सख्या कृणुत द्विता ।
दिद्युं यदस्य समिथेषु मंहयमादिदेनं शंस्यमुक्थ्यं करम् ॥९ ॥

मेरे स्तोता सबके लिए आश्रयभूत, अन्नसम्पन्न और उपभोग दाता हैं । मेरे साधक स्तोताओं को लोग गोदाता और हितैषी मित्र के रूप में स्वीकार करते हैं । मैं अपने भक्त साधक की विजयश्री के लिए युद्धभूमि में आयुध धारण करता हूँ । स्तोताओं को मैं प्रसिद्धि प्रदान करता हूँ ॥९ ॥

९२९९. प्र नेमस्मिन्ददृशे सोमो अन्तर्गोपा नेममाविरस्था कृणोति ।
स तिग्मशृङ्गं वृषभं युयुत्सन् द्रुहस्तस्थौ बहुले बद्धो अन्तः ॥१० ॥

दो स्तोताओं में एक सोमयाग करते हैं, संरक्षक, पराक्रमी इन्द्रदेव ने इस स्तोता के लिए वज्र को धारण किया । तीखे तेज से युक्त सोम यज्ञ-सम्पादन कर्त्ता के साथ संघर्ष करने को प्रेरित हुए; परन्तु अँधेरे के बीच आबद्ध हो गए ॥१० ॥

९३००. आदित्यानां वसूनां रुद्रियाणां देवो देवानां न मिनामि धाम ।
ते मा भद्राय शवसे ततक्षुरपराजितमस्तृतमषाळहम् ॥११ ॥

आदित्यगण, वसु, मरुद्गण और देवताओं के स्थानों को इन्द्रदेव नष्ट नहीं करते, वे देवता हमारा मंगल करें, शक्ति-सामर्थ्य प्रदान करने की कृपा करें । उन्होंने हमें अपराजेय, साहसी तथा सुदृढ़ बनाया है ॥११ ॥

[सूक्त - ४९]

[ऋषि - इन्द्र वैकुण्ठ । देवता - इन्द्र वैकुण्ठ । छन्द - जगती, २,११ त्रिष्टुप् ।]

९३०१. अहं दां गृणते पूर्व्यं वस्वहं ब्रह्म कृणवं मह्यं वर्धनम्।
अहं भुवं यजमानस्य चोदितायज्वनः साक्षि विश्वस्मिन्भरे ॥१ ॥

मैं (इन्द्र) स्तोत्रकर्ता को सनातन वैभव और आश्रय प्रदान करता हूँ। यज्ञीय अनुष्ठान मेरे उत्कर्ष के लिए हैं। मेरे लिए हविष्यान्न समर्पित करने वाले यजमान के ऐश्वर्य को, मैं प्रेरित करता हूँ तथा यज्ञीय कर्मों से विहीन को पराभूत करता हूँ ॥१ ॥

९३०२. मां धुरिन्द्रं नाम देवता दिवश्च ग्मश्चापां च जन्तवः।
अहं हरी वृषणा विव्रता रघू अहं वज्रं शवसे धृष्ण्वा ददे ॥२ ॥

द्युलोक, भूलोक तथा अन्तरिक्ष में उत्पन्न सभी प्राणधारी एवं देवगण मुझे उपास्य मानते हैं। संग्राम में जाने के लिए मैं हरिसंज्ञक, शक्तिशाली, विविधकर्मा तथा शीघ्रगामी अश्वों को रथ के साथ नियोजित करता हूँ। पराक्रमी शत्रुओं को परास्त करने वाले वज्रास्त्र को शक्ति-साधन के रूप में धारण करता हूँ ॥२ ॥

९३०३. अहमत्कं कवये शिश्नथं हथैरहं कुत्समावमाभिरूतिभिः।
अहं शुष्णस्य श्नथिता वधर्यमं न यो रर आर्यं नाम दस्यवे ॥३ ॥

मैं (इन्द्र) ने उशना ऋषि के संरक्षणार्थ अत्क नामक शत्रु को प्रताड़ित किया। अनेक संरक्षण व्यवस्थाएँ जुटाकर मैंने कुत्स को संरक्षित किया। मैंने शत्रु शुष्ण के संहार के लिए वज्रास्त्र धारण किया। दस्युओं को मैं आर्य नहीं कहता ॥३ ॥

९३०४. अहं पितेव वेतसूँरभिष्टये तुग्रं कुत्साय स्मदिभं च रन्धयम्।
अहं भुवं यजमानस्य राजनि प्र यद्भरे तुजये न प्रियाधृषे ॥४ ॥

मैंने पिता के समान वेतसु नामक जनपद को तथा तुग्र और स्मदिभ को भी ऋषिकुत्स के नियन्त्रण में किया था। यजमान को मैं श्री-सम्पन्न करता हूँ। पिता की तरह भक्तों को शत्रुओं से रक्षित करके उनका हित करता हूँ ॥४ ॥

९३०५. अहं रन्धयं मृगयं श्रुतर्वणे यन्माजिहीत वयुना चनानुषक्।
अहं वेशं नम्रमायवेऽकरमहं सव्याय पड्गृभिमरन्धयम् ॥५ ॥

मैंने उस समय श्रुतर्वा ऋषि के लिए मृगय राक्षस को नियन्त्रण में किया था, जब वे मेरी ओर आये तथा स्तुति प्रार्थना अर्पित की। मैंने ही आयु के अधीनस्थ वेश को तथा सव्य के अधीनस्थ पड्गृभि को किया था ॥५ ॥

९३०६. अहं स यो नववास्त्वं बृहद्रथं सं वृत्रेव दासं वृत्रहारुजम्।
यद्वर्धयन्तं प्रथयन्तमानुषग्दूरे पारे रजसो रोचनाकरम् ॥६ ॥

मैंने वृत्रसंहार के समान ही नववास्त्व तथा बृहद्रथ का संहार किया। उस समय ये दोनों राक्षस उत्कर्षयुक्त और सुविख्यात थे। इन दोनों को मैंने कान्तिवान् विश्व से निष्कासित कर दिया ॥६ ॥

९३०७. अहं सूर्यस्य परि याम्याशुभिः प्रैतशेभिर्वहमान ओजसा।
यन्मा सावो मनुष आह निर्णिज ऋधक्कृषे दासं कृत्व्यं हथैः ॥७ ॥

तीव्र गमनशील अश्वों द्वारा वहन किया जाकर मैं अपनी तेजस्विता से सूर्य के चारों ओर घूमता हूँ। जिस समय सोम का अभिषवकर्त्ता यजमान मेरा आवाहन करते हैं, उस समय हिंसक रिपुओं को तेज धार युक्त अस्त्रों से विनष्ट करता हूँ ॥७ ॥

९३०८. अहं सप्तहा नहुषो नहुष्टरः प्राश्रावयं शवसा तुर्वशं यदुम्।
अहं न्य१न्यं सहसा सहस्करं नव व्राधतो नवतिं च वक्षयम् ॥८ ॥

मैं सात रिपु-नगरियों को विध्वंस करने वाला हूँ, महाबली मानकर तुर्वश और यदु को मैंने सुप्रसिद्ध किया। मैं ही अति विशाल (सर्वप्रथम) बन्धनकर्त्ता हूँ। दूसरे स्तोताओं को भी मैंने शक्तिशाली बनाया तथा शत्रु की निन्यानवे नगरियों को विध्वंस किया ॥८ ॥

९३०९. अहं सप्त स्रवतो धारयं वृषा द्रवित्न्वः पृथिव्यां सीरा अधि।
अहमर्णांसि वि तिरामि सुक्रतुर्युधा विदं मनवे गातुमिष्टये ॥९ ॥

जलवर्षक मैं (इन्द्र) प्रवाहशील सात सरिताओं का धारणकर्त्ता हूँ। पृथ्वी पर प्रवाहित तथा वेगवान् सरिताओं को मैं ही सुशोभित करता हूँ।मैं मनुष्य को अभीष्ट फल देने के लिए युद्ध करके उनका मार्ग-प्रशस्त करता हूँ ॥९ ॥

९३१०. अहं तदासु धारयं यदासु न देवश्चन त्वष्टाधारयद्रुशत्।
स्पार्हं गवामूधःसु वक्षणास्वा मधोर्मधु श्वात्र्यं सोममाशिरम् ॥१० ॥

गौओं के स्तनों में प्रशंसनीय, उज्ज्वल और मधुर दूध धारण कराने वाला मैं ही हूँ। कोई अन्य देवता या त्वष्टा देव भी इस कार्य में सक्षम नहीं हैं। वे (स्तन) नदी जल के समान ही दूध को वहन करते हैं। सोम के साथ मिश्रित किये जाने पर दूध सबके लिये उपयोगी हो जाता है ॥१० ॥

९३११. एवा देवाँ इन्द्रो विव्ये नॄन् प्र च्यौत्नेन मघवा सत्यराधाः।
विश्वेत्ता ते हरिवः शचीवोऽभि तुरासः स्वयशो गृणन्ति ॥११ ॥

इस प्रकार अपनी प्रभावक्षमता से ऐश्वर्यवान् और सत्यधनी मैं (इन्द्र) देवों और मनुष्यों को सौभाग्ययुक्त करता हूँ। हे विविध कर्मकर्त्ता और अश्व-अधिपति इन्द्रदेव ! आपके कार्य स्वनियंत्रित हैं। अति प्रोत्साहित ऋत्विग्गण आपके उन क्रियाकलापों को प्रशंसित करते हैं ॥११ ॥

[सूक्त - ५०]

[ऋषि - इन्द्र वैकुण्ठ । देवता - इन्द्र वैकुण्ठ । छन्द - जगती, ३-४ अभिसारिणी, ५ त्रिष्टुप्।]

९३१२. प्र वो महे मन्दमानायान्धसोऽर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे।
इन्द्रस्य यस्य सुमखं सहो महि श्रवो नृम्णं च रोदसी सपर्यतः ॥१ ॥

हे ऋत्विजो ! सम्पूर्ण विश्व के उत्पादक, मनुष्यों के लिए अन्नदाता, महान् आनन्द प्रदायक , उन इन्द्रदेव की अर्चना करो, जिन इन्द्रदेव को द्यावा और पृथिवी भी उत्तम यज्ञ, संघर्षशक्ति , महान् यश और धन आदि पदार्थ प्रदान करके पूजते हैं ॥१ ॥

९३१३. सो चिन्नु सख्या नर्य इनः स्तुतश्चर्कृत्य इन्द्रो मावते नरे।
विश्वासु धूर्षु वाजकृत्येषु सत्पते वृत्रे वाप्स्व१भि शूर मन्दसे ॥२ ॥

इन्द्रदेव मित्र के समान मनुष्यों के हितचिन्तक, सबके स्तुतियोग्य तथा सर्व अधिपति हैं । हमारे सदृश मनुष्यों के वही उपास्य देव हैं । हे सज्जनों के संरक्षक वीर इन्द्रदेव ! आप ही श्रेष्ठ कार्यों, पराक्रमों तथा बादलों से जल वृष्टि के लिए स्तुति करने योग्य हैं ॥२ ॥

९३१४. के ते नर इन्द्र ये त इषे ये ते सुम्नं सधन्य१मियक्षान् ।
के ते वाजायासुर्याय हिन्विरे के अप्सु स्वासूर्वरासु पौंस्ये ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपसे अन्न, धन और सुख-सम्पत्ति उपलब्ध करने के सत्पात्र कौन हैं ? वे कौन हैं, जो आपको असुरता की संहारक सामर्थ्य उपलब्ध करने के लिए सोमपान करने को प्रेरित करते हैं ? वे सत्पात्र साधक कौन हैं, जो अपनी उपजाऊ भूमि में जलवृष्टि और पराक्रमी सामर्थ्य पाने के लिए सोमरस समर्पित करते हैं ? ॥३ ॥

९३१५. भुवस्त्वमिन्द्र ब्रह्मणा महान्भुवो विश्वेषु सवनेषु यज्ञियः ।
भुवो नॄँश्च्यौत्नो विश्वस्मिन्भरे ज्येष्ठश्च मन्त्रो विश्वचर्षणे ॥४ ॥

हे इन्द्र ! आप हमारे यज्ञीय सत्कर्मों से महिमामय हुए हैं । सभी यज्ञीय कार्यों में आप ही यजनयोग्य हैं । आप संग्रामों में प्रमुख शत्रुओं के संहारक रहे हैं । हे सर्वद्रष्टा इन्द्र ! आप सर्वोत्तम और सुयोग्य परामर्शदाता हैं ॥४ ॥

९३१६. अवा नु कं ज्यायान् यज्ञवनसो महीं त ओमात्रां कृष्टयो विदुः ।
असो नु कमजरो वर्धाश्च विश्वेदेता सवना तूतुमा कृषे ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सर्वोत्तम होते हुए यज्ञ-सम्पादक यजमानों की शीघ्र सुरक्षा करें । सभी मनुष्य आपकी महती संरक्षण- शक्ति से परिचित हैं । आपका उत्कर्ष बढ़े तथा इस सोमयाग को आप शीघ्र सम्पन्न करें ॥५ ॥

९३१७. एता विश्वा सवना तूतुमा कृषे स्वयं सूनो सहसो यानि दधिषे ।
वराय ते पात्रं धर्मणे तना यज्ञो मन्त्रो ब्रह्मोद्यतं वचः ॥६ ॥

हे शक्तिशाली इन्द्रदेव ! आप जिन सोमयज्ञों को धारण करते हैं, उन्हें शीघ्रतापूर्वक सम्पन्न करते हैं । आपका शत्रु- संहारक संरक्षण बल हमारी सुरक्षा करे । हमारे धन का सदुपयोग धर्म - जागरण के लिए हो । ये यज्ञ और मंत्र आपके लिए ही समर्पित हों तथा श्रेष्ठ-उत्तम यह पावन वाणी आपके निमित्त ही उच्चारित हो ॥६ ॥

९३१८. ये ते विप्र ब्रह्मकृतः सुते सचा वसूनां च वसुनश्च दावने ।
प्र ते सुम्नस्य मनसा पथा भुवन्मदे सुतस्य सोम्यस्यान्धसः ॥७ ॥

हे मेधा सम्पन्न इन्द्रदेव ! जो स्तोता इकट्ठे (संघबद्ध) होकर सोम अभिषव करते हैं तथा जो विविध प्रकार के ऐश्वर्य और लाभ की कामना से दान द्वारा आपकी अर्चना करते हैं, वे अभिषुत सोम से आनन्दित होते हैं, तब वे सुख- सौभाग्य पाने के लिए आन्तरिक रूप से आपके मार्गदर्शन में ही श्रेष्ठपद प्राप्ति के अधिकारी हों ॥७ ॥

[सूक्त - ५१]

[**ऋषि** - १, ३, ५, ७, ९ देवगण २, ४, ६, ८ अग्नि सौचीक । **देवता** - २, ४, ६, ८ देवगण; १, ३, ५, ७, ९ अग्नि सौचीक । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

९३१९. महत्तदुल्बं स्थविरं तदासीद्येनाविष्टितः प्रविवेशिथापः ।
विश्वा अपश्यद्बहुधा ते अग्ने जातवेदस्तन्वो देव एकः ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आपका वह आच्छादन अति विशाल तथा स्थूल था, जिससे घिरे हुए होकर आप अप्तत्त्व (या जल) में स्थित थे । हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! आपके सभी अंगों को अनेक विधियों से एक देवता ने देखा ॥१ ॥

९३२०. को मा ददर्श कतमः स देवो यो मे तन्वो बहुधा पर्यपश्यत्।
क्वाह मित्रावरुणा क्षियन्त्यग्नेर्विश्वाः समिधो देवयानीः ॥२ ॥

(अग्निदेव का कथन) वे देव कौन थे, जिन्होंने विविध प्रकार से मेरे (अग्नि के) रहस्यमय स्वरूप को देखा था ? हे मित्र और वरुणदेवो ! अग्निदेव के वे सम्पूर्ण प्रज्वलित देवयान साधन रूप मार्ग कहाँ पर विद्यमान हैं ? इसे बताने की कृपा करें ॥२ ॥

९३२१. ऐच्छाम त्वा बहुधा जातवेदः प्रविष्टमग्ने अप्स्वोषधीषु ।
तं त्वा यमो अचिकेच्चित्रभानो दशान्तरुष्यादतिरोचमानम् ॥३ ॥

(देवों का कथन) हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! जल और ओषधि तत्त्वों में अनेक प्रकार से आप सन्निहित हैं, उनमें हम आपको खोजते हैं । हे विलक्षण कान्ति से युक्त अग्निदेव ! इस प्रकार से विद्यमान आपका यमदेव ने परिचय प्राप्त किया । दस रहस्यमय गुह्य आश्रय स्थलों में विद्यमान आप अति तेजस्वी हैं ॥३ ॥

[तीन भुवन , अग्नि, वायु , सूर्य, जल, ओषधि, वनस्पति तथा प्राणियों की देह, यह दस अग्नि के गुप्त आवास कहे गये हैं ।]

९३२२. होत्रादहं वरुण बिभ्यदायं नेदेव मा युनजन्नत्र देवाः ।
तस्य मे तन्वो बहुधा निविष्टा एतमर्थं न चिकेताहमग्निः ॥४ ॥

(अग्निदेव का कथन) हे वरुणदेव ! मैं (अग्नि) यजन कार्य से भयभीत होकर यहाँ आ गया हूँ । मुझे इस प्रकार के कार्य में देवगण उपयोग न करें, ऐसी मेरी अभिलाषा है । अतएव मैंने अपने स्वरूप को विभिन्न प्रकार से जल में छिपाया है । मैं इस कार्य का इच्छुक नहीं हूँ ॥४ ॥

९३२३. एहि मनुर्देवयुर्यज्ञकामोऽरङ्कृत्या तमसि क्षेष्यग्ने ।
सुगान्पथः कृणुहि देवयानान्वह हव्यानि सुमनस्यमानः ॥५ ॥

(देवों का कथन) हे अग्ने ! देवपूजक , मनस्वी-साधक यज्ञ को सम्पादित करने के अभिलाषी हैं । अतः आप आएँ । आप स्वयं तेजोमय होकर भी तमस् (अन्धकार) को आश्रय दिये हुए हैं । आप यहाँ आकर देवों के प्रति हविष्य पदार्थ ले जाने वाले मार्गों को हमारे लिए सरल बनाएँ ।आप हर्षित होकर हमारे हविष्य को धारण करें ॥५ ।

९३२४. अग्नेः पूर्वे भ्रातरो अर्थमेतं रथीवाध्वानमन्वावरीवुः ।
तस्माद्भिया वरुण दूरमायं गौरो न क्षेप्नोरविजे ज्यायाः ॥६ ॥

(अग्निदेव का कथन) हे देवगण ! जिस प्रकार रथी मार्ग से गमन करते हुए लक्ष्य तक पहुँचता है, वैसे ही हमारे तीन ज्येष्ठ भ्राता (भूपति, भुवनपति और भूतपति) इस यजन कार्य को करते हुए मृत्यु को प्राप्त हुए हैं । हे वरुणदेव ! इसी भय से चिन्तित होकर मैं (अग्नि) सुदूर चला आया हूँ । धनुर्धारी की प्रत्यञ्चा से जिस प्रकार हरिण भयभीत होता है, उसी प्रकार मैं भी इस यजन कार्य से भयभीत हूँ ॥६ ॥

९३२५. कुर्मस्त आयुरजरं यदग्ने यथा युक्तो जातवेदो न रिष्याः ।
अथा वहासि सुमनस्यमानो भागं देवेभ्यो हविषः सुजात ॥७ ॥

(देवों का कथन) हे अग्निदेव ! हम आपको अमरतापूर्ण (अविनाशी या जरारहित) आयुष्य प्रदान करते हैं । हे सर्वज्ञ ! आप इस आधार पर अनश्वर रहेंगे । हे सुजन्मा अग्ने ! अब आप प्रसन्नचित्त होकर देवों के पास हव्य पहुँचाएँ ॥७ ॥

९३२६. प्रयाजान्मे अनुयाजाँश्च केवलानूर्जस्वन्तं हविषो दत्त भागम् ।
घृतं चापां पुरुषं चौषधीनामग्नेश्च दीर्घमायुरस्तु देवाः ॥८ ॥

(अग्निदेव का कथन) हे देवगण ! यज्ञ के प्रयाज (प्रथम हविर्भाग) और अनुयाज (शेष हविर्भाग) तथा हवि के परिपुष्ट विपुल भाग को मुझे प्रदान करें । जल का सारतत्त्व घृत, ओषधि से उत्पादित प्रमुख भाग तथा दीर्घायु मुझे प्रदान करें ॥८ ॥

९३२७. तव प्रयाजा अनुयाजाश्च केवल ऊर्जस्वन्तो हविषः सन्तु भागाः ।
तवाग्ने यज्ञो३यमस्तु सर्वस्तुभ्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रः ॥९ ॥

(देवों का कथन) हे अग्ने ! प्रयाज, अनुयाज, विपुल तथा असाधारण हविष्य भाग आपको प्राप्त होंगे । यह यज्ञ भी आपके लिए ही समर्पित हो । चारों दिशाएँ आपके समक्ष नतमस्तक होकर आपका सम्मान करें ॥९ ॥

[सूक्त - ५२]

[ऋषि - अग्नि सौचीक । देवता - देवगण । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

९३२८. विश्वे देवाः शास्तन मा यथेह होता वृतो मनवै यन्निषद्य ।
प्र मे ब्रूत भागधेयं यथा वो येन पथा हव्यमा वो वहानि ॥१ ॥

हे देवो ! आपने हमें हविवाहक के रूप में धारण किया है, मनुष्यों के लिए देवों की प्रार्थना कर सकें , ऐसा मार्गदर्शन प्रदान करें । हमारे हिस्से कौन से हैं तथा आपके हिस्से कौन से हैं, यह हमें बताएँ । जिस मार्ग से आपके लिए यज्ञीय पदार्थ हमें लेकर जाना है, वह भी बताएँ , जिससे मैं (अग्नि) आपके कथनानुसार अनुगमन करूँ ॥१ ॥

९३२९. अहं होता न्यसीदं यजीयान् विश्वे देवा मरुतो मा जुनन्ति ।
अहरहरश्विनाध्वर्यवं वां ब्रह्मा समिद्भवति साहुतिर्वाम् ॥२ ॥

श्रेष्ठ यज्ञ-सम्पादक होता रूप में यज्ञीय कार्य हेतु मैं यहाँ स्थित हूँ , सम्पूर्ण देवता और मरुद्‌गण भी हवि वहन करने के लिए मुझे प्रेरित करते हैं । हे अश्विनीकुमारो ! आपको ऋत्विज् के कार्य प्रतिदिन वहन करने पड़ते हैं । कान्तिमान् सोम स्तोत्र स्वरूप है, वही हमारी सोम आहुति आपको समर्पित हो ॥२ ॥

९३३०. अयं यो होता किरु स यमस्य कमप्यूहे यत्समञ्जन्ति देवाः ।
अहरहर्जायते मासिमास्यथा देवा दधिरे हव्यवाहम् ॥३ ॥

यह जो होता है, उसका क्या कार्य है ? होता यजमान के जिस हविर्द्रव्य का यजन करते हैं, उसका भाग देवों को मिलता है । (सूर्यरूप से) प्रतिदिन उज्ज्वल रूप में (चन्द्रमा रूप से) प्रतिमास जो प्रकट होते हैं , उन अग्निदेव को देवताओं ने हविवाहक रूप में धारण किया है ॥३ ॥

९३३१. मां देवा दधिरे हव्यवाहमपम्लुक्तं बहु कृच्छ्रा चरन्तम् ।
अग्निर्विद्वान्यज्ञं नः कल्पयाति पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम् ॥४ ॥

मैं (अग्नि) सम्पूर्ण जगत् से लुप्त हो गया था, अनेक तरह से कठिन व्रतों का पालन करने वाले देवों ने मुझे हविवाहक के रूप में नियुक्त किया है । ज्ञानवान् अग्निदेव हमारे यज्ञ को सम्पादित करते हैं, यह यज्ञ पाँच मार्गों से गमनीय है, उसमें तीन प्रकार से सोम का अभिषवण किया जाता है तथा सात छन्दों में स्तवन किये जाते हैं ।।४।।

[यज्ञ के गमनीय मार्ग पंच महायज्ञ हैं, जो इस प्रकार हैं - १. अहुत (जपयज्ञ) २. हुत (देवयज्ञ) ३. प्रहुत (भूतयज्ञ) ४. ब्राह्म हुत (नृयज्ञ) और ५. प्राशित (तर्पण) । सोम तीन प्रकार से निष्पादित है, दिव्याकाश में नक्षत्रादि को पोषण देने वाला, अन्तरिक्ष से प्रकृति एवं जीव-जगत् को पोषण देने वाला तथा यज्ञ में सोमलताओं से निचोड़ा गया ।]

९३३२. आ वो यक्ष्यमृतत्वं सुवीरं यथा वो देवा वरिवः कराणि ।
आ बाह्वोर्वज्रमिन्द्रस्य धेयामथेमा विश्वाः पृतना जयाति ।।५ ।।

हे देवगण ! मैं (अग्नि) आपकी हविरूप से सेवा करता हूँ , अतएव आपसे अमरता तथा वीर सन्तान के लिए प्रार्थना करता हूँ । मैं ही इन्द्रदेव के दोनों हाथों में वज्रास्त्र सौंपता हूँ , इससे ही वे इन सभी शत्रुसेनाओं पर विजय प्राप्त करते हैं ।।५ ।।

९३३३. त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ।।६ ।।

तीन हजार तीन सौ उनचालीस देवशक्तियाँ अग्निदेव की ही सेवा-साधना करती हैं । अग्निदेव को घृताहुतियों से अभिषिक्त किया जाता है, उनके लिए कुशाओं के आसन बिछाए गये हैं तथा होता के रूप में उन्हें यज्ञ में प्रतिष्ठित किया गया है ।।६ ।।

[सूक्त - ५३]

[**ऋषि** - देवगण, ४-५अग्नि सौचीक । **देवता** - अग्नि सौचीक, ४-५ देवगण । **छन्द** - १- ५, ८ त्रिष्टुप्; ६-७, ९-११ जगती ।]

९३३४. यमैच्छाम मनसा सो३यमागाद्यज्ञस्य विद्वान्परुषश्चिकित्वान् ।
स नो यक्षद्देवताता यजीयान्नि हि षत्सदन्तरः पूर्वो अस्मत् ।।१ ।।

मानसिक रूप से जिन अग्निदेव की हम कामना करते हैं, वे यज्ञ के अंग - उपांगों को जानने वाले ज्ञानवान् अग्निदेव पधार रहे हैं । वे अतिपूजनीय अग्निदेव देवताओं की प्राप्ति के निमित्त किये गये हमारे यज्ञ का यजन करें और यजन योग्य देवताओं के बीच हमसे पूर्व ही वेदी पर प्रतिष्ठित हों ।।१ ।।

९३३५. अराधि होता निषदा यजीयानभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यत् ।
यजामहै यज्ञियान्हन्त देवाँ ईळामहा ईड्याँ आज्येन ।।२ ।।

यज्ञ को श्रेष्ठ रीति से सम्पादित करने वाले होता रूप अग्निदेव यज्ञस्थल में प्रतिष्ठित होकर हव्यवाहक हुए हैं, वे चरु, पुरोडाश आदि सामग्री का श्रेष्ठ रीति से निरीक्षण कर रहे हैं, जिससे यजनीय देवों को शीघ्रता से घृताहुति से संतुष्ट किया जा सके तथा स्तवनीय देवों का स्तोत्रवाणियों द्वारा स्तवन किया जा सके, यही उनकी कामना है ।। २ ।।

९३३६. साध्वीमकर्देववीतिं नो अद्य यज्ञस्य जिह्वामविदाम गुह्याम् ।
स आयुरागात्सुरभिर्वसानो भद्रामकर्देवहूतिं नो अद्य ।।३ ।।

हमारे यज्ञ में देवों के आवाहन (लाने वाला) का जो प्रमुख अंग है, उसे अग्निदेव ही सुसम्पन्न करें ।

अग्निरूप यज्ञ की गूढ़ जिह्वा (अग्नि की ज्वाला) को हम उपलब्ध कर चुके हैं। वे अग्निदेव सुगन्धित रूप तथा दीर्घायुष्य धारण करके हमारे यहाँ उपस्थित हुए हैं। देवों के आवाहन रूप यज्ञ को अग्निदेव ने पूर्ण किया ॥३ ॥

९३३७. **तदद्य वाचः प्रथमं मसीय येनासुराँ अभि देवा असाम।**
ऊर्जाद उत यज्ञियासः पञ्च जना मम होत्रं जुषध्वम् ॥४ ॥

हम आज उन सर्वश्रेष्ठ वचनों का उच्चारण करते हैं, जिनके उच्चारण से हम राक्षसों को पराभूत करने में सक्षम हों। हे अन्नभक्षक,यजनीय देव ! हे मनुष्यादि पञ्चजनो ! आप सभी हमारे यज्ञको स्वीकार करें ॥४ ॥

९३३८. **पञ्च जना मम होत्रं जुषन्तां गोजाता उत ये यज्ञियासः।**
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ॥५ ॥

जो पृथ्वी में उत्पादित अथवा हव्यादि के लिए उत्पन्न और यजन योग्य हैं, वे सभी पाँचों जन (पाँचों वर्ण) हमारे यज्ञ को ग्रहण करें। पृथ्वी हमारे पार्थिव पापों से हमें बचाए तथा अन्तरिक्ष आकाश से सम्बन्धित (शब्दादि से प्रकट) पाप कृत्यों से हमें संरक्षित करे ॥५ ॥

९३३९. **तन्तुं तन्वन्नजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान्।**
अनुल्बणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आप यज्ञ को विस्तृत (व्यापक) करते हुए लोक के प्रकाशक सूर्यदेव का अनुगमन करें। सत्कर्मों द्वारा ज्योतिर्मय देवमार्गों (देवयानों) को सुरक्षित करें तथा स्तोताओं को सुखदायी **बनाएँ**। हे अग्निदेव ! आप प्रशंसनीय बनकर मनुष्यों को देवोपासना की ओर प्रेरित करें अर्थात् देवों को यज्ञ की ओर प्रेरित करें ॥६ ॥

९३४०. **अक्षानहो नह्यतनोत सोम्या इष्कृणुध्वं रशना ओत पिंशत।**
अष्टावन्धुरं वहताभितो रथं येन देवासो अनयन्नभि प्रियम् ॥७ ॥

हे सोमेच्छुक देवगण ! आप रथ में योजित करने योग्य घोड़ों को उससे जोतें। उनकी लगामों को ठीक करें तथा घोड़ों को सुसज्जित करें। आठ सारथियों के बैठने योग्य सूर्यरथ के साथ आप यज्ञ में पधारें। इसी रथ से देवता हमें ले जायेंगे ॥७ ॥

९३४१. **अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः।**
अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥८ ॥

अश्मन्वती नाम की नदी प्रवाहित हो रही है,(उद्देश्य प्राप्ति के लिए) संगठित होकर उठें और उसे पार करें। हे मित्रगण ! जो हमारे लिए कष्टदायी हैं, उनका हम यहीं परित्याग करते हैं, नदी को पार करके हम सुखदायक अन्नों को उपलब्ध करेंगे ॥८ ॥

९३४२. **त्वष्टा माया वेदपसामपस्तमो बिभ्रत्पात्रा देवपानानि शन्तमा।**
शिशीते नूनं परशुं स्वायसं येन वृश्चादेतशो ब्रह्मणस्पतिः ॥९ ॥

त्वष्टादेव (देवों के शिल्पी) पात्रों की निर्माण कला के विशेषज्ञ हैं, उन्हीं ने देवताओं के निमित्त कलापूर्ण सुन्दर (सोम) पान-पात्र तैयार किये हैं। अभी वे लोहे से विनिर्मित परशु (कुठार) को तेजधारा युक्त करते हैं, जिससे वे ब्रह्मणस्पति पात्र निर्माण योग्य काष्ठ को काटते हैं ॥९ ॥

९३४३. सतो नूनं कवयः सं शिशीत वाशीभिर्याभिरमृताय तक्षथ ।
विद्वांसः पदा गुह्यानि कर्तन येन देवासो अमृतत्वमानशुः ॥१० ॥

हे क्रान्तदर्शियो ! जिन कुठारास्त्रों से अमृत-पान (अमरत्व की प्राप्ति) के लिए पात्र विनिर्मित करते हो, उन्हें उचित रीति से तेज करो । हे ज्ञानियो ! ऐसे रहस्यमय (गोपनीय) वासस्थलों को निर्मित करो, जिससे (जहाँ से) देवताओं ने अमरता को प्राप्त किया था ॥१० ॥

९३४४. गर्भे योषामदधुर्वत्समासन्यपीच्येन मनसोत जिह्वया ।
स विश्वाहा सुमना योग्या अभि सिषासनिर्वनते कार इज्जितिम् ॥११ ॥

नारी के गर्भ में वत्स की भाँति, मानसिक भावों को (परिपक्व करके) मुख में स्थित जिह्वा से (वाणी के रूप में) व्यक्त करने वाला , श्रेष्ठ मन से प्रतिदिन देव समूह को स्तोत्र प्रदान करने वाला साधक (जीवन-संग्राम में) विजयी होता है ॥११ ॥

[सायणादि आचार्यों ने इस मंत्र की संगति ऋ० १. १६१. ७ में वर्णित मृत गाय के चर्म से नवीन गाय बनाने वाले प्रकरण से बिठाई है । मूल मन्त्र 'योषां गर्भे वत्सम्' का अर्थ मृत गाय वाले प्रसंग से जोड़ना अस्वाभाविक लगता है । इसलिए यहाँ मन्त्र में प्रयुक्त शब्दों के अनुरूप सहज अर्थ ही किया गया है ।]

[सूक्त - ५४]

[**ऋषि** - बृहदुक्थ वामदेव्य । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

९३४५. तां सु ते कीर्तिं मघवन्महित्वा यत्त्वा भीते रोदसी अह्वयेताम् ।
प्रावो देवाँ आतिरो दासमोजः प्रजायै त्वस्यै यदशिक्ष इन्द्र ॥१ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपकी उस अलौकिक महिमायुक्त यशस्विता का हम भली प्रकार से गुणगान करते हैं । जिस समय राक्षसी भय से आतंकित द्यावा-पृथिवी ने आपको आवाहित किया, उस समय आपने यहाँ के निवासी देवताओं को संरक्षित किया । आपने असुरों का विनाश किया तथा यजमान स्वरूप प्रजाजनों को आश्वस्त किया, जिसका हम वर्णन करते हैं ॥१ ॥

९३४६. यदचरस्तन्वा वावृधानो बलानीन्द्र प्रब्रुवाणो जनेषु ।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं ननु पुरा विवित्से ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! यशस्वी स्तोत्रों से अपने स्वरूप को विस्तारित करके तथा अपने पराक्रमी प्रभुत्व को स्थापित करके , जो आप विचरण करते हैं, वे आपकी कृतियाँ माया रूप ही हैं । पुरातन ऋषि आपके शत्रु-संहारक नानाविध संग्रामों का वर्णन करते हैं, वे भी मायावी ही हैं, क्योंकि न तो अभी (वर्तमान में) ही कोई आपका बैरी है, न प्राचीन समय में ऐसा था ॥२ ॥

[इन्द्र शक्ति प्रकृति में संव्याप्त एक प्राण-प्रक्रिया है, जिसके आधार पर अवाञ्छित पदार्थों का विखण्डन और वाञ्छित पदार्थों के निर्माण का क्रम चलता रहता है । आलंकारिक रूप में उसे ही इन्द्र का संग्राम कहा गया है ।]

९३४७. क उ नु ते महिमनः समस्यास्मत्पूर्व ऋषयोऽन्तमापुः ।
यन्मातरं च पितरं च साकमजनयथास्तन्व१ः स्वायाः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी सम्पूर्ण महिमा की सीमा हमसे पहले कौन-कौन से ऋषियों ने उपलब्ध की थी ? क्योंकि आप अपने माता-पिता (द्यावा-पृथिवी) को एक साथ ही (संयुक्त रूप में) अपनी देह से उत्पन्न करते हैं ॥३ ॥

[इन्द्र प्रकृतिगत संगठक प्रवाह है । दृश्य प्रकृति में द्यावा-पृथिवी से उत्पन्न संयोजक प्रवाह (इन्द्र) को उनका पुत्र कहा जा सकता है, किन्तु स्वयं द्यावा-पृथिवी का अस्तित्व भी संगठक शक्ति के कारण ही है । ऋषि अपनी तत्त्व दृष्टि से यह देखते हैं, इसलिए इन्द्र द्वारा माता-पिता की उत्पत्ति की बात कही गयी है ।]

९३४८. **चत्वारि ते असुर्याणि नामादाभ्यानि महिषस्य सन्ति ।**
त्वमङ्ग तानि विश्वानि वित्से येभिः कर्माणि मघवञ्चकर्थ ॥४ ॥

हे वैभवशाली इन्द्रदेव ! आपके अतिस्तुत्य (पूजनीय) चार शरीर (रूप) हैं, जो राक्षसों के संहारक और जरारहित हैं । हे मित्ररूप इन्द्रदेव ! आप उन स्वरूपों से परिचित हैं, जिनसे सभी महान् कार्यों (पराक्रमों) को आप सम्पादित करते हैं ॥४ ॥

९३४९. **त्वं विश्वा दधिषे केवलानि यान्याविर्या च गुहा वसूनि ।**
काममिन्मे मघवन्मा वि तारीस्त्वमाज्ञाता त्वमिन्द्रासि दाता ॥५ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप सम्पूर्ण असाधारण और रहस्यमय (छिपी हुई) दोनों प्रकार की सम्पदाओं को अपने में स्थापित करते हैं । अतएव आप हमारी शुभाकांक्षाओं को विनष्ट न करें । आप हमें अभीष्ट ऐश्वर्य प्रदान करें, क्योंकि आप स्वयमेव दातारूप हैं ॥५ ॥

९३५०. **यो अदधाज्ज्योतिषि ज्योतिरन्तर्यो असृजन्मधुना सं मधूनि ।**
अध प्रियं शूषमिन्द्राय मन्म ब्रह्मकृतो बृहदुक्थादवाचि ॥६ ॥

जिसने सूर्यादि ज्योतियों में ज्योति रूप तेज को स्थापित किया है, जिसने मधुर रसों से युक्त सोमादि रसों का सृजन किया है, इस प्रकार के उन इन्द्रदेव के निमित्त बृहदुक्थ (मन्त्रों के निर्माणकर्त्ता ऋषि) ने अतिप्रिय बलवर्द्धक स्तोत्र कहा ॥६ ॥

[सूक्त - ५५]

[**ऋषि** - बृहदुक्थ वामदेव्य । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

९३५१. **दूरे तन्नाम गुह्यं पराचैर्यत्त्वा भीते अह्वयेतां वयोधै ।**
उदस्तभ्नाः पृथिवीं द्यामभीके भ्रातुः पुत्रान्मघवन्तित्विषाणः ॥१ ॥

जब भयभीत (अस्तित्व में आने पर द्यावा-पृथिवी ने) आप (इन्द्र) को पुकारा, तब आपने पृथ्वी और आकाश को अधर में ही थाम लिया । हे ऐश्वर्य-सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप भरण-पोषण कर्त्ता (पर्जन्य) के पुत्रों (मेघ - जल आदि) को विद्युत् से प्रकाशित करते हैं । आपका यह नाम (प्रभाव) आपसे विमुख रहने वालों के लिए छिपा (अव्यक्त) ही रहता है ॥१ ॥

[इन्द्र शक्ति का एक स्वरूप पारस्परिक गुरुत्वाकर्षण (म्यूचुअल ग्रेविटेशन) है । उसी ने पृथ्वी तथा आकाश म स्थित पिण्डों को अधर में थाम रखा है, यह तथ्य तत्त्व दृष्टि से ऋषिगणों के लिए ज्ञात था ।]

९३५२. **महत्तन्नाम गुह्यं पुरुस्पृग्येन भूतं जनयो येन भव्यम् ।**
प्रत्नं जातं ज्योतिर्यदस्य प्रियं प्रियाः समविशन्त पञ्च ॥२ ॥

आपका सभी स्थानों में संव्याप्त अतिगुप्त (अन्यों से अनभिज्ञ) प्रशंसनीय , जो नाम (प्रभाव या शरीर) है, जिससे आप भूत और भविष्य को उत्पादित करते हैं, जिससे अति पुरातन और प्रिय लगने वाले ज्योति स्वरूप (सूर्यादि) प्रकट हुए । उस प्रिय ज्योति को प्राप्त करके पञ्चजन (चारों वर्ण और निषाद) हर्षित होते हैं ॥२ ॥

९३५३. आ रोदसी अपृणादोत मध्यं पञ्च देवाँ ऋतुशः सप्तसप्त ।
चतुस्त्रिंशता पुरुधा वि चष्टे सरूपेण ज्योतिषा विव्रतेन ॥३ ॥

इन्द्रदेव अपने तेज से द्युलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष को संव्याप्त करते हैं । उसी प्रकार वे समय-समय पर पञ्चदेवों (देव, मनुष्य, पितर, असुर और राक्षस) और सात तत्त्वों (सा:, मरुद्गण, सात सूर्य किरणें, सात लोकादि) को प्रकाशित करते हैं । वे नानाविध कर्मों के निर्वाहक चौंतीस प्रकार के देवों (आठ वसु, बारह आदित्य, ग्यारह रुद्र, प्रजापति, वषट्कार और विराटादि) के समान रूप और तेज से विविध प्रकार से दृश्यमान होते हैं ॥३ ॥

९३५४. यदुष औच्छः प्रथमा विभानामजनयो येन पुष्टस्य पुष्टम् ।
यत्ते जामित्वमवरं परस्या महन्महत्या असुरत्वमेकम् ॥४ ॥

हे देवि उषा ! आप प्रकाश के क्रम में सबसे पहले उदीयमान होतीं और तेजस्वियों में अति तेजस्वी (सूर्य) को प्रकाशित करती हैं । आप ऊर्ध्व लोकनिवासिनी हैं; किन्तु निम्नस्थ पृथ्वीलोक के निवासी मनुष्यों के साथ भी आपका मातृवत् सम्बन्ध है । इस प्रकार महान् (आप) से महान् बल का प्रादुर्भाव हुआ है ॥४ ॥

९३५५. विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥५ ॥

युद्ध में शौर्य प्रदर्शित करके शत्रुसेना को खदेड़ देने वाले बलशाली इन्द्रदेव के प्रभाव से श्वेतकेश (शक्तिहीन) वृद्ध भी स्फूर्तिवान् हो जाता है । हे स्तोताओ ! महान् इन्द्रदेव के पराक्रम का विवेचन करने वाले विचित्र काव्य को देखो, जो आज (उच्चारण के बाद) समाप्त हो जाने पर भी (भविष्य में नवीन मंत्रों के रूप में) पुनः प्रकट होता है ॥५ ॥

९३५६. शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीळः ।
यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता ॥६ ॥

सर्वशक्ति - सम्पन्न, अरुणाभ पक्षी के समान महान् पराक्रमी और सनातन, गतिशील इन्द्रदेव जिस कार्य को कर्त्तव्य के रूप में निश्चित कर लेते हैं, वही करते हैं, व्यर्थ कुछ नहीं । अभीष्ट वैभव को अपने पराक्रम से अर्जित करके वे स्तोताओं को सब प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं ॥६ ॥

९३५७. ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि येभिरौक्षद्वृत्रहत्याय वज्री ।
ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋतेकर्ममुदजायन्त देवाः ॥७ ॥

वज्रधारी , वृत्रहन्ता इन्द्रदेव मरुद्गणों के साथ मिलकर (जल वृष्टि आदि) महान् पौरुष युक्त कर्म करते हैं । वृत्रादि शत्रुओं को मारने के लिए जल वृष्टि करते हैं ।(ऐसे महान् कृत्यों में) मरुद्गण इन्द्रदेव के सहायक सिद्ध होते हैं ॥७ ॥

९३५८. युजा कर्माणि जनयन्विश्वौजा अशस्तिहा विश्वमनास्तुराषाट् ।
पीत्वी सोमस्य दिव आ वृधानः शूरो निर्युधाधमद्दस्यून् ॥८ ॥

मरुद्गणों के सहयोग से वृष्टि रूप कार्यों को इन्द्रदेव करते हैं । वे सभी प्रकार के शौर्यों के निर्वाहक, असुरों के संहारक, सर्वव्यापी, शीघ्रतापूर्वक शत्रुओं के पराभूतकर्ता हैं । वीर इन्द्रदेव ने द्युलोक से आकर , सोमपान से प्रोत्साहित होकर आयुधों से दुष्ट राक्षसों का संहार किया ॥८ ॥

[सूक्त - ५६]

[**ऋषि** - बृहदुक्थ वामदेव्य । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - त्रिष्टुप् ४-६ जगती ।]

अपनी तप: शक्ति से मृत परिजनों को सद्‌गति दिलाने का प्रसङ्ग इस सूक्त में है, जो देव संस्कृति की अपनी विशेषता है -

९३५९. **इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व।**
संवेशने तन्व१ श्चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे ॥१ ॥

(मृत पुत्र वाजी को लक्ष्य करके ऋषि कहते हैं-) हे मृत्यु के ग्रास ! तेरा एक अंश अग्नि है, दूसरा वायु है, तीसरा अंश ज्योति रूप (आत्म तत्व) है । उनसे संयुक्त होकर हे पुरुष ! तेजस्वी रूप प्राप्त कर । पावन स्थान में स्थित होकर देवशक्तियों का प्रिय एवं श्रेष्ठ बन ॥१ ॥

९३६०. **तनूष्टे वाजिन्तन्वं१ नयन्ती वाममस्मभ्यं धातु शर्म तुभ्यम्।**
अह्रुतो महो धरुणाय देवान्दिवीव ज्योतिः स्वमा मिमीयाः ॥२ ॥

हे वाजी ! पृथ्वी तुम्हारे शरीर को धारण करती है, वह तुम्हें सुख प्रदान करने के साथ हमारे लिए भी ऐश्वर्यप्रद हो । तुम सत्यनिष्ठ होकर महान् देवताओं के धारणकर्त्ता परमेश्वर को उपलब्ध करने के लिए दिव्यलोक में प्रतिष्ठित सूर्यदेव में अपनी आत्मा (चेतना) को समाहित करो ॥२ ॥

९३६१. **वाज्यसि वाजिनेना सुवेनीः सुवितः स्तोमं सुवितो दिवं गाः ।**
सुवितो धर्म प्रथमानु सत्या सुवितो देवान्त्सुवितोऽनु पत्म ॥३ ॥

हे पुत्र ! तुम सामर्थ्यवान् , शक्तिशाली और श्रेष्ठ कान्तिमान् हो । श्रेष्ठमार्ग से गमन करते हुए उत्तम स्तवनों का गान करके श्रेष्ठ पद प्राप्त करो, सुखप्रद मार्गगामी होकर स्वर्गलोक में जाओ, श्रेष्ठ आचरण द्वारा धर्मानुष्ठान करो और सर्वोत्तम सत्यफलों को प्राप्त करो । शुभ कर्मशील बनकर तुम देवों को प्राप्त करो तथा सन्मार्गगामी बनकर सूर्यदेव के साथ स्वयं को संयुक्त करो ॥३ ॥

९३६२. **महिम्न एषां पितरश्चनेशिरे देवा देवेष्वदधुरपि क्रतुम्।**
समविव्यचुरुत यान्यत्विषुरैषां तनूषु नि विविशुः पुनः ॥४ ॥

हमारे पितरगण देवों के समान ही पूज्यास्पद (श्रद्धास्पद) हैं, देवत्वपद को प्राप्त करके उन्होंने देवों के साथ अपने कर्मों का एकीकरण किया है । जो प्रकाशमयी दीप्ति यहाँ लोग प्राप्त करते हैं, वे सभी उनके साथ संयुक्त हो गये हैं, वे पुनः उन शरीरों में प्रविष्ट होते हैं ॥४ ॥

९३६३. **सहोभिर्विश्वं परि चक्रमू रजः पूर्वा धामान्यमिता मिमानाः ।**
तनूषु विश्वा भुवना नि येमिरे प्रासारयन्त पुरुध प्रजा अनु ॥५ ॥

हमारे पितरगण अपनी सामर्थ्य-शक्ति से सम्पूर्ण विश्व - ब्रह्माण्ड का परिभ्रमण कर चुके हैं । जिन सभी पुरातन लोकों में जाने की सामर्थ्य भूवासियों की नहीं, वे वहाँ भी गये हैं । अपने सूक्ष्म शरीरों में रहकर उन्होंने सम्पूर्ण लोकों को नाप लिया है । प्रजाजनों के प्रति उन्होंने विभिन्न प्रकार से अपनी सामर्थ्यों को विस्तृत किया है ॥ ५ ॥

९३६४. **द्विधा सूनवोऽसुरं स्वर्विदमास्थापयन्त तृतीयेन कर्मणा ।**
स्वां प्रजां पितरः पित्र्यं सह आवरेष्वदधुस्तन्तुमाततम् ॥६ ॥

सूर्य के पुत्ररूप देवताओं ने स्वर्गज्ञाता और सामर्थ्यवान् आदित्य को तृतीय कर्म (पुत्रोत्पादन) द्वारा दो प्रकार

से (उदय और अस्त में) प्रतिष्ठित किया है । हमारे पितरगणों ने सन्तानोत्पादन द्वारा सन्तानों की देह (शरीर) में वंशानुगत संस्कार स्थापित किये हैं । वे अपना वंशानुगत-चिरस्थायी संस्कार स्थापित कर गये हैं ॥६ ॥

९३६५. नावा न क्षोदः प्रदिशः पृथिव्याः स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
स्वां प्रजां बृहदुक्थो महित्वावरेष्वदधादा परेषु ॥७ ॥

जिस प्रकार मनुष्य नाव से जल को प्राप्त करते हैं, जिस प्रकार कल्याण मार्ग से कष्टदायी विपत्तियों से मुक्ति मिलती है तथा पृथ्वी की विभिन्न दिशाओं तक पहुँचना होता है । उसी प्रकार बृहदुक्थ ऋषि ने अपनी प्रजा (पुत्र) को, अपनी महती सामर्थ्य से अग्नि और सूर्यदेव के साथ संयुक्त किया ॥७ ॥

[सूक्त - ५७]

[**ऋषि** - बन्धु , सुबन्धु , श्रुतबन्धु , विप्रबन्धु , गौपायन अथवा लौपायन । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द**- गायत्री ।]

सूक्त ५७ एवं ५८ के देवता विश्वेदेवा एवं मन हैं । ऋषि बन्धु, सुबन्धु, श्रुतबन्धु, विप्रबन्धु आदि हैं । बन्धु का अर्थ भाई अथवा मित्र होता है । बन्धुत्व के उत्तरोत्तर श्रेष्ठ स्तरों के प्रतीक ये ऋषि हैं । बन्धु , सु अर्थात् श्रेष्ठबन्धु, श्रुत-अर्थात् ज्ञानयुक्त बन्धु तथा विप्र अर्थात् ब्रह्मानुभूति युक्त बन्धु । जीवात्मा के बन्धु रूप-ऋषिरूप प्राण सभी देवों-पितरों से मन को कुमार्गगामिता से बचाकर सुमार्गगामी बनाने की प्रार्थना करते हैं । श्रेष्ठ मन की उपलब्धि के लिए उनका आवाहन करते हैं--

९३६६. मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः । मान्तः स्थुर्नो अरातयः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम सन्मार्ग से विचलित होकर कुमार्गगामी न बनें । हम सोमयुक्त यज्ञीय सत्कर्मों से कभी विमुख न हों । हमारे मार्ग दुष्ट शत्रुओं से निष्कंटक हों ॥१ ॥

९३६७. यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः । तमाहुतं नशीमहि ॥२ ॥

जो अग्निदेव यज्ञ को सम्पन्न करने के माध्यम हैं, जो पुत्र सदृश होकर देवों तक अपने स्वरूप से व्याप्त रहते हैं, उन यजनीय अग्निदेव को हम प्राप्त करें ॥२ ॥

९३६८. मनो न्वा हुवामहे नाराशंसेन सोमेन । पितॄणां च मन्मभिः ॥३ ॥

हम श्रेष्ठ पुरुषों (पितरों) के द्वारा, प्रशंसित सोम के द्वारा तथा पितरों को तृप्त करने वाले स्तोत्रों से मन देवता का आवाहन करते हैं ॥३ ॥

[आज विचारकों के सामने यह समस्या है कि विकृत मन के उत्पातों से कैसे बचा जाय । इस मंत्र में ऋषि , श्रेष्ठ मानस की प्राप्ति का सूत्र स्पष्ट करते हैं । मन निकृष्ट स्वार्थों के चिन्तन से विकृत होता है । सत्पुरुषों को प्रसन्न करने वाले माध्यमों तथा स्तोत्रों को प्रधानता देने से श्रेष्ठ मन प्राप्त किया जा सकता है ।]

९३६९. आ त एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥४ ॥

सत्कर्म के लिए , कार्यों में दक्षता के लिए तथा चिरकाल तक सूर्यदेव का अवलोकन करने के लिए श्रेष्ठ मन (हमारे पास) आए ॥४ ॥

[मन की श्रेष्ठता से दीर्घ, सुखी-जीवन तथा कार्यों के सफलता की प्राप्ति सहज ही होती है ।]

९३७०. पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः । जीवं व्रातं सचेमहि ॥५ ॥

हमारे पितर हमारे मन को पुनः श्रेष्ठता के लिए प्रेरित करें, जिससे हम जीवन एवं प्राण को पुष्ट कर सकें ॥५ ॥

९३७१. वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ॥६ ॥

हे सोमदेव ! हम (याजक) आपके अनुरूप कर्मों - व्रतों में संलग्न रहते हुए शरीर में मन को लगाए हुए हैं, ताकि हम प्रजावान् होकर पोषण में समर्थ हों ॥६ ॥

[मन अति तीव्रगामी है । वह कहीं भी चला जाने में समर्थ है, किन्तु जीवन की गतिविधियों के ठीक-ठीक संचालन के लिए इसे सत्प्रवृत्ति युक्त रहकर काया की मर्यादा में रहना आवश्यक है । किसी कारण काया के अनुशासन से भटक गये मन को जीवन की दुहाई देते हुए पुनः मर्यादा में लाने का भाव इस सूत्र में है ।]

[सूक्त - ५८]

[**ऋषि** - बन्धु-सुबन्धु - श्रुतबन्धु - विप्रबन्धु - गौपायन अथवा लौपायन । **देवता** - मन आवर्तन । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

९३७२. **यत्ते यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरकम् । तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥१ ॥**

हे बन्धु ! आपका जो मन विवस्वान् के पुत्र यमदेव के समीप चला गया है, उसे हम वहाँ से वापस लाते हैं, क्योंकि आप यहाँ इस संसार में रहने के लिए जीवन धारण किये हुए हैं ॥१ ॥

९३७३. **यत्ते दिवं यत्पृथिवीं मनो जगाम दूरकम् । तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥२ ॥**

आपका मन जो सुदूर दिव्य लोक और भूलोक के समीप चला जाता है, उसे हम वापस यहीं लेकर आते हैं; क्योंकि आप इस संसार में निवास करने के लिए शरीर धारण किये हुए हैं ॥२ ॥

९३७४. **यत्ते भूमिं चतुर्भृष्टिं मनो जगाम दूरकम् । तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥३ ॥**

सभी ओर से अस्थिर जो आपका मन अति दूरवर्ती भूभाग में चला जाता है, आपके उस मन को हम वापस लेकर आते हैं; क्योंकि आप इस संसार में रहने के लिए जीवन धारण किए हुए हैं ॥३ ॥

९३७५. **यत्ते चतस्रः प्रदिशो मनो जगाम दूरकम् । तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ४ ॥**

जो आपका मन दूरवर्ती प्रदेशों में अतिदूर चला गया है, उसे हम वहाँ से वापस लाते हैं, क्योंकि आप यहाँ वास करने हेतु जीवन धारण किए हुए हैं ॥४ ॥

९३७६. **यत्ते समुद्रमर्णवं मनो जगाम दूरकम् । तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥५ ॥**

जो आपका मन जल से परिपूर्ण समुद्र या अन्तरिक्ष के भीतर सुदूर तक चला गया है, आपके उस मन को हम वहाँ से लौटाते हैं; क्योंकि आप विश्व में वास करने के लिए जीवन धारण किये हुए हैं ॥५ ॥

९३७७. **यत्ते मरीचीः प्रवतो मनो जगाम दूरकम् । तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥६ ॥**

जो आपका मन चारों ओर विस्तारित किरणों के समीप अतिदूर चला गया है, उस मन को वहाँ से हम लौटाते हैं; क्योंकि आप यहाँ वास करने के निमित्त जीवन धारण किए हुए हैं ॥६ ॥

९३७८. **यत्ते अपो यदोषधीर्मनो जगाम दूरकम् । तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥७ ॥**

जो आपका मन दूरस्थ जल के भीतर तथा वृक्ष-वनस्पतियों में गमन कर गया है, उसे हम वहाँ से लौटाते हैं; क्योंकि आप यहाँ इस जगत् में वास हेतु जीवित हैं ॥७ ॥

९३७९. **यत्ते सूर्यं यदुषसं मनो जगाम दूरकम् । तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥८ ॥**

जो आपका मन सूर्यदेव अथवा देवी उषा के समीप सुदूर गमन कर गया है, आपके उस मन को हम वहाँ से वापस लौटाते हैं; क्योंकि आप यहाँ इस विश्व में रहने के लिए जीवित हैं ॥८ ॥

९३८०. **यत्ते पर्वतान्बृहतो मनो जगाम दूरकम्। तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥९ ॥**

आपका जो मन दूरस्थ विशाल पर्वतीय शृंखलाओं के समीप गमन कर गया है, उसे हम वापस लेकर आते हैं; क्योंकि आप विश्व में वास करने के लिए जीवन धारण किए हैं ॥९ ॥

९३८१. **यत्ते विश्वमिदं जगन्मनो जगाम दूरकम्। तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे॥१० ॥**

आपका जो मन इस अखिल विश्व में अति दूर चला गया है, उसे हम वापस लौटाते हैं; क्योंकि आप विश्व में निवास करने के लिए जीवित हैं ॥१० ॥

९३८२. **यत्ते पराः परावतो मनो जगाम दूरकम्। तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे॥११ ॥**

आपका जो मन दूर से अति दूर तथा उससे भी अति दूरस्थ किन्हीं स्थानों पर भी चला गया है, उस मन को दुबारा हम वापस लाते हैं; क्योंकि आप इस संसार में वास करने के लिए यहाँ जीवित हैं ॥११ ॥

९३८३. **यत्ते भूतं च भव्यं च मनो जगाम दूरकम्। तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे॥१२ ॥**

आपका जो मन भूत और भविष्यत् किसी अति दूरस्थ काल की ओर चला गया है, उसे हम पुनः वापस लाते हैं; क्योंकि संसार में रहने के लिए आपका जीवन है ॥१२ ॥

[सूक्त - ५९]

[**ऋषि** - बन्धु-सुबन्धु-श्रुतबन्धु-विप्रबन्धु-गौपायन या लौपायन । **देवता** - १-३ निर्ऋति, ४ निर्ऋति तथा सोम, ५-६ असुनीति, ७ लिङ्गोक्तदेवता (पृथिवी- द्यन्तरिक्ष- सोम-पूषा-पथ्या- स्वस्ति) , ८-१० द्यावा-पृथिवी, १० पूर्वार्द्ध ऋचा के द्यावा-पृथिवी अथवा इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् , ८ पंक्ति, ९ महापंक्ति, १० पन्क्त्युत्तरा ।]

९३८४. **प्र तार्यायुः प्रतरं नवीयः स्थातारेव क्रतुमता रथस्य ।**
अध च्यवान उत्तवीत्यर्थं परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥१ ॥

जिस प्रकार क्रियाकुशल सारथी के होने पर रथ पर चढ़े व्यक्ति सुख की अनुभूति करते हैं, वैसे ही सुबन्धु की आयु यौवनयुक्त और दीर्घ होकर संवर्द्धित हो । पतनशील भी, जीवन के उद्देश्य श्रेष्ठ रीति से प्राप्त करें, पाप के अधिष्ठाता देवता हमसे दूर हो जाएँ ॥१ ॥

९३८५. **सामन्नु राये निधिमन्न्वन्नं करामहे सु पुरुध श्रवांसि ।**
ता नो विश्वानि जरिता ममत्तु परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥२ ॥

सामगान प्रारम्भ रहते हुए सम्पदा प्राप्त करने के लिये हम श्रेष्ठ अन्न और विभिन्न प्रकार के श्रेष्ठतम हविर्द्रव्य संगृहीत करते हैं । हम निर्ऋति की वन्दना करते हैं । वे हमारे (उक्त) सभी पदार्थों का आस्वादन करें, (अपने बन्धनों को) जीर्ण करें और भलीप्रकार हमसे दूर चले जाएँ ॥२ ॥

९३८६. **अभी ष्व१र्यः पौंस्यैर्भवेम द्यौर्न भूमिं गिरयो नाज्रान् ।**
ता नो विश्वानि जरिता चिकेत परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥३ ॥

हम अपनी पराक्रमी शक्ति द्वारा शत्रुओं को भली प्रकार पराभूत करें ।जैसे पृथ्वी के ऊपर आकाश स्थित है, वैसे ही हम शत्रुओं के ऊपर वर्चस्व स्थापित करें । जैसे मेघों का वेग पर्वतों द्वारा अवरुद्ध किया जाता है, वैसे ही हम शत्रुओं की गति को रोकने में सक्षम हों । हमारे सभी स्तोत्रों को निर्ऋति सुनें तथा हमसे वे दूर चले जाएँ ॥३ ॥

९३८७. मो षु णः सोम मृत्यवे परा दाः पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्।
द्युभिर्हितो जरिमा सू नो अस्तु परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥४ ॥

हे सोमदेव ! हमें मृत्यु के अधीनस्थ न करें । हम सूर्यदेव को आकाशमार्ग में जाते हुए सदा देख सकें (हम दीर्घजीवी हों) । हमारी वृद्धावस्था भी नित्य सुखप्रद हो तथा निर्ऋतिदेव हमसे दूर चले जाएँ ॥४ ॥

९३८८. असुनीते मनो अस्मासु धारय जीवातवे सु प्र तिरा न आयुः।
रारन्धि नः सूर्यस्य सन्दृशि घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व ॥५ ॥

हे प्राणविद्या विशेषज्ञ ! आप हमारी ओर ध्यान दें तथा हमारे दीर्घजीवन के लिए हमारी आयु को भलीप्रकार बढ़ाएँ । जहाँ तक सूर्यदेव का प्रकाश है, वहाँ तक हमें संरक्षित करें, आप घृत से हमारे शरीर को परिपुष्ट करें ॥५ ॥

९३८९. असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम्।
ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृळया नः स्वस्ति ॥६ ॥

हे प्राणविद्या के ज्ञाता ! आप हमारे लिए पुनः नेत्रशक्ति, प्राणऊर्जा तथा उपभोग्य सामग्री प्रदान करें । हम चिरकाल तक सूर्य के दर्शन से लाभान्वित हों । हे अनुमते ! जिससे हम विनष्ट न हों, ऐसा हमारा कल्याण करें ॥६ ॥

९३९०. पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्द्यौर्देवी पुनरन्तरिक्षम्।
पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनः पूषा पथ्यां३ या स्वस्तिः ॥७ ॥

पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक हमें पुनः प्राण शक्ति प्रदान करें, सोमदेव हमें पुनः शारीरिक सामर्थ्य प्रदान करें तथा सर्वपोषक पूषादेव हमें कल्याणकारी वाणी प्रदान करें, जिससे हमारा हर प्रकार से मंगल हो ॥७ ॥

९३९१. शं रोदसी सुबन्धवे यह्वी ऋतस्य मातरा।
भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत् ॥८ ॥

महिमायुक्त और यज्ञ की मातृस्वरूपा द्यावा-पृथिवी सुबन्धु का मंगल करें । जो भी हमारे पाप कर्म हों, उन्हें हमसे दूर करें । हे द्यावा-पृथिवि ! आप दोनों क्षमाशील हैं, तो पापकर्म किस प्रकार से होगा ? हे सुबन्धु ! वे पापकर्म आपको पीड़ित किये बिना विनष्ट हों ॥८ ॥

९३९२. अव द्वके अव त्रिका दिवश्चरन्ति भेषजा। क्षमा चरिष्ण्वेककं भरतामप यद्रपो
द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत् ॥९ ॥

स्वर्गलोक से पृथ्वी तक जो दो (अश्विनीकुमारों के रूप में) और तीन (इड़ा, सरस्वती, भारती) रोग निवारक ओषधियाँ संचरित होती हैं, उनमें से एक ओषधि पृथ्वी पर विचरण करती है । हे द्यावा और पृथिवि ! जो भी हमारे पापकर्म हों, आप उन्हें दूर हटायें । हे सुबन्धु ! आपके किसी प्रकार के भी पापकर्म हमें पीड़ित न करें ॥९ ॥

९३९३. समिन्द्रेरय गामनड्वाहं य आवहदुशीनराण्या अनः।
भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत् ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! जो बैल उशीनराणी नामक ओषधि वहन करके ले जाते हैं, ऐसे शकटवाही बैलों (अथवा किरण समूहों) को भली प्रकार प्रेरित करें । हे द्युलोक और पृथिवि ! जो हमारे पापकर्म हैं, उन्हें दूर करें । हे सुबन्धु ! आपके किसी प्रकार के दोष हमें कष्टपीड़ित न कर सकें ॥१० ॥

[सूक्त - ६०]

[**ऋषि** - बन्धु - सुबन्धु - श्रुतबन्धु - विप्रबन्धु , गौपायन अथवा लौपायन, ६ अगस्त्य-भगिनी । **देवता** - १-४, ६ असमाति, ५ इन्द्र, ७-११ जीव, १२ हस्त । **छन्द** - अनुष्टुप् १-५ गायत्री, ८-९ पंक्ति ।]

९३९४. **आ जनं त्वेषसन्दृशं माहीनानामुपस्तुतम् । अगन्म बिभ्रतो नमः ॥१ ॥**

महान् व्यक्तियों से प्रशंसित (असमाति नरेश) के प्रदेश में हम विनम्रभाव से प्रविष्ट हुए ॥१ ॥

९३९५. **असमातिं नितोशनं त्वेषं निययिनं रथम् । भजेरथस्य सत्पतिम् ॥२ ॥**

शत्रु संहारक, तेजस्वी रथ के समान सर्वत्र गतिशील भजेरथ नरेश के वंशज तथा सज्जनों के संरक्षक असमाति (अतुलनीय सामर्थ्यवान्) नरेश की हम प्रार्थना करते हैं ॥२ ॥

९३९६. **यो जनान्महिषाँ इवातितस्थौ पवीरवान् । उतापवीरवान्युधा ॥३ ॥**

जिस प्रकार सिंह - भैसों को गिराकर मार देता है, वैसे ही वे अपने पराक्रम बल से हाथ में खड्ग धारण करके शत्रुओं को मार गिराते हैं । खड्ग धारण किये बिना भी वे शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेते हैं ॥३ ॥

९३९७. **यस्येक्ष्वाकुरुप व्रते रेवान्मराय्येधते । दिवीव पञ्च कृष्टयः ॥४ ॥**

शत्रु संहारक और ऐश्वर्य-सम्पन्न राजा इक्ष्वाकु शासन में प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं, पाँचों वर्णों के लोग स्वर्गीय सुखों का उपभोग करें ॥४ ॥

९३९८. **इन्द्र क्षत्रासमातिषु रथप्रोष्ठेषु धारय । दिवीव सूर्यं दृशे ॥५ ॥**

हे इन्द्रदेव ! जैसे सूर्यदेव आकाश में दिखाई देते हैं, वैसे ही आप रथारूढ़ राजा असमाति को क्षात्रबल धारण करायें ॥५ ॥

९३९९. **अगस्त्यस्य नद्भ्यः सप्ती युनक्षि रोहिता ।**
पणीन्न्यक्रमीरभि विश्वान्राजन्नराधसः ॥६ ॥

हे राजन् ! आप ऋषि अगस्त्य के हर्षदायी बन्धु-बान्धवों के लिए अपने गतिशील दो लालवर्ण के अश्वों को रथ से नियोजित करें । जो व्यापारी अतिकञ्जूस, श्रेष्ठ कार्यो में दानभाव से शून्य हैं , उन्हें आप पराजित करें ॥६ ॥

९४००. **अयं मातायं पितायं जीवातुरागमत् । इदं तव प्रसर्पणं सुबन्धवेहि निरिहि ॥७ ॥**

जो अग्निदेव पधारे हैं, वे माता, पिता तथा जीवनदाता रूप हैं । हे जीव ! यह शरीर आपके जीवन का आश्रय स्थान है, इसमें स्थापित हों ॥७ ॥

९४०१. **यथा युगं वरत्रया नह्यन्ति धरुणाय कम् ।**
एवा दाधार ते मनो जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥८ ॥

जिस प्रकार रथ को धारण करने के लिए रस्सी से दोनों जुओं को बाँधते हैं, वैसे ही आपके मन को जीवनीशक्ति तथा आरोग्यता के लिए धारण करते हैं, मृत्यु (विनाश) के लिए नहीं ॥८ ॥

[मन , विनाशक व्यसनों में रस न ले, जीवनवर्द्धक एवं आरोग्यवर्द्धक प्रवृत्तियों से जुड़े ।]

९४०२. **यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान्वनस्पतीन् ।**
एवा दाधार ते मनो जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥९ ॥

जिस प्रकार यह विशाल धरती इन वृक्ष - वनस्पतियों को धारण करती है, उसी प्रकार अग्निदेव आपके मन को धारण किये हुए हैं, जिससे आप जीवनीशक्ति तथा कल्याण प्राप्त कर सकें और मृत्यु से संरक्षित रहें ॥९ ॥

९४०३. **यमादहं वैवस्वतात्सुबन्धोर्मन आभरम्। जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥१०**

विवस्वान् के पुत्र यमराज से हमने सुबन्धु के मन को विमुक्त किया है, जिससे वे कल्याण रूप जीवन को धारण करते हुए, मृत्यु से सुरक्षित रहें ॥१० ॥

९४०४. **न्य१ग्वातोऽव वाति न्यक्तपति सूर्यः। नीचीनमघ्न्या दुहे न्यग्भवतु ते रपः ॥११ ॥**

वायुदेव दिव्यलोक से नीचे के लोक में प्रवाहित होते हैं, सूर्यदेव ऊपर से नीचे की ओर ताप देते हैं, अहिंसक गौ नीचे की ओर दुही जाती है, उसी प्रकार हे सुबन्धु ! आपके अमंगल भी अधोगामी हों ॥११ ॥

९४०५. **अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः। अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥१२**

यह हमारा हाथ सौभाग्य युक्त है, अति सौभाग्यशाली यह हाथ सबके लिए सभी रोगों का निवारण कर्त्ता है। यह हाथ शुभ और कल्याणकारी है ॥१२ ॥

[सूक्त - ६१]

[**ऋषि** - नाभानेदिष्ठ मानव । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

इस सूक्त के ऋषि नाभानेदिष्ठ मनुपुत्र हैं। यह सूक्त सृष्टि, उत्पत्ति एवं विकास के अन्तर्गत परमाणु संरचना की प्रक्रिया से सम्बद्ध प्रतीत होता है। परमात्म तत्त्व के मनः संकल्प से सृष्टि की उत्पत्ति हुई। यह मनः संकल्प ही मनु है। मनु की सहधर्मिणी सतरूपा-सहस्र रूप धारण करने वाली ऊर्जा है। नाभानेदिष्ठ का अर्थ होता है-नाभिक अथवा परमात्म सत्ता का निकटवर्ती। परमाणु संरचना में नाभिक के निकट जो चेतन तत्त्व हैं, उसे नाभानेदिष्ठ कह सकते हैं। वह प्राण चेतना ऋषि रूप में प्रतिष्ठित है। पौराणिक संदर्भ के अतिरिक्त इस संदर्भ से विचार करने पर अनेक सृष्टि - सूत्र स्पष्ट हो सकते हैं --

९४०६. **इदमित्था रौद्रं गूर्तवचा ब्रह्म क्रत्वा शच्यामन्तराजौ ।**
क्राणा यदस्य पितरा मंहनेष्ठाः पर्षत्पक्थे अहन्ना सप्त होतॄन् ॥१ ॥

नाभानेदिष्ठ (ऋषि) के माता, पिता, भ्रातादि कार्य विभाजन करते समय, नाभानेदिष्ठ को (भूल से) उनका भाग न देकर, रुद्रदेव की अर्चना करने लगे। इससे नाभानेदिष्ठ भी रुद्र स्तोत्र के लिए तत्पर होकर अंगिराओं के यज्ञ में सम्मिलित हुए। यज्ञ के छठे दिन, जो उन लोगों की विस्मृति में था, उन्होंने (नाभानेदिष्ठ ने) उन सात होताओं से कहकर यज्ञसत्र को सम्पूर्ण किया ॥१ ॥

[रुद्र सूर्य को भी कहा गया है। रुद्रदेव की अर्चना का अर्थ सौरमण्डल के अन्तर्गत ऊर्जा उत्पादक प्रक्रिया को जाग्रत् करना है। मूर्धन्य वैज्ञानिक मानते हैं कि सूर्य में पदार्थ परिवर्तन (हाइड्रोजन से हीलियम) बनने की जो प्रक्रिया चल रही है, उसके छः चरण हैं। उस प्रक्रिया को चालू करने में नाभिक में स्थित विशिष्ट प्राण-ऊर्जा का समावेश आवश्यक होता है। नाभानेदिष्ठ ने पहुँचकर वह चरण पूरा किया, तो छठवें दिन अर्थात् छठवें चरण में वह यज्ञ पूर्ण हुआ।]

९४०७. **स इद्दानाय दभ्याय वन्वञ्च्यवानः सूदैरमिमीत वेदिम् ।**
तूर्वयाणो गूर्तवचस्तमः क्षोदो न रेत इतऊति सिञ्चत् ॥२ ॥

स्तोताओं को ऐश्वर्य प्रदान करने तथा शत्रुओं के संहार हेतु अस्त्रादि देते हुए रुद्रदेव (इस विशिष्ट) यज्ञ स्थल पर जाकर विराजमान हुए। जल वृष्टि द्वारा जिस प्रकार बादल अपने प्रभाव या बल को प्रदर्शित करते हैं, वैसे ही रुद्रदेव यज्ञ में उपस्थित होकर अपनी क्षमता को सर्वत्र प्रकाशित करने लगे ॥२ ॥

१४०८. मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता ।
आ यः शर्याभिस्तुविनृम्णो अस्याश्रीणीतादिशं गभस्तौ ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जो ऋत्विज् प्रचुर हविष्य पदार्थों से सम्पन्न होते हुए भी अपने हाथ में हमारी अँगुलियाँ पकड़कर आपका नामोच्चारण करते हुए यज्ञ सम्पादित करते हैं, आप मन के समान शीघ्र गति से उस स्तोता के यज्ञ में विवेकपूर्वक गमन करते हैं ॥३ ॥

[अश्व मूल ऊर्जा का पर्याय है । अश्विनीकुमार उससे उत्पन्न विशिष्ट प्रवाह हैं । नाभानेदिष्ठ-नाभिक के निकट स्थित ऊर्जा पर विशिष्ट दबाव डालने की प्रक्रिया से अश्विनीकुमार रूप आरोग्यवर्धक विशिष्ट प्रवाह प्रकट होने का संकेत इस ऋचा में है ।]

१४०९. कृष्णा यद्गोष्वरुणीषु सीदद्दिवो नपाताश्विना हुवे वाम् ।
वीतं मे यज्ञमा गतं मे अन्नं ववन्वांसा नेषमस्मृतध्रू ॥४ ॥

हे दिव्यलोक के पुत्र अश्विनी कुमारो ! जब रात्रि का अन्धकार विनष्ट होता है और प्रातःकालीन सूर्य किरणों की लाल रंग की आभा प्रकट होती है, उस समय हम आपका आवाहन करते हैं । आप यज्ञ की इच्छा से प्रेरित होकर हमारे यज्ञ में पधारें तथा हविष्यान्न का सेवन करें । दो अश्वों के समान निरन्तर हवि का भक्षण करते हुए द्वेष भावना को विस्मृत करें ॥४ ॥

[उषाकाल में अश्विनीकुमारों के आरोग्यवर्धक प्रवाह सहजक्रम में प्रकट होते हैं ।]

१४१०. प्रथिष्ट यस्य वीरकर्ममिष्णदनुष्ठितं नु नर्यो अपौहत् ।
पुनस्तदा वृहति यत्कनाया दुहितुरा अनुभृतमनर्वा ॥५ ॥

जिन प्रजापति ब्रह्मा का तेज प्रजा के उत्पादन में समर्थ है । वे मनुष्यों के हित में तेजस् को छोड़ते हैं । आवश्यकता के अनुसार उसे पुनः धारण करते हैं । उन्होंने अपनी सुन्दर कन्या उषा में उस उत्पादक तेज को स्थापित किया ॥५ ॥

[उषा दिव्य चेतना का संचार करती आती हैं । सभी प्राणी उनके आगमन से सचेष्ट हो उठते हैं ।]

१४११. मध्या यत्कर्त्वमभवदभीके कामं कृण्वाने पितरि युवत्याम् ।
मनानग्रेतो जहतुर्वियन्ता सानौ निषिक्तं सुकृतस्य योनौ ॥६ ॥

जिस समय सृष्टि- कामना से युक्त प्रजापति ने युवती कन्या (उषा) में तेजस् स्थापित किया, उस समय दोनों के बीच शक्तिरूप प्राण ऊर्जा का अभिषिंचन न्यूनरूप में हुआ; परन्तु यज्ञ के आधार स्वरूप उच्च उद्देश्य के लिए जब दोनों का संगम (प्रचुर मात्रा में) हुआ, तो कल्याण के प्रतीक रुद्र (सूर्य) की उत्पत्ति हुई ॥६ ॥

१४१२. पिता यत्स्वां दुहितरमधिष्कन्क्ष्मया रेतः सञ्जग्मानो नि षिञ्चत् ।
स्वाध्योऽजनयन्ब्रह्म देवा वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन् ॥७ ॥

जिस समय कन्या (उषा) के साथ प्रजापति के तेज का संयोजन हुआ, उस समय पृथ्वी के लिए उत्पादक तेज का अभिषेचन किया गया । उसी से सत्कर्मशील देवताओं ने (व्रतों के संरक्षक) ब्रह्मशक्ति का उत्पादन किया । वास्तोष्पति (यज्ञ के पालक) की उस व्रतशीलता से वास्तोष्पति (पदार्थों के उत्पादक देव) का सृजन हुआ ॥७ ॥

[पृथ्वी पर उत्पादक तेजस् के सिंचन से व्रत-अनुशासनबद्ध सृजन प्रक्रिया प्रारम्भ हुई । उससे पदार्थों की संरचना का क्रम प्रारम्भ हुआ ।]

१४१३. स ईं वृषा न फेनमस्यदाजौ स्मदा परैदप दभ्रचेताः ।
सरत्पदा न दक्षिणा परावृङ् न ता नु मे पृशन्यो जगृभ्रे ॥८ ॥

जिस प्रकार सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव नमुचि के वध काल में, युद्ध में मुँह से झाग छोड़ते हुए वापस लौटे थे, वैसे ही हमारे समीप से वास्तोष्पति जिन पैरों से आए थे, उन्हीं से वापस लौटे । अंगिराओं ने दक्षिणा स्वरूप हमें जो गौएँ प्रदान की थीं, वे उन्हें दूर से ही त्यागते हुए आगे एक कदम भी नहीं बढ़े, आसानी से ग्रहण करने योग्य उन हमारी गौओं को मार्गदर्शक रुद्रदेव ग्रहण नहीं करते ॥८ ॥

[पृथ्वी पर वास्तोष्पति की प्रक्रिया, वस्तुओं की संरचना में परमाणुओं के संयोजन की ही प्रक्रिया चलती है । नाभिकीय ऊर्जा (किरणें या गौएँ) को नहीं छेड़ा जाता । सूर्यरूप में नाभिकीय प्रक्रिया चलती है । वे नाभानेदिष्ठ की गौओं (नाभिकीय ऊर्जा किरणों) को सहज ही प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु सृष्टि के मार्गदर्शक के रूप में पृथ्वी पर वे ऐसा करते नहीं ।]

९४१४. मक्षू न वह्निः प्रजाया उपब्दिरग्निं न नग्न उप सीददूधः ।
सनितेध्मं सनितोत वाजं स धर्ता जज्ञे सहसा यवीयुत् ॥९ ॥

प्रजाजनों के उत्पीड़क और अग्नि की तरह दाहक (जलाने वाले) असुर अचानक शीघ्रता से इस यज्ञ में उपस्थित नहीं हो सकते । रात्रि में भी वस्त्रहीन दुष्ट असुर अग्नि के समीप नहीं आ सकते; क्योंकि इस यज्ञ के संरक्षक रुद्रदेव हैं, यज्ञ के दूसरे संरक्षक यज्ञवाहक अग्निदेव, समिधाओं को ग्रहण करते हुए और हविष्यान्नरूपी सामर्थ्य को बाँटते हुए यज्ञवाहक अग्निदेव राक्षसों के साथ युद्ध में प्रवृत्त होते हैं । ।९ ॥

[परमाणु निर्माण की इस प्रक्रिया में बाधक असुर रूप प्रतिकणों का प्रवेश नहीं होने दिया जाता । यदि उनका प्रवेश हो जाए, तो पदार्थ संरचना का यज्ञ बीच में ही रुक जाएगा । इसलिए उन्हें कठोर अनुशासन के अन्तर्गत पदार्थ संरचना (यज्ञ) से दूर ही रखा जाता है ।]

९४१५. मक्षू कनाया: सख्यं नवग्वा ऋतं वदन्त ऋतयुक्तिमग्मन् ।
द्विबर्हसो य उप गोपमागुरदक्षिणासो अच्युता दुदुक्षन् ॥१० ॥

नौ मास तक यज्ञानुष्ठान करते हुए आङ्गिरसों ने गौओं को उपलब्ध किया । उन्होंने सुन्दर स्तुतियों के सहयोग से यज्ञीय वाणी का प्रयोग करते हुए उसे सम्पूर्ण किया । उन्होंने इहलौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की उपलब्धियों को प्राप्त किया तथा इन्द्र के समीप पहुँच गए । दक्षिणा रहित निष्काम भाव से सत्र नामक यज्ञ को उन्होंने सम्पन्न करके अक्षुण्ण फल को प्राप्त किया ॥१० ॥

[अङ्गिरा मूलऊर्जा प्रवाह के दबाव से उत्पन्न सूक्ष्मकण (सब पार्टिकल्स) हैं । उन्होंने पदार्थ - रचना - यज्ञ किया । पदार्थ संगठक इन्द्रशक्ति तक पहुँच गये । यज्ञ की दक्षिणा रूप बदले में कुछ नहीं लिया ।]

९४१६. मक्षू कनाया: सख्यं नवीयो राधो न रेत ऋतमित्तुरण्यन् ।
शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघाया: पय उस्रियाया: ॥११ ॥

अङ्गिराओं ने जिस समय अमृततुल्य दुधारू गौओं के शुभ्र और पवित्र दूध को यज्ञ में समर्पित किया, उस समय उत्तम स्तोत्र वाणियों द्वारा नवीन सम्पत्ति के समान ही द्युलोक से अभिषिञ्चित वृष्टिरूप प्रवाह को उपलब्ध किया ॥११ ॥

९४१७. पश्वा यत्पश्चा वियुता बुधन्तेति ब्रवीति वक्तरी रराणः ।
वसोर्वसुत्वा कारवोऽनेहा विश्वं विवेष्टि द्रविणमुप क्षु ॥१२ ॥

जिस समय यजमान- स्तोता गोशाला को गोरहित देखते हैं, उस समय वे इस प्रकार कहते हैं, कि स्तोत्र में रमण करने वाले और ऐश्वर्यों से विशेष वैभवशाली, पापरहित (पवित्रतायुक्त) इन्द्रदेव सभी गोरूप धन को शीघ्र ही चारों ओर संगृहीत करके यजमान साधक को देने के लिये धारण करते हैं । ।१२ ॥

९४१८. तदिन्वस्य परिषद्वानो अग्मन्पुरू सदन्तो नार्षदं बिभित्सन्।
वि शुष्णस्य संग्रथितमनर्वा विदत्पुरुप्रजातस्य गुहा यत् ॥१३ ॥

सुदृढ़ इन्द्रदेव जिस समय अनेक रूपों में विस्तार युक्त शुष्ण नामक राक्षस के गुप्त मर्म को ढूँढ़कर उसे विनष्ट करते हैं अथवा नृषद के पुत्र का संहार करते हैं, उस समय उनके सेवकगण विभिन्न तरह से उन्हें घेर कर उनके साथ जाते हैं ॥१३ ॥

९४१९. भर्गो ह नामोत यस्य देवा: स्व१र्ण ये त्रिषधस्थे निषेदुः।
अग्निर्ह नामोत जातवेदा: श्रुधी नो होतर्ऋतस्य होताध्रुक् ॥१४ ॥

जो देवगण स्वर्गीय स्थिति के अनुसार यज्ञ स्थल के कुश पर प्रतिष्ठित होते हैं, वे अग्नि की तेजस्विता को 'भर्ग' इस नाम से सम्बोधित करते हैं। अग्निदेव के एक तेज का नाम 'जातवेदस्' भी है। हे यज्ञ निष्पादक अग्निदेव ! आप यज्ञ के होतारूप हैं, आप अनुकूल होकर हमारे आवाहन को स्नेह- भावना से ग्रहण करें ॥१४ ॥

९४२०. उत त्या मे रौद्रावर्चिमन्ता नासत्याविन्द्र गूर्तये यजध्यै।
मनुष्वद्वृक्तबर्हिषे रराणा मन्दू हितप्रयसा विक्षु यज्यू ॥१५ ॥

हे इन्द्रदेव ! वे दोनों प्रख्यात तेजस्वितायुक्त रुद्रपुत्र अश्विनीकुमार हमारे स्तोत्र को सुनकर यज्ञ-स्थल में पदार्पण करें। जिस प्रकार वे आदिपुरुष महाराज मनु के यज्ञ में प्रशंसित होते हैं, उसी प्रकार हमारे यज्ञ-स्थल में अति हर्षित हों। वे हमारे ऊपर अनुग्रह करते हुए श्रेष्ठ धन और अन्नदाता प्रजाओं के सुखार्थ यज्ञ को धारण करें ॥१५ ॥

९४२१. अयं स्तुतो राजा वन्दि वेधा अपश्च विप्रस्तरति स्वसेतुः।
स कक्षीवन्तं रेजयत्सो अग्निं नेमिं न चक्रमर्वतो रघुद्रु ॥१६ ॥

सबके प्रेरक और सर्वस्तुत्य ओषधिराज सोमदेव की हम प्रार्थना करते हैं, शुद्ध और क्रियाकुशल सोम स्वयमेव सेतुरूप हैं। वे जल को प्रतिदिन पार करते हैं। जिस प्रकार शीघ्र गमनशील घोड़े चक्र की धुरी को कम्पित करते हैं, वैसे ही कक्षीवान् और अग्नि को भी वे सोमदेव प्रकम्पित करते हैं ॥१६ ॥

९४२२. स द्विबन्धुर्वैतरणो यष्टा सबर्धुं धेनुमस्वं दुहध्यै।
सं यन्मित्रावरुणा वृञ्ज उक्थैर्ज्येष्ठेभिरर्यमणं वरूथैः ॥१७ ॥

अग्निदेव इस लोक और परलोक दोनों के लिए कल्याणप्रद हैं। वे हवियों द्वारा तारणकर्त्ता तथा यज्ञ-सम्पादक हैं। जो गाय अमृततुल्य दुधारू होने पर दूधरहित है, उसे प्रसववती करके वे दुधारू बनाते हैं। यज्ञ में मित्र, वरुण और अर्यमादेव को श्रेष्ठतम स्तवनों द्वारा भली प्रकार प्रशंसित किया जाता है ॥१७ ॥

९४२३. तद्बन्धुः सूरिर्दिवि ते धियंधा नाभानेदिष्ठो रपति प्र वेनन्।
सा नो नाभिः परमास्य वा घाहं तत्पश्चा कतिथश्चिदास ॥१८ ॥

हे द्युलोक में विद्यमान सूर्यदेव ! आपका वह परमबन्धु नाभानेदिष्ठ आपकी प्रार्थना करता है। कर्मशील नाभानेदिष्ठ अंगिरा द्वारा प्रदत्त एक हजार गौओं की कामना से स्तुति करता है। द्युलोक हमारा और सूर्य का श्रेष्ठ उत्पत्ति स्थल है। उस सूर्य एवं मेरे जन्म में कितना अन्तर है ? ॥१८ ॥

[यहाँ नाभिकीय ऊर्जा और सौर ऊर्जा की अभिन्नता का आलंकारिक वर्णन हैं।]

९४२४. **इयं मे नाभिरिह मे सधस्थमिमे मे देवा अयमस्मि सर्वः ।**
द्विजा अह प्रथमजा ऋतस्येदं धेनुरदुहज्जायमाना ॥१९ ॥

दिव्यलोक ही मेरा उत्पत्ति स्थल है, यही मेरा आश्रय है । सम्पूर्ण देवगण (अथवा प्रकाशमान किरणे) मेरे अपने हैं , मैं सबमें विद्यमान हूँ । द्विज (दो बार जन्म लेने वाले) सत्यस्वरूप ब्रह्मा से उत्पन्न हुए हैं । यज्ञ स्वरूप गौ (माध्यमिका वाक्) ने प्रकट होकर सभी प्रकार का सृजन किया ॥१९ ॥

९४२५. **अधासु मन्द्रो अरतिर्विभावाव स्यति द्विवर्तनिर्वनेषाट् ।**
ऊर्ध्वा यच्छ्रेणिर्न शिशुर्दन्मक्षू स्थिरं शेवृधं सूत माता ॥२० ॥

अति आनन्दित होकर अग्निदेव चारों ओर अपना स्थान ग्रहण करते हैं । कान्तिमान् , काष्ठभक्षक दोनों लोकों में सहायक इस अग्नि की ज्वालाएँ ऊपर उठती हैं । अतिस्तुत्य, सुस्थिर सुखों के वर्द्धक, अग्नि की माता (अरणि अथवा द्यावा- पृथिवी) इसे यज्ञ में शीघ्र उत्पन्न करती हैं ॥२० ॥

९४२६. **अधा गाव उपमातिं कनाया अनु श्वान्तस्य कस्य चित्परेयुः ।**
श्रुधि त्वं सुद्रविणो नस्त्वं याळाश्वघ्नस्य वावृधे सूनृताभिः ॥२१ ॥

श्रेष्ठतम स्तोत्र वाणियों का उच्चारण नाभानेदिष्ठ को शान्ति प्रदान करता है , सभी के प्रशंसनीय इन्द्रदेव के समीप प्रार्थनाएँ जाती हैं । हे ऐश्वर्यवान् अग्निदेव ! आप हमारी स्तुति पर ध्यान दें । आप इन्द्रदेव के यज्ञ को सम्पन्न करें, आप अश्वमेध यज्ञ को सम्पन्न करने वाले मनु के पुत्र की प्रार्थना से समृद्ध होते हैं ॥२१ ॥

[नाभानेदिष्ठ ने अश्वमेध किया-शक्तिकणों के नाभिक में चेतन-ऊर्जा की स्थापना (आहुति) हुई, इसी से सृष्टि क्रम प्रारम्भ हुआ ।]

९४२७. **अध त्वमिन्द्र विद्ध्य१स्मान्महो राये नृपते वज्रबाहुः ।**
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीननेहसस्ते हरिवो अभिष्टौ ॥२२ ॥

हे वज्रधर और नरेन्द्र इन्द्रदेव ! आप हमारी विपुल ऐश्वर्य की कामना के अभिप्राय को जानें-समझें । हम आपके निमित्त स्तुतिगान करते हुए हविष्यान्न समर्पित करते हैं । आप हमारा संरक्षण करें । हे अश्वों से सम्पन्न इन्द्रदेव ! आपकी अनुकम्पा से हम पापमुक्त हों ॥२२ ॥

९४२८. **अध यद्राजाना गविष्टौ सरत्सरण्युः कारवे जरण्युः ।**
विप्रः प्रेष्ठः स ह्येषां बभूव परा च वक्षदुत पर्षदेनान् ॥२३ ॥

हे दीप्तिमान् मित्रावरुण ! गोधन की कामना से प्रेरित होकर अंगिराजन यज्ञ को सम्पादित करते हैं , सर्वज्ञाता नाभानेदिष्ठ स्तोत्र की आकांक्षा से यज्ञ के समीप जाते हैं । नाभानेदिष्ठ ने स्तोत्र - गान करके यज्ञ को सम्पूर्ण किया, इसी से वे उनके अतिप्रिय ज्ञानी विप्र हुए हैं ॥२३ ॥

९४२९. **अधा न्वस्य जेन्यस्य पुष्टौ वृथा रेभन्त ईमहे तदू नु ।**
सरण्युरस्य सूनुरश्वो विप्रश्चासि श्रवसश्च सातौ ॥२४ ॥

हम श्रद्धापूर्वक स्तुतिगान करने वाले, उन जयशील और प्रशंसनीय वरुणदेव की, अभीष्ट सिद्धि के लिये कामना करते हैं । ये शीघ्रगामी अश्व वरुणदेव के पुत्ररूप हैं । हे वरुणदेव ! आप शुद्ध स्वरूप हैं , हमें अन्न लाभ से लाभान्वित करने के लिये प्रेरित हों ॥२४ ॥

९४३०. युवोर्यदि सख्यायास्मे शर्धाय स्तोमं जुजुषे नमस्वान्।
विश्वत्र यस्मिन्ना गिरः समीचीः पूर्वीव गातुर्दाशत्सूनृतायै ॥२५ ॥

हे मित्र और वरुण देवो ! आपकी मैत्री- भावना को सुदृढ़ करने तथा बल- वृद्धि के लिये जब अन्न से युक्त ऋत्विज् विनम्रतापूर्वक प्रार्थना करते हैं, तब आपका बन्धुत्वभाव प्राप्त कर लेने पर सम्पूर्ण विश्व में यज्ञ की महिमा का विस्तार होता है । जिस प्रकार चिरपरिचित मार्ग सुखद होता है, वैसे ही आपकी मैत्रीभावना हम स्तोताओं को सुखकर हो ॥२५ ॥

९४३१. स गृणानो अद्भिर्देववानिति सुबन्धुर्नमसा सूक्तैः।
वर्धदुक्थैर्वचोभिरा हि नूनं व्यध्वैति पयस उस्रियायाः ॥२६ ॥

हे परमबन्धु वरुणदेव ! आप देवताओं के सहयोग से नमस्कार और श्रेष्ठ स्तोत्रों से स्तुत होकर आनन्दपूर्वक समृद्ध हों । स्तोत्र वचनों से वे शीघ्र हमारे समीप आगमन करें । उन्हीं के निमित्त गोदुग्ध की धारा यज्ञ में प्रवाहित होती है ॥२६ ॥

९४३२. त ऊ षु णो महो यजत्रा भूत देवास ऊतये सजोषाः।
ये वाजाँ अनयता वियन्तो ये स्था निचेतारो अमूराः ॥२७ ॥

हे यजन योग्य देवगण ! आप हमारे श्रेष्ठ संरक्षण के लिए संगठित हों । हे ज्ञानी अंगिराओ ! परिश्रमपूर्वक आपने हमें बल प्रदान किया, आपकी मोहदृष्टि समाप्त हो गई है , आप इस समय गोरूपी ऐश्वर्य- सम्पदा को प्राप्त करें ॥२७ ॥

[अंगिराओं को भ्रम था कि केवल सूक्ष्म कणों के संयोग से यज्ञ पूरा हो जायेगा; किन्तु नाभानेदिष्ठ नाभिकीय ऊर्जा का महत्त्व समझकर उन्होंने उसे मान्यता दी, इसलिये वे गौओं (पोषक धाराओं) के अधिकारी बने ।]

[सूक्त - ६२]

[**ऋषि** - नाभानेदिष्ठ मानव । देवता - १-६ विश्वेदेवा अथवा अङ्गिरस् , ८-११ सावर्णि । **छन्द** - जगती; ५,८,९ अनुष्टुप् ; ६-७ प्रगाथ (समाबृहती, विषमा सतोबृहती) , १० गायत्री, ११ त्रिष्टुप् ।]

सूक्त क्र० ६१ में नाभानेदिष्ठ (नाभिकीय प्राण ऊर्जा) द्वारा सूर्य एवं पृथ्वी की स्थापना वाले यज्ञ में अंगिराओं (परमाणु उपकणों-सब एटामिक पार्टिकल्स) को सहयोग देने का विवरण है । अगले चरण में पृथ्वी पर विविध पदार्थों की संरचना में भी ऋषि रूप नाभानेदिष्ठ अंगिराओं को परामर्श देते हैं कि वे उन्हें साथ लेकर चलें । अंगिरादि को केवल व्यक्तिवाचक नहीं कहा जा सकता, यह तथ्य इसी सूक्त के मंत्र क्रमांक ६ से स्पष्ट होता है, जिसमें कहा गया है कि विविध रूप वाले अंगिराओं का उद्भव द्युलोक में सभी ओर हुआ । अस्तु, मंत्रार्थों को पौराणिक संदर्भ के अतिरिक्त प्रकृतिगत गूढ़ प्रयोजनों के सन्दर्भ में भी समझने का प्रयास किया जाना चाहिए । मंत्रों के अर्थ इसी क्रम से करने का प्रयास किया गया है, ताकि वे दोनों प्रसंगों में सटीक बैठें-

९४३३. ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानश।
तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥१ ॥

हे मेधायुक्त अंगिराओ ! हवियोग्य पदार्थों तथा दक्षिणा से सम्पन्न यज्ञीय सत्कर्मों से आपने इन्द्रदेव के बन्धुत्व और अमृतत्त्व को उपलब्ध किया है । उनके निमित्त आप लोगों का कल्याण हो । आप मुझ नाभानेदिष्ठ (मनु- पुत्र) को भी (यज्ञार्थ) स्वीकार करें ॥१ ॥

९४३४. य उदाजन्पितरो गोमयं वस्वृतेनाभिन्दन्परिवत्सरे वलम्।
दीर्घायुत्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥२ ॥

हे अंगिराओ ! आप हमारे पितृतुल्य हैं । आपने पूरे वर्ष ऋत (सत्य या ज्ञान) द्वारा वल (राक्षस अथवा अवरोध) का उच्छेदन करके गौ (पृथ्वी) सहित वसु (धन या आवास) उपलब्ध किया । आपको दीर्घायुष्य की प्राप्ति हो । हे मेधावी जनो ! आप मुझ मनु पुत्र को (यज्ञार्थ) स्वीकार करें ॥२ ॥

९४३५. य ऋतेन सूर्यमारोहयन् दिव्यप्रथयन्पृथिवीं मातरं वि ।
सुप्रजास्त्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥३ ॥

हे अंगिरागण ! आप लोगों ने सत्यरूप यज्ञीय तेज से दिव्य लोक में सर्व प्रेरक सूर्यदेव को प्रतिष्ठित किया और सबकी निर्मात्री पृथ्वी को यज्ञीय सत्कर्मों से समृद्ध तथा विख्यात किया है । आपकी श्रेष्ठ प्रजारूप सन्तानें हों । हे श्रेष्ठ ज्ञाननिष्ठ ऋषियो ! आप मुझ मनु पुत्र को अपने साथ लें ॥३ ॥

९४३६. अयं नाभा वदति वल्गु वो गृहे देवपुत्रा ऋषयस्तच्छृणोतन ।
सुब्रह्मण्यमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥४ ॥

हे देवपुत्र अंगिराओ ! यह नाभानेदिष्ठ आपके यज्ञ स्थल में कल्याणकारी वचनों का प्रयोग करता है; उसे आप आदर सहित सुनें । आप सभी शोभनीय ब्रह्मशक्ति को प्राप्त करें । हे मेधा- सम्पन्न श्रेष्ठ अंगिराओ ! आप मुझ मनु पुत्र को साथ में रखें ॥४ ॥

९४३७. विरूपास इदृषयस्त इद्गम्भीरवेपसः । ते अङ्गिरसः सूनवस्ते अग्नेः परि जज्ञिरे ॥५॥

ये अंगिरा विविध रूप वाले हैं, गंभीर कर्म करने वाले ये अग्नि के पुत्र हैं । ये सभी ओर प्रकट हुए हैं ॥५ ॥

९४३८. ये अग्नेः परि जज्ञिरे विरूपासो दिवस्परि ।
नवग्वो नु दशग्वो अङ्गिरस्तमः सचा देवेषु मंहते ॥६ ॥

विविध रूपों वाले अंगिरागण दिव्यलोक में अग्निदेव के द्वारा चारों ओर उत्पन्न हुए । उनमें किसी ने नौ मास और किसी ने दस मास तक यज्ञ कर्म करके तेजस्विता प्राप्त की । देवों के साथ स्थित अग्निदेव हमें श्रेष्ठ धन प्रदान करते हैं ॥६ ॥

९४३९. इन्द्रेण युजा निः सृजन्त वाघतो व्रजं गोमन्तमश्विनम् ।
सहस्रं मे ददतो अष्टकर्ण्य१: श्रवो देवेष्वक्रत ॥७ ॥

श्रेष्ठ रीति से यज्ञकर्मों के सम्पादक अंगिराओं ने इन्द्रदेव के सहयोग से अश्वों (शक्ति-कणों) और गौओं (किरणों) के समूहों को प्रकट किया । वे ऋषिगण यज्ञीय अवशिष्ट असंख्य धन हमें देकर इन्द्रादि देवताओं में अपनी यशस्विता को प्रख्यात करें ॥७ ॥

९४४०. प्र नूनं जायतामयं मनुस्तोक्मेव रोहतु । यः सहस्रं शताश्वं सद्यो दानाय मंहते ॥८॥

जो सैकड़ों अश्व और सहस्रों गौएँ शीघ्रता से ऋषिगणों को दान देने के लिए प्रेरित होते हैं, वे सावर्णि मनु जल से सिञ्चित बीज के समान कर्मफल से युक्त होकर सन्तान और धनादि से सम्पन्न हों ॥८ ॥

९४४१. न तमश्नोति कश्चन दिव इव सान्वारभम् ।
सावर्ण्यस्य दक्षिणा वि सिन्धुरिव पप्रथे ॥९ ॥

आकाश में उच्च स्थान पर तेजस्वी सूर्य सदृश स्थित उन सावर्णि मनु के समान दूसरे किसी में भी दान देने की सामर्थ्य नहीं । सावर्णि मनु का दान सर्वत्र प्रवहमान नदी के समान ही सर्वत्र प्रख्यात है अथवा विस्तृत है ॥९ ॥

९४४२. उत दासा परिविषे स्मद्दिष्टी गोपरीणसा । यदुस्तुर्वश्च मामहे ॥१० ॥

उत्तम कल्याणकारी, आज्ञाकारी प्रचुर गौओं से युक्त और सेवक के समान स्थित (विद्यमान) यदु और तुर्व नामक राजर्षि मनु के दुग्ध रूप भोजनार्थ गवादि पशु प्रदान करते हैं ॥१० ॥

९४४३. सहस्रदा ग्रामणीर्मा रिषन्मनुः सूर्येणास्य यतमानैतु दक्षिणा ।
सावर्णेर्देवाः प्र तिरन्त्वायुर्यस्मिन्नश्रान्ता असनाम वाजम् ॥११ ॥

सहस्रों गौओं के दानकर्त्ता और मनुष्यों के नायक रूप मनु का अशुभ करने में कोई सक्षम नहीं । इस मनु द्वारा प्रदत्त दक्षिणा सूर्यदेव के सहयोग से तीनों लोकों में प्रख्यात हो । सावर्णि मनु के आयुष्य को इन्द्रादि देवगण समृद्ध करें । आलस्य रहित हम श्रेष्ठ अन्न उपलब्ध करें ॥११ ॥

[सूक्त - ६३]

[**ऋषि** - गयप्लात । **देवता** - विश्वेदेवा, १५-१६ पथ्या स्वस्ति । **छन्द** - १-१४ जगती, १५ जगती अथवा त्रिष्टुप्, १६, १७ त्रिष्टुप् ।]

इस सूक्त के ऋषि प्लात के पुत्र गय हैं । व्यक्ति वाचक संज्ञा के अतिरिक्त इसका अर्थ कुछ विद्वानों ने स्तुतिपरक वाणी किया है । गय प्राण को भी कहते हैं, प्लात का अर्थ प्लवन करने वाला-उछलने वाला होता है । प्राण की गति भी उछल कर चलने वाली कही गई है । इस सूक्त के मंत्रों के अर्थ उक्त दोनों संदर्भों में सिद्ध होते हैं--

९४४४. परावतो ये दिधिषन्त आप्यं मनुप्रीतासो जनिमा विवस्वतः ।
ययातेर्ये नहुष्यस्य बर्हिषि देवा आसते ते अधि ब्रुवन्तु नः ॥१ ॥

जो इन्द्रादि देवगण सुदूर देश से आकर मनुष्यों के साथ मैत्री- भाव को सुदृढ़ करते हैं, जो देवगण यज्ञों से संतुष्ट होकर विवस्वान् के पुत्र मनु की मनुष्यादि सन्तानों को धारण करते हैं, जो देवगण नहुष पुत्र ययाति राजा (अथवा प्रयत्नरत मनुष्यों) के यज्ञ में आसनों पर विराजमान होते हैं , वे हमें ऐश्वर्य- सम्पदा प्रदान करके सम्माननीय बनाएँ और हमारी प्रगति करें ॥१ ॥

[वैदिक पर्यायवाची कोश में नहुष शब्द मनुष्य का पर्यायवाची कहा गया है ।]

९४४५. विश्वा हि वो नमस्यानि वन्द्या नामानि देवा उत यज्ञियानि वः ।
ये स्थ जाता अदितेरद्भ्यस्परि ये पृथिव्यास्ते म इह श्रुता हवम् ॥२ ॥

हे देवगण ! आपके सम्पूर्ण नाम नमनयोग्य-स्तुतियोग्य हैं तथा आपके सभी अंग यजनीय हैं । जो आप द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवी से प्रकट हुए हैं , वे आप यज्ञ में आकर हमारे आवाहन को सुनें ॥२ ॥

९४४६. येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः ।
उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनु मदा स्वस्तये ॥३ ॥

सभी की निर्मात्री पृथ्वी जिन देवताओं के निमित्त मधुर दूध (जल) प्रवाहित करती है । जिनके निमित्त अविनाशी और मेघों से आच्छादित अन्तरिक्ष अमृत को धारण करता है । स्तुत्य यज्ञीय कर्मों से अति सामर्थ्यवान् वृष्टि के आश्रय, उत्तम कर्मा उन अदिति के पुत्र देवों की स्तुति करें ॥३ ॥

९४४७. नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः ।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥४ ॥

कर्त्तव्यनिष्ठ मनुष्यों के निरीक्षण के लिए जो सदा जागरूक रहते हैं, वे तेजस्वी देवगण उपासना एवं स्तुतियों से सर्वत्र पूज्यास्पद होकर महिमामय अमृत पद को प्राप्त करते हैं । ज्योतिर्मय रथ से युक्त विघ्नरहित और पापरहित ये देवगण द्युलोक के उच्चस्थान पर लोगों के मंगल के लिए निवास करते हैं ॥४ ॥

९४४८. **सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम् ।**
ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये ॥५ ॥

अपनी तेजस्विता से प्रतिष्ठित और विकसित जो देवगण हविष्यान्न सेवन हेतु यज्ञ में उपस्थित होते हैं, और जो पराभवरहित होकर द्युलोक में निवास करते हैं; उन महिमामय देवों और उनकी जननी अदिति के मंगल के निमित्त श्रेष्ठ हविष्यान्न और विनम्र स्तुतियाँ समर्पित करें ॥५ ॥

९४४९. **को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यति ष्ठन ।**
को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥६ ॥

हे देवशक्तियो ! हमारे अतिरिक्त कौन साधक आपकी स्तुति करने में सक्षम हो सकता है, जिन पर आप स्नेहवश कृपा करते हैं ? हे ज्ञान- सम्पन्न देवो ! जो यज्ञीय सत्कर्म पाप से बचाकर हमारे लिये परम सुखकर और कल्याणमय हैं, उस यज्ञ को हमारे अतिरिक्त कौन स्तुतियों और आहुतियों से सुशोभित करते हैं ? ॥६ ॥

९४५०. **येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः ।**
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥७ ॥

वैवस्वत मनु ने अग्नि को प्रज्वलित करके श्रद्धायुक्त मन से सात ऋत्विग्गणों के साथ जिन देवताओं के निमित्त श्रेष्ठ हविर्द्रव्यों को समर्पित किया, वे अदिति पुत्र हमें अभय और सुख प्रदान करें तथा हमारे मंगल के निमित्त हमारे गन्तव्य मार्गों को सुगम बनाएँ ॥७ ॥

९४५१. **य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः ।**
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥८ ॥

श्रेष्ठ ज्ञाननिष्ठ और मननीय देवगण स्थावर और जङ्गम सभी लोकों के अधीश्वर हैं । हे देवशक्तियो ! आप हमारे कल्याणमय सुख के लिये सभी प्रकार के ज्ञात और अज्ञात मानसिक पापकर्मों से हमें संरक्षित करें ॥८ ॥

९४५२. **भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेंऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् ।**
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥९ ॥

पापों के मुक्तिदाता, सुखदायक इन्द्रदेव को हम संग्राम में शत्रुओं से संरक्षण के लिए आवाहित करते हैं । श्रेष्ठ कर्मशील, दैवी गुणों से युक्त मनुष्यों तथा अग्नि, वरुण और भगदेवों को सहयोग के लिए हम आमंत्रित करते हैं । द्युलोक, पृथिवी और मरुद्गणों को अन्न और कल्याण के लिए आवाहित करते हैं ॥९ ॥

९४५३. **सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।**
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥१० ॥

भली प्रकार से रक्षा करने वाली, पर्याप्त विस्तार वाली, अत्यधिक विशाल, सुखदायक, श्रेष्ठ आश्रय देने वाली, निर्दोष, उत्तम पतवार वाली, बिना छिद्र वाली, मृत्युभय से बचाने वाली, दिव्य और अखण्डित द्युलोक की यज्ञीय नौका पर हम आरूढ़ हों, जिससे हमारा कल्याण हो ॥१० ॥

९४५४. विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः ।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥११ ॥

हे यजनीय देवगण ! आप संरक्षण के लिये हमें आश्वासन प्रदान करें, सर्वविनाशक दुर्गति से हमें सुरक्षित करें । हे देवगण ! आप हमारी सत्यस्वरूप आदर- भाव युक्त प्रार्थनाओं को सुनते हुए हमारे संरक्षण और कल्याण के निमित्त आगमन करें ॥११ ॥

९४५५. अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः ।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥१२ ॥

हे देवगण ! आप हमारे रोगों और उनके समान ही बाधक शत्रुओं का निवारण करें । सभी प्रकार की दानरहित बुद्धि और देवों के विरोधी शत्रुओं को दूर करें । आप धन लोलुप दुर्मति और देवों के प्रति हविष्यान्न से रहित शत्रुओं को दूर करें । हमसे सम्बन्धित शत्रुओं के बैर भाव का निवारण करें तथा हमारे कल्याण के लिए प्रचुर सुख-सम्पदा प्रदान करें ॥१२ ॥

९४५६. अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि ।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥१३ ॥

हे आदित्यो ! आप जिसे सन्मार्ग दिखाकर और पापकर्मों से विमुक्त करके कल्याणपथ पर प्रेरित करते हैं, ऐसे मुनष्य सभी प्रकार के अनिष्टों से रहित होकर प्रगतिपथ पर अग्रसर होते हैं तथा सत्यधर्माचरण द्वारा सुसन्तति और पशु आदि से सम्पन्न बनते हैं ॥१३ ॥

९४५७. यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने ।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥१४ ॥

हे देवगण ! अन्न सामग्री को प्राप्त करने के लिए आप जिस रथ को संरक्षित करते हैं; हे मरुद्‌गण ! वीरों के लिए उचित संग्राम में शत्रुओं की संचित सम्पदा की प्राप्ति के लिए आप जिस रथ को बचाते हैं; हे इन्द्रदेव ! संग्राम में गमन करते हुए उस रथ को प्रभात वेला में प्राप्त करने की कामना करें । ऐसे ध्वस्त न होने वाले रथ पर आरूढ़ होकर हम कल्याण पथ पर अग्रसर हों ॥१४ ॥

९४५८. स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्य१प्सु वृजने स्वर्वति ।
स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥१५ ॥

मार्ग, मरुस्थल, जल के बीच तथा युद्धक्षेत्र सभी हमारे लिए कल्याणप्रद हों । उस सेना के मध्य भी हमारा मंगल हो, जहाँ अस्त्रादि का प्रयोग हो रहा हो । संतान को उत्पन्न करने वाली स्त्रियों के गर्भस्थ शिशुओं तथा गृहों का भी मंगल हो । हे देवगण ! आप हमारे धनादि ऐश्वर्य लाभ के लिए मंगलमय हों ॥१५ ॥

९४५९. स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति ।
सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा ॥१६ ॥

जो पृथ्वी संग्रामगामी मनुष्यों के लिए मंगलकारिणी है तथा जो श्रेष्ठ ऐश्वर्यशालिनी होकर दूसरों के लिए सुख प्रदान करती है, ऐसी पृथ्वी हमारे घरों को भी संरक्षित करे । वही अरण्यप्रदेशों में सुरक्षा करे । हे देवों द्वारा संरक्षित पृथिवि ! आप हमारे लिए उत्तम आश्रययुक्त सिद्ध हों ॥१६ ॥

९४६०. एवा प्लतेः सूनुरवीवृधद्वो विश्व आदित्या अदिते मनीषी ।
ईशानासो नरो अमर्त्येनास्तावि जनो दिव्यो गयेन ॥१७ ॥

हे सम्पूर्ण देवगण एवं देवमाता अदिति ! ज्ञाननिष्ठ स्तोता प्लात ऋषि के पुत्र 'गय' ने आप लोगों को स्तुति प्रार्थनाओं द्वारा भली प्रकार से समृद्ध किया है । अविनाशी देवों के अनुग्रह से मनुष्य ऐश्वर्य- सम्पदा के स्वामी होते हैं । दिव्य गय, आप देवजनों की स्तुति करते हैं ॥१७ ॥

[सूक्त - ६४]

[**ऋषि** - गय प्लात । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - जगती; १२, १६, १७ त्रिष्टुप् ।]

९४६१. कथा देवानां कतमस्य यामनि सुमन्तु नाम शृण्वतां मनामहे ।
को मृळाति कतमो नो मयस्करत्कतम ऊती अभ्या ववर्तति ॥१ ॥

यज्ञ में हमारी प्रार्थना को स्वीकार करने वाले किन देवों के प्रति किस प्रकार के मननीय स्तोत्र को, किस ढंग से हम प्रस्तुत करें ? कौन देव हमारे ऊपर अनुग्रह करके हमारे लिए कल्याणकारी सुख प्रदान करेंगे ? कौन देव हमारे संरक्षणार्थ हमारे यज्ञ में उपस्थित होंगे ? ॥१ ॥

९४६२. क्रतूयन्ति क्रतवो हृत्सु धीतयो वेनन्ति वेनाः पतयन्त्या दिशः ।
न मर्डिता विद्यते अन्य एभ्यो देवेषु मे अधि कामा अयंसत ॥२ ॥

हमारी आन्तरिक विवेकबुद्धि हमें अग्निहोत्रादि कर्म करने की प्रेरणा प्रदान करती है । तेजसम्पन्न लोग देवों की कामना करते हैं, हमारी अभिलाषाएँ देवानुगामी होती हैं । उन देवों के अतिरिक्त अन्य कोई भी सुखदायक नहीं है, इन्द्रादि देवताओं में ही हमारी अभिलाषाएँ स्थित हैं ॥२ ॥

९४६३. नरा वा शंसं पूषणमगोह्यमग्निं देवेद्धमभ्यर्चसे गिरा ।
सूर्यामासा चन्द्रमसा यमं दिवि त्रितं वातमुषसमक्तुमश्विना ॥३ ॥

हे साधको ! मनुष्यों द्वारा स्तुत्य, अगम्य पूषादेव की प्रार्थना करो तथा देवों में प्रज्वलित अग्नि की स्तुति करो । आप सभी अपनी वाणी से सूर्य, चन्द्र, यम, तीनों लोकों में संव्याप्त वायु , उषा, रात्रि और अश्विनीकुमारों की स्तुति करो ॥३ ॥

९४६४. कथा कविस्तुवीरवान्कया गिरा बृहस्पतिर्वावृधते सुवृक्तिभिः ।
अज एकपात्सुहवेभिर्ऋक्वभिरहिः शृणोतु बुध्न्यो३ हवीमनि ॥४ ॥

क्रान्तदर्शी अग्निदेव किस प्रकार असंख्य स्तोताओं से युक्त होते हैं तथा किस वाणी से सम्माननीय होते हैं ? श्रेष्ठ स्तोत्र वाणियों से बृहस्पतिदेव हर्षित होकर बढ़ते हैं । अजएकपात् और अहिर्बुध्न्य देवता हमारे आवाहन काल में हमारे श्रेष्ठ मंत्रयुक्त स्तोत्रों का, हर्षित होकर श्रवण करें ॥४ ॥

९४६५. दक्षस्य वादिते जन्मनि व्रते राजाना मित्रावरुणा विवाससि ।
अतूर्तपन्थाः पुरुरथो अर्यमा सप्तहोता विषुरूपेषु जन्मसु ॥५ ॥

हे अदिति (अखण्ड मातृ ऊर्जा-मदर फार्म आफ कास्मिक एनर्जी) ! दक्ष (सृजन में कुशल आद्य शक्ति प्रवाह) के जन्म के समय आप प्रकाशमान मित्रावरुण की सेवा करती हैं । विविध प्रकार के स्वरूपों में जन्म लेने

वाले सप्तहोता (सप्त वर्णयुक्त) अर्यमा (प्रकाश कण-फोटांस या सूर्य) अविचलित मार्ग से चलने वाले सुख-साधनों से युक्त रथ से सम्पन्न होते हैं ॥५ ॥

[अधिकांश आचार्य अदिति का अर्थ पृथ्वी एवं दक्ष का सूर्य अर्थ करते हैं। सूर्य के सृजन में पृथ्वी का योग युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। फिर मंत्र में क्रिया रूप में 'करती हो' सतत चलने वाली प्रक्रिया का द्योतक है। अदिति उत्पादक आदि ऊर्जा, दक्ष पदार्थ निर्माण में कुशल आद्य शक्ति प्रवाह के रूप में मान्य हैं। मित्र एवं वरुण, ऋण एवं धन प्रभारयुक्त उपकण (सब पार्टिकल्स) हैं। उनके संयोग से निर्मित फोटांस प्रकाशकण अर्यमा हैं। वे सप्तवर्ण वाले विविध रूपों में सीधे मार्ग से चलने वाले हैं। निरुक्त में अर्यमा को सूर्य कहा है। सूर्य प्रकाश कणों का जन्मदाता है। यह प्रक्रिया प्रकृति में सतत चल रही है।]

९४६६. ते नो अर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः ।
सहस्रसा मेधसाताविव त्मना महो ये धनं समिथेषु जभ्रिरे ॥६ ॥

इन्द्रदेव के जो अश्व संग्राम काल में शत्रुओं के विशाल धन को स्वयमेव वहन करते हैं, जो यज्ञ काल में सदैव सहस्रों ऐश्वर्य प्रदान करते हैं और जो कुशल अश्वों के समान शीघ्र गति से पद-निक्षेप करते हैं, वे सभी हमारे आवाहन को सुनें। हमारे आमन्त्रण को वे कभी अस्वीकार नहीं करेंगे ॥६ ॥

[विविध देवताओं के शक्ति- प्रवाहों को 'अश्व' संबोधन दिया गया है। उन चेतना युक्त शक्ति- प्रवाहों से सदुद्देश्य के लिए सहयोग करने की प्रार्थना की गयी है।]

९४६७. प्र वो वायुं रथयुजं पुरन्धिं स्तोमैः कृणुध्वं सख्याय पूषणम् ।
ते हि देवस्य सवितुः सवीमनि क्रतुं सचन्ते सचितः सचेतसः ॥७ ॥

हे स्तोतागण ! आप रथयोजक वायु , विपुल कर्मकर्त्ता इन्द्रदेव और पूषादेव की श्रेष्ठ स्तुति करके अपनी मैत्री के लिए उन्हें आमन्त्रित करो। वे सभी समान मनों से युक्त होकर सर्वप्रेरक सवितादेव के यज्ञ में, प्रभातवेला में आकर विराजमान होते हैं ॥७ ॥

९४६८. त्रिः सप्त सस्रा नद्यो महीरपो वनस्पतीन्पर्वताँ अग्निमूतये ।
कृशानुमस्तॄन्तिष्यं सधस्थ आ रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे ॥८ ॥

तीन (द्यु, अन्तरिक्ष एवं भूलोक में) और सतत संचरित सात प्रवाह (अथवा २१ नदियाँ), सतत संचरित सात महासागर, वनस्पतियों, पर्वतों, अग्नि, कृशानु नामक सोमपालक गन्धर्व, वाण चालक अनुचर गन्धर्वों, पुष्य नक्षत्र, हविर्भाग योग्य रुद्र, रुद्रगणों में श्रेष्ठ रुद्र को हम यज्ञीय संरक्षण के लिए आवाहित करते हैं ॥८ ॥

[प्रकृति में चलने वाले पोषक यज्ञीय प्रवाह के सहयोग में उसमें कार्यरत विविध दिव्य प्रवाहों को आवाहित किया जा रहा है। मंत्र का भाव देखते हुए 'त्रिसप्त सस्रा नद्यः' का अर्थ केवल नदियों तक सीमित किया जाना समीचीन नहीं लगता।]

९४६९. सरस्वती सरयुः सिन्धुरूर्मिभिर्महो महीरवसा यन्तु वक्षणीः ।
देवीरापो मातरः सूदयित्न्वो घृतवत्पयो मधुमन्नो अर्चत ॥९ ॥

महती, पूजनीय और तरंगशालिनी त्रिसप्त धाराएँ हमारे संरक्षण के लिए आगमन करें। मातृ सदृश और जल प्रेरक ये सभी देवियाँ घृतवत् पुष्टिप्रद और मधु के समान पय (दूध या पोषक प्रवाह) हमें प्रदान करें ॥९ ॥

९४७०. उत माता बृहद्दिवा शृणोतु नस्त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः पिता वचः ।
ऋभुक्षा वाजो रथस्पतिर्भगो रण्वः शंसः शशमानस्य पातु नः ॥१० ॥

तेजस्विनी देवमाता हमारे निवेदन को सुनें, देवपिता त्वष्टा अपने पुत्र देवों- देवपत्नियों के साथ हमारे वचनों के अभिप्राय को समझें। इन्द्र, वाज, रथपति भग एवं स्तुत्य मरुद्गण हम स्तोताओं का संरक्षण करें ॥१० ॥

९४७१. रण्वः संदृष्टौ पितुमाँ इव क्षयो भद्रा रुद्राणां मरुतामुपस्तुतिः ।
गोभिः ष्याम यशसो जनेष्वा सदा देवास इळया सचेमहि ॥११ ॥

दर्शन में मनोहारी मरुद्‌गण अन्नादि से परिपूर्ण आवासगृह के समान हैं । रुद्रपुत्र मरुद्‌गणों की प्रशंसनीय प्रार्थना अतिकल्याणप्रद होती है, मनुष्यों में हम गवादि पशुधन से युक्त होकर यशस्वी बनें । हे देवगण ! इस प्रकार हम सदैव अन्न आदि से सम्पन्न बनें ॥११ ॥

९४७२. यां मे धियं मरुत इन्द्र देवा अददात वरुण मित्र यूयम् ।
तां पीपयत पयसेव धेनुं कुविद्गिरो अधि रथे वहाथ ॥१२ ॥

हे मरुद्‌गण, इन्द्र, देववृन्द, वरुण और मित्रगण ! जैसे गाय दूध से परिपूर्ण रहती है, वैसे ही आप हम लोगों के सुकृत को अभीष्ट फलों से युक्त करें । स्तोत्र को सुनकर रथारूढ़ होकर आप लोग हमारे यज्ञ में पधारे हैं ॥१२ ॥

९४७३. कुविदङ्ग प्रति यथा चिदस्य नः सजात्यस्य मरुतो बुबोधथ ।
नाभा यत्र प्रथमं संनसामहे तत्र जामित्वमदितिर्दधातु नः ॥१३ ॥

हे मरुद्‌गणो ! आपने इससे पूर्व अनेक बार हमारे बन्धुत्व को स्थापित किया है । जिस नाभिरूप यज्ञ स्थल पर सबसे पहले हम आपकी अर्चना करें, वहाँ देवमाता अदिति हमें मनुष्यों के साथ हमारे बन्धुत्व को प्रगाढ़ करें ॥

९४७४. ते हि द्यावापृथिवी मातरा मही देवी देवाञ्जन्मना यज्ञिये इतः ।
उभे बिभृत उभयं भरीमभिः पुरू रेतांसि पितृभिश्च सिञ्चतः ॥१४ ॥

सम्पूर्ण विश्व के निर्माणकर्त्ता, महिमामय, दीप्तिमान् और यजन योग्य द्यावा- पृथिवी प्रकट होने के साथ ही इन्द्रादि देवों को प्राप्त करते हैं । दोनों द्युलोक और पृथिवीलोक अनेक प्रकार के भरण-पोषणयुक्त अन्न जल से देवों और मनुष्यों को पोषित करते हैं । पालक देवों के सहयोग से विपुल तेज का सिंचन होता है ॥१४ ॥

९४७५. वि षा होत्रा विश्वमश्नोति वार्यं बृहस्पतिररमतिः पनीयसी ।
ग्रावा यत्र मधुषुदुच्यते बृहदवीवशन्त मतिभिर्मनीषिणः ॥१५ ॥

जो वाणी सभी को बुलाने का माध्यम है, वह सभी श्रेष्ठ ऐश्वर्यों को संव्याप्त करती है, जो महान् गुणों की पालक, स्तुतियुक्त होकर देवों के निमित्त स्तोत्र प्रकट करती है, जहाँ सोम का अभिषवण करने वाली शिला भी सुशोभित होती है, ऐसे स्तवनीय यज्ञ में स्तोता लोग अपनी प्रार्थनाओं से देवताओं को यज्ञोन्मुख बनाते हैं ॥१५ ॥

९४७६. एवा कविस्तुवीरवाँ ऋतज्ञा द्रविणस्युर्द्रविणसश्चकानः ।
उक्थेभिरत्र मतिभिश्च विप्रोऽपीपयद्गयो दिव्यानि जन्म ॥१६ ॥

इस प्रकार क्रान्तदर्शी बहुस्तुति युक्त, यज्ञ-विशेषज्ञ, पशु आदि ऐश्वर्य की कामना करने वाले, ज्ञाननिष्ठ ऋषि 'गय' ने श्रेष्ठ वचनों और स्तुतियों से दिव्य देवों का स्तवन किया ॥१६ ॥

९४७७. एवा प्लतेः सूनुरवीवृधद्वो विश्व आदित्या अदिते मनीषी ।
ईशानासो नरो अमर्त्येनास्तावि जनो दिव्यो गयेन ॥१७ ॥

हे देवगण एवं देवमाता अदिते !ज्ञाननिष्ठ, ऋतज्ञ स्तोता प्लात ऋषि के पुत्र गय ने स्तुतियों से आपको संवर्द्धित किया ।देवों के अनुग्रह से मनुष्य ऐश्वर्य सम्पन्न बनते हैं । इसीलिए गय ने आप दिव्यजनों की स्तुति की ॥१७ ।

[सूक्त - ६५]

[ऋषि - वसुकर्ण वासुक्र । देवता - विश्वेदेवा । छन्द - जगती, १५ त्रिष्टुप् ।]

९४७८. अग्निरिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा वायुः पूषा सरस्वती सजोषसः ।
आदित्या विष्णुर्मरुतः स्वर्बृहत् सोमो रुद्रो अदितिर्ब्रह्मणस्पतिः ॥१ ॥

अग्नि, इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा, वायु , पूषा, सरस्वती, आदित्यगण, विष्णु, मरुद्गण, स्वर्ग, सोम, रुद्र, अदिति और ब्रह्मणस्पति ये सभी देव परस्पर संगठित होकर अपनी महिमा से इस महान् अन्तरिक्ष को समृद्ध करते हैं ॥१ ॥

९४७९. इन्द्राग्नी वृत्रहत्येषु सत्पती मिथो हिन्वाना तन्वा३ समोकसा ।
अन्तरिक्षं मह्या पप्रुरोजसा सोमो घृतश्रीर्महिमानमीरयन् ॥२ ॥

इन्द्र और अग्निदेव सज्जनों के संरक्षक हैं । वे संग्रामकाल में संयुक्त होकर अपनी शारीरिक सामर्थ्य से शत्रुओं को विनष्ट करते हैं तथा व्यापक अन्तरिक्ष को अपने तेज से परिपूर्ण करते हैं । तेजस्वी सोम से उनका बल बढ़ता है ॥२ ॥

९४८०. तेषां हि मह्ना महतामनर्वणां स्तोमाँ इयर्म्यृतज्ञा ऋतावृधाम् ।
ये अप्सवमर्णवं चित्रराधसस्ते नो रासन्तां महये सुमित्र्याः ॥३ ॥

महानतम, अपराजेय और ऋत (सत्य या यज्ञ) के वर्द्धक उन देवताओं के निमित्त हम यज्ञवेत्ता स्तुतिवाणी का प्रयोग करते हैं । अति आश्चर्यप्रद, ऐश्वर्य- अधिपति जो देव जल बरसाते हैं, वे ही श्रेष्ठ मित्ररूप देवता हमें ऐश्वर्य प्रदान करके श्रेष्ठता प्रदान करें ॥३ ॥

९४८१. स्वर्णरमन्तरिक्षाणि रोचना द्यावाभूमी पृथिवीं स्कम्भुरोजसा ।
पृक्षा इव महयन्तः सुरातयो देवाः स्तवन्ते मनुषाय सूरयः ॥४ ॥

सबके नायक सूर्य, आकाशस्थ ग्रहों, नक्षत्रों, तेज, द्युलोक, पृथिवीलोक और व्यापक पृथ्वी को उन्हीं देवों ने स्वकीय सामर्थ्य से यथास्थान स्थित किया है । धनदाताओं के समान ही साधकों को श्रेष्ठदान द्वारा ये देव मनुष्यों में श्रेष्ठ बनाते हैं, इसीलिए इनकी प्रार्थना की जाती है ॥४ ॥

९४८२. मित्राय शिक्ष वरुणाय दाशुषे या सम्राजा मनसा न प्रयुच्छतः ।
ययोर्धाम धर्मणा रोचते बृहद् ययोरुभे रोदसी नाधसी वृतौ ॥५ ॥

दानी मित्र और वरुण देव को हविष्यान्न समर्पित करें । ये दोनों सम्राट् मित्र और वरुणदेव कभी मानसिक त्रुटि नहीं करते, इनके धाम लोक कल्याणकारी सत्कर्मों से प्रकाशित हो रहे हैं । दोनों द्यावा-पृथिवी इनके समक्ष याचक के समान स्थित हैं ॥५ ॥

९४८३. या गौर्वर्तनिं पर्येति निष्कृतं पयो दुहाना व्रतनीरवारतः ।
सा प्रब्रुवाणा वरुणाय दाशुषे देवेभ्यो दाशद्धविषा विवस्वते ॥६ ॥

मार्ग स्वयं पार करने वाली यह दुधारूगौएँ स्तुतियों से प्रभावित होकर (दूध देकर) हमारे यज्ञ को परिपूर्ण करती हैं । हमारे द्वारा प्रशंसित ये गौएँ, दाता वरुणदेव एवं इतरदेवगणों को यजनीय पदार्थ प्रदान करें तथा हम देवत्त्व संवर्द्धक लोकसेवियों को संरक्षण प्रदान करें ॥६ ॥

९४८४. दिवक्षसो अग्निजिह्वा ऋतावृध ऋतस्य योनिं विमृशन्त आसते ।
द्यां स्कभित्व्य१प आ चक्रुरोजसा यज्ञं जनित्वी तन्वी३ नि मामृजुः ॥७ ॥

जो देव आत्म तेज से आकाश में संव्याप्त हैं, अग्निज्वाला रूपी जिह्वायुक्त एवं यज्ञ संवर्द्धक हैं, वे यज्ञस्थल में अपने-अपने निर्धारित स्थानों पर विराजमान होते हैं । वे अन्तरिक्ष को धारण करके अपने तेजस्वी बल से अप् (गति अथवा जल) चक्र को चलाते हैं और यजनीय हविष्यान्न से अपने शरीर को सुशोभित करते हैं ॥७ ॥

९४८५. परिक्षिता पितरा पूर्वजावरी ऋतस्य योना क्षयतः समोकसा ।
द्यावापृथिवी वरुणाय सव्रते घृतवत्पयो महिषाय पिन्वतः ॥८ ॥

सर्वव्यापी, सबके माता-पिता स्वरूप, सर्वप्रथम उत्पन्न, सहयोग भाव से रहने वाले द्युलोक और पृथिवीलोक दोनों ही यज्ञस्थल में रहते हैं । दोनों ही समान मन से युक्त होकर अति वन्दनीय वरुणदेव की प्रसन्नता के लिए घृतवत् पय स्रवित करते हैं ॥८ ॥

९४८६. पर्जन्यावाता वृषभा पुरीषिणेन्द्रवायू वरुणो मित्रो अर्यमा ।
देवाँ आदित्याँ अदितिं हवामहे ये पार्थिवासो दिव्यासो अप्सु ये ॥९ ॥

मेघ और वायु ये दोनों अभीष्ट कामनाओं के वर्षक और जल के धारणकर्त्ता हैं । इन्द्र, वायु, वरुण, मित्र, अर्यमा, अदितिपुत्र तथा आदित्य देवों को हम आवाहित करते हैं; जो देवता पृथ्वी, द्युलोक और अन्तरिक्ष लोक में प्रकट हुए हैं, उनका भी हम आवाहन करते हैं ॥९ ॥

९४८७. त्वष्टारं वायुमृभवो य ओहते दैव्या होतारा उषसं स्वस्तये ।
बृहस्पतिं वृत्रखादं सुमेधसमिन्द्रियं सोमं धनसा उ ईमहे ॥१० ॥

हे ऋभुगण ! जो सोमदेव आपके कल्याण के लिए त्वष्टा, वायु आदि देवों को आमन्त्रित करने वाली देवी उषा के समीप जाते हैं तथा जो बृहस्पति, श्रेष्ठ ज्ञानवान् और वृत्रहन्ता इन्द्रदेव के समीप जाते हैं; उन इन्द्रदेव की तुष्टि के लिए सोमदेव से हम ऐश्वर्य की कामना करते हैं ॥१० ॥

९४८८. ब्रह्म गामश्वं जनयन्त ओषधीर्वनस्पतीन्पृथिवीं पर्वताँ अपः ।
सूर्यं दिवि रोहयन्तः सुदानव आर्या व्रता विसृजन्तो अधि क्षमि ॥११ ॥

देवताओं ने अन्न, गौ, अश्व, ओषधि, वनस्पतियों, व्यापक धरती, पर्वतों और जल को उत्पन्न किया है । वे ही आकाश में सूर्यदेव को स्थापित करने वाले हैं । श्रेष्ठ दानदाता ये देवगण भूलोक में सभी स्थानों पर विद्यमान हैं । उनके द्वारा ही श्रेष्ठ हितकारी यज्ञादि सत्कर्मों का प्रसार हुआ है । उनसे हम धन की कामना करते हैं ॥११ ॥

९४८९. भुज्युमंहसः पिपृथो निरश्विना श्यावं पुत्रं वध्रिमत्या अजिन्वतम् ।
कमद्युवं विमदायोहथुर्युवं विष्णाप्वं१ विश्वकायाव सृजथः ॥१२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने भुज्यु को (जो समुद्र में गिरे हुए थे) बचाकर विपत्ति का निवारण किया और वध्रिमती को श्याव नामक पुत्रदान दिया । आपने विमद ऋषि को कमद्यु नामक श्रेष्ठ भार्या प्रदान की तथा विश्वक ऋषि को विष्णाप्व नामक पुत्र प्रदान किया ॥१२ ॥

९४९०. पावीरवी तन्यतुरेकपादजो दिवो धर्ता सिन्धुरापः समुद्रियः ।
विश्वे देवासः शृणवन्वचांसि मे सरस्वती सह धीभिः पुरन्ध्या ॥१३ ॥

आयुध धारी, मधुरा माध्यमिक वाणी, आकाश धारणकर्त्ता अज एकपात् सिन्धु, आकाशस्थ जल, सम्पूर्ण देवता, विभिन्न कर्मों तथा ज्ञान से सम्पन्न सरस्वती हमारे स्तोत्रों को सुनें ॥१३ ॥

९४९१. विश्वे देवाः सह धीभिः पुरन्ध्या मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
रातिषाचो अभिषाचः स्वर्विदः स्व१र्गिरो ब्रह्म सूक्तं जुषेरत ॥१४ ॥

अनेक सत्कर्मों और सद्ज्ञान से सम्पन्न मनुपुत्रों के यज्ञ में यजनयोग्य, अमरस्वरूप, सत्यज्ञाता, हवि को धारण करने वाले, यज्ञ में संयुक्त रूप से विद्यमान रहने वाले तथा सर्वज्ञ इन्द्रादि सम्पूर्ण देव हमारी प्रार्थनाओं और मंत्रोच्चारण द्वारा समर्पित उत्तम अन्न को ग्रहण करें ॥१४ ॥

९४९२. देवान्वसिष्ठो अमृतान्ववन्दे ये विश्वा भुवनाभि प्रतस्थुः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१५ ॥

वसिष्ठ कुल में उत्पन्न ऋषि ने अमरदेवों की अर्चना की । जो देवगण सभी लोकों में अपनी तेजस्विता से विद्यमान हैं, वे सभी देव हमें श्रेष्ठ यशस्वी अन्न दें । हे देवगण ! आप हमारे लिए कल्याणकारी होकर सदैव हमारा संरक्षण करें ॥१५ ॥

[सूक्त - ६६]

[**ऋषि** - वसुकर्ण वासुक्र । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - जगती, १५ त्रिष्टुप् ।]

९४९३. देवान्हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तये ज्योतिष्कृतो अध्वरस्य प्रचेतसः ।
ये वावृधुः प्रतरं विश्ववेदस इन्द्रज्येष्ठासो अमृता ऋतावृधः ॥१ ॥

विपुल अन्न सम्पन्न, ज्योति के सृजेता, श्रेष्ठ ज्ञानवान् इन्द्रदेव को ज्येष्ठ मानने वाले, अमर और यज्ञ से संवर्द्धित होने वाले देवों को हम यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए आवाहित करते हैं ॥१ ॥

९४९४. इन्द्रप्रसूता वरुणप्रशिष्टा ये सूर्यस्य ज्योतिषो भागमानशुः ।
मरुद्गणे वृजने मन्म धीमहि माघोने यज्ञं जनयन्त सूरयः ॥२ ॥

इन्द्रदेव द्वारा कर्मप्रेरित और वरुणदेव द्वारा श्रेष्ठ रीति से अनुमोदन युक्त होकर जिन देवों ने तेजस्वी सूर्यदेव का पथ-प्रशस्त किया, उन शत्रु विनाशक इन्द्रदेव से युक्त मरुद्गणों के स्तोत्रों को हम बुद्धि में धारण करते हैं । ज्ञानीजन (उनके लिए) यज्ञायोजन सम्पन्न करें ॥२ ॥

९४९५. इन्द्रो वसुभिः परि पातु नो गयमादित्यैर्नो अदितिः शर्म यच्छतु ।
रुद्रो रुद्रेभिर्देवो मृळयाति नस्त्वष्टा नो ग्नाभिः सुविताय जिन्वतु ॥३ ॥

वसुओं के सहयोग से इन्द्र हमारे घर को संरक्षित करें । आदित्य गणों के साथ देवमाता अदिति हमें सुख प्रदान करें । मरुद्गणों के साथ रुद्रदेव हमें सुखी करें । त्वष्टादेव देवपत्नियों के साथ हमें हर्ष प्रदान करें ॥३ ।

९४९६. अदितिर्द्यावापृथिवी ऋतं महदिन्द्राविष्णू मरुतः स्वर्बृहत् ।
देवाँ आदित्याँ अवसे हवामहे वसून् रुद्रान्त्सवितारं सुदंससम् ॥४ ॥

देवमाता अदिति, द्यावा-पृथिवी, महिमामय सत्यरूप अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मरुद्गण, आदित्यदेव आदि सम्पूर्णदेवों को वसु, रुद्र , सुकर्मा तथा सविता देव को हम अपने संरक्षणार्थ बुलाते हैं ॥४ ॥

९४९७. **सरस्वान्धीभिर्वरुणो धृतव्रतः पूषा विष्णुर्महिमा वायुरश्विना ।**
ब्रह्मकृतो अमृता विश्ववेदसः शर्म नो यंसन् त्रिवरूथमंहसः ॥५ ॥

ज्ञानवान् समुद्र, कर्मनिष्ठ वरुण, पूषा, महिमायुक्त विष्णु , वायु , अश्विनीदेव, स्तोताओं के अन्न प्रदाता, ज्ञानी, पापकर्मियों के विध्वंसक और अविनाशी देवगण हमें तीन खण्डों वाला दिव्य आश्रय (त्रितापों का नाश करने वाला, या आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक स्तर देने वाला या पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक में संरक्षण देने वाला) प्रदान करें ॥५ ॥

९४९८. **वृषा यज्ञो वृषणः सन्तु यज्ञिया वृषणो देवा वृषणो हविष्कृतः ।**
वृषणा द्यावापृथिवी ऋतावरी वृषा पर्जन्यो वृषणो वृषस्तुभः ॥६ ॥

यज्ञ हमारे अभीष्ट फलों को पूर्ण करें । यजनीय देवगण सुखों के प्रदाता हैं । देवगण, हविष्यान्न संग्रहकर्त्ता, यज्ञ के अधिष्ठाता, द्युलोक और पृथ्वीलोक, पर्जन्य के अधिपति तथा स्तोतागण सभी हमारी कामनाओं की पूर्ति में सहायक हों ॥६ ॥

९४९९. **अग्नीषोमा वृषणा वाजसातये पुरुप्रशस्ता वृषणा उप ब्रुवे ।**
यावीजिरे वृषणो देवयज्यया ता नः शर्म त्रिवरूथं वि यंसतः ॥७ ॥

जलवर्षक, बहुस्तुत अग्निदेव और सोमदेव की हम अन्नादि प्राप्ति के लिए प्रार्थना करते हैं । जो देव यज्ञीय कर्म में ऋत्विजों की अभीष्ट कामनाओं को पूर्ण करने वाले (कहलाकर) प्रशंसित होते हैं; ऐसे देव हमें तीन स्तरों वाला आश्रय प्रदान करें ॥७ ॥

९५००. **धृतव्रताः क्षत्रिया यज्ञनिष्कृतो बृहद्दिवा अध्वराणामभिश्रियः ।**
अग्निहोतार ऋतसापो अद्रुहोऽपो असृजन्ननु वृत्रतूर्ये ॥८ ॥

कर्त्तव्य धर्म के निर्वाह में संकल्पित, शक्तिशाली, यज्ञ को शोभायमान करने वाले, महान् दीप्तिमान् यज्ञीय कर्मों को श्रेय देने वाले, अग्नि के आवाहक, सत्यव्रती, द्रोहभाव से रहित ऐसे गुणों से सम्पन्न देवों ने वृत्रासुर संग्राम के समय अप् (जल अथवा तेज) का सृजन किया ॥८ ॥

९५०१. **द्यावापृथिवी जनयन्नभि व्रताप ओषधीर्वनिनानि यज्ञिया ।**
अन्तरिक्षं स्व१रा पप्रुरूतये वशं देवासस्तन्वी३ नि मामृजुः ॥९ ॥

देवताओं ने द्युलोक और भूलोक को लक्ष्य करके अपने शुभकर्मों द्वारा जल, ओषधि और यजनीय पलाशादि वृक्षों से परिपूर्ण वनों को प्रकट किया तथा अपने तेज से स्वर्गलोक और अन्तरिक्ष को संव्याप्त किया । उन देवताओं ने यज्ञ के साथ स्वयं को समाहित करके यज्ञ को शोभायमान किया ॥९ ॥

९५०२. **धर्तारो दिव ऋभवः सुहस्ता वातापर्जन्या महिषस्य तन्यतोः ।**
आप ओषधीः प्र तिरन्तु नो गिरो भगो रातिर्वाजिनो यन्तु मे हवम् ॥१० ॥

दिव्यलोक के धारक, श्रेष्ठ आयुधों से युक्त ऋभुदेव, विशाल शब्द ध्वनि करने वाले वायु और पर्जन्य, वनस्पति हमारी स्तुतियों को विकसित करें ।धनदाता भगदेव और अर्यमादेव हमारे यज्ञ में पधारें ॥१० ॥

९५०३. **समुद्रः सिन्धू रजो अन्तरिक्षमज एकपात्तनयित्नुरर्णवः ।**
अहिर्बुध्न्यः शृणवद्वचांसि मे विश्वे देवास उत सूरयो मम ॥११ ॥

जल से परिपूर्ण समुद्र, महानद, अन्तरिक्ष, रजयुक्त पृथ्वी, अजएकपात्, सागर, गर्जनशील मेघ तथा अहिर्बुध्न्य (अन्तरिक्षस्थ देव) और प्रज्ञावान् सभी देवगण हमारे स्तोत्रों (आवाहन) को सुनें ॥११ ॥

९५०४. स्याम वो मनवो देववीतये प्राञ्चं नो यज्ञं प्र णयत साधुया ।
आदित्या रुद्रा वसवः सुदानव इमा ब्रह्म शस्यमानानि जिन्वत ॥१२ ॥

हे देवगण ! हम मनु की सन्तान मनुष्य आपके निमित्त यज्ञीय सत्कर्मों को समर्पित करें, प्राचीनकाल से प्रचलित हमारी यज्ञीय परम्परा को आप भली प्रकार सम्पादित करें । हे आदित्यो, रुद्रो और श्रेष्ठ दानी वसुदेवो ! इन उच्चारित स्तोत्रों से आप हर्षित हों ॥१२ ॥

९५०५. दैव्या होतारा प्रथमा पुरोहित ऋतस्य पन्थामन्वेमि साधुया ।
क्षेत्रस्य पतिं प्रतिवेशमीमहे विश्वान्देवाँ अमृताँ अप्रयुच्छतः ॥१३ ॥

अग्नि और आदित्य दोनों ही सर्वश्रेष्ठ पुरोहित रूप हैं, जो देवों के आवाहन कर्त्ता हैं, उनके निमित्त हम हविष्यान्न समर्पित करते हैं । यज्ञ के श्रेष्ठ कल्याणकारी पथ का हम अनुगमन करते हैं । हम अपने समीपस्थ क्षेत्रपति और अविनाशी एवं प्रमादरहित सम्पूर्ण देवों से धन की कामना करते हैं ॥१३ ॥

९५०६. वसिष्ठासः पितृवद्वाचमक्रत देवाँ ईळाना ऋषिवत् स्वस्तये ।
प्रीता इव ज्ञातयः काममेत्यास्मे देवासोऽव धूनुता वसु ॥१४ ॥

वसिष्ठ ऋषि के वंशजों ने ऋषि वसिष्ठ के समान ही मंगलकामना से देवों का पूजन- वन्दन किया । हे देवगण ! अपने प्रिय मित्रों के समान आप यहाँ आकर संतुष्ट होते हुए हमारी आकांक्षाओं को जानकर हमें गौ आदि धन प्रदान करें ॥१४ ॥

९५०७. देवान्वसिष्ठो अमृतान्ववन्दे ये विश्वा भुवनाभि प्रतस्थुः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१५ ॥

वसिष्ठ वंशियों ने अविनाशी देवों की प्रार्थना की । जो देवगण सम्पूर्ण लोकों में अपने ज्योतिर्मय स्वरूप से स्थित हैं, वे सभी हमें श्रेष्ठ अन्न दें ।हे देवो ! आप हमारे लिए कल्याणकारी होकर सदैव हमारा संरक्षण करें ॥१५

[सूक्त - ६७]

[**ऋषि** - अयास्य आङ्गिरस । **देवता** - बृहस्पति । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

९५०८. इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ।
तुरीयं स्विज्जनयद्विश्वजन्योऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन् ॥१ ॥

हमारे पूर्वज अंगिरा ऋषियों ने सात छन्दों वाले विशाल स्तोत्र की रचना की, उनकी उत्पत्ति सत्य से हुई थी । संसार के कल्याणार्थ अयास्य ऋषि ने इन्द्रदेव को प्रशंसित करके एक पद के स्तोत्र की रचना की ॥१ ॥

९५०९. ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त ॥२ ॥

अंगिरा ऋषियों ने यज्ञ के श्रेष्ठ स्थल में जाने का निश्चय किया । वे सत्यवती, मनोभावों से सरल, दिव्य पुत्र, महाबलवान् तथा ज्ञानियों के समान आचरणनिष्ठ हैं ॥२ ॥

९५१०. हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन् ।
बृहस्पतिरभिकनिक्रदद्गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत् ।।३ ।।

बृहस्पतिदेव के मित्रों ने हंसों के समान स्वर निकाले । उनके सहयोग से बृहस्पतिदेव ने पत्थरों के बने द्वारों को खोल दिया । अन्दर अवरुद्ध गौएँ आवाज करने लगीं । वे ज्ञानी, देवजनों के प्रति श्रेष्ठ स्तोत्रों का उच्चस्वर से गान करने लगे ।।३ ।।

९५११. अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।
बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आवः ।।४ ।।

असत् (अव्यक्त) गुह्य क्षेत्र में गौएँ (प्रकाश किरणें-दिव्य वाणियाँ) छिपी हुई थीं । बृहस्पति (ज्ञान या वाणी के अधिपति) देव ने अन्धकार से प्रकाश (अज्ञान से ज्ञान) की कामना करते हुए नीचे के दो (अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी) तथा ऊपर का एक (द्युलोक), इस प्रकार तीनों द्वारों को खोलकर गौओं (किरणों या वाणियों) को प्रकट किया ।।४ ।।

९५१२. विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत् ।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ।।५ ।।

गौओं के लिए अवरोधक बल के अधोमुख पुरों (संस्थानों) का भेदन करके बृहस्पतिदेव ने एक साथ तीनों बन्धन काटकर जलाशय (मेघों या अप् प्रवाहों) से उषा, सूर्य एवं गौओं (किरणों) को एक साथ प्रकट किया । वे (बृहस्पतिदेव) विद्युत् की तरह गर्जना करने वाले अर्क (प्राण के स्रोत) को जानते हैं ।।५ ।।

९५१३. इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानां करेणेव वि चकर्ता रवेण ।
स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानोऽरोदयत्पणिमा गा अमुष्णात् ।।६ ।।

जिस 'वल' (राक्षस) ने गौओं को छिपाया था, उसे इन्द्रदेव ने हिंसक हथियार के समान अपनी तीव्र हुंकार से छिन्न-भिन्न कर दिया । मरुद्‌गणों की सहायता के इच्छुक उन्होंने पणि (वल के अनुचर) को नष्ट किया और उस असुर से चुराई गई गौओं को मुक्त किया ।।६ ।।

९५१४. स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिर्गोधायसं वि धनसैरदर्दः ।
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ।।७ ।।

बृहस्पतिदेव ने सत्यस्वरूप, मित्ररूप, तेजस्वी और ऐश्वर्ययुक्त मरुद्‌गणों के सहयोग से गौओं के अवरोधक इस वल राक्षस को विनष्ट किया । वेदज्ञान के स्वामी ने वर्षणशील मेघों द्वारा प्रज्वलित एवं गतिशील मरुद्‌गणों के सहयोग से द्रव्यों को उपलब्ध किया ।।७ ।।

९५१५. ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानास इषणयन्त धीभिः ।
बृहस्पतिर्मिथो अवद्यपेभिरुदुस्रिया असृजत स्वयुग्भिः ।।८ ।।

गौओं को उपलब्ध करके सत्यनिष्ठ मन से वे मरुद्‌गण अपने श्रेष्ठ कर्मों से बृहस्पतिदेव को गौओं के अधिपति बनाने के लिए प्रेरित हुए । बृहस्पतिदेव ने दुष्ट राक्षसों से गौओं के संरक्षणार्थ एकत्रित हुए मरुद्‌गणों के सहयोग से गौओं को विमुक्त किया ।।८ ।।

९५१६. तं वर्धयन्तो मतिभिः शिवाभिः सिंहमिव नानदतं सधस्थे ।
बृहस्पतिं वृषणं शूरसातौ भरेभरे अनु मदेम जिष्णुम् ।।९ ।।

अन्तरिक्ष में सिंह के समान बार-बार गर्जनशील, कामनाओं के वर्षक और विजयशील उन बृहस्पतिदेव को प्रोत्साहित करने वाले हम, मरुत् वीरों के युद्ध में कल्याणकारी स्तुतियों से उनकी प्रार्थना करते हैं ॥९ ॥

९५१७. यदा वाजमसनद्विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म ।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा ॥१० ॥

जिस समय बृहस्पतिदेव सभी सांसारिक अन्नों का सेवन करते हैं तथा आकाश में ऊपर जाकर उत्तम लोकों में प्रतिष्ठित होते हैं, तब बलशाली बृहस्पतिदेव को देवगण मुख (वाणी) से प्रोत्साहित करते हैं, वे विभिन्न दिशाओं में रहते हुए उन्हें उन्नतिशील बनाते हैं ॥१० ॥

९५१८. सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः ।
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद्रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ॥११ ॥

हे देवगण ! अन्न प्राप्ति के निमित्त की गई हमारी प्रार्थनाओं को आप सफलता प्रदान करें । आप अपने आश्रय से हम साधकों का संरक्षण करें, तत्पश्चात् हमारी सभी प्रकार की विपदाओं का निवारण करें । हे सम्पूर्ण विश्व को हर्षित करने वाले द्यावा-पृथिवि ! आप दोनों हमारे निवेदन के अभिप्राय को समझें ॥११ ॥

९५१९. इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य वि मूर्धानमभिनदर्बुदस्य ।
अहन्नहिमरिणात्सप्त सिन्धून्देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥१२ ॥

सर्वसमर्थ बृहस्पतिदेव ने विशाल जल भण्डार रूप मेघों के सिर को छिन्न-भिन्न किया । जल के अवरोधक शत्रुओं को विनष्ट किया । सप्तधाराओं को प्रवाहित एवं संयुक्त किया । हे द्यावा-पृथिवि ! आप देवताओं के साथ आगमन करके हमारा संरक्षण करें ॥१२ ॥

[इस सूक्त में बृहस्पतिदेव द्वारा अवरोधों-असुरों का उच्छेदन करके गौओं को प्राप्त करने का वर्णन है । बृहस्पतिदेव प्रज्ञा, ज्ञान, वाणी के अधिपति हैं । मेधा प्रयोग से पदार्थों में छिपी प्रकाश किरणें अथवा प्रकृति में छिपे ज्ञान सूत्रों को प्रकट करने का आलंकारिक वर्णन इस सूक्त में है । बृहस्पतिदेव उच्चाकाश में, भूमण्डल में तथा मानवीय काया में सभी जगह प्रकारान्तर से क्रियाशील रहते हैं । वैदिक मंत्र विभिन्न सन्दर्भों में प्रयुक्त होते हैं ।]

[सूक्त - ६८]

[**ऋषि** - अयास्य आङ्गिरस । **देवता** - बृहस्पति । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

९५२०. उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः ।
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्य१र्का अनावन् ॥१ ॥

जिस प्रकार धान्यक्षेत्र से पक्षियों को उड़ाते समय संरक्षक कृषक शब्द-ध्वनि करते हैं, जैसे मेघों का गर्जन बार-बार होता है, जैसे पर्वतों से झरने वाले झरने तथा मेघ से गिरने वाली जल धाराएँ शब्द करती हैं, उसी प्रकार ऋत्विज् लोग बृहस्पति देव की निरन्तर स्तुति करते हैं ॥१ ॥

९५२१. सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भग इवेदर्यमणं निनाय ।
जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशूँरिवाजौ ॥२ ॥

अंगिरा पुत्र बृहस्पतिदेव ने गुप्त स्थान में रहने वाली गौओं (वाणियों अथवा किरणों) को प्रकाशित किया । भगदेव के समान ही वे अपनी तेजस्विता से संव्याप्त हुए । जिस प्रकार मित्र लोग, दम्पती (स्त्री और पुरुष) के

पारस्परिक योग (मिलन) करने में सहायक होते हैं, वैसे ही उन्होंने गौओं को जन साधारण के लिए उपलब्ध कराया । हे बृहस्पतिदेव ! जिस प्रकार अश्वों (शक्ति कणों) को तेजगति में दौड़ाया जाता है, वैसे ही गौओं (पोषक किरणों या दिव्य वाणियों) को गतिशील बनाएँ ॥२ ॥

९५२२. साध्वर्या अतिथिनीरिषिराः स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः ।
बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः ॥३ ॥

कल्याणकारी दूध देने वाली, निरन्तर गतिशील, काम्य स्पृहायुक्त, श्रेष्ठ वर्णयुक्त, निन्दारहित रूपवती गौओं को बृहस्पति देव उसी प्रकार पर्वतों (गुप्त स्थानों) से शीघ्रतापूर्वक बाहर निकालें, जिस प्रकार कृषक संगृहीत धान्य से जौ को बाहर निकाल कर बोते हैं ॥३ ॥

[जौ आदि धान्य गुप्त स्थानों में संगृहीत-सुरक्षित रहता है, बोने के लिए उसे निकाला जाता है , उसी प्रकार गुप्त सूक्ष्म प्रवाहों को सृष्टि के पोषण के लिए बढ़ाने, प्रयुक्त करने के लिए प्रकट किया जाता है ।]

९५२३. आप्रुषायन्मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः ।
बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्नेव वि त्वचं बिभेद ॥४ ॥

जैसे आकाश में उल्काएँ प्रकट होती हैं , उसी प्रकार पूज्य बृहस्पति देव ऋत (सत्य या यज्ञ) के योनि (उद्‌भव स्थल) में मधुर रसों को गिराते हैं । उन्होंने मेघों से गौओं (किरणों) को मुक्त किया तथा पृथ्वी की त्वचा को इस प्रकार भेदा जैसे वर्षा की बूँदें भेदती हैं ॥४ ॥

[वर्षा की बूँदें पृथ्वी की त्वचा को भेदती हैं ; किन्तु इससे भूमि की शक्ति बढ़ती है । इसी प्रकार बृहस्पति देव दिव्य प्रवाहों को पृथ्वी तल में समाहित करते हैं ।]

९५२४. अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्नः शीपालमिव वात आजत् ।
बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः ॥५ ॥

जिस प्रकार वायु जल की पीठ पर स्थित शैवाल (काई) को दूर हटाता है, जैसे वायुदेव ही मेघों को दूर हटाते हैं , उसी प्रकार बृहस्पतिदेव ने विचारपूर्वक वलासुर के आवरण को हटाकर गौओं को बाहर निकाला ॥५ ॥

९५२५. यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद् बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः ।
दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाददाविर्निधींरकृणोदुस्रियाणाम् ॥६ ॥

बृहस्पतिदेव के अग्नितुल्य प्रतप्त और उज्ज्वल आयुध ने, जिस समय 'वल' के अस्त्र को छिन्न-भिन्न किया, उसी समय बृहस्पतिदेव ने उन गौओं को अपने अधिकार क्षेत्र में ले लिया । जैसे दाँतों द्वारा चबाये गये अन्न को जीभ प्राप्त करती है , वैसे ही पणियों का वध करके बृहस्पतिदेव ने गौसमूह को प्राप्त किया ॥६ ॥

९५२६. बृहस्पतिरमत हि त्यदासां नाम स्वरीणां सदने गुहा यत् ।
आण्डेव भित्त्वा शकुनस्य गर्भमुदुस्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत् ॥७ ॥

गुफा में छिपाकर रखी गई गौओं के रँभाने की आवाज को सुनकर बृहस्पतिदेव को गौओं की उपस्थिति का आभास हुआ । जिस प्रकार पक्षी के अण्डों को फोड़कर गर्भ रूप बच्चे बाहर आते हैं , वैसे ही बृहस्पतिदेव पर्वत (मेघों-अवरोधों) को तोड़कर गौओं (किरणों) को बाहर निकाल लाये ॥७ ॥

९५२७. अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम् ।
निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद् बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य ॥८ ॥

बृहस्पतिदेव ने पर्वतीय गुफा में बँधी हुई सुन्दर गौओं को उसी दयनीय अवस्था में देखा, जिस प्रकार न्यून जल की मात्रा में मछलियाँ व्यथित होती हैं । जैसे वृक्ष से सोमपात्र के निर्माण हेतु काष्ठ निकाला जाता है, वैसे ही बृहस्पतिदेव ने विभिन्न प्रकार के बन्धनों को तोड़कर गौओं को मुक्त किया ॥८ ॥

९५२८. **सोषामविन्दत्स स्व१: सो अग्निं सो अर्केण वि बबाधे तमांसि ।**
बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार ॥९ ॥

बृहस्पतिदेव ने गौओं की मुक्ति के लिए उषा को प्राप्त किया । उन्होंने सूर्य और अग्नि के माध्यम से अन्धकार को विनष्ट किया । जैसे अस्थि को भेदकर मज्जा प्राप्त की जाती है , वैसे ही असुर बल को भेदकर (बृहस्पतिदेव ने) गौओं (किरणों) को बाहर निकाला ॥९ ॥

९५२९. **हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद्वलो गाः ।**
अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात्सूर्यामासा मिथ उच्चरातः ॥१० ॥

जिस प्रकार हिमपात पद्मपत्रों का हरण (नाश) करता है , उसी प्रकार गौओं का अपहरण किया गया । बृहस्पतिदेव के द्वारा वलासुर से उनको मुक्त कराया गया । ऐसा कार्य किसी दूसरे द्वारा किया जाना सम्भव नहीं । सूर्य और चन्द्र दोनों ही इसका प्रमाण प्रस्तुत करते हैं ॥१० ॥

९५३०. **अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन् ।**
रात्र्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन्बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः ॥११ ॥

जिस प्रकार कृष्णवर्ण घोड़े को स्वर्ण के आभूषणों से सुशोभित किया जाता है , वैसे ही देवताओं ने द्युलोक को नक्षत्रों से विभूषित किया है । उन्होंने रात्रिकाल में अन्धकार तथा दिवस में प्रकाश को स्थापित किया । उसी समय बृहस्पतिदेव ने पर्वत को तोड़कर गौओं को प्राप्त किया ॥११ ॥

९५३१. **इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति ।**
बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स नृभिर्नो वयो धात् ॥१२ ॥

आकाश में उत्पन्न हुए बृहस्पतिदेव के निमित्त ये स्तुतिगान किये गये हैं , हम सादर उन्हें प्रणाम करते हैं । जिन के लिए नानाविध चिरपुरातन ऋचाओं को बार-बार उच्चारित किया है , वे बृहस्पतिदेव हमें गौएँ , घोड़े, वीर सन्तानें तथा सेवकों सहित अन्नादि प्रदान करें ॥१२ ॥

[सूक्त - ६९]

[**ऋषि** - सुमित्र वाध्र्यश्व । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् , १-२ जगती ।]

इस सूक्त के ऋषि वाध्र्यश्व-सुमित्र हैं । व्यक्तिरूप में वे अग्नि- उपासना के समर्थक-प्रणेता रहे हैं । विशिष्ट प्रयोगों के लिए अग्निदेव की अर्चना के समय उन्हें वाध्र्यश्व अग्नि कहा जा सकता है । दार्शनिक दृष्टि से-अग्नि का एक रूप सर्वत्रव्यापी मुक्त स्वरूप है, तो एक स्वरूप किसी कार्य या क्षेत्र विशेष में आवद्ध भी है । इसे भी वाध्र्यश्व अग्नि कह सकते हैं । इस आधार पर यज्ञकुण्ड में आवद्ध, प्राणी-शरीर में आवद्ध तथा अणु के अन्दर आबद्ध सभी अग्नियों को वाध्र्यश्व अग्नि कह सकते हैं । इनके जीव-हितकारी संस्करण को सुमित्र कहना भी युक्ति संगत है । मंत्रार्थों का अध्ययन इस दृष्टि से भी किया जा सकता है --

९५३२. **भद्रा अग्नेर्वध्र्यश्वस्य संदृशो वामी प्रणीतिः सुरणा उपेतयः ।**
यदीं सुमित्रा विशो अग्र इन्धते घृतेनाहुतो जरते दविद्युतत् ॥१ ॥

प्रशंसा योग्य अग्निदेव का दर्शन वध्र्यश्व के लिए कल्याणप्रद हो, उनका प्राकट्य कल्याणकारी हो तथा

यज्ञ की ओर आगमन सुखद हो । जिस समय सुमित्र लोग अग्नि की यज्ञकुण्ड में स्थापना करते हैं, उस समय अग्निदेव घृताहुति से प्रज्वलित होते हैं तथा हम उनकी अर्चना करते हैं ॥१ ॥

९५३३. **घृतमग्नेर्वध्र्यश्वस्य वर्धनं घृतमन्नं घृतम्वस्य मेदनम् ।**
घृतेनाहुत उर्विया वि पप्रथे सूर्य इव रोचते सर्पिरासुतिः ॥२ ॥

वाध्र्यश्व वंशज अग्निदेव घृताहुति से संवर्द्धित होते हैं, घृत ही अग्निदेव का आहार रूप है तथा वह ही उनका पोषक है । घृताहुति पाकर अग्निदेव तेजस्वी रूप में अति प्रज्वलित होते हैं तथा घृताहुति से ही अग्निदेव सूर्य सदृश प्रकाशमान होते हैं ॥२ ॥

९५३४. **यत्ते मनुर्यदनीकं सुमित्रः समीधे अग्ने तदिदं नवीयः ।**
स रेवच्छोच स गिरो जुषस्व स वाजं दर्षि स इह श्रवो धाः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार आपकी ज्वालारूपी किरणों को 'मनु' प्रदीप्त करते हैं, उसी प्रकार 'सुमित्र' भी आपको प्रदीप्त करते हैं । यह तेजस्विता नवीन है । आप धन-सम्पन्न होकर सुशोभित हों । आप हमारी प्रार्थनाओं को प्रेमपूर्वक ग्रहण करें । आप शत्रु सेना का विध्वंस करें तथा हमें अन्न युक्त यशस्विता प्रदान करें ॥३ ॥

९५३५. **यं त्वा पूर्वमीळितो वध्र्यश्वः समीधे अग्ने स इदं जुषस्व ।**
स नः स्तिपा उत भवा तनूपा दात्रं रक्षस्व यदिदं ते अस्मे ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! ऋत्विज् वध्र्यश्व ने आपको ही सर्वप्रथम हवियों से प्रज्वलित किया । आप हमारे स्तोत्रों को भी ग्रहण करें । आप हमारे निवास गृहों तथा देहों के संरक्षक बनें तथा हमारी सन्तानों को सुरक्षित करें । आपने उदार हृदय से जो हमें प्रदान किया है, उसका संरक्षण भी करें ॥४ ॥

९५३६. **भवा द्युम्नी वाध्र्यश्वोत गोपा मा त्वा तारीदभिमातिर्जनानाम् ।**
शूर इव धृष्णुश्च्यवनः सुमित्रः प्र नु वोचं वाध्र्यश्वस्य नाम ॥५ ॥

हे वाध्र्यश्व वंशज अग्निदेव ! आप यशस्वी बनकर हमारे संरक्षक बनें । हिंसक शक्तियाँ आपको पराभूत न कर सकें; क्योंकि आप स्वयं रिपुओं को पराजित करने वाले हैं । आप वीरों के समान धैर्यशाली, बलिष्ठ, शत्रुओं के पराभवकर्त्ता तथा शत्रुसंहारक हैं । वाध्र्यश्व अग्नि के नामों (विशेषणों) की घोषणा मैं 'सुमित्र' करता हूँ ॥५ ॥

९५३७. **समज्र्या पर्वत्या३वसूनि दासा वृत्राण्यार्या जिगेथ ।**
शूर इव धृष्णुश्च्यवनो जनानां त्वमग्ने पृतनायूँरभि ष्याः ॥६ ॥

हे अग्निदेव !आप पर्वतीय धन-सम्पदा को दास असुरों से जीतकर आर्य श्रेष्ठों को प्रदान करते हैं । आप शूर-वीर योद्धाओं के समान ही धैर्यवान् तथा शत्रुओं के पराभवकर्ता हैं । आप युद्ध की इच्छा से आने वाले शत्रुओं को पराभूत करें ॥६ ॥

९५३८. **दीर्घतन्तुर्बृहदुक्षायमग्निः सहस्रस्तरीः शतनीथ ऋभ्वा ।**
द्युमान् द्युमत्सु नृभिर्मृज्यमानः सुमित्रेषु दीदयो देवयत्सु ॥७ ॥

जो अग्निदेव विस्तृत तन्तुओं से युक्त (विस्तृत वंश वाले) प्रमुख दानी, सहस्र स्थानों के आच्छादन कर्त्ता, अनेक मार्गों से जाने वाले (विभिन्न रीतियों से स्थापित) , महिमामय, तेजस्वियों में तेजस्विता युक्त हैं; वे देव प्रमुख ऋत्विजों द्वारा सुशोभित होते हैं । हे अग्निदेव ! आप देवसाधक सुमित्र वंशियों के घरों को प्रज्वलित करें ॥७ ॥

९५३९. त्वे धेनुः सुदुघा जातवेदोऽसश्चतेव समना सबर्धुक्।
त्वं नृभिर्दक्षिणावद्भिरग्ने सुमित्रेभिरिध्यसे देवयद्भिः ॥८ ॥

हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! आपके समीप श्रेष्ठ . . अति सहजता से दूध देने वाली गौ है, उसका दोहन करने में कोई कठिनाई नहीं । वही आदित्य के सहयोग से अमृत के समान दूध देने वाली है । देवसाधक सुमित्रवंशीय प्रमुख ऋत्विज् दक्षिणा युक्त होकर आपको प्रदीप्त करते हैं ॥८ ॥

९५४०. देवाश्चित्ते अमृता जातवेदो महिमानं वाध्र्यश्व प्र वोचन्।
यत्सम्पृच्छं मानुषीर्विश आयन्त्वं नृभिरजयस्त्वावृधेभिः ॥९ ॥

हे सर्वज्ञ वाध्र्यश्व अग्निदेव ! आपकी महिमा का गान अमर देवगण भी करते हैं । जिस समय मनस्वी प्रजाजनों ने देवों के सहयोग से असुरता के संहारक के सम्बन्ध में आपके समीप जाकर प्रश्न किया, तो आपने नायक बनकर अपने वृद्धिकर्त्ता देवों के साथ विघ्नकारी शत्रुओं को पराजित किया ॥९ ॥

९५४१. पितेव पुत्रमबिभरुपस्थे त्वामग्ने वध्र्यश्वः सपर्यन्।
जुषाणो अस्य समिधं यविष्ठोत पूर्वां अवनोर्व्राधतश्चित् ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार पिता, पुत्र का पालन-पोषण करते हैं, वैसे ही मेरे पिता वध्र्यश्व ने अपने समीप रखकर हविष्यान्न समर्पित करके आपकी अर्चना की । हे तरुण रूप अग्निदेव ! आपने हमारे पिता वध्र्यश्व से समिधा प्राप्त करके विघ्नकारी रिपुओं को विनष्ट किया ॥१० ॥

९५४२. शश्वदग्निर्वध्र्यश्वस्य शत्रून्नृभिर्जिगाय सुतसोमवद्भिः ।
समनं चिददहश्चित्रभानोऽव व्राधन्तमभिनद्वृधश्चित् ॥११ ॥

अग्निदेव, सोम अभिषवण क्रिया करने वाले ऋत्विग्गणों के सहयोग से वध्र्यश्व के रिपुओं पर सदैव विजय प्राप्त कर रहे हैं । हे अद्‌भुत तेजस्वी अग्निदेव ! आप सावधानी से हिंसक शत्रु का दहन करते हैं । आप स्वयं तेजस्वी ज्वालाओं से युक्त होकर अनिष्टकारी शत्रुओं को नष्ट कर देते हैं ॥११ ॥

९५४३. अयमग्निर्वध्र्यश्वस्य वृत्रहा सनकात्प्रेद्धो नमसोपवाक्यः ।
स नो अजामीँरुत वा विजामीनभि तिष्ठ शर्धतो वाध्र्यश्व ॥१२ ॥

ये वध्र्यश्व अग्निदेव शत्रुनाशक और प्राचीनकाल से अति तेजस्वी तथा प्रदीप्त रूप हैं । वे नमन योग्य वचनों से स्तुत्य हैं । हे वध्र्यश्व कुल में उत्पन्न अग्निदेव ! आप हमारे विद्रोही शत्रुओं और विजातीय हिंसकों को पराजित करें ॥१२ ॥

[सूक्त - ७०]

[**ऋषि** - सुमित्र वाध्र्यश्व । **देवता** - आप्रीसूक्त (१- इध्म अथवा समिद्ध अग्नि, २- नराशंस, ३- इळ, ४- बर्हि, ५- देवी द्वार ६- उषासानक्ता, ७- दिव्य होतागण प्रचेतस् ८- सरस्वती, इळा, भारती- देवीत्रय ९- त्वष्टा, १०- वनस्पति , ११- स्वाहाकृति) । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

९५४४. इमां मे अग्ने समिधं जुषस्वेळस्पदे प्रति हर्या घृताचीम्।
वर्ष्मन्पृथिव्याः सुदिनत्वे अह्नामूर्ध्वो भव सुक्रतो देवयज्या ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप उत्तर वेदी पर प्रदत्त हमारी इस समिधा को ग्रहण करें और घृत सिंचन की आकांक्षा करें । हे श्रेष्ठ ज्ञानी अग्निदेव ! आप पृथ्वी के ऊँचे स्थान पर हमारे दिनों को श्रेष्ठ, सुखकर एवं आनन्दमय बनाने के लिए देवयज्ञ द्वारा ज्वालाओं के साथ ऊर्ध्वगामी हों ॥१ ॥

९५४५. आ देवानामग्रयावेह यातु नराशंसो विश्वरूपेभिरश्वैः ।
ऋतस्य पथा नमसा मियेधो देवेभ्यो देवतमः सुषूदत् ॥२ ॥

देवों के अग्रणी और मनुष्यों द्वारा स्तुत्य अग्निदेव विभिन्न वर्णों से युक्त अश्वों के साथ इस यज्ञ में पदार्पण करें । अतिपूजनीय देवों में प्रमुख अग्निदेव यज्ञीय मार्ग से सम्मानित होकर स्तवनों के सहयोग से देवताओं के निमित्त आहुतियों को ग्रहण करें ॥२ ॥

९५४६. शश्वत्तममीळते दूत्याय हविष्मन्तो मनुष्यासो अग्निम् ।
वहिष्ठैरश्वैः सुवृता रथेना देवान्वक्षि नि षदेह होता ॥३ ॥

हविदाता यजमान हविष्यान्न वहन करने के लिए शाश्वत अग्निदेव की प्रार्थना करते हैं कि हे अग्निदेव ! आप श्रेष्ठ अश्वों और उत्तम रथ से इन्द्रादि देवों को यज्ञ में लेकर आएँ और होता बनकर इस यज्ञ में प्रतिष्ठित हों ॥३ ॥

९५४७. वि प्रथतां देवजुष्टं तिरश्चा दीर्घं द्राघ्मा सुरभि भूत्वस्मे ।
अहेळता मनसा देव बर्हिरिन्द्रज्येष्ठाँ उशतो यक्षि देवान् ॥४ ॥

हे बर्हि नामक अग्निदेव ! देवों द्वारा सेवनीय बर्हि (यज्ञ) का विस्तार हो, इसकी कालावधि बढ़े तथा हमारे लिए श्रेष्ठ सुगन्धि उत्पन्न हो । हे देवस्वरूप अग्निदेव ! आप क्रोध भावना से रहित होकर प्रसन्नचित्त हो, आहुतियों के अभिलाषी इन्द्रादि देवों की अर्चना करें ॥४ ॥

९५४८. दिवो वा सानु स्पृशता वरीयः पृथिव्या वा मात्रया वि श्रयध्वम् ।
उशतीर्द्वारो महिना महद्भिर्देवं रथं रथयुर्धारयध्वम् ॥५ ॥

हे दिव्य द्वार (यह सम्बोधन यज्ञ के लिए ही है) ! आप दिव्यलोक के ऊँचे स्थान को स्पर्श करें तथा उन्नतशील हों । आप पृथ्वी के समान उत्पाद्यशक्ति से सम्पन्न होकर विस्तारित हों । देवाकांक्षी और रथेच्छु बनकर आप अपनी महिमा से देवों द्वारा अधिष्ठित हों तथा विहार योग्य साधनभूत रथ को धारण करें ॥५ ॥

९५४९. देवी दिवो दुहितरा सुशिल्पे उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
आ वां देवास उशती उशन्त उरौ सीदन्तु सुभगे उपस्थे ॥६ ॥

दिव्यलोक की सुन्दर और तेजस्वी पुत्री उषा तथा रात्रि यज्ञ वेदी में प्रतिष्ठित हों । हे अभिलाषिणी और श्रेष्ठ वैभव युक्त देवियो ! आपके विस्तृत और निकटस्थ स्थानों में हवि की अभिलाषा से प्रेरित देवता विराजमान हों ॥

९५५०. ऊर्ध्वो ग्रावा बृहदग्निः समिद्धः प्रिया धामान्यदितेरुपस्थे ।
पुरोहितावृत्विजा यज्ञे अस्मिन् विदुष्टरा द्रविणमा यजेथाम् ॥७ ॥

जिस समय सोमाभिषव के निमित्त पत्थर ऊपर उठाते हैं और जब महिमायुक्त अग्निदेव अति प्रदीप्त होते हैं तथा जिस समय देवों के लिए प्रीतिजनक धाम (हविर्धारक यज्ञ पात्र) यज्ञस्थल में उपस्थित किये जाते हैं , तब हे पुरोहित और ऋत्विक् - दोनों ज्ञानी पुरुषो ! इस सत्कर्मरूपी यज्ञ से आप हमें ऐश्वर्य- सम्पन्न बनाएँ ॥७ ॥

९५५१. तिस्रो देवीर्बर्हिरिदं वरीय आ सीदत चकृमा वः स्योनम्।
मनुष्वद्यज्ञं सुधिता हवींषीळा देवी घृतपदी जुषन्त ॥८ ॥

हे इडादि तीन देवियो ! आपके निमित्त ही ये सुखद आसन बिछाये गये हैं । आप इन श्रेष्ठ कुशा के आसनों पर स्थान ग्रहण करें । इडा, तेजस्विनी सरस्वती और दिव्य-स्वरूपा भारती ने जैसे मनु द्वारा सम्पादित यज्ञ में आहुतियों को ग्रहण किया था, वैसे हमारे इस यज्ञ में उत्तम रीति से, आदर भाव से प्रदत्त आहुतियों को ग्रहण करें ।

९५५२. देव त्वष्टर्यद्ध चारुत्वमानड्यदङ्गिरसामभवः सचाभूः ।
स देवानां पाथ उप प्र विद्वानुशन्यक्षि द्रविणोदः सुरत्नः ॥९ ॥

हे त्वष्टादेव ! आपने मंगलमय स्वरूप को धारण किया है । आप हम अङ्गिराओं के मित्रस्वरूप हैं । हे ऐश्वर्यदाता ! ऐसे गुणवान् आप श्रेष्ठ सम्पदाओं के स्वामी हैं । आप हविष्यात्र की अभिलाषा से देवभाग को जानते हुए देवों के निमित्त अन्न प्रदान करें ॥९ ॥

९५५३. वनस्पते रशनया नियूया देवानां पाथ उप वक्षि विद्वान्।
स्वदाति देवः कृणवद्धवींष्यवतां द्यावापृथिवी हवं मे ॥१० ॥

हे वनस्पतिदेव ! आप ज्ञानवान्-विद्वान् हैं । आप अग्नि की जिह्वा से संयुक्त होकर देवताओं के समीप हविष्यात्र पहुँचाने में सहयोग करें । अग्निदेव हव्य में सन्निहित रसों का सेवन करें तथा हमारे द्वारा प्रदत्त आहुतियों को देवों तक ले जाएँ । हमारे यज्ञ की सुरक्षा द्युलोक और पृथ्वी पर करें ॥१० ॥

९५५४. आग्ने वह वरुणमिष्टये न इन्द्रं दिवो मरुतो अन्तरिक्षात्।
सीदन्तु बर्हिर्विश्व आ यजत्राः स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! आप द्युलोक (स्वर्ग) और अन्तरिक्ष (आकाश) लोक से इन्द्र, वरुण तथा मरुत् आदि देवताओं को हमारे यज्ञ के निमित्त लेकर आएँ । सभी यज्ञाभिलाषी देवता आने पर आसनों पर विराजमान हों । वे अविनाशी देवगण स्वाहा शब्द से प्रदत्त आहुतियों द्वारा आनन्दित हों ॥११ ॥

[सूक्त - ७१]

[**ऋषि** - बृहस्पति आङ्गिरस । **देवता** - ज्ञान । **छन्द** - त्रिष्टुप्, ९ जगती ।]

इस सूक्त के ऋषि आंगिरस बृहस्पति हैं - देवता 'ज्ञान' है । बृहस्पति ज्ञान के अधिष्ठाता हैं - ब्रह्मवेत्ता हैं, इसलिए इस सूक्त में प्रारंभिक ज्ञान से लेकर ब्रह्मज्ञान तक का विवेचन किया गया है । सुपात्रों, ऋषिप्राण-अधिकारियों के माध्यम से आकाश में संव्याप्त दिव्यज्ञान के भण्डार में से दिव्य सूत्रों के अवतरण का आलंकारिक वर्णन इस सूक्त में किया गया है

९५५५. बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः ।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ॥१ ॥

ऋषि बृहस्पति स्वगत (अपने मन में) कहते हैं - प्रारम्भिक स्थिति में पदार्थों का नाम रखकर जो अभिव्यक्ति की जाती है, वह ज्ञान का सर्वप्रथम सोपान है । इनका जो शुद्ध और दोषों से रहित ज्ञान (पदार्थों का गुण धर्म आदि) है, वह गुफा (अनुभूति) में छिपा हुआ है । वह अन्तः प्रेरणा से ही प्रादुर्भूत होता है ॥१ ॥

९५५६. सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि ॥२ ॥

सूप से सत्तुओं को स्वच्छ करने के समान मेधावीजन जिस समय अपनी बुद्धि , ज्ञान की सामर्थ्य से भाषा को सुसंस्कृत करते हैं , तब मित्र, आत्मीयजन मित्रता के भावों को समझते हैं । ऐसी स्थिति में उनकी वाणी में मंगलकारी लक्ष्मी (समृद्धि बढ़ाने वाली शक्ति) का निवास होता है ॥२ ॥

[इस ऋचा में सूक्ष्म प्रवाहों से वेद मंत्रों को ग्रहण करने का सूत्र है । आकाश में अनन्त ज्ञान के नानाविध प्रवाह हैं । जैसे विविध फ्रीक्वैंसी (आवृत्ति) वाली रेडियो तरंगें हमारे आस-पास तैरती रहती हैं । उसमें से फ्रीक्वैंसी फिल्टर (शब्द छन्ने) के द्वारा वाञ्छित संदेश पृथक् करना पड़ता है । ऐसे ही मेधावी जन अपनी मानसिक क्षमता से-ज्ञान सिन्धु में से उपयुक्त अंश अलग कर लेते हैं । तब उनकी वाणी दिव्य-सम्पदा से युक्त हो जाती है ।]

९५५७. यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम् ।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्त रेभा अभि सं नवन्ते ॥३ ॥

ज्ञानी लोग श्रेष्ठ वाणी के अभिप्राय को यज्ञीय (परमार्थ परक) प्रवृत्तियों के माध्यम से ही प्राप्त (स्वीकार) करते हैं । उन्होंने तत्त्वज्ञानी ऋषियों के अन्त: करण में प्रविष्ट हुई वाणी (भाषा) को उपलब्ध किया । तत्पश्चात् उस भाषा (ज्ञान) को उपलब्ध करके उन्होंने उसे प्रसारित किया, इस प्रकार की उस वाणी (भाषा) को उन्होंने (गायत्र्यादि सात छन्दों में) स्तुतियों के रूप में प्रस्तुत किया ॥३ ॥

[सृष्टि का यज्ञीय अनुशासन चल रहा है , उसे देखकर ही द्रष्टाजन ज्ञान सूत्रों को प्राप्त करते हैं । फिर उन्हें वैखरी वाणी से छन्दोबद्ध रूप में प्रसारित करते हैं ।]

९५५८. उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं१ वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥४ ॥

(प्रकृति में अवस्थित ज्ञानगम्य गूढ़ तथ्यों को) कोई-कोई तो (स्थूल दृष्टि से) देखकर भी उनका दर्शन नहीं कर पाते (तत्त्वज्ञान नहीं जान पाते) । अन्य लोग (ऋषियों द्वारा प्रकट सूत्रों को) सुनकर भी नहीं समझ पाते; परन्तु जैसे पति के सामने पत्नी अपना रूप नहीं छिपाती , उसी प्रकार यह वाग्देवी सुपात्र के सामने अपना स्वरूप खोल देती है ॥४ ॥

[वेदज्ञान केवल बौद्धिक सामर्थ्य के सहारे ही पाया या समझा नहीं जा सकता । तप साधना से निर्मल अन्तःकरण में वह स्वयं (किसी सूत्र के सहारे) प्रकाशित होता है ।]

९५५९. उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु ।
अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम् ॥५ ॥

विद्वानों में किसी-किसी ज्ञानी को यह प्रतिष्ठा है कि वही श्रेष्ठ-शाब्दिक भावों को ग्रहण करने में सक्षम है, वाणी (वेद-ज्ञान) को प्रकट-फलित करने में उनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता । उनमें कुछ तो भाषा के फल (अर्थ) और फूल (अभिप्राय) से रहित, मात्र सुनने-अध्ययन तक उसे सीमित मान बैठते हैं , वे दूधरहित बाँझ गौ के समान ही वाणी (भाषा) से मात्र प्रपञ्च करते हैं ॥५ ॥

९५६०. यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति ।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥६ ॥

जो व्यक्ति दिव्यज्ञान की धारा के साथ मित्र भाव (आत्मीय स्नेह) त्याग देते हैं , उन्हें दिव्य वाणी में कोई उल्लेखनीय भागीदारी नहीं मिल पाती । वह जो कुछ भी सुनता है , उसके लिए सब निरर्थक होता है तथा उससे उसे सत्कर्म का मार्ग भी प्राप्त नहीं होता ॥६ ॥

९५६१. अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः ।
आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे ह्रदा इव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे ॥७ ॥

दर्शनशक्ति-सम्पन्न, श्रोत्रशक्ति युक्त, समान ज्ञान से युक्त मित्र भी मन से अनुभव जन्य ज्ञान में उसी प्रकार एक समान नहीं होते, जिस प्रकार कुछ जलाशय मुख तक गहरे जल वाले, कुछ कटि तक जल वाले तथा कुछ स्नान करने के लिए उपयुक्त होते हैं ॥७ ॥

९५६२. हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु यद् ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः ।
अत्राह त्वं वि जहुर्वेद्याभिरोहब्रह्माणो वि चरन्त्यु त्वे ॥८ ॥

जब समान योग्यता युक्त वेदज्ञ विद्वान्, हृदय से जानने योग्य (अनुभव) निरूपण के लिए एकत्रित होते हैं, उस समय किसी व्यक्ति को तो ज्ञान में अल्पज्ञ जानकर छोड़ दिया जाता है तथा कुछ स्तोत्रविद् मर्मज्ञ विद्वान् बनकर विचरण करते हैं ॥८ ॥

९५६३. इमे ये नार्वाङ्न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः ।
त एते वाचमभिपद्य पापया सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः ॥९ ॥

जो विद्वत्ता से रहित अज्ञानी मनुष्य इस लोक में वेदज्ञ विद्वानों और परलोक में देवताओं के साथ यज्ञादि सत्कर्मों से रहित हैं, जो न तो ऋत्विज् (स्तोता) हैं, न सोम यज्ञकर्त्ता हैं, वे ज्ञाननिष्ठ नहीं हो सकते । अपितु वे पापबुद्धि से (अनुभूतिरहित ज्ञान अपनाकर) वाणी से प्रपञ्च रचते हैं अथवा हल आदि (कृषि कर्म) द्वारा स्थूल श्रम के कार्यों का ताना-बाना बुनते हैं ॥९ ॥

९५६४. सर्वे नन्दन्ति यशसागतेन सभासाहेन सख्या सखायः ।
किल्बिषस्पृत्पितुषणिर्ह्येषामरं हितो भवति वाजिनाय ॥१० ॥

सभी समान विचारधारा वाले मित्र, सभा में प्रमुखता प्रदान करने वाले यशस्वी सोम (दिव्य प्रवाह) से आनन्दित होते हैं । अन्नों को देने वाले तथा पापकर्मों को इनके बीच समाप्त करने वाले सोमदेव इन मनुष्यों को शक्ति प्रदान करने के लिए सक्षम हैं ॥१० ॥

९५६५. ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु ।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः ॥११ ॥

एक स्तोता वेदमन्त्रों के यज्ञीय अनुष्ठान में विधि-विधान के प्रयोग सहित विराजमान होता है । दूसरा शक्वरी ऋचाओं में गायत्री आदि छन्दों का सामगान करता है , तीसरा ब्रह्मानामक विद्वान् प्रायश्चित्त आदि विधान की व्याख्या करता है तथा चौथा अध्वर्यु-पुरोहित यज्ञकर्म के नानाविध कार्यों का विशेष रूप से निर्वाह करता है ॥११ ॥

[सूक्त - ७२]

[**ऋषि** - बृहस्पति लौक्य अथवा बृहस्पति आङ्गिरस अथवा अदिति दाक्षायणी । **देवता** - देवगण । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

इस सूक्त के ऋषि लौक्य बृहस्पति हैं । लौक्य का अर्थ लोकविद् या लोक हितकारी होता है । ज्ञान के उद्घाटक बृहस्पति यहाँ लौक्य हैं । इस सूक्त में अखण्ड परमात्म तत्त्व (अदिति) से देवों तथा सृष्टि की उत्पत्ति का आलंकारिक वर्णन है । यदि वेदोक्त शब्दों, संबोधनों के गूढ़ अर्थ देखे जाएँ, तो सृष्टि उद्भव की वर्तमान विज्ञान-सम्मत प्रक्रिया के रहस्य उद्घाटित होते हैं-

९५६६. देवानां नु वयं जाना प्र वोचाम विपन्यया।
उक्थेषु शस्यमानेषु यः पश्यादुत्तरे युगे ॥१ ॥

हम देवों के प्रादुर्भाव का वर्णन उत्तम वाणी से करते हैं । इन उक्थों (स्तोत्रों) के प्रकट होने से बाद में आने वाले युगों का दर्शन प्राप्त होगा ॥१ ॥

[वेद में देव संबोधन ईश्वर के लिए, विद्वानों के लिये तथा प्रकृतिगत भौतिक शक्तिधाराओं के लिए प्रयुक्त हुआ है। यहाँ प्रकृतिगत सृजनात्मक शक्तिधाराओं के अर्थ में ही देव सम्बोधन प्रयुक्त हुआ है। उनके प्रभाव से क्रमशः युगों की संरचना होती है।]

९५६७. ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मार इवाधमत्। देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सदजायत ॥२ ॥

सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मणस्पति (परब्रह्म अथवा आद्य सत्ता अदिति) ने कर्मकार के समान ही इन्हें पकाया-परिपक्व किया । देवों के पूर्व अर्थात् आदि सृष्टि में अव्यक्त ब्रह्म से व्यक्त हुए नामरूपात्मक देवशक्तियों की उत्पत्ति हुई ॥२ ॥

[इस प्रक्रिया को वर्तमान विज्ञानी महाविस्फोट (विग बैंग) कहते हैं। उस प्रथम प्रक्रिया से सृजनात्मक चेतन धाराओं में देवशक्तियाँ प्रकट हुईं।]

९५६८. देवानां युगे प्रथमेऽसतः सदजायत। तदाशा अन्वजायन्त तदुत्तानपदस्परि ॥३ ॥

देवों के युग से पूर्व (आदि काल में) असत् (अव्यक्त) से सत् (अस्तित्ववान्) की उत्पत्ति हुई । इसके बाद आशा (संकल्पशील मनस्तत्व) का विकास हुआ । तब ऊपर की ओर बढ़ने वाले अथवा अपने चरणों का विस्तार करने वाले (ऊर्जा कणों) का जन्म हुआ ॥३ ॥

[कुछ आचार्यों ने 'आशा' का अर्थ दिशाएँ किया है, किन्तु दिशाएँ पृथ्वी के सापेक्ष ही होती हैं, पृथ्वी का निर्माण होने के पूर्व उनका होना युक्ति संगत नहीं लगता। इसी प्रकार यहाँ 'उत्तानपद' का अर्थ वृक्ष नहीं हो सकता; क्योंकि अगले मंत्र में उत्तानपद से पृथ्वी की उत्पत्ति कही गयी है, जो वृक्ष के संदर्भ में सटीक नहीं बैठती। इसे विकासशील प्रक्रिया ही मानना उचित है। ऊर्जाकण स्वभावतः ऊपर की ओर बढ़ते हैं। सूक्ष्मकण स्वतः अगले चरणों का विस्तार करते हुए बढ़ते हैं। अस्तु, उन्हें यह सम्बोधन देना समीचीन है।]

९५६९. भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त। अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिः परि ॥

भूः (आदि प्रवाह) से ऊर्ध्वगतिशील (सूक्ष्म ऊर्जाकणों) की संरचना हुई तथा भुवः (होने की) आशा (संकल्प शक्ति) का विकास हुआ । अदिति (अखण्ड आदि सत्ता) से दक्ष (सृजन की कुशलता युक्त प्रवाह) उत्पन्न हुए । पुनः दक्ष से अदिति (अखण्ड पृथ्वी या प्रकृति) का जन्म हुआ ॥४ ॥

[वेद के इस विवरण का समर्थन वर्तमान विज्ञान भी करता है। स्वतः सृजनात्मक प्रक्रिया से सूक्ष्मकणों के एकीकरण से सूर्य एवं पृथ्वी का निर्माण आज का विज्ञान भी मानता है।]

९५७०. अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव। तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः ॥

हे दक्ष ! आपकी दुहिता (कन्या या दक्ष की क्षमता का दोहन करने वाली प्रकृति) उत्पन्न हुई, उसी प्रक्रिया से अमृत बन्धन से बँधे देवों या अन्य नक्षत्रादि का जन्म हुआ है ॥५ ॥

[देव शक्तियाँ अनश्वर बन्धन से आबद्ध हैं। नक्षत्रादि भी अनश्वर शक्ति पारस्परिक आकर्षण (म्यूचुअल ग्रेविटेशन) से बँधे हैं।]

९५७१. यद्देवा अदः सलिले सुसंरब्धा अतिष्ठत। अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत॥

हे देवो ! जब आप इस विस्तृत सलिल (व्योम अथवा मूल अप्तत्त्व) में प्रतिष्ठित हुए, तब वहाँ आपके नर्तन से तीव्र रेणु (पदार्थकण) प्रकट हुए ॥६ ॥

[क्रियाशील अप्तत्त्व (प्लाज्मा) में देवा (सृजनशील उपकण) आकर्षण-प्रत्याकर्षण से तीव्र नर्त्तन जैसा करते हुए सेने लगे । इससे पदार्थ कणों की रचना हुई ।]

९५७२. **यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत । अत्रा समुद्र आ गूळ्हमा सूर्यमजभर्तन ।।७ ।।**

जब देवों ने गतिशील होकर भुवनों (बने हुए पदार्थों या लोकों) को पुष्ट किया; तब इस समुद्र (सूक्ष्मकणों के समुद्र अथवा व्योम) में गुह्य सूर्य स्वाभाविक ढंग से धारण किया गया ।।७ ।।

[सूक्ष्मकणों के संयोग से सूर्य का स्वाभाविक रूप से अस्तित्व में आना विज्ञान सम्मत है ।]

९५७३. **अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्व१ स्परि ।**
देवाँ उप प्रैत्सप्तभिः परा मार्ताण्डमास्यत् ।।८ ।।

अदित (अखण्ड आदि सत्ता) के शरीर से आठ पुत्र उत्पन्न हुए । वह अदिति मार्तण्ड (सूर्य) को परे (दूर आकाश में) स्थापित करके सात के साथ देवों के पास गयी ।।८ ।।

[मूल अखण्ड सत्ता को अष्ट वर्गीय कहा गया है । उसके प्राथमिक ८ वर्ग अष्टवसु कहे जाते हैं । वर्तमान विज्ञान के आधार पर मूल कण-प्रतिकण अष्टवर्गीय ही हैं । सूर्य की स्थापना के बाद प्रकृति सात के साथ पदार्थरचना में प्रवृत्त हुई । तत्वतालिका (पीरियॉडिक टेबिल) में सात वर्ग ही हैं । परमाणु में भी इलैक्ट्रांस अधिकतम सात मण्डलों (आर्बिट्स) में रह सकते हैं ।]

९५७४. **सप्तभिः पुत्रैरदितिरुप प्रैत्पूर्व्यं युगम् । प्रजायै मृत्यवे त्वत्पुनर्मार्ताण्डमाभरत् ।।९ ।।**

पूर्व (प्रारम्भिक) युग में अदिति सात पुत्रों के साथ आती हैं । हे अदिति (अखण्ड प्रकृति) ! प्रजा के सृजन तथा विनाश के क्रम में मार्तण्ड (सूर्य या महासूर्य) आपको ही परिपूर्ण करता रहता है ।।९ ।।

[सूक्त- ७३]

[**ऋषि** - गौरिवीति शाक्त्य । देवता - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

९५७५. **जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः ।**
अवर्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा ।।१ ।।

जब धारण करने वाली माता ने वीर इन्द्र को जन्म दिया, तब मरुतों ने भी उनकी प्रशंसा करते हुए कहा-आप वन्दनीय , ओजवान् तथा महास्वाभिमानी हैं । आप पराक्रम के लिए तथा शत्रु विनाश के लिए प्रचण्ड शक्ति-सम्पन्न होकर जन्मे हैं ।।१ ।।

९५७६. **द्रुहो निषत्ता पृशनी चिदेवैः पुरू शंसेन वावृधुष्ट इन्द्रम् ।**
अभीवृतेव ता महापदेन ध्वान्तात्प्रपित्वादुदरन्त गर्भाः ।।२ ।।

शत्रु विध्वंसक इन्द्रदेव के समीप अनुशासित सैन्यदल बैठा हुआ है । गतिशील मरुद्गणों ने इन्द्रदेव को अनेक स्तोत्रों से उत्साहित किया । जिस प्रकार गोष्ठ में गौएँ घिरी रहती हैं और आच्छादन के हटते ही बाहर आ जाती हैं, उसी प्रकार गर्भ अर्थात् वृष्टि-जल, व्यापक बादलों के अन्धकार के बीच से स्वयमेव बाहर आ गया ।।२ ।।

९५७७. **ऋष्वा ते पादा प्र यज्जिगास्यवर्धन्वाजा उत ये चिदत्र ।**
त्वमिन्द्र सालावृकान्त्सहस्रमासन् दधिषे अश्विना ववृत्याः ।।३ ।।

हे इन्द्रदेव ! आपके दोनों चरण महिमामय हैं । जिस समय आप आगे जाते हैं , तो ऋभु लोग अति उत्साहित होते हैं तथा जो देवगण आपके साथ हैं , वे भी प्रोत्साहित होते हैं । हे इन्द्रदेव ! आप सहस्रों वृकों को मुख में धारण करते हैं तथा अश्विनीकुमारों को भी स्फूर्तिवान् बनाते हैं ।।३ ।।

९५७८. समना तूर्णिरुप यासि यज्ञमा नासत्या सख्याय वक्षि।
वसाव्यामिन्द्र धारयः सहस्राश्विना शूर ददतुर्मघानि ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! संग्राम क्षेत्र में पहुँचने की शीघ्रता की स्थिति में भी आप यज्ञ में पहुँचते हैं , उस समय आप अश्विनीकुमारों के साथ मैत्री करते हैं । हमारे लिए आप असंख्य सम्पदाओं को धारण करते हैं । हे पराक्रमी वीर ! आपके सेवक अश्विनीकुमार भी हमें धन-सम्पदा प्रदान करें ॥४॥

९५७९. मन्दमान ऋतादधि प्रजायै सखिभिरिन्द्र इषिरेभिरर्थम्।
आभिर्हि माया उप दस्युमागान्मिहः प्र तम्रा अवपत्तमांसि ॥५॥

इन्द्रदेव यज्ञ में आनन्दित होकर गतिशील मित्रस्वरूप मरुद्‌गणों के साथ यजमान को ऐश्वर्य-सम्पदा प्रदान करते हैं । इन्द्रदेव ने यजमान के निमित्त दुष्ट दस्यु की छलपूर्ण माया को विनष्ट किया, उन्होंने जल वृष्टि की तथा अन्धकार को दूर किया ॥५॥

९५८०. सनामाना चिद् ध्वसयो न्यस्मा अवाहन्निन्द्र उषसो यथानः।
ऋष्वैरगच्छः सखिभिर्निकामैः साकं प्रतिष्ठा हृद्या जघन्थ ॥६॥

इन्द्रदेव सभी रिपुओं को समानरूप से विनष्ट करते हैं । जिस प्रकार उन्होंने उषा के शकट को विनष्ट किया, उसी प्रकार वृत्रासुर का वध किया । हे इन्द्रदेव ! आप अपने देदीप्यमान और पराक्रमी मरुद्‌गणों के सहयोग से वृत्र का संहार करते हैं । शत्रुओं के हृष्ट-पुष्ट शरीरों को भी आपने नष्ट किया ॥६॥

९५८१. त्वं जघन्थ नमुचिं मखस्युं दासं कृण्वान ऋषये विमायम्।
त्वं चकर्थ मनवे स्योनान्पथो देवत्राञ्जसेव यानान् ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! आपने ऋषियों के यज्ञ में विघ्न उत्पन्न करने वाले अथवा आपके धन को चाहने वाले नमुचि असुर को विनष्ट किया । ऋषियों के कल्याणार्थ आपने विध्वंसक नमुचि के छल-प्रपंचों को समाप्त किया । आपने देवों के मध्य जनसाधारण के लिए सुखदायी और सहज गमन योग्य पथ-प्रशस्त किया ॥७॥

९५८२. त्वमेतानि पप्रिषे वि नामेशान इन्द्र दधिषे गभस्तौ।
अनु त्वा देवाः शवसा मदन्त्युपरिबुध्नान्वनिनश्चकर्थ ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! आप इस संसार को जल अथवा तेज से संव्याप्त करते हैं । आप सम्पूर्ण विश्व के अधिपति हैं । आप अपने हाथ में वज्रास्त्र को धारण किये रहते हैं । सभी देवता आप शक्तिशाली देव की अर्चना करते हैं । आपने ही जल से भरपूर बादलों के मुख को (बरसने के लिए) अधोगामी बनाया ॥८॥

९५८३. चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्चच्छद्यात्।
पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु ॥९॥

अन्तरिक्ष में देदीप्यमान वज्रधारी इन्द्रदेव का वज्र उपासकों के लिए मधुर जल (पोषकरस) प्रेरित करता है । पृथ्वी पर प्रवहमान वही जल गौओं में दूध के रूप में और वनस्पतियों में पोषक रस के रूप में विद्यमान है ॥९॥

९५८४. अश्वादियायेति यद्वदन्त्योजसो जातमुत मन्य एनम्।
मन्योरियाय हर्म्येषु तस्थौ यतः प्रजज्ञ इन्द्रो अस्य वेद ॥१०॥

कुछ विद्वानों का कथन है कि इन्द्र की उत्पत्ति का कारण अश्व (आदित्य) है , तथापि हम तो इन्हें शक्ति से उत्पादित ही मानते हैं अथवा ये क्रोधाग्नि से उत्पन्न हुए हैं , ऐसी मान्यता है । इसीलिए वे (शत्रुओं से) संघर्ष करने के लिए तत्पर रहते हैं । इन्द्रदेव किससे उत्पन्न हुए , वस्तुत: इस तथ्य को तो वे ही जानते हैं ॥१० ॥

९५८५. वय: सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।
अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्य१स्मान्निधयेव बद्धान् ॥११ ॥

संचरणशील सूर्य-किरणें बलशाली इन्द्रदेव के समीप जाती हैं । प्रियमेध अथवा यज्ञप्रेमी ऋषि (इन्द्रदेव के प्रति) याचनारत हैं, ये देव बँधे हुओं को मुक्ति दें, अन्धकार को दूर करें तथा हमारी आँखों को दिव्य प्रकाशयुक्त बनाएँ ॥११ ॥

[सूक्त - ७४]

[**ऋषि** - गौरिवीति शाक्त्य । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

९५८६. वसूनां वा चर्कृष इयक्षन्धिया वा यज्ञैर्वा रोदस्योः ।
अर्वन्तो वा ये रयिमन्तः सातौ वनुं वा ये सुश्रुणं सुश्रुतो धुः ॥१ ॥

ऐश्वर्य दान के निमित्त इन्द्रदेव को यज्ञों द्वारा प्रेरित किया जाता है । वे द्युलोक और पृथ्वी निवासी देवताओं और मनुष्यों द्वारा आकर्षित किये जाते हैं । संग्राम क्षेत्र में धन को जीतने के लिए जो गतिशील (अश्व सदृश) हैं , उनको आकृष्ट करते हैं तथा शत्रुओं के संहार में जो सुप्रसिद्ध हैं , वे भी इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं ॥१ ॥

९५८७. हव एषामसुरो नक्षत द्यां श्रवस्यता मनसा निंसत क्षाम् ।
चक्षाणा यत्र सुविताय देवा द्यौर्न वारेभिः कृणवन्त स्वैः ॥२ ॥

इन अङ्गिराओं के आवाहन की पुकार ने आकाश को गुंजायमान कर दिया । इन्द्रदेव और अन्न के अभिलाषी देवताओं ने इच्छाशक्ति से पृथ्वी को प्राप्त किया । पृथ्वी पर पणियों द्वारा चुराई गई गौओं को देखते हुए देवताओं ने अपने कल्याणार्थ अन्तरिक्ष में सूर्य के समान ही अपने उत्तम तेज को प्रकाशित किया ॥२ ॥

९५८८. इयमेषाममृतानां गीः सर्वताता ये कृपणन्त रत्नम् ।
धियं च यज्ञं च साधन्तस्ते नो धान्तु वसव्य१मसामि ॥३ ॥

जो देवगण सबके कल्याणार्थ यज्ञों में श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, उन्हीं अविनाशी देवों की प्रार्थनाएँ की जाती हैं। वे देवगण हमारी प्रार्थनाओं और यज्ञ को सिद्ध करते हुए हमें प्रचुर मात्रा में विशिष्ट ऐश्वर्य-सम्पदा प्रदान करें ॥३ ॥

९५८९. आ तत्त इन्द्रायवः पनन्ताभि य ऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान् ।
सकृत्स्वं१ ये पुरुपुत्रां महीं सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! जो शत्रुओं का गोधन जीत लेना चाहते हैं , वे आपकी वन्दना करते हैं । यह विस्तृत भूमि एक बार उत्पन्न हुई, किन्तु बार-बार (हरीतिमा-अन्नादि) उत्पन्न करती है । जो इस महान् भूमि को सहस्र धाराओं से दुहना चाहते हैं , वे भी इन्द्रदेव की अर्चना करते हैं ॥४ ॥

९५९०. शचीव इन्द्रमवसे कृणुध्वमनानतं दमयन्तं पृतन्यून् ॥
ऋभुक्षणं मघवानं सुवृक्तिं भर्ता यो वज्रं नर्यं पुरुक्षुः ॥५ ॥

हे सत्कर्मनिष्ठ याजको ! किसी के समक्ष शीश को न झुकाने वाले, युद्धेच्छुक, शत्रुओं के पराभवकर्त्ता, महिमामय, ऐश्वर्यशाली, शोभन स्तुतियों से युक्त, विभिन्न युद्ध विद्याओं के ज्ञाता तथा मनुष्यों के कल्याणार्थ वज्रधारी इन्द्रदेव को अपने संरक्षणार्थ आवाहित करो ॥५ ॥

९५९१. यद्वावान पुरुतमं पुराषाळा वृत्रहेन्द्रो नामान्यप्राः ।
अचेति प्रासहस्पतिस्तुविष्मान्यदीमुश्मसि कर्तवे करत्तत् ॥६ ॥

शत्रुओं की नगरियों के विध्वंसक इन्द्रदेव ने जिस समय अति सामर्थ्यशाली शत्रु का वध किया, उसी समय वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ने जल से पृथ्वी को परिपूर्ण किया, तब सभी लोग इस विचारधारा से युक्त हुए कि इन्द्रदेव ही अति सामर्थ्यवान् और सबके अधिपति हैं । वे हमारी सभी कामनाओं को पूर्ण करते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - ७५]

[**ऋषि** - सिन्धुक्षित् प्रैयमेध । **देवता** - नदी समूह । **छन्द** - जगती ।]

इस सूक्त के ऋषि प्रियमेध के पुत्र सिन्धुक्षित् हैं। सिन्धुक्षित् का अर्थ होता है - जल अर्थात् रसों के नियंत्रक । शरीरस्थ रसों को नियंत्रित करने वाले ही प्रियमेध हितकारिणी बुद्धि के अनुगामी या कृपापात्र कहे जा सकते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि मंत्रार्थ प्रकारान्तर से शरीरस्थ रस-प्रवाहों को लक्ष्य करके सिद्ध हो सकते हैं, तथापि यह शोध का विषय है -

९५९२. प्र सु व आपो महिमानमुत्तमं कारुर्वोचाति सदने विवस्वतः ।
प्र सप्तसप्त त्रेधा हि चक्रमुः प्र सृत्वरीणामति सिन्धुरोजसा ॥१ ॥

हे जलदेव ! हम सेवाभावी यजमानों के घरों (यज्ञों) में आपकी श्रेष्ठ महिमा का कथन करते हैं । ये सरिताएँ सात-सात करके तीन स्थानों (पृथ्वी, आकाश, द्युलोक) से प्रवाहित होती हैं । इन प्रवाहों में सिन्धु ही सबसे ओज- सम्पन्न है ॥१ ॥

९५९३. प्र तेऽरदद्वरुणो यातवे पथः सिन्धो यद्वाजाँ अभ्यद्रवस्त्वम् ।
भूम्या अधि प्रवता यासि सानुना यदेषामग्रं जगतामिरज्यसि ॥२ ॥

हे सिन्धु ! जब आप हरियाली से परिपूर्ण प्रदेश की ओर प्रवाहित हुईं, उस समय वरुणदेव ने आपके गमनार्थ मार्ग को विस्तारित किया । आप पृथ्वी के ऊपर श्रेष्ठ मार्ग से प्रवाहित होती हैं तथा आप ही इन जीवधारी प्राणियों के जीवन की प्रमुख आधाररूपा हैं ॥२ ॥

९५९४. दिवि स्वनो यतते भूम्योपर्यनन्तं शुष्ममुदियर्ति भानुना ।
अभ्रादिव प्र स्तनयन्ति वृष्टयः सिन्धुर्यदेति वृषभो न रोरुवत् ॥३ ॥

भूमि के ऊपर गर्जनशील आपके स्वर आकाश को गुंजायमान करते हैं । आप अपनी (प्रचण्ड) लहरों से प्रवाहित होती हैं । जिस समय सिन्धु महानदी वृषभ के समान प्रचण्ड शब्द करती हुई आगमन करती है, उस समय ऐसा आभास होता है कि मानो आकाश (मेघ) से घनघोर गर्जन-तर्जन के साथ जल वर्षा हो रही हो ॥३ ॥

९५९५. अभि त्वा सिन्धो शिशुमिन्न मातरो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः ।
राजेव युध्वा नयसि त्वमित्सिचौ यदासामग्रं प्रवतामिनक्षसि ॥४ ॥

जिस प्रकार माताएँ अपने शिशु के पास जाती हैं और दुधारू गौएँ बछड़े के समीप जाती हैं । उसी प्रकार अन्य नदियाँ शब्द करती हुई सिन्धु की ओर गमन करती हैं । युद्धकर्त्ता राजा के समान ही आप सहगामिनी (सिञ्चन करने वाली) दो धाराओं को लेकर अग्रगमन करती हैं ॥४ ॥

९५९६. इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥५ ॥

हे गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री (सतलज), परुष्णी (रावी), असिक्नी (चिनाव) के साथ मरुद्वृधा (चिनाव और झेलम के मध्य में अथवा चिनाव की पश्चिम दिशा वाली मरुवर्दवन नामक सहायक नदी), वितस्ता (झेलम), सुषोमा (सोहान) और आर्जीकीया (व्यास) आदि नदियो ! आप सभी हमारे इन स्तोत्रों को सुनें ॥५ ॥

९५९७. तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या।
त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रुमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे ॥६ ॥

हे सिन्धु महानदी ! आप पहले तुष्टामा (सिन्धु की सहायक नदी) के साथ प्रवाहित हुईं। पुनः सुसर्तु, रसा और श्वेत्या (ये तीनों सिन्धु की पश्चिमी सहायक नदियाँ हैं) से सम्मिलित हुईं। आप क्रमु (कुर्रम), गोमती को कुभा (काबुल नदी) और मेहलु (सिन्धु की पश्चिमी सहायक नदी) को अपने साथ सम्मिलित करती हैं। इन सभी नदियों के साथ एक ही रथ पर सवार होकर चलती हैं ॥६ ॥

९५९८. ऋजीत्येनी रुशती महित्वा परि ज्रयांसि भरते रजांसि।
अदब्धा सिन्धुरपसामपस्तमाश्वा न चित्रा वपुषीव दर्शता ॥७ ॥

सिन्धु महानदी सरलगामिनी, श्वेतवर्णा और प्रदीप्तमती है, जो अति तीव्रगति से जल के साथ प्रवाहित होती हैं। अगाध महानदी सिन्धु, नदियों में सबसे वेगवती हैं। यह अद्भुत वेगशील घोड़ी के सदृश हैं तथा सुन्दर स्त्री के समान देखने में सुन्दर हैं ॥७ ॥

९५९९. स्वश्वा सिन्धुः सुरथा सुवासा हिरण्ययी सुकृता वाजिनीवती।
ऊर्णावती युवतिः सीलमावत्युताधि वस्ते सुभगा मधुवृधम् ॥८ ॥

सिन्धु महानदी श्रेष्ठ अश्वों, उत्तम रथ, सुन्दर वस्त्र (परिधान), सुवर्णमय आभूषण, पुण्यवती, अन्नवती तथा पशुलोमवाली है। सिन्धु नित्य तरुणी और अनेक तन्तुओं वाली है। वह श्रेष्ठ ऐश्वर्यशालिनी (सौभाग्यवती) सिन्धु मधुवर्धक पुष्पों से आच्छादित है ॥८ ॥

९६००. सुखं रथं युयुजे सिन्धुरश्विनं तेन वाजं सनिषदस्मिन्नाजौ।
महान्ह्यस्य महिमा पनस्यतेऽदब्धस्य स्वयशसो विरप्शिनः ॥९ ॥

सिन्धु महानदी सुखद और अश्वयुक्त रथ को जोतती हैं। उस रथ से वे हमें अन्नादि प्रदान करें। इस यज्ञ में सिन्धु के रथ की महान् महिमा का गान किया गया है। सिन्धु का रथ हिंसारहित, यशस्वी और महानता युक्त है ॥

[सूक्त - ७६]

[ऋषि - जरत्कर्ण ऐरावत (सर्प) । देवता - ग्रावा (प्रस्तरखण्ड) । छन्द - जगती ।]

इस सूक्त के देवता का नाम 'ग्रावा' है। ग्रावा सोम निचोड़ने में प्रयुक्त पाषाण-उपकरण को भी कहते हैं। सोमयज्ञ में उसका उल्लेख होने से ग्रावा का यही अर्थ अधिकांश आचार्यों ने लिया है, किन्तु ग्रावा के अर्थ 'पर्वत' और 'मेघ' भी हैं। ग्रावा सम्बोधन तीन प्रयोजनों से दिया जाता है, कूटने (दबाव देने) के कारण, शब्द करने तथा ग्रहण करने के कारण। सोमयज्ञ में सोमलता से सोम निचोड़ने के क्रम में ऋषि दिव्य दृष्टि से देखते हैं कि यह सोम अभिषवण की प्रक्रिया प्रकृति में भी चल रही है। उसकी अनुभूति मंत्रों में व्यक्त हुई। इसलिए ग्रावा का अर्थ इन्हीं व्यापक सन्दर्भों में लिया जाना उचित है। मंत्रार्थ में इस बात को ध्यान में रखा गया है। सुधी अध्येता भी यह दृष्टि रखेंगे, तो अधिक लाभ पा सकेंगे --

९६०१. आ व ऋञ्जस ऊर्जां व्युष्टिष्विन्द्रं मरुतो रोदसी अनक्तन।
उभे यथा नो अहनी सचाभुवा सदःसदो वरिवस्यात उद्भिदा ॥१ ॥

हे ग्रावा ! हम अन्नप्रदात्री उषा के आते ही आपको प्रयोगार्थ सज्जित करते हैं । आप सोम देकर इन्द्र, मरुद्‌गण और द्यावा-पृथिवी को अनुकूल बनाएँ । दोनों कालों (रात-दिन) में संयुक्त रहने वाली ये द्यावा-पृथिवी प्रत्येक आवास में आतिथ्य स्वीकार कर सभी क्षेत्रों को श्रेष्ठ अन्न-धनादि से परिपूर्ण करें ॥१ ॥

९६०२. तदु श्रेष्ठं सवनं सुनोतनात्यो न हस्तयतो अद्रिः सोतरि।
विदद्ध्यर्यो अभिभूति पौंस्यं महो राये चित्तरुते यदर्वतः ॥२ ॥

हे ग्रावा ! आप सोम को शोधित करके प्रस्तुत करें । हे अद्रि (भेदनशील) ! आप हाथों से धारण किये जाने वाले (सधे हुए) घोड़े के समान अनुशासित हो जाते हैं । सोम अभिषव क्रिया में संलग्न यजमान शत्रु जय की सामर्थ्य उपलब्ध करते हैं । इस सोम से अश्व (शक्ति) एवं प्रचुर ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ॥२ ॥

९६०३. तदिद्ध्यस्य सवनं विवेरपो यथा पुरा मनवे गातुमश्रेत्।
गोअर्णसि त्वाष्ट्रे अश्वनिर्णिजि प्रेमध्वरेष्वध्वराँ अशिश्रयुः ॥३ ॥

जिस प्रकार पुरातन काल में 'ऋषि मनु' के यज्ञ में सोमरस प्रस्तुत किया गया था, उसी प्रकार इस सवन (यज्ञ) में अभिषुत सोम , जल अथवा कर्म में समाविष्ट हो । गौओं (किरणों या शरीर के पोषक प्रवाहों) एवं अश्वों (इन्द्रियों अथवा शक्ति संस्थानों) को शुद्ध करने तथा त्वष्टा-पुत्रों (सृजन-सामर्थ्यों) के कार्य में इसी अविनाशी सोमरस का उपयोग किया जाता है ॥३ ॥

९६०४. अप हत रक्षसो भङ्गुरावतः स्कभायत निर्ऋतिं सेधतामतिम्।
आ नो रयिं सर्ववीरं सुनोतन देवाव्यं भरत श्लोकमद्रयः ॥४ ॥

हे ग्रावा ! आप अनिष्टकारी असुरों का संहार करें । पाप देवता 'निर्ऋति' का निवारण करें । दुर्मति को दूर हटाएँ । आप हमें सुसन्तति युक्त ऐश्वर्य प्रदान करें । देवों के लिए हर्ष प्रदायक यशस्विता से हमें सम्पन्न बनाएँ ॥४ ॥

९६०५. दिवश्चिदा वोऽमवत्तरेभ्यो विभ्वना चिदाश्वपस्तरेभ्यः।
वायोश्चिदा सोमरभस्तरेभ्योऽग्नेश्चिदर्च पितुकृत्तरेभ्यः ॥५ ॥

जो दिव्यलोक से भी अधिक तेजस्वी, सुधन्वा के पुत्र विभु से भी अधिक क्रियाशील, वायु से भी अधिक सोमरस अभिषवण क्रिया में कुशल तथा अग्नि से भी अधिक अन्न (पोषण) प्रदाता हैं , (हे स्तोता !) देवताओं की तुष्टि के लिए , ऐसे ग्रावा (सोम अभिषवण तंत्र) की अर्चना करें ॥५ ॥

९६०६. भुरन्तु नो यशसः सोत्वन्धसो ग्रावाणो वाचा दिविता दिवित्मता।
नरो यत्र दुहते काम्यं मध्वाघोषयन्तो अभितो मिथस्तुरः ॥६ ॥

यज्ञ प्रयोग में ऋत्विग्गण सभी ओर से स्तोत्र ध्वनि करते हुए शीघ्रतापूर्वक इच्छित सोमरस को निकालते हैं, उसमें यशस्वी ग्रावा हमारे लिए सोम को उपलब्ध करायें। इस दिव्य कर्म में मंत्रों के माध्यम से हमें दिव्यता-सम्पन्न बनाएँ ॥६ ॥

९६०७. सुन्वन्ति सोमं रथिरासो अद्रयो निरस्य रसं गविषो दुहन्ति ते।
दुहन्त्यूधरुपसेचनाय कं नरो हव्या न मर्जयन्त आसभिः ॥७ ॥

ये अद्रि (पाषाण, पर्वत या मेघ) सोमरस को क्षरित करते हैं । वे सोम के रस का दोहन करते हैं । वे स्तोत्र की कामना से प्रेरित होकर अग्नि-सेचन के लिए सोमरस को निकालते हैं । अभिषव कर्त्ता ऋत्विग्गण अपने मुख से अवशिष्ट सोम का पान करके पवित्रता धारण करते हैं ॥७ ॥

९६०८. एते नरः स्वपसो अभूतन य इन्द्राय सुनुथ सोममद्रयः ।
वामंवामं वो दिव्याय धाम्ने वसुवसु वः पार्थिवाय सुन्वते ॥८ ॥

हे ऋत्विजो ! हे अद्रि ! आप श्रेष्ठ अभिषव क्रिया सम्पन्न करने वाले हैं । आप इन्द्रदेव के निमित्त सोम के रस को अभिषवित करते हैं । देवलोक की प्राप्ति के लिए आप हमें सर्वश्रेष्ठ विभूतियों को प्रदान करें । हर आवास तथा पार्थिव देहधारी के लिए योग्य सम्पदाएँ उत्पन्न करें ॥८ ॥

[सूक्त - ७७]

[ऋषि - स्यूमरश्मि भार्गव । देवता - मरुद्गण । छन्द - त्रिष्टुप्, ५ जगती ।]

९६०९. अभ्रप्रुषो न वाचा प्रुषा वसु हविष्मन्तो न यज्ञा विजानुषः ।
सुमारुतं न ब्रह्माणमर्हसे गणमस्तोष्येषां न शोभसे ॥१ ॥

बादलों से झरने वाले जल के बिन्दुओं के समान ही स्तुतियों से प्रशंसित मरुद्गण धन-सम्पदा प्रदान करते हैं । हविष्यान्न युक्त यज्ञ के सदृश ही सृष्टि रचना के माध्यम मरुद्गण हैं । इन महान् शोभायुक्त मरुतों की अर्चना यथार्थ में हम नहीं कर पाये हैं, उनको शोभा देने वाले स्तोत्र भी हम नहीं रच सके हैं ॥१ ॥

९६१०. श्रिये मर्यासो अञ्जीँरकृण्वत सुमारुतं न पूर्वीरति क्षपः ।
दिवस्पुत्रास एता न येतिर आदित्यासस्ते अक्रा न वावृधुः ॥२ ॥

ये मरुत् मरणशील थे, इन्होंने श्रेयस्कर कार्यों द्वारा स्वयं को दिव्य विभूतियों से सज्जित किया । एकत्रित अनेक सी सेनाएँ भी मरुतों को पराभूत नहीं कर सकतीं । (मन्त्रों द्वारा प्रेरित न किये जाने के कारण) ये दिव्यलोक के गतिशील पुत्र, आगे नहीं बढ़ते । ये अदिति पुत्र आक्रामक क्षमता होने पर भी बढ़ते नहीं हैं ॥२ ॥

[मरुद्गण गुरुत्वाकर्षण एवं विद्युत् चुम्बकीय बलों की तरह अनन्त क्षेत्र को प्रभावित करने में समर्थ शक्ति-प्रवाह हैं; लेकिन इन्हें अपनी आवश्यकता के अनुरूप प्रयुक्त, संचरित करने के लिए प्रेरक मंत्रबल (मोटिव फार्मूला) प्रयुक्त करना आवश्यक है । विद्युत्, रेडियो तरंगों आदि सभी के लिए यह कथ्य सही है ।]

९६११. प्र ये दिवः पृथिव्या न बर्हणा त्मना रिरिच्रे अभ्रान्न सूर्यः ।
पाजस्वन्तो न वीराः पनस्यवो रिशादसो न मर्या अभिद्यवः ॥३ ॥

ये मरुद्गण अपनी महान् सामर्थ्य से द्युलोक और पृथ्वी से भी अति सामर्थ्यशाली हैं । इसी प्रकार सूर्यदेव भी अन्तरिक्ष से महिमामय हैं , वे शक्तिशाली वीरों के समान स्तोत्रों की कामना करते हैं । दुष्टों के विनाशक मनुष्यों के समान ये पराक्रमी हैं ॥३ ॥

९६१२. युष्माकं बुध्ने अपां न यामनि विथुर्यति न मही श्रथर्यति ।
विश्वप्सुर्यज्ञो अर्वागयं सु वः प्रयस्वन्तो न सत्राच आ गत ॥४ ॥

हे मरुद्गण ! आप जब आपसी प्रतिघात करने वाले जल के बहने के समान शीघ्रता से जाते हैं , तब पृथ्वी कम्पित (व्यथित) नहीं होती और न ही क्षीण होती है । यह विश्वरूप यज्ञीय हविष्यान्न आपके निमित्त ही प्रस्तुत किया जाता है । आप अन्नदाता मनुष्यों के समान ही हमारे लिए सुखदायक बनकर , संगठित होकर आएँ ॥४ ॥

९६१३. **यूयं धूर्षु प्रयुजो न रश्मिभिर्ज्योतिष्मन्तो न भासा व्युष्टिषु।**
श्येनासो न स्वयशसो रिशादसः प्रवासो न प्रसितासः परिप्रुषः ॥५ ॥

हे मरुद्‌गण ! आप सभी रश्मियों (रस्सियों या किरणों) से योजित या गतिशील बनें तथा सूर्यादि के आलोक के समान तेजस्वी, गरुड़ पक्षी के समान स्वयमेव अपनी यशस्विता को विस्तारित करने वाले, पराक्रमशाली और शत्रुओं के प्रति उग्र हों । पथिकों के समान आप सभी ओर गतिशील होकर जल वर्षा करते हैं ॥५ ॥

९६१४. **प्र यद्वहध्वे मरुतः पराकाद्यूयं महः संवरणस्य वस्वः।**
विदानासो वसवो राध्यस्याराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोत ॥६ ॥

हे मरुद्‌गण ! जिस समय आप अतिदूरस्थ देश (स्थान) से आते हैं , उस समय आप महिमामय, उत्तम, धारण-योग्य ऐश्वर्य प्रदान करते हैं । हे वसुगण ! आप विद्रोही शत्रुओं को दूर से ही गुप्त रीति से विनष्ट करें ॥६ ॥

९६१५. **य उदृचि यज्ञे अध्वरेष्ठा मरुद्भ्यो न मानुषो ददाशत्।**
रेवत्स वयो दधते सुवीरं स देवानामपि गोपीथे अस्तु ॥७ ॥

जो लोग अनुष्ठान सम्पन्न करके मरुद्‌गणों की भाँति सार्थक दान देते हैं, वे श्रेष्ठ धन, वीर सन्तानें, अन्न तथा आयुष्य प्राप्त करते हैं । ऐसे व्यक्ति वीरों के समान ही यज्ञ में स्थान पाते हैं ॥७ ॥

९६१६. **ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमा आदित्येन नाम्ना शम्भविष्ठाः ।**
ते नोऽवन्तु रथतूर्मनीषां महश्च यामन्नध्वरे चकानाः ॥८ ॥

वे मरुद्‌गण यज्ञमय हैं और यज्ञों के संरक्षक हैं । वे सबके लिए कल्याणकारी भावनाओं से युक्त होकर आदित्य नाम से सम्बोधित हैं, वे हमें संरक्षण प्रदान करें । यज्ञ स्थल में रथ द्वारा शीघ्रता से गमन की इच्छा युक्त वे मरुद्‌गण हमारी स्तुतियों को संरक्षित करें । यज्ञ में वे अभीष्ट हविष्यान्न की अभिलाषा करते हैं ॥८ ॥

[सूक्त - ७८]

[**ऋषि** - स्यूमरश्मि भार्गव । देवता - मरुद्‌गण । **छन्द** - त्रिष्टुप्, २, ५-७ जगती ।]

९६१७. **विप्रासो न मन्मभिः स्वाध्यो देवाव्यो३ न यज्ञैः स्वप्नसः ।**
राजानो न चित्राः सुसन्दृशः क्षितीनां न मर्या अरेपसः ॥१ ॥

वे मरुद्‌गण , ज्ञानी स्तोताओं के समान स्तुतियों से प्रशंसित होकर हमारी प्रार्थना पर ध्यान दें । देवताओं को हर्षित करने वाले यज्ञीय कार्यों में रत रहें । वे मरुद्‌गण राजाओं के समान पूजनीय, दर्शनीय तथा गृहपति मनुष्यों के समान पापरहित और शोभायमान हैं ॥१ ॥

९६१८. **अग्निर्न ये भ्राजसा रुक्मवक्षसो वातासो न स्वयुजः सद्यऊतयः ।**
प्रज्ञातारो न ज्येष्ठाः सुनीतयः सुशर्माणो न सोमा ऋतं यते ॥२ ॥

जो मरुद्‌गण अग्नि के समान तेजस्वितायुक्त , स्वर्णिम वक्ष वाले, वायु के सदृश , दूसरों के सहायक , शीघ्र गतिशील, श्रेष्ठ ज्ञाता, ज्ञानियों के समान वन्दनीय, शोभन नेत्रों से युक्त, श्रेष्ठ सुखों के सम्पादक तथा सोम के समान ही शोभायुक्त मुख वाले हैं, ऐसे गुणों से सम्पन्न वे देव मरुद्‌गण यज्ञ में उपस्थित हों ॥२ ॥

९६१९. **वातासो न ये धुनयो जिगत्नवोऽग्नीनां न जिह्वा विरोकिणः ।**

वर्मण्वन्तो न योधाः शिमीवन्तः पितॄणां न शंसाः सुरातयः ॥३ ॥

जो मरुद्देव वायु के समान ही रिपुओं को प्रकम्पित करने वाले और वेगशील हैं, जो अग्नियों की ज्वालाओं के समान तेजस्वी और कान्तियुक्त हैं । कवचधारी शूरवीरों के समान शौर्य-सम्पन्न तथा पितरगणों (माता-पिता) की वाणियों के समान उदारदानी हैं, वे मरुद्गण हमारे यज्ञ में पधारें ॥३ ॥

९६२०. **रथानां न ये१राः सनाभयो जिगीवांसो न शूरा अभिद्यवः ।**
वरेयवो न मर्या घृतप्रुषोऽभिस्वर्तारो अर्कं न सुष्टुभः ॥४ ॥

मरुद्गण रथचक्र के अरों के समान एक नाभि (धुरी) में बँधे हुए हैं । वे विजयशील शूरों के समान तेजस्वितायुक्त हैं , जो दानी मनुष्यों के समान जल सेचक हैं तथा सुन्दर स्तोत्रों के गान कर्त्ताओं के समान श्रेष्ठ शब्दावली से युक्त हैं, वे मरुद्गण हमारे यज्ञ में पधारें ॥४ ॥

९६२१. **अश्वासो न ये ज्येष्ठास आशवो दिधिषवो न रथ्यः सुदानवः ।**
आपो न निम्नैरुदभिर्जिगत्नवो विश्वरूपा अङ्गिरसो न सामभिः ॥५ ॥

जो मरुद्गण अश्वों के समान श्रेष्ठ , वेगशील और ऐश्वर्यशालियों के समान रथों के स्वामी तथा उदार दानी हैं, वे नदियों के जल के समान नीचे की ओर प्रवाहित होने वाले तथा नाना रूपों से युक्त हैं और अंगिराओं के समान सामगान कर्त्ता हैं । वे मरुद्गण हमारे यज्ञ में पदार्पण करें ॥५ ॥

९६२२. **ग्रावाणो न सूरयः सिन्धुमातर आदर्दिरासो अद्रयो न विश्वहा ।**
शिशूला न क्रीळयः सुमातरो महाग्रामो न यामन्नुत त्विषा ॥६ ॥

वे मरुद्गण जल उत्पादनकर्त्ता मेघों के समान जल-प्रवाहों के निर्माता हैं, वे सभी प्रकार के शत्रुओं के विध्वंसक , शस्त्रों के सदृश सदैव आदरणीय हैं । वे मरुद्गण श्रेष्ठ स्नेहयुक्त माताओं के समान क्रीड़ा परायण हैं तथा विशाल जनसमूह के समान गतिमान् एवं तेजस्वी हैं; वे मरुद्गण हमारे यज्ञों में पधारें ॥६ ॥

९६२३. **उषसां न केतवोऽध्वरश्रियः शुभंयवो नाञ्जिभिर्व्यश्वितन् ।**
सिन्धवो न ययियो भ्राजदृष्टयः परावतो न योजनानि ममिरे ॥७ ॥

उषाकाल की रश्मियों के सदृश वे मरुद्गण यज्ञाश्रयी हैं, मंगलकामी, श्रेष्ठ जनों के समान वे अलंकृत हैं । वे नदियों के समान निरन्तर गतिशील, तेजस्वी आयुधों के धारणकर्त्ता तथा दूरगामी मार्गों के जाने वाले पथिकों के तुल्य वेगपूर्वक दूरस्थ देशों को लाँघते हुए जाते हैं । वे मरुद्गण हमारे यज्ञों में पधारें ॥७ ॥

९६२४. **सुभागान्नो देवाः कृणुता सुरत्नानस्मान्त्स्तोतॄन्मरुतो वावृधानाः ।**
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गात सनाद्धि वो रत्नधेयानि सन्ति ॥८ ॥

हे देवस्वरूप मरुद्गण ! आप हमारी स्तुतियों से आनन्दित होकर हमें श्रेष्ठ ऐश्वर्य और श्रेष्ठ रत्नों के स्वामी बनायें । आप हमारे , मैत्रीभावनाओं से युक्त स्तोत्रपाठ को स्वीकार करें । आप सदैव रत्नों का दान करते रहे हैं ॥८ ॥

[सूक्त - ७९]

[**ऋषि** - अग्नि सौचीक अथवा अग्नि वैश्वानर अथवा सप्तिवाजंभर । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

९६२५. **अपश्यमस्य महतो महित्वममर्त्यस्य मर्त्यासु विक्षु ।**
नाना हनू विभृते सं भरेते असिन्वती बप्सती भूर्यत्तः ॥१ ॥

मरणधर्मा मनुष्यों में अविनाशी अग्नि की महान् सामर्थ्य को हम अनुभव करते हैं (देखते हैं) । इनके दोनों जबड़े-ज्वालाएँ नानारूपों में पूर्णता प्राप्त हैं । वे चर्वण क्रिया किये बिना ही काष्ठादि पदार्थों का सेवन करते हैं ॥१॥

९६२६. गुहा शिरो निहितमृधगक्षी असिन्वन्नत्ति जिह्वया वनानि ।
अत्राण्यस्मै पड्भिः सं भरन्त्युत्तानहस्ता नमसाधि विक्षु ॥२ ॥

इन अग्निदेव का शीर्ष गुप्त स्थानों में विद्यमान है । इनके नेत्र भिन्न-भिन्न स्थानों में हैं । वे चर्वण क्रिया किये बिना ज्वालाओं से समिधाओं का सेवन करते हैं । इनके निमित्त विभिन्न पदों-चरणों में हाथ उठाकर नमन करते हुए इन्हें तृप्त करते हैं ॥२ ॥

९६२७. प्र मातुः प्रतरं गुह्यमिच्छन्कुमारो न वीरुधः सर्पदुर्वीः ।
ससं न पक्वमविदच्छुचन्तं रिरिह्वांसं रिप उपस्थे अन्तः ॥३ ॥

ये अग्निदेव बालक की भाँति पृथ्वी माता पर चलते हुए लताओं (के भक्षण या पोषण) की कामना करते हैं, वे उनकी जड़ों तक पहुँचते हैं । वे अग्निदेव स्वयं को पृथ्वी की भीतरी सतह में पक्वान्न के समान दीप्तिमान् काष्ठ का सेवन करने की विधि को जानते हैं ॥३ ॥

९६२८. तद्वामृतं रोदसी प्र ब्रवीमि जायमानो मातरा गर्भो अत्ति ।
नाहं देवस्य मर्त्यश्चिकेताग्निरङ्ग विचेताः स प्रचेताः ॥४ ॥

हे द्युलोक और पृथिवी लोक ! आपसे हम यथार्थ सम्मत बात कहते हैं कि अरणियों द्वारा उत्पादित यह गर्भस्थ शिशुरूप अग्निदेव अपने माता-पिता रूप दोनों अरणियों (लकड़ियों) का सेवन करते हैं । हम मनुष्य, देवस्वरूप अग्नि की विशेषताओं से अनभिज्ञ हैं । हे वैश्वानर ! आप नानाविध ज्ञान सम्पन्न, प्रकृष्ट ज्ञानयुक्त हैं ॥४ ॥

९६२९. यो अस्मा अन्नं तृष्वा३ दधात्याज्यैर्घृतैर्जुहोति पुष्यति ।
तस्मै सहस्रमक्षभिर्वि चक्षेऽग्ने विश्वतः प्रत्यङ्ङसि त्वम् ॥५ ॥

जो याज्ञिक इस अग्नि के निमित्त शीघ्रतापूर्वक हविष्यान्न समर्पित करते हैं, गोघृत अथवा सोमरस से अग्नि में यज्ञ करते हैं तथा समिधाओं से अग्नि को प्रज्वलित करते हैं । इसे अग्निदेव अपनी हजारों प्रकार की असीम ज्वालाओं से देखते हैं । हे अग्निदेव ! आप हमारे लिए सभी ओर से अनुकूल हों ॥५ ॥

९६३०. किं देवेषु त्यज एनश्चकर्थाग्ने पृच्छामि नु त्वामविद्वान् ।
अक्रीळन् क्रीळन्हरिरत्तवेऽदन्वि पर्वशश्चकर्त गामिवासिः ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! क्या आपने कभी देवताओं के प्रति क्रोध किया है ? जिस प्रकार चर्म अथवा लता को शस्त्र से खण्ड-खण्ड किया जाता है, उसी प्रकार कहीं क्रीड़ा करते हुए और कहीं न करते हुए हरणशील अग्निदेव खाद्य सामग्री का सेवन करते समय इनके खण्ड-खण्ड कर डालते हैं ॥६ ॥

९६३१. विषूचो अश्वान्युयुजे वनेजा ऋजीतिभी रशनाभिर्गृभीतान् ।
चक्षदे मित्रो वसुभिः सुजातः समानृधे पर्वभिर्वावृधानः ॥७ ॥

जंगल में वर्द्धित ये अग्निदेव सर्वत्र गतिमान्, सरल मार्गगामी भोगाकांक्षी अश्वों (इन्द्रियों अथवा गतिमानों) को वश में करके सुनियोजित करते हैं । हमारे मित्ररूप अग्निदेव वसुओं (प्राणों) से प्रदीप्त होकर प्रस्फुटित होते हैं । वे पर्वो (दिनों, कालखण्डों अथवा काष्ठादि) से सम्पन्न होकर प्रवर्द्धित होते हैं ॥७ ॥

[सूक्त - ८०]

[ऋषि - अग्नि सौचीक अथवा अग्नि वैश्वानर अथवा सप्तिवाजंभर । देवता - अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

९६३२. अग्निः सप्तिं वाजंभर ददात्यग्निर्वीरं श्रुत्यं कर्मनिःष्ठाम्।
अग्नी रोदसी वि चरत्समञ्जन्नग्निर्नारीं वीरकुक्षिं पुरन्धिम् ॥१ ॥

अग्निदेव वेगशील और संग्राम में शत्रुओं को जीतने वाले अन्नप्रदाता अश्व (शक्ति-प्रवाह) प्रदान करते हैं। वे शक्तिशाली, वेदज्ञ और यज्ञरूप सत्कर्म-प्रेमी पुत्र प्रदान करते हैं। अग्निदेव द्युलोक और भूलोक दोनों को प्रकाशित करते हुए संचरित होते हैं। ये अग्निदेव स्त्री को वीर सन्तानों की जन्मदात्री बनाते हैं ॥१ ॥

९६३३. अग्नेरप्नसः समिदस्तु भद्राग्निर्मही रोदसी आ विवेश।
अग्निरेकं चोदयत्समत्स्वग्निर्वृत्राणि दयते पुरूणि ॥२ ॥

अग्नि प्रज्वलन क्रिया के लिए उपयोगी समिधा (काष्ठ) कल्याणकारी हो। अग्निदेव अपने तेज से द्युलोक और पृथ्वी में सभी जगह संव्याप्त हैं। अग्निदेव युद्ध-क्षेत्र में अपने साधक के सहायक बनकर उसे विजयी बनाते हैं तथा अनेक रिपुओं को विनष्ट करते हैं ॥२ ॥

९६३४. अग्निर्ह त्यं जरतः कर्णमावाग्निरद्भ्यो निरदहज्जरूथम्।
अग्निरत्रिं घर्म उरुष्यदन्तरग्निर्नृमेधं प्रजयासृजत्सम् ॥३ ॥

अग्निदेव ने वास्तव में ही उन प्रख्यात ऋषि जरत्कर्ण की सुरक्षा की। उन्होंने उन्हें जल से बाहर करके जरूथ नामक राक्षस को भस्मीभूत किया था। अग्निदेव ने प्रतप्त कुण्ड में गिरे हुए ऋषि अत्रि को उबारा था। अग्निदेव ने ही नृमेध ऋषि को सन्तति प्रदान की थी ॥३ ॥

९६३५. अग्निर्दाद् द्रविणं वीरपेशा अग्निर्ऋषिं यः सहस्रा सनोति।
अग्निर्दिवि हव्यमा ततानाग्नेर्धामानि विभृता पुरुत्रा ॥४ ॥

अग्निदेव श्रेष्ठ, ज्योतिष्मान् ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। अग्निदेव मन्त्रद्रष्टा ऋषि के लिए सहस्रों गौएँ देते हैं। यजमानों द्वारा प्रदत्त आहुतियों को अग्निदेव दिव्यलोक में ले जाते हैं, इससे उनका ज्वालारूपी शरीर अनेक लोकों में विस्तृत होता है ॥४ ॥

९६३६. अग्निमुक्थैर्ऋषयो वि ह्वयन्तेऽग्निं नरो यामनि बाधितासः।
अग्निं वयो अन्तरिक्षे पतन्तोऽग्निः सहस्रा परि याति गोनाम् ॥५ ॥

सर्वप्रथम ऋषिगण अग्निदेव की वेदमन्त्रों द्वारा प्रार्थना करते हैं। मनुष्यगण समरक्षेत्र में शत्रुओं से पीड़ित अवस्था में विजय पाने के लिए अग्निदेव का ही आवाहन करते हैं। आकाश में उड़ते हुए पक्षी रात्रि में अग्नि को देखते हैं। अग्निदेव हजारों गौओं (किरणों) से युक्त होकर चतुर्दिक् विचरण करते हैं ॥५ ॥

९६३७. अग्निं विश ईळते मानुषीर्या अग्निं मनुषो नहुषो वि जाताः।
अग्निर्गान्धर्वीं पथ्यामृतस्याग्नेर्गव्यूतिर्घृत आ निषत्ता ॥६ ॥

मनुष्यों में जन साधारण भी अग्निदेव की अर्चना करते हैं। राजा नहुष के प्रजाजन अग्निदेव की अनेक तरह से प्रार्थना करते हैं। अग्निदेव यज्ञीय मार्ग के निमित्त कल्याणकारी वेदवाणी का श्रवण करते हैं। अग्नि का मार्ग घृत (तेजस्) में सन्निहित है ॥६ ॥

९६३८. अग्नये ब्रह्म ऋभवस्ततक्षुरग्निं महामवोचामा सुवृक्तिम्।
अग्ने प्राव जरितारं यविष्ठाग्ने महि द्रविणमा यजस्व ॥७ ॥

ऋभुओं (विद्वानों) ने अग्निदेव के निमित्त ही स्तोत्र-रचना की । हम सभी महिमामय अग्निदेव की प्रार्थना करते हैं । हे तरुण अग्ने ! आप स्तोताओं को संरक्षण प्रदान करें । हे अग्ने ! आप हमें महान् ऐश्वर्य प्रदान करें ॥७ ॥

[सूक्त - ८१]

[ऋषि - विश्वकर्मा भौवन । देवता - विश्वकर्मा । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

इस सूक्त के देवता विश्वकर्मा तथा ऋषि विश्वकर्मा भौवन हैं । देवता हैं भुवन सृजेता परमात्मा तथा उसके द्रष्टा ऋषि हैं भुवन में उत्पन्न सृजेता । सृष्टि सृजन एवं विलय प्रक्रिया से ही यह सूक्त सम्बद्ध है --

९६३९. य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः ।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ आ विवेश ॥१ ॥

ये ऋषि (द्रष्टा-विश्वकर्मा) पिता की तरह स्थित रहकर समस्त लोकों के निमित्त (अथवा लोकों की) आहुतियाँ समर्पित करते हैं । वे संकल्प मात्र से विभिन्न सम्पदाओं को इच्छित रूप देते हुए प्रथम उत्पन्न जगत् को संव्याप्त करते हैं तथा अन्य (नवसृजित लोकों) में भी प्रविष्ट होते हैं ॥१ ॥

[सृजन के क्रम में परमात्म चेतना विश्वकर्मा का रूप धर लेती है, वही पोषण के लिए पूषा बन जाती है । उत्पत्ति , विलय दोनों क्रम चलते रहते हैं, पहले वालों को संव्याप्त करते हुए अथवा उनकी आहुतियाँ देकर विलय करते हुए दिव्य चेतना नवीन लोकों में प्रवृत्त रहती है ।]

९६४०. किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत्।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥२ ॥

सृष्टिनिर्माण के पूर्व परमात्मा किस आश्रय पर अधिष्ठित थे ? सृष्टि के निर्माण में प्रयुक्त होने वाला मूल द्रव्य क्या था ? कैसा था ? उन सर्वद्रष्टा विश्वकर्मा-परमात्मा ने इस सुविस्तृत पृथिवी और महान् द्युलोक का सृजन अपनी महान् सामर्थ्य से कहाँ रहकर किया ? (अगले मंत्र में इस प्रश्न का उत्तर है) ॥२ ॥

९६४१. विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥३ ॥

सर्वत्र आँख वाले, सब ओर मुख वाले, सब ओर भुजाओं वाले और सब ओर चरणों वाले उस अद्वितीय परमात्मा ने अपनी भुजाओं (सामर्थ्यों) से गतिशील पृथिवी और द्युलोक को बिना आश्रय के निर्मित किया तथा उन्हें सम्यक् रूप से संचालित करने वाला वह अकेला ही है ॥३ ॥

९६४२. किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥४ ॥

वह 'वन' कौन-सा है ? वह वृक्ष कौन-सा है ? जिससे (निर्माण सामग्री लेकर) विश्वकर्मा ईश्वर ने द्युलोक और पृथिवीलोक का सृजन किया । हे विवेकवान् पुरुषो ! अपनी मन: शक्ति से यह पूछो (जानने का प्रयास करो) कि समस्त भुवनों को धारण करते हुए वे विश्वकर्मा देव किस स्थान पर अधिष्ठित हैं ? ॥४ ॥

९६४३. या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा ।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥५ ॥

हे विश्व के रचयिता परमात्मा ! हे सबके धारक-पोषक ईश्वर ! जो आपके उच्चतम, मध्य वाले या नीचे वाले धाम (लोक या शरीर) हैं, उन सबके बारे में हमें आप मित्र भाव से शिक्षित करें । आप हम सब जीवों को वृद्धि प्रदान करते हुए स्वयं ही उत्तम हविष्यान्न द्वारा यजन करें ॥५ ॥

[विश्वकर्त्ता परमात्मा सब भुवनों के सब प्राणियों के पोषण हेतु स्वयं ही महान् प्रकृति यज्ञ चक्र का सम्पादन करते हैं ।]

९६४४. विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् ।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥६ ॥

हे विश्व के कर्त्ता परमात्मा ! हमारे द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न द्वारा प्रसन्न होकर आप हमारे यज्ञ में पृथ्वी के सब आश्रितों के हितार्थ स्वयं यजन करें , आप सब शत्रुओं को अपने बल से मोहग्रस्त करें । इस (महान् प्रकृति) यज्ञ में ऐश्वर्य-सम्पन्न देव हमारे लिए श्रेष्ठ फल प्रदाता हों ॥६ ॥

९६४५. वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम ।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥७ ॥

आज हम जीवन यज्ञ में अपनी रक्षा के लिए ज्ञान के अधिपति सृष्टि के रचयिता परमेश्वर का आवाहन करते हैं । सत्कर्म की प्रेरणा देकर कल्याण करने वाले वे विश्वकर्मा हमारे द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न को हमारी रक्षा के निमित्त प्रेमपूर्वक ग्रहण करें ॥७ ॥

[सूक्त - ८२]

[**ऋषि** - विश्वकर्मा भौवन । **देवता** - विश्वकर्मा । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

९६४६. चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने ।
यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिद् द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥१ ॥

जब पूर्व समय में द्यावा-पृथिवी का विस्तार हुआ और उसके अन्दर-बाहर के भाग दृढ़ होकर प्रतिष्ठित हो गये, तब चक्षु-सम्पन्न (सर्वद्रष्टा) पिता (विश्वकर्मा प्रभु) ने नमनशील (निर्देशों अथवा अनुशासनों को स्वीकार करने वाले) घृत (मूलद्रव, प्राण अथवा ओजस्) का सृजन किया ॥१ ॥

[द्यावा-पृथिवी के स्थिर होने पर जीवन तत्त्व का संचार विश्वकर्मा द्वारा किया गया ।]

९६४७. विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक् ।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन्पर एकमाहुः ॥२ ॥

वे विश्वकर्मा देव विशिष्ट महाशक्ति सम्पन्न व्यापक विश्व के निर्माता, धारणकर्त्ता, महान् तथा सर्वद्रष्टा हैं । उन्हें सप्तऋषियों अथवा (प्राण की सप्तधाराओं) से भी परे कहा गया है । उनके अभीष्ट की पूर्ति उन्हीं की पोषण शक्ति से होती है । वे एक ही - अद्वितीय हैं ॥२ ॥

९६४८. यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामधा एक एव तं सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥३ ॥

जो परमेश्वर हम सबके पालन करने वाले और उत्पन्न करने वाले हैं, जो सबके धारणकर्त्ता हैं, जो सम्पूर्ण स्थानों और लोकों के ज्ञाता हैं, जो एक होकर भी विविध देवों के विविध नामों को धारण करते हैं । सभी लोकों के प्राणी अन्ततः उनको ही प्राप्त होते हैं ॥३ ॥

९६४९. त आयजन्त द्रविणं समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना ।
असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ॥४ ॥

अन्तरिक्ष में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से निवास करने वाले जिस परमेश्वर ने समस्त प्राणियों की रचना की है , उस स्रष्टा के लिए (हमारे) पूर्वज ऋषिगण स्तुति करते हुए यज्ञ में महान् वैभव समर्पित करते हैं ॥४ ॥

९६५०. परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति ।
कं स्विद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे ॥५ ॥

हृदयस्थ जो वह ईश्वरीय तत्त्व है, वह द्युलोक से दूर है, इस पृथ्वी से दूर है, देवों और असुरों से भी परे है । अप् तत्त्व (सृजन के मूल पदार्थ अथवा जल) ने सर्वप्रथम किस गर्भ को धारण किया ? वह गर्भ कैसा विलक्षण था ? जहाँ पूर्वकालीन देवगण (ऋषिगण) उस परमतत्त्व का सम्यक् दर्शन पाते एवं देवत्व के परमपद को प्राप्त करते हैं ॥५ ॥

९६५१. तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥६ ॥

सृष्टि के आदि से ही विद्यमान उस परमतत्त्व ने अप् तत्त्व के गर्भ को धारण किया है, जहाँ सम्पूर्ण देवशक्तियों का आश्रय स्थल है । इस अजन्मा ईश्वर के नाभिकेन्द्र में एक ही परमतत्त्व अधिष्ठित है, जिसमें समस्त भुवन आरक्षित होकर स्थिर हैं ॥६ ॥

९६५२. न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥७ ॥

हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर ने इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना की है, उसे आप लोग नहीं जानते हैं । वह परमतत्त्व सबसे भिन्न होकर भी सभी के भीतर प्रतिष्ठित है । अज्ञान के व्यापक अन्धकार से घिरे हुए , केवल वार्ता या विवाद में लगे हुए मात्र प्राण रक्षा या पोषण की चिन्ता में संतप्त लोग उस परमेश्वर के सम्बन्ध में व्यर्थ विवाद करते हुए विचरण करते हैं । उसका साक्षात्कार नहीं कर पाते ॥७ ॥

[सूक्त - ८३]

[**ऋषि** - मन्यु तापस । **देवता** - मन्यु । **छन्द** - त्रिष्टुप् , १ जगती ।]

सूक्त ८३- ८४ के देवता हैं 'मन्यु' तथा ऋषि हैं 'तापस-मन्यु' । मन्यु सामान्य रूप से क्रोध के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है, किन्तु 'मन्' धातु ज्ञान वाचक है, अतः यह विवेक युक्त रोष के अर्थ में प्रयुक्त होता है । अनीति प्रतिरोध के लिए यह आवश्यक भी होता है । मन्यु एक दिव्य प्राण धारा के रूप में देवता हैं, उसके लिए प्रार्थना करते हैं 'तापस-मन्यु' । मन्यु का ठीक-ठीक उपयोग कोई तपः पूत ही कर सकता है । इसलिए देवशक्ति मन्यु का आवाहन करने की पात्रता किसी तपः पूत में ही हो सकती है । तपःशक्ति के अभाव में मन्यु निरा क्रोध रह जाता है, जो शत्रु नाश से पहले अपनी ही हानि करता है ।

९६५३. यस्ते मन्योऽविधद्वज्र सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक् ।
साह्याम दासमार्यं त्वया युजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥१ ॥

हे वज्रवत् तीक्ष्ण बाण तुल्य और क्रोधाभिमानी देव मन्यु ! जो साधक आपको ग्रहण करते हैं, वे सभी प्रकार की शक्ति और सामर्थ्य को निरन्तर परिपुष्ट करते हैं । बलवर्द्धक और विजयदाता आपके सहयोग से हम (विरोधी) दासों और आर्यों को अपने आधिपत्य में करेंगे ॥१ ॥

९६५४. मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः ।
मन्युं विश ईळते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः ॥२ ॥

मन्यु ही इन्द्र देव हैं, यज्ञसंचालक वरुण और जातवेदा अग्नि हैं । (यह सभी देवता मन्युयुक्त हैं) सम्पूर्ण मानवी प्रजाएँ मन्यु की प्रशंसा करती हैं । हे मन्यु ! स्नेहयुक्त होकर आप तप से हमारा संरक्षण करें ॥२ ॥

९६५५. अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान्तपसा युजा वि जहि शत्रून् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं नः ॥३ ॥

हे मन्यु ! आप महान् सामर्थ्यशाली हैं, आप यहाँ पधारें । अपनी तप-सामर्थ्य से युक्त होकर शत्रुओं का विध्वंस करें । आप शत्रु विनाशक वृत्रहन्ता और दस्युओं के दलनकर्त्ता हैं । हमें सभी प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करें ॥

९६५६. त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयम्भूर्भामो अभिमातिषाहः ।
विश्वचर्षणिः सहुरिः सहावानस्मास्वोजः पृतनासु धेहि ॥४ ॥

हे मन्यु ! आप विजयी शक्ति से सम्पन्न, स्व सामर्थ्य से बढ़ने वाले, तेजयुक्त , शत्रुओं के पराभवकर्त्ता, सबके निरीक्षण में सक्षम तथा बलशाली हैं । संग्राम क्षेत्र में आप हमारे अन्दर ओज की स्थापना करें ॥४ ॥

९६५७. अभागः सन्नप परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविषस्य प्रचेतः ।
तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीळाहं स्वा तनूर्बलदेयाय मेहि ॥५ ॥

हे श्रेष्ठ ज्ञानसम्पन्न मन्यु ! आपके साथ भागीदार न हो पाने के कारण हम विलग होकर दूर चले गये हैं । महिमामय आपसे विमुख होकर हम कर्महीन हो गये हैं, संकल्पहीन होकर (लज्जित स्थिति में) आपके पास आएँ हैं । हमारे शरीरों में बल का संचार करते हुए आप पधारें ॥५ ॥

९६५८. अयं ते अस्म्युप मेह्यर्वाङ् प्रतीचीनः सहुरे विश्वधायः ।
मन्यो वज्रिन्नभि मामा ववृत्स्व हनाव दस्यूँरुत बोध्यापेः ॥६ ॥

हे मन्यु ! हम आपके समीप उपस्थित हुए हैं । आप अपनी अनुकूलतापूर्वक हमारे समीप आघातों को सहने तथा सबको धारण करने में समर्थ हैं । हे वज्रधारी मन्यु ! आप हमारे पास आएँ, हमें मित्र समझें, ताकि हम दुष्टों को मार सकें ॥६ ॥

९६५९. अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा मेऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि ।
जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रमुभा उपांशु प्रथमा पिबाव ॥७ ॥

हे मन्यु ! आप हमारे समीप आएँ । हमारे दाहिने (हमारे अनुकूल) होकर रहें । हम दोनों मिलकर शत्रुओं का संहार करने में समर्थ होंगे । हम आपके लिए मधुर और श्रेष्ठ धारक (सोम) का हवन करते हैं । हम दोनों एकान्त में सर्वप्रथम इस रस का पान करें ॥७ ॥

[सूक्त - ८४]

[ऋषि - मन्यु तापस । देवता - मन्यु । छन्द - जगती , १-३ त्रिष्टुप् ।]

९६६०. त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणासो धृषिता मरुत्वः ।
तिग्मेषव आयुधा संशिशाना अभि प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः ॥१ ॥

हे मन्यु ! आपके सहयोग से रथारूढ़ होकर आनंदित और प्रसन्नचित्त होकर अपने आयुधों को तीक्ष्ण करके, अग्नि के सदृश तीक्ष्ण दाह उत्पन्न करने वाले मरुद्गण आदि युद्धनायक हमारी सहायतार्थ युद्ध क्षेत्र में गमन करें ॥

९६६१. अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि ।
हत्वाय शत्रून्वि भजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व ॥२ ॥

हे मन्यु ! आप अग्नि सदृश प्रदीप्त होकर शत्रुओं को पराभूत करें । हे सहनशक्ति युक्त मन्यु ! आपका आवाहन किया गया है । आप हमारे संग्राम में नायक बनें । शत्रुओं का संहार करके उनकी सम्पदा हमें दें । हमें बल प्रदान करके शत्रुओं को दूर भगाएँ ॥२ ॥

९६६२. सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मे रुजन्मृणन्प्रमृणन् प्रेहि शत्रून् ।
उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे वशी वशं नयस एकज त्वम् ॥३ ॥

हे मन्यु ! हमारे विरुद्ध सक्रिय शत्रुओं को आप पराभूत करें । आप शत्रुओं को तोड़ते हुए और कुचलते हुए शत्रुओं पर आक्रमण करें । आपकी प्रभावपूर्ण क्षमताओं को रोकने में कौन सक्षम हो सकता है ? हे अद्वितीय मन्यु ! आप स्वयं संयमशील होकर शत्रुओं को नियन्त्रण में करते हैं ॥३ ॥

[क्रोधी स्वयं अस्थिर हो जाता है। मन्युशील व्यक्ति स्वयं संतुलित मनःस्थिति में रहते हुए दुष्टता का प्रतिकार करते हैं।]

९६६३. एको बहूनामसि मन्यवीळितो विशंविशं युधये सं शिशाधि ।
अकृत्तरुक्त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्महे ॥४ ॥

हे मन्यु ! आप अकेले ही अनेकों द्वारा सत्कार के योग्य हैं । आप युद्ध के निमित्त प्रत्येक मनुष्य को तीक्ष्ण (तेजस्वी) बनाएँ । हे अक्षय प्रकाशयुक्त ! आपकी मित्रता के सहयोग से हम हर्षित होकर विजय-प्राप्ति के लिए सिंहनाद करते हैं ॥४ ॥

९६६४. विजेषकृदिन्द्रइवानवब्रवो३स्माकं मन्यो अधिपा भवेह ।
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ ॥५ ॥

हे मन्यु ! इन्द्र के सदृश विजेता, असन्तुलित न बोलने वाले आप हमारे अधिपति हों । हे सहिष्णु मन्यु ! आपके निमित्त प्रिय स्तोत्र का उच्चारण करते हैं । हम उस स्रोत (विधा) के ज्ञाता हैं, जिससे आप प्रकट होते हैं ॥५ ॥

९६६५. आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो बिभर्ष्यभिभूत उत्तरम् ।
क्रत्वा नो मन्यो सह मेद्येधि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि ॥६ ॥

हे वज्र सदृश शत्रुसंहारक मन्यु ! शत्रुओं को विनष्ट करना आपके सहज स्वभाव में है । हे रिपु पराभवकर्त्ता मन्यु ! आप श्रेष्ठ तेजस्विता को ग्रहण करते हैं । कर्मशक्ति के साथ युद्धक्षेत्र में आप हमारे लिए सहायक हों । आपका आवाहन असंख्य वीरों द्वारा किया जाता है ॥६ ॥

९६६६. संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं दत्तां वरुणश्च मन्युः ।
भियं दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अप नि लयन्ताम् ॥७ ॥

हे वरुण और मन्यु (अथवा वरणीय मन्यु) ! आप उत्पादित और संगृहीत ऐश्वर्य हमें प्रदान करें । भयभीत हृदय वाले शत्रु पराभूत होकर दूर चले जाएँ ॥७ ॥

[सूक्त - ८५]

[**ऋषि** - सूर्या सावित्री (ऋषिका) । **देवता** - १-५ सोम, ६-१६ सूर्या-विवाह, १७ देवगण, १८ सोम और अर्क, १९ चन्द्रमा, २०-२८ वैवाहिक मंत्र और आशीर्वाद, २९-३० वधूवास (वधू के वस्त्र) संस्पर्श-निन्दा, ३१ दम्पती-यक्ष्मनाशन, ३२-४७ सूर्या-सावित्री । **छन्द** - अनुष्टुप् ; १४, १९-२१, २३-२४, २६, ३६-३७, ४४ त्रिष्टुप् ; १८, २७, ४३ जगती; ३४ उरोबृहती ।]

इस सूक्त की देवता 'सूर्या-सावित्री' हैं । सूर्या, सूर्य पुत्री हैं, सविता से उत्पन्न होने से सावित्री कहलाती हैं । इस सूक्त में मंत्र क्र० १ से ५ तथा १७ से १९ सोम आदि देवशक्तियों को लक्ष्य करके कहे गये हैं, शेष सभी सूर्या , उसके विवाह एवं दाम्पत्य आदि को लक्ष्य करके कहे गये हैं । सूर्या को लौकिक वधू का उपलक्षण भी माना गया है, कुछ मंत्र उस आशय में सटीक भी बैठते हैं ; किन्तु अधिकांश मन्त्रों में वर्णित सूर्यपुत्री सूर्या कोई सूक्ष्म दिव्य-प्रवाह प्रतीत होती हैं । सूर्या प्रकाश युक्त तथा सावित्री सु-प्रसव श्रेष्ठ प्रसव या सृजन करने वाली है । यह सावित्री से उत्पन्न चेतना एवं प्रकाशयुक्त कोई उत्पादक प्रवाह है , जिसका (मंत्र १०) रथ, मन है तथा (मंत्र ७) चेतना या विचार चादर है, द्यावा-पृथिवी कोष है । लौकिक वधू के उपलक्षण में वह प्रकाश - ज्ञानयुक्त तथा श्रेष्ठ सन्तान , वातावरण, सम्पदा उत्पन्न करने में सक्षम सुलक्षणी कन्या है किन्तु . तत्वदृष्टि से उसमें सूर्या शक्ति है , उसी कारण वह सुप्रसविनी बन पाती है । प्रकारान्तर से वधू के रूप में भी सूर्या ही परिणीता होती है-

९६६७. **सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।**
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः ॥१ ॥

देवों में सत्यस्वरूप ब्रह्मा ने पृथ्वी को आकाश में स्थापित किया हुआ है । सूर्यदेव द्युलोक को स्तम्भित किए हुए हैं । यज्ञाहुति के आश्रय में देवशक्तियाँ रहती हैं । सोम द्युलोक के ऊपर स्थित है ॥१ ॥

९६६८. **सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।**
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥२ ॥

आदित्यादि देव सोम के कारण ही बलशाली हैं । सोम द्वारा ही पृथ्वी महिमामय होती है । इन नक्षत्रों के बीच भी सोम को स्थापित किया गया है ॥२ ॥

[सोम व्योम व्यापी विकिरण है । सूर्यादि प्रकाशोत्पादक पिण्डों का ईंधन सोम ही है, उसी से उन्हें बल प्राप्त होता है । ऋषि इस वैज्ञानिक प्रक्रिया के द्रष्टा थे ।]

९६६९. **सोमं मन्यते पपिवान्यत्संपिंषन्त्योषधिम् ।**
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन ॥३ ॥

जिस समय सोमलतादि वनस्पतियों-ओषधियों की पिसाई की जाती है , उसी समय मुख से पीने योग्य सोम को मान्यता प्राप्त होती है; परन्तु जिस सोम को ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानीजन जानते हैं , उसे कोई भी व्यक्ति मुख से पीने की सामर्थ्य नहीं रखता ॥३ ॥

[सूक्ष्म सोम प्रवाह प्रकृति एवं प्राणियों को भी शक्ति देते हैं; किन्तु वह सूक्ष्म प्रवाह मुख से सेवनीय नहीं है । वह प्राण-प्रक्रिया द्वारा ग्रहण या धारण किया जाने वाला है ।]

९६७०. **आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।**
ग्राव्णामिच्छृण्वन्तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥४ ॥

हे दिव्यसोम ! आप बृहती विद्या के जानकारों को विदित, गुह्य विधियों द्वारा सुरक्षित हैं (संकीर्ण मानस वाले कुपात्र इसे नहीं पा सकते) । आप ग्रावा (सोम निष्पादक यंत्र या गरिमामय वाणी) की ध्वनि को सुनते हैं । आपको पृथ्वी के प्राणी सेवन करने में सक्षम नहीं हैं ॥४ ॥

९६७१. यत्त्वा देव प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥५ ॥

हे सोमदेव ! जिस समय लोग ओषधि रूप में आपको ग्रहण करते हैं , उस समय बार-बार आपका सेवन किया जाता है । वायुदेव सोम की उसी प्रकार सुरक्षा करते हैं, जिस प्रकार महीने, वर्ष को सुरक्षित करते हैं ॥५ ॥

आगे के मंत्रों में सूर्या के विवाह-प्रसंग का वर्णन है -

९६७२. रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी । सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृतम् ॥

सूर्य कन्या के पाणिग्रहण के समय 'रैभी' नामक ऋचाएँ (अथवा ज्ञानयुक्त वाणियाँ) उसकी सखी रूपा हुई थीं । नाराशंसी नामक ऋचाएँ (अथवा नरों द्वारा प्रशंसित उक्तियाँ) उसकी सेविकाएँ हुई थीं । सूर्या का परिधान अतिशोभायमान था, जो कल्याणकारी गाथाओं मन्त्रादि से विशेष परिष्कृत हुआ ॥६ ॥

९६७३. चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् । द्यौर्भूमिः कोश आसीद्यदयात्सूर्या पतिम् ॥

जिस समय सूर्यपुत्री ने पतिगृह के लिए प्रस्थान किया, उस समय श्रेष्ठ विचार उसके आच्छादन (वस्त्र) थे । वही नेत्रों (दृष्टि) के लिए श्रेष्ठ अंजन थे । द्युलोक और पृथ्वी ही उसके कोषागार थे ॥७ ॥

[सूर्या प्रकाशयुक्त प्रवाह चेतना, जब किसी के साथ संयुक्त होती है, तो सद्विचार ही उसके आवरण-पहचान बनते हैं । द्यावा-पृथिवी को उनका भाण्डागार कहना युक्तिसंगत है ।]

९६७४. स्तोमा आसन्प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः ।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत्पुरोगवः ॥८ ॥

स्तवन ही सूर्या के रथचक्र के डण्डे थे, कुरीर नामक छन्द रथ का भीतरी भाग था । सूर्या के वर अश्विनीकुमार थे तथा अग्नि अग्रगामी दूतरूप थे ॥८ ॥

९६७५. सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा । सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सवितादात् ॥

सूर्यपुत्री हृदय से पति की कामना करती थी, जब सूर्य ने अपनी पुत्री सूर्या को अश्विनीकुमारों को प्रदान किया, तब सोम भी उसके साथ विवाह के इच्छुक थे; परन्तु अश्विनीकुमार ही उसके वर रूप में स्वीकृत किये गये ॥९ ॥

९६७६. मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत च्छदिः ।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात्सूर्या गृहम् ॥१० ॥

जिस समय सूर्या अपने पतिगृह में गई , उस समय मन ही उसका रथ (वाहन) था और आकाश ही रथ के ऊपर की छतरी थी । दो शुक्र (प्रकाशवान् सूर्य-चन्द्र) उसके रथवाहक थे ॥१० ॥

९६७७. ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावितः ।
श्रोत्रं ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ॥११ ॥

हे सूर्या देवि ! ऋक् और साम स्तवनों (ज्ञान) को सुनने वाले-धारण करने वाले, एक दूसरे के साथ साम्य रखने वाले दो श्रोत्र आपके मनरूपी रथ के चक्र हुए । रथ के गमन का मार्ग आकाश निश्चित हुआ ॥११ ॥

९६७८. शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः । अनो मनस्मयं सूर्यारोहत्प्रयती पतिम् ॥

जाने के समय आपके रथ के दोनों पहिए पवित्र अथवा अति उज्ज्वल हुए । उस रथ की धुरी वायु थे । पतिगृह को जाने वाली सूर्या मनरूपी रथ पर आरूढ़ हुई ॥१२ ॥

९६७९. सूर्याया वहतुः प्रागात्सविता यमवासृजत्। अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्योः पर्युह्यते ॥

सूर्या के पतिगृह-गमनकाल में सूर्य ने पुत्री के प्रति स्नेहरूप जो धन स्रवित किया (दिया), उसे पहले ही भेज दिया था। मघा नक्षत्र में विदाई के समय दी गई गौओं को हाँका गया तथा अर्जुनी अर्थात् पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में कन्या को पति के गृह भेजा गया ॥१३॥

[नक्षत्रों की संगतियों से होने वाली प्रक्रियाएँ शोध का विषय हैं।]

९६८०. यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः।
विश्वे देवा अनु तद्वामजानन्पुत्रः पितरावववृणीत पूषा ॥१४॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस समय आप सूर्या के साथ विवाह सम्बन्धी बात पूछने पहुँचे, उस समय सभी देवों ने आपका अनुमोदन किया तथा आपके पुत्र पूषा ने आप दोनों को स्वीकार किया ॥१४॥

[पौराणिक उपाख्यान के अनुसार पूषा भी सूर्या के वरण के इच्छुक थे। बाद में सभी ने अश्विनीकुमारों का अनुमोदन किया।]

९६८१. यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप।
क्वैकं चक्रं वामासीत्क्व देष्ट्राय तस्थथुः ॥१५॥

हे शुभस्पति (अश्विनीकुमारो) ! जिस समय आप लोग सूर्या के वरण हेतु गये, उस समय आपके रथ का एक चक्र कहाँ था ? मार्ग को जानने की जिज्ञासा से आप दोनों कहाँ स्थित थे ? ॥१५॥

९६८२. द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः। अथैकं चक्रं यद्गुहा तदद्धातय इद्विदुः ॥१६॥

हे सूर्ये ! ब्राह्मण (ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति) इस बात से परिचित हैं कि आपके रथ के दो (कर्मशील) चक्र ऋतुओं के अनुसार गतिशील होने में प्रसिद्ध हैं। तीसरा (ज्ञान-विज्ञान परक) चक्र जो गोपनीय था, उसे विद्वान् जानते हैं ॥

[दो चक्रों को ब्राह्मण जानते हैं, ये ब्रह्मकर्मरूप क्रियात्मक चक्र होने चाहिए। ये यज्ञपरक भी हो सकते हैं तथा सौर और चन्द्र प्रभावित ऋतुपरक भी। तीसरा चक्र केवल विद्वान् जानते हैं, यह उस क्रिया विज्ञान का गुह्य ज्ञानचक्र होना चाहिये।]

९६८३. सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च। ये भूतस्य प्रचेतस इदं तेभ्योऽकरं नमः ॥१७॥

सूर्या, देवगण, मित्र और वरुणादि देवों तथा सभी प्राणियों के वे श्रेष्ठ कल्याणकारी हितचिन्तक हैं। हम उन्हें प्रणाम करते हैं ॥१७॥

९६८४. पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीळन्तौ परि यातो अध्वरम्।
विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायते पुनः ॥१८॥

ये दोनों शिशु (सूर्य और चन्द्र) अपने तेज से पूर्व और पश्चिम में विचरते हैं। ये दोनों क्रीड़ा करते हुए यज्ञ में पहुँचते हैं। उन दोनों में से एक, सूर्य सभी लोकों को देखते हैं तथा दूसरे, चन्द्र ऋतुओं का निर्धारण करते हुए बार-बार उदित-अस्त होते हैं ॥१८॥

९६८५. नवोनवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम्।
भागं देवेभ्यो वि दधात्यायन्प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः ॥१९॥

ये चन्द्रदेव नित्य उदित होकर नवीनतम होते हैं। दिवस के सूचक सूर्यदेव प्रतिदिन नवीन रूप में प्रातः काल सभी के समक्ष आते हैं। वे सूर्यदेव आकर देवों के निमित्त यज्ञ का हविभाग देने की व्यवस्था करते हैं। चन्द्रदेव आकर आनंदित जीवन एवं चिरायु प्रदान करते हैं ॥१९॥

मंत्र क्र० २० से २८ लौकिक विवाहों में आशीर्वचन-शुभकामना रूप में भी प्रयुक्त होते हैं --

९६८६. सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम्।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व ॥२० ॥

हे सूर्य पुत्री ! आप अपने पतिगृह की ओर जाते हुए सुन्दर प्रकाशयुक्त पलाश वृक्ष से बने तथा शाल्मलि-वृक्ष या मलरहित (काष्ठ) से विनिर्मित नाना रूप, स्वर्णिम वर्ण, श्रेष्ठ और सुन्दर चक्र युक्त रथ पर आरूढ़ हों । आप पति के निमित्त, अमृत स्वरूप लोक को सुखकारी बनाएँ ॥२० ॥

९६८७. उदीर्ष्वातः पतिवती ह्ये३षा विश्वावसुं नमसा गीर्भिरीळे ।
अन्यामिच्छ पितृषदं व्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥२१ ॥

हे विश्वावसु (विश्व व्यापक) ! आप इस स्थान से उठें; क्योंकि इस कन्या का पाणिग्रहण हो चुका है । हम नमस्कार और स्तोत्रों द्वारा आपकी अर्चना करते हैं । पितृगृह में रहने वाली दूसरी विवाह योग्य कन्या की कामना करें । वही आपको सौभाग्य प्रदान करने वाली है, इस अभिप्राय को उचित रीति से समझें ॥२१ ॥

[पौराणिक सन्दर्भ में विश्वावसु ने सूर्या का विवाह सम्पन्न कराया था ।]

९६८८. उदीर्ष्वातो विश्वावसो नमसेळामहे त्वा । अन्यामिच्छ प्रफर्व्यं१सं जायां पत्या सृज ॥

हे विश्वावसो ! आप इस स्थान का परित्याग करें, हम नमस्कारपूर्वक आपकी स्तुति करते हैं । आप दूसरी यौवना की कामना करें तथा उस स्त्री को पति के साथ संयुक्त करें ॥२२ ॥

९६८९. अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्था येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम्।
समर्यमा सं भगो नो निनीयात्सं जास्पत्यं सुयममस्तु देवाः ॥२३ ॥

हे देवगण ! वे सम्पूर्ण मार्ग कंटकों (कष्टों) से रहित और सरल हों, जिनसे हमारे मित्र कन्या के पिता के पास जाते हैं। अर्यमा और भगदेव हमें वहाँ भली प्रकार ले जाएँ। ये पत्नी और पति आदर्श दम्पती सिद्ध हों ॥२३ ॥

९६९०. प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वाबध्नात्सविता सुशेवः ।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि ॥२४ ॥

हे कन्ये ! आपको हम वरुण के बन्धनों से छुड़ाते हैं । सवितादेव ने सेवाकार्य के लिए आपको बन्धनयुक्त किया था, जो सत्य का आधार और सत्कर्मों का निवास है , उसी स्थान पर आपको अनिष्टरहित पति के साथ विराजमान करते हैं ॥२४ ॥

[सविता द्वारा सूर्या को, पिता द्वारा पुत्री को जो सेवा कार्य सौंपे जाते हैं , उनके उत्तरदायित्वों से उसे विवाह के समय मुक्त कर दिया जाता है ।]

९६९१. प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम् । यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ॥

हे कन्ये ! इस पितृकुल से आपको मुक्त करते हैं , लेकिन पतिकुल से नहीं । उस (पतिकुल) से आपको भली प्रकार सम्बद्ध करते हैं । हे कामनावर्षक इन्द्रदेव ! यह वधू सुसन्ततियुक्त और सौभाग्यवती हो ॥२५ ॥

९६९२. पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।
गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥२६ ॥

पूषादेव आपको यहाँ से हाथ पकड़कर ले जाएँ । आगे अश्विनीकुमार आपको रथ में विराजित करके ले चले । आप अपने पतिगृह की ओर प्रस्थान करें । वहाँ आप गृहस्वामिनी और सबको अपने नियंत्रण (अनुशासन) में रखने वाली बनें । वहाँ आप विवेकपूर्ण वाणी का प्रयोग करें ॥२६ ॥

९६९३. इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।
एना पत्या तन्वं१सं सृजस्वाधा जिव्री विदथमा वदाथः ॥२७ ॥

पतिगृह में सुसन्ततियुक्त होकर आपके स्नेह की वृद्धि हो और इस घर में आप गृहस्थधर्म के कर्त्तव्यों के निर्वाह के लिए सदैव जागरूक रहें । स्वामी के साथ आप संयुक्त (एक प्राण-एक मन वाली) होकर रहें । वृद्धावस्था में आप दोनों (दम्पती) श्रेष्ठ उपदेश (अपनी सन्तानों के लिए) करें ॥२७ ॥

मंत्र क्र० २८ में एक आलंकारिक वर्णन है , जिसके अन्तर्गत सूर्या या वधू पर कृत्या (आभिचारिक विनाशक) शक्ति आरोपित होती है , वह लाल-नीली होती है । लाल-नीला होना क्रोधग्रस्त होने अथवा रजोदर्शन के समय लाल-नीला स्राव होने का प्रतीकात्मक उल्लेख हो सकता है । उसकी प्रतिक्रियाएँ बतलायी गयी हैं । मंत्र क्र० २९, ३०, ३१ में उससे सम्बन्धित उपचारों एवं सावधानियों का उल्लेख है । यह उक्तियाँ लौकिक सन्दर्भ में तो, सहज परिलक्षित होती है , सूक्ष्म प्रकृतिगत सूर्या के सन्दर्भ में इस पर शोध वाञ्छनीय है -

९६९४. नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते । एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥

(सूर्या या वधू) जब नील-लोहित (क्रुद्ध या रजस्वला) होती है , तब उस पर कृत्या शक्ति अभिव्यक्त होती है , उसी (कृत्या) के अनुकूल तत्त्व वर्धित होते हैं । पति उसके प्रभाव से बन्धन में बँध (मर्यादित हो) जाता है ॥२॥

९६९५. परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।
कृत्यैषा पद्वती भूत्व्या जाया विशते पतिम् ॥२९ ॥

शामुल्य (शरीरस्थ मल-विकारों अथवा मन पर छाए मलिन आवरणों) का परित्याग करें । ब्राह्मणों या ब्रह्म विचार को धन या आवास प्रदान करें । (इस प्रयोग से) कृत्या शक्ति (शमित होकर) जाया (जन्म देने वाली) होकर पति के साथ सहगामिनी बन जाती है ॥२९ ॥

९६९६. अश्रीरा तनूर्भवति रुशती पापयामुया । पतिर्यद्वध्वो३ वाससा स्वमङ्गमभिधित्सते ॥

उक्त (कृत्या जन्य) विकारों की स्थिति में स्त्री पीड़ादायक होती है । ऐसी स्थिति में वधू से संयुक्त होने से पति का शरीर भी कान्तिरहित तथा रोगादि से दूषित हो जाता है ॥३० ॥

९६९७. ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनादनु । पुनस्तान्यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ॥

चन्द्रमा की तरह शोभन वधू को जो (शारीरिक-मानसिक) रोग जन्मदाता माता-पिता से स्वभावतः आते हैं, यजनीय देवगण उन्हें उनके पिछले स्थान पर लौटाएँ , जहाँ से वे बार-बार आते हैं ॥३१ ॥

९६९८. मा विदन्परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती । सुगेभिर्दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥३२ ॥

जो रोगरूपी शत्रु , दम्पती के समीप आते हैं , वे विनष्ट हों । वे सुगम मार्गों से दुर्गम स्थानों में चले जाएँ । शत्रु लोग हमारे यहाँ से दूर चले जाएँ ॥३२ ॥

९६९९. सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत । सौभाग्यमस्यै दत्त्वायाथास्तं वि परेतन ॥३३ ॥

यह नववधू मंगल चिह्नों से सुसज्जित है । सभी आशीर्वाद देने वाले आएँ और इसका दर्शन करें । इस विवाहिता को उत्तम सौभाग्यवती होने का शुभाशीष देने के बाद सभी अपने घरों को चले जाएँ ॥३३ ॥

९७००. तृष्टमेतत्कटुकमेतदपाष्ठवद्विषवन्नैतदत्तवे । सूर्यां यो ब्रह्मा विद्यात्स इद्वाधूयमर्हति ॥

यह स्थिति दोषपूर्ण, अग्रहणीय, दूर रखने योग्य एवं विष के समान घातक (पीड़ाजनक) है । यह व्यवहार के योग्य नहीं हैं , जो मेधावी विद्वान् सूर्या को भली प्रकार जानते हैं , वे ही वधू के साथ हितकारी सम्बन्ध स्थापित करने योग्य होते हैं ॥३४ ॥

९७०१. आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम् ।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मा तु शुन्धति ॥३५ ॥

सूर्या का स्वरूप कैसा है , इसे देखें । इसका वस्त्र कहीं एक जगह फटा हुआ हैं , कहीं बीच में से , तो कहीं चारों ओर से कटा हुआ है , सृष्टि निर्माण कर्त्ता ब्रह्मा ही इसे सुशोभित करते हैं ॥३५ ॥

९७०२. गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥३६ ॥

हे वधू ! आप के हाथ को सौभाग्य वृद्धि के लिए मैं ग्रहण करता हूँ । मुझे पतिरूप में स्वीकार करके , आप वृद्धावस्था पर्यन्त (मेरे) साथ रहना यही मेरी प्रार्थना (निवेदन) है । भग, अर्यमा, सविता और पूषादेवों ने आपको मेरे निमित्त गृहस्थ-धर्म का पालन करने के लिए प्रदान किया है ॥३६ ॥

[इस मंत्र का अर्थ प्रकृति की उर्वरा शक्ति-भूमि तथा प्रजनन समर्थ नारी दोनों पर घटित होता है ।]

९७०३. तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या३ वपन्ति ।
या न ऊरू उशती विश्रयाते यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपम् ॥३७ ॥

हे पूषा (पोषण में समर्थ) देव ! आप शिवतम (सबसे अधिक कल्याणप्रदा) उस (उर्वरा शक्ति) को प्रेरित करें , जिसमें मनुष्य बीज को स्थापित करते हैं । जो हम (मनुष्यों) के प्रति उल्लसित होती हुई , अपने ऊरु प्रदेश को विस्तारित करती हैं । जिसके गर्भ में उत्साहपूर्वक (फलित होने के विश्वास से) बीज स्थापित किया जा सके ॥३७ ॥

९७०४. तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह । पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥३८ ॥

हे अग्निदेव ! दहेज (कन्याधन) के रूप में सूर्या को सर्वप्रथम आपके ही समीप ले जाया जाता है (अर्थात् विवाह के समय;यज्ञ समय तथा परिक्रमा इत्यादि में वर-वधू अग्नि के समीप रहते हैं) आप पति को श्रेष्ठ सुसन्तति प्रदान करने वाली स्त्री प्रदान करें अर्थात् विवाहितों को सुसन्तति से सम्पन्न बनाएँ ॥३८ ॥

९७०५. पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा । दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥३९ ॥

अग्नि ने पुनः दीर्घायु , तेजस्वी और कान्तियुक्त पत्नी को प्रदान किया । इसके जो पति हैं , वे चिरंजीवी होकर शतायु तक जीवित रहें ॥३९ ॥

मंत्र क्र० ४० और ४१ में सूर्या के अवतरण का क्रम वर्णित है । सूर्या प्रकृतिगत उर्वरा शक्ति है । उसका प्रथम स्वामी सोम (सूक्ष्म पोषक विकिरण) हुआ , इस समय वह सावित्री थी । सोम से गन्धर्व (गां-किरणों को धारण करने वाले) आदित्य को वह शक्ति प्राप्त हुई । आदित्य-सूर्य ने उसे भूमि पर अग्नि को प्रदान किया, तब वह सूर्या हुई । अग्नि से वह उर्वरा शक्ति मनुष्यों को प्राप्त हुई । मनुष्यों या प्राणियों को वह भूमिगत तथा नारी जातिगत उर्वरता के रूप में प्राप्त हुई । अश्व सम्बोधन शक्ति का द्योतक है । इस द्विधा (जड़ एवं चेतन प्रकृतिगत) उर्वरता को फलित करने वाले शक्ति-प्रवाह को अश्विनीकुमार कहना युक्तिसंगत है । पृथ्वी की उर्वरता से प्राणियों तथा प्राणियों के कारण भूमि के उत्पादन का क्रम जुड़ा हुआ है , यह दोनों प्रवाह एक साथ जुड़े होने से अश्विनीकुमारों को जुड़वाँ कहा जाना भी समीचीन है । सूर्या का वरण सोम द्वारा, फिर गन्धर्व द्वारा फिर अग्नि के द्वारा तथा अन्त में अश्विनीकुमारों द्वारा होने का आलंकारिक वर्णन इस प्रक्रिया में भली प्रकार सिद्ध होता है -

९७०६. सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥४० ॥

हे सूर्या ! सोम ने सर्वप्रथम पत्नी रूप में आपको प्राप्त किया। तदनन्तर गन्धर्व आपके पति हुए, आपके तीसरे पति अग्निदेव हैं। मनुष्य वंशज आपके चौथे पति हैं ॥४० ॥

९७०७. सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो ददग्नये।
रयिं च पुत्राँश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥४१ ॥

सोम ने उस स्त्री को गन्धर्व को दिया। गन्धर्व ने अग्नि को दिया, तदनन्तर अग्नि, (भूमि से उत्पन्न) ऐश्वर्य और (नारी से उत्पन्न) सन्तान सहित मुझे (मनुष्य को) प्रदान करते हैं ॥४१ ॥

९७०८. इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥४२ ॥

हे वर और वधू ! आप दोनों यहीं रहें। कभी भी परस्पर पृथक् न हों। सम्पूर्ण आयु (शतायु) का विशेष रीति से उपभोग करें। अपने गृहस्थ धर्म का निर्वाह करते हुए पुत्र-पौत्रादि सन्तानों के साथ आमोद-प्रमोदपूर्वक जीवन व्यतीत करें ॥४२ ॥

९७०९. आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा।
अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमा विश शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४३ ॥

प्रजापति ब्रह्मा हमें सुसन्तति प्रदान करें। अर्यमादेव वृद्धावस्था तक हमें साथ-साथ रखें। हे वधू ! आप मङ्गलमयी होकर पतिगृह में प्रविष्ट हों। आप हमारे सम्माननीय बन्धुओं और पशुओं के लिए मंगलकारिणी हों ॥४३ ॥

९७१०. अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः।
वीरसूर्देवकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४४ ॥

हे वधू ! आप शान्तदृष्टियुक्त और पति के निमित्त दुःखों से रहित मंगलमयी हों। आप पशुओं के लिए हितप्रद, सुविचारों से युक्त, तेजस्वी, वीर प्रसविनी और देवों की उपासिका रूप होकर कल्याणकारी हों। हमारे परिवार, परिजनों तथा उपयोगी पशुओं के लिए कल्याणकारी हों ॥४४ ॥

९७११. इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु।
दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि ॥४५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप इस स्त्री को सुसन्ततियुक्त एवं सौभाग्यशाली बनाएँ। इसे दस पुत्रवती बनाएँ तथा पति सहित इस स्त्री को ग्यारह परिवार सदस्यों से युक्त करें ॥४५ ॥

९७१२. सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ॥४६ ॥

हे वधू ! आप सास, श्वसुर, ननद और देवरों की सम्राज्ञी (महारानी) के समान हो, आप सबके ऊपर स्वामिनी स्वरूपा हों ॥४६ ॥

९७१३. **समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ।**
सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ ॥४७ ॥

सम्पूर्ण देवगण हम दोनों के हृदयों को परस्पर संयुक्त करें । जल, वायु , धाता और सरस्वती हम दोनो को परस्पर सम्मिलित करें ॥४७ ॥

[सूक्त - ८६]

[**ऋषि** - इन्द्र; ७, १३, २३ वृषाकपि ऐन्द्र; २-६, ९-१०, १५-१८ इन्द्राणी । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - पंक्ति ।]

इस सूक्त में ऐन्द्र (इन्द्र के पुत्र या सहयोगी) वृषाकपि का वर्णन है। वे इन्द्रदेव को प्रिय हैं। इन्द्राणी उनसे रुष्ट हैं, तो इन्द्र और वृषाकपि उन्हें मनाते हैं। प्रत्येक मंत्र के अन्त में गती की टेक की तरह एक उक्ति आती है, विश्व में इन्द्रदेव ही सर्वश्रेष्ठ हैं। 'वृषा' का अर्थ होता है वर्षणशील या बलशाली तथा 'कपि' का अर्थ होता है कम्पनशील। वृषाकपि-सोमदेव की तरह दिव्याकाश, अंतरिक्ष, भूमि एवं प्राणियों के शरीरों में सक्रिय दीखते हैं। आकाश में वे शक्तिसम्पन्न, कम्पनशील अयन के रूप में सक्रिय हैं, जो इन्द्रदेव (संगठन-पदार्थ संयोजक शक्ति) को प्रिय हैं। अन्तरिक्ष में मेघस्थ वे ही वर्षणशील होते हैं। पृथ्वी पर अग्नि के अन्दर यही कम्पनशील कणों की प्रतिक्रिया चलती है। शरीर में 'जीव' इन्द्रदेव के साथ, कामनाशक्ति वृषाकपि का ही रूप है। जीवन की पदार्थ प्राप्ति, विकास की कामना इन्द्रदेव के लिए उपयोगी है। वे विकारग्रस्त हों, तो हानि है। इसलिए इन्द्राणी उन पर क्रुद्ध होती हैं; किन्तु जीवन के यज्ञीय सन्दर्भों में वे इन्द्रदेव के प्रिय सहयोगी हैं। इन्हीं सन्दर्भों में मंत्रार्थों को देखा जाना उचित लगता है -

९७१४. **वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत।**
यत्रामदद्वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१ ॥

इन्द्रदेव ने स्तोताओं को सोम अभिषव या अन्य कार्य के लिए प्रेरित किया था, उन्होंने इन्द्रदेव की प्रार्थना नहीं की (अपितु वृषाकपि वय की प्रार्थना की) जहाँ सोमप्रवृद्ध यज्ञ में आर्य वृषाकपि (इन्द्रदेव पुत्र) हमारे मित्र होकर सोमपान से हर्षित हुए , वहाँ भी इन्द्रदेव ही सर्वश्रेष्ठ हैं ॥१ ॥

९७१५. **परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः।**
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२ ॥

(इन्द्राणी का कथन) हे इन्द्रदेव ! आप व्यथित होकर वृषाकपि के समीप दौड़ जाते हैं । आप दूसरे स्थान पर सोमपान हेतु नहीं जाते । निश्चय ही इन्द्रदेव सर्वश्रेष्ठ हैं ॥२ ॥

९७१६. **किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः।**
यस्मा इरस्यसीदु न्व१र्यो वा पुष्टिमद्वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! इस हरित (हरे या हरणशील) मृग (भूमिगामी) वृषाकपि ने आपका क्या हित किया है, जिसके कारण आप उदारता के साथ उन्हें पुष्टिकर ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ? इन्द्रदेव ही वास्तव में सर्वोत्तम हैं ॥३ ॥

९७१७. **यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि।**
श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥४ ॥

(इन्द्राणी का कथन -) हे इन्द्रदेव ! आप जिस प्रिय वृषाकपि को सुरक्षित करते हैं , वाराह पर आक्रमण करने वाला श्वान उसका कान काट ले । इन्द्रदेव ही वास्तव में सर्वोत्तम हैं ॥४ ॥

९७१८. प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुषत्।
शिरो न्वस्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥५ ॥

मुझे तुष्ट करने वाले पदार्थों को वृषाकपि ने दूषित कर दिया। मेरी अभिलाषा है कि इसके मस्तक को काट डालूँ। इस दुष्कर्म में संलग्न (वृषाकपि) की कभी हितैषी नहीं बनूँगी। इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ और महान् हैं ॥५ ॥

[इन्द्राणी शक्ति को तुष्ट करने वाले पदार्थों को वृषाकपि (कामना प्रवाह) दूषित करते हैं, तो वे उग्र होती हैं।]

९७१९. न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत्।
न मत्प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥६ ॥

कोई दूसरी स्त्री मुझसे बढ़कर सौभाग्यशालिनी नहीं और न कोई दूसरी अतिसुखी और सुसन्तति युक्त है। मुझसे अधिक कोई भी स्त्री अपने पति को सुख देने में सक्षम भी नहीं होगी। इन्द्रदेव ही वास्तव में सर्वश्रेष्ठ हैं ॥६॥

९७२०. उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति।
भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥७ ॥

(वृषाकपि का कथन) हे इन्द्राणी माता ! आप सभी सुखों का लाभ प्राप्त करने वाली हैं। आपके अंग, जंघा, मस्तक आदि आवश्यकतानुसार स्वरूप धारण करने या कार्य करने में सक्षम हैं। आप पिता इन्द्रदेव के लिए स्नेह द्वारा सुख प्रदात्री हों। इन्द्रदेव ही सर्वोत्तम हैं ॥७ ॥

९७२१. किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने।
किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपिं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥८ ॥

(इन्द्र का कथन) हे वीर पत्नी इन्द्राणी ! आप श्रेष्ठ भुजाओं से युक्त, सुन्दर अँगुलियों वाली, श्रेष्ठ केशवती तथा विशाल जंघाओं से युक्त हैं। आप क्यों वृषाकपि पर क्रोधित हो रही हैं ? इन्द्रदेव विश्व में सर्वोत्तम हैं ॥८ ॥

९७२२. अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥९ ॥

(इन्द्राणी का कथन) यह घातक वृषाकपि मुझे पति-पुत्रादि से रहित के समान ही मानता है; परन्तु इन्द्र पत्नी तो पति और सन्तानादि से सम्पन्न हैं तथा मरुद्गण हमारे सहायक हैं। इन्द्रदेव विश्व में सर्वोत्तम हैं ॥९ ॥

[वृषाकपि द्वारा प्रत्यक्ष रूप से इन्द्रदेव के संयोजन कार्यों में विघ्न पैदा हो जाते हैं। वृषाकपि इन्द्राणी की अभ्यर्थना करते हैं, तो भी उन्हें उनके कार्यों में अपने अधीनस्थ प्राण-प्रवाहों की उपेक्षा दिखती है।]

९७२३. संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति।
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१० ॥

सत्यविधात्री, सत्यप्रतिपादनशीला और पुत्रवती इन्द्रपत्नी (इन्द्राणी) यज्ञ में (संग्राम में) पहले ही वहाँ पहुँचती हैं, अतएव उनकी स्तुति सभी जगह होती है। इन्द्रदेव मेरे पति रूप में सर्वश्रेष्ठ हैं ॥१० ॥

९७२४. इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम्।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥११ ॥

सभी स्त्रियों में इन्द्राणी को मैं सर्वाधिक सौभाग्यशालिनी मानता हूँ। दूसरी स्त्रियों के पति के समान इन्द्राणी के पति इन्द्र, वृद्धावस्था में मृत्यु को प्राप्त नहीं होते, (अपितु इन्द्र अमर हैं) इन्द्र ही वस्तुतः सर्वोत्तम हैं ॥११ ॥

९७२५. नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते ।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१२ ॥

हे इन्द्राणी ! हमारे मित्र (मरुद्‌गण) वृषाकपि के बिना हर्षित नहीं रहते । वृषाकपि का ही अति प्रीतियुक्त द्रव्य (हव्यादि) देवों के समीप पहुँचता है , इन्द्रदेव ही सर्वोत्तम हैं ॥१२ ॥

[मरुद्‌गण संचरणशील हैं , उन्हें वृषाकपि मेधा या अग्निरूप में सहयोग देते हैं । हव्य एवं पर्जन्य को प्रवाहित करते हैं ।]

९७२६. वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे ।
घसत्त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१३ ॥

हे वृषाकपायि ! (वृषाकपि की माता या पत्नी) आप धनवती , श्रेष्ठ पुत्रवती और सुन्दर पुत्रवधू वाली हैं । आपके उक्षाओं का सेवन इन्द्रदेव शीघ्र करें । आपके प्रिय और सुखप्रद हविष्यान्न का वे सेवन करें । इन्द्रदेव ही वास्तव में सर्वोत्तम हैं ॥१३ ॥

[उक्षा का अर्थ वृषभ भी होता है , जो यहाँ युक्तिसंगत नहीं । पुष्टिदायक ओषधि तथा सेचन सामर्थ्य यहाँ समीचीन है ।]

९७२७. उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम् ।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१४ ॥

(इन्द्र का कथन) मेरे लिए शची द्वारा प्रेरित पन्द्रह-बीस उक्षा (सेचन सामर्थ्यों , इन्द्रियों तथा प्राण-उपप्राण आदि) एक साथ परिपक्व होते हैं , उनका सेवन करके मैं पुष्ट होता हूँ । मेरे दोनों पार्श्व उससे भर जाते हैं । विश्व में इन्द्रदेव ही सर्वोपरि हैं ॥१४ ॥

९७२८. वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत् ।
मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१५ ॥

तीखे सींगों से युक्त वृषभ जिस प्रकार गोसमूह में गर्जनशील (रँभाते हुए) विचरते हैं , उसी प्रकार आप भी हमारे साथ रमण करें । हे इन्द्रदेव ! आपके हृदय का भावमंथन कल्याणप्रद हो । आपके निमित्त भावना से आकांक्षी इन्द्राणी जिस सोम का अभिषव करती हैं , वह भी कल्याणकारी हो । इन्द्रदेव विश्व में सर्वोत्तम हैं ॥१५ ॥

मंत्र क्र० १६ में इन्द्राणी जो बात कह रही हैं , मंत्र क्र० १० में इन्द्र उससे विपरीत तथ्य कह रहे हैं । यह रहस्यमय कथन है , जो प्रकृति एवं जीव-जगत् में घटित होता है । कुछ आचार्यों ने इन मंत्रों का अर्थ रतिकर्म परक किया है; किन्तु वह शब्दार्थों के साथ खींच-तान जैसा लगता है । ' कपृत् ' का अर्थ ' उपस्थेन्द्रिय ' भी होता है; किन्तु उसका अर्थ 'कुख्याति का कारणभूत' भी होता है । यह अनेकार्थी शब्द है । ' रम्बते' का अर्थ-शब्दायमान है , उसे रकार-लकार की एकता मानकर ' लम्बते ' करते उचित नहीं लगता । इसी प्रकार रोमशः शब्द रोमयुक्त , अंकुयुक्त एवं विकिरण युक्त के लिए प्रयुक्त होता है , उसे पुरुष जननेन्द्रिय से जोड़ना एक तरह की जबरदस्ती है । यहाँ मन्त्रों के सहज स्वाभाविक भाषा एवं भाव सम्मत अर्थ करने का प्रयास किया गया है । वैसे ये मन्त्र शोध की अपेक्षा रखते हैं -

९७२९. न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३ कपृत् ।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१६ ॥

(प्राणि-संदर्भ में इन्द्राणी कहती हैं) जिसके सक्थ (भारवाहक दो अवयवों) के बीच कुख्याति प्रदायक (विकार) शब्द कर (अपनी अभिव्यक्ति करती) हैं । वे शासन करने में समर्थ नहीं होते । (वह विकार) जिसके रोमों से (किरणों से) क्षरण का यत्न करते हैं , वह (विकारयुक्त होकर) शासन करने में समर्थ होता है । वास्तव में इन्द्रदेव ही सर्वश्रेष्ठ हैं ॥१६ ॥

९७३०. न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते ।
सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३ कपृद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१७ ॥

(प्रकृति-संदर्भ में इन्द्र कहते हैं) जिसके कुरूप-विस्तार वाले (मेघादि) दो धारक (आकाश एवं पृथ्वी के बीच) अंतरिक्ष में शब्दायमान होते हैं, वही शासन करता है । जिसके विकिरणयुक्त अंग (अथवा अंकुरों) से विकार प्रकट होते हैं, वह शासन नहीं करता । इन्द्रदेव ही सर्वश्रेष्ठ हैं ॥१७ ॥

९७३१. अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत् ।
असिं सूनां नवं चरुमादेधस्यान आचितं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१८ ॥

हे इन्द्रदेव ! वृषाकपि दूरवर्ती, अलभ्य पदार्थ भी प्राप्त करें । यह खड्ग (विकार नाशक), पाकस्थल नये चरु और काष्ठों से परिपूर्ण शकट ग्रहण करें । इन्द्रदेव ही वास्तव में सर्वोत्तम हैं ॥१८ ॥

९७३२. अयमेमि विचाकशद्विचिन्वन्दासमार्यम् ।
पिबामि पाकसुत्वनोऽभि धीरमचाकशं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१९ ॥

मैं (इन्द्र) यजमानों का निरीक्षण करते हुए, शत्रुओं को दूर करते हुए तथा आर्यों का अन्वेषण करते हुए यज्ञ में उपस्थित होता हूँ । सोम अभिषवणकर्त्ता और हविष्यान्न तैयार करने वालों द्वारा समर्पित किए गये सोम का सेवन करता हूँ । बुद्धिमान् यजमान की श्रेष्ठ रीति से रक्षा करता हूँ । इन्द्रदेव ही सर्वश्रेष्ठ हैं ॥१९ ॥

९७३३. धन्व च यत्कृन्तत्रं च कति स्वित्ता वि योजना ।
नेदीयसो वृषाकपेऽस्तमेहि गृहाँ उप विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२० ॥

जल रहित मरुस्थल (उर्वरता रहित क्षेत्र) और काटने योग्य वन (जहाँ आवश्यकता से अधिक उत्पादन हो रहा हो) में कितना अन्तर है ? (दोनों को ठीक करना होगा) अतएव हे वृषाकपि ! आप समीप ही स्थित हमारे घर में आश्रय ग्रहण करें । इन्द्रदेव सर्वश्रेष्ठ हैं ॥२० ॥

९७३४. पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै ।
य एष स्वप्ननंशनोऽस्तमेषि पथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२१ ॥

हे वृषाकपि ! आप पुनः वापस आएँ । आपके निमित्त हम (इन्द्र, इन्द्राणी) सुखदायी श्रेष्ठ कर्मों को सम्पादित करते हैं । आप निद्रा एवं स्वप्ननाशक सूर्य के समान सुगम मार्ग से हमारे घर में पुनः आएँ । इन्द्र ही सर्वोत्तम हैं ॥२१

[स्वप्नों में न भटक कर कामनाएँ तेजस्वी मार्ग से चलें, तो इन्द्र के सहयोग से फलित हों ।]

९७३५. यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन ।
क्व१ स्य पुल्वघो मृगः कमगञ्जनयोपनो विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२२ ॥

हे वृषाकपि और इन्द्रदेव ! आप ऊपर को घूमकर हमारे घर में प्रविष्ट हों । बहुभोक्ता और लोगों के लिए आनन्ददायक विचरणशील आप कहाँ गये थे ? इन्द्रदेव ही वास्तव में सर्वश्रेष्ठ हैं ॥२२ ॥

९७३६. पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम् ।
भद्रं भल त्यस्या अभूद्यस्या उदरमामयद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२३ ॥

मनु की पुत्री पर्शु (स्पर्श) नाम वाली हैं, जिनने बीस पुत्रों को एक साथ जन्म दिया । जिन पर्शु का उदर विशाल हुआ था, उनका सदैव कल्याण हो । इन्द्रदेव ही सर्वश्रेष्ठ हैं ॥२३ ॥

[सूक्त - ८७]

[ऋषि - पायु भारद्वाज । देवता - रक्षोहा अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप्, २२-२५ अनुष्टुप् ।]

९७३७. रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥१ ॥

हम राक्षस विध्वंसक, बलवान्, याजकों के, मित्र और प्रतिष्ठित अग्नि को घृत से प्रज्वलित करते हुए अत्यन्त सुख अनुभव करते हैं । ये अग्निदेव अपनी ज्वालाओं को तेज करते हुए यज्ञकर्म सम्पादक यजमानों द्वारा प्रदीप्त होते हैं । हिंसक राक्षसों से ये अग्निदेव हमारी अहोरात्र रक्षा करें ॥१ ॥

९७३८. अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुप स्पृश जातवेदः समिद्धः ।
आ जिह्वया मूरदेवान्रभस्व क्रव्यादो वृक्त्व्यपि धत्स्वासन् ॥२ ॥

हे ज्ञानस्वरूप अग्निदेव ! आप अतितेजस्वी और लौहदन्त (वेधक सामर्थ्य वाले) होकर अपनी जिह्वा (ज्वालाओं) से हिंसक राक्षसों को नष्ट करें। मांसभक्षी राक्षसों को काटकर अपने ज्वालारूपी मुख में धारण करें ॥२ ॥

९७३९. उभोभयाविन्नुप धेहि दंष्ट्रा हिंस्रः शिशानोऽवरं परं च ।
उतान्तरिक्षे परि याहि राजञ्जम्भैः सं धेह्यभि यातुधानान् ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपने दोनों दाँतों (वेधक ज्वालाओं) को तीक्ष्ण करें, उन्हें असुरों में प्रविष्ट करा दें । दोनों प्रकार से आप उनका संहार करें तथा निकट एवं दूर की प्रजाओं की रक्षा करें । हे दीप्तिमान् बलशाली अग्निदेव ! आप अन्तरिक्षस्थ असुरों के समीप जाएँ और उन दुष्ट-असुरों को अपनी दाढ़ों (मारक शक्ति) से पीस डालें ॥३ ॥

९७४०. यज्ञैरिषूः संनममानो अग्ने वाचा शल्याँ अशनिभिर्दिहानः ।
ताभिर्विध्य हृदये यातुधानान् प्रतीचो बाहून्प्रति भङ्ग्ध्येषाम् ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप सामर्थ्यवर्द्धक यज्ञों और हमारी प्रार्थना से संतुष्ट होकर अपने बाणों का संधान करते हुए, उनके अग्रभागों को वज्र से युक्त करते हुए, असुरों के हृदयों को भेद डालें । इसके पश्चात् युद्ध के लिए प्रेरित उनके सहयोगियों की भुजाओं को तोड़ डालें ॥४ ॥

९७४१. अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम् ।
प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात्क्रविष्णुर्वि चिनोतु वृक्णम् ॥५ ॥

हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! आप असुरों की त्वचा को छिन्न-भिन्न कर डालें । इन्हें आपका हिंसक वज्रास्त्र अपनी तेजस्विता से नष्ट करे, असुरों के अङ्गों को भग्न करे । खण्ड-खण्ड पड़े असुरों के अंग-अवयवों को मांसभक्षी वृक आदि हिंसक पशु भक्षण करें ॥५ ॥

९७४२. यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम् ।
यद्वान्तरिक्षे पथिभिः पतन्तं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥६ ॥

हे ज्ञानवान् बलशाली अग्निदेव ! आप राक्षसों को स्थिर स्थिति में, इधर-उधर विचरण की स्थिति में, आकाश में अथवा मार्ग में जहाँ भी उन्हें देखें, वहीं उन पर शर-संधान करके, तेज बाण फेंककर, उनका संहार करें ॥६ ॥

९७४३. उतालब्धं स्पृणुहि जातवेद आलेभानादृष्टिभिर्यातुधानात्।
अग्ने पूर्वो नि जहि शोशुचान आमादः क्ष्विङ्कास्तमदन्त्वेनीः ॥७ ॥

हे ज्ञानी अग्निदेव ! आप आक्रान्ता असुर के हाथों से आक्रान्त यजमान व्यक्ति को ऋष्टि (दो धारों वाले खड्ग) से सुरक्षित करें। सर्वप्रथम आप प्रदीप्त होकर कच्चे मांस का भक्षण करने वाले असुरों का संहार करें। शब्द करते हुए वेग से उड़ने वाले पक्षी इस राक्षस को खाएँ ॥७ ॥

९७४४. इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने यो यातुधानो य इदं कृणोति।
तमा रभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षसश्चक्षुषे रन्धयैनम् ॥८ ॥

हे युवा अग्निदेव ! कौन राक्षस इस यज्ञ के विध्वंसक हैं, यह हमें बताएँ ? समिधाओं द्वारा प्रज्वलित होकर आप उन असुरों का संहार करें। मनुष्यों के ऊपर आपकी कृपामयी दृष्टि रहती है, उसी कल्याणकारी दृष्टि के अन्तर्गत अपने तेज से असुरों का विनाश करें ॥८ ॥

९७४५. तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्र णय प्रचेतः।
हिंस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन्यातुधाना नृचक्षः ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपने तीक्ष्ण तेज से हमारे यज्ञ का संरक्षण करें। हे श्रेष्ठ ज्ञान-सम्पन्न अग्निदेव ! आप इस सर्वोत्तम यज्ञ को धन-सम्पन्न बनाएँ। हे मनुष्यों के द्रष्टा अग्निदेव ! आप असुरों के संहारक तथा अति प्रज्वलित हैं, दुष्ट असुरता आपको विनष्ट न करे ॥९ ॥

९७४६. नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा।
तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च ॥१० ॥

हे मनुष्य के निरीक्षक अग्निदेव ! आप मनुष्यों के घातक असुरों को भी देखें। उस राक्षस के तीन आगे के मस्तकों का उच्छेदन करें। उसके समीपस्थ राक्षसों को भी शीघ्रता से समाप्त करें। इस प्रकार तीनों ओर से राक्षस के मूल को काट डालें ॥१० ॥

९७४७. त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त एत्वृतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति।
तमर्चिषा स्फूर्जयञ्जातवेदः समक्षमेनं गृणते नि वृङ्धि ॥११ ॥

हे ज्ञानसम्पन्न अग्निदेव ! आपकी ज्वालाओं की चपेट में राक्षस तीन बार आएँ। जो राक्षस सत्य को असत्य वाणी से विनष्ट करते हैं, उन्हें अपनी तेजस्विता से भस्मीभूत कर डाले। स्तोता के समक्ष ही इन्हें विनष्ट कर दें ॥११ ॥

९७४८. तदग्ने चक्षुः प्रति धेहि रेभे शफारुजं येन पश्यसि यातुधानम्।
अथर्ववज्ज्योतिषा दैव्येन सत्यं धूर्वन्तमचितं न्योष ॥१२ ॥

हे ज्ञानसम्पन्न, बलशाली अग्निदेव ! गर्जना करने वाले अहंकारी असुरों पर उस तेज को फेकें, जिसके प्रकाश में आप, खुर के समान नाखूनों से ऋषियों के उत्पीड़क असुरों को देखते हैं। सत्य को

असत्य से विनष्ट करने वाले अज्ञानी असुर को अपनी दिव्य तेजस्विता से अथर्वा ऋषि के समान भस्मीभूत कर डालें ॥१२ ॥

९७४९. **यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद्वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः ।**
मन्योर्मनसः शरव्या३ जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान् ॥१३ ॥

हे अग्निदेव ! आज जब स्त्री-पुरुष आपसी झगड़ा करते हैं तथा स्तोतागण परस्पर कटु-वाणी का प्रयोग करते हैं , ऐसे समय में मन्यु द्वारा मन: शक्ति से छोड़े गये बाणों के समान (सूक्ष्म प्रहार द्वारा) राक्षसों के हृदय (राक्षसी प्रवृत्तियों) को वेध डालें ॥१३ ॥

९७५०. **परा शृणीहि तपसा यातुधानान्पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।**
पराचिषा मूरदेवाञ्छृणीहि परासुतृपो अभि शोशुचानः ॥१४ ॥

हे अग्निदेव ! आप असुरों को अपनी तेजस्विता से भस्म करें, उन्हें अपनी तप शक्ति से विनष्ट करें । हिंसक असुरों को अपनी तीक्ष्ण ज्वाला से विनष्ट करें । अति प्रदीप्तावस्था में मनुष्यों के प्राणों को हरण करने वाले असुरों को भस्मीभूत कर दें ॥१४ ॥

९७५१. **पराद्य देवा वृजिनं शृणन्तु प्रत्यगेनं शपथा यन्तु तृष्टाः ।**
वाचास्तेनं शरव ऋच्छन्तु मर्मन्विश्वस्यैतु प्रसितिं यातुधानः ॥१५ ॥

अग्नि आदि देवगण प्राणघाती असुरों (अवांछनीय शक्तियों) का संहार करें, उनके समीप हमारे शाप युक्त वचन जाएँ। असत्यवादी असुरों के मर्मस्थल के पास बाण जाएँ। सर्वव्यापक अग्निदेव के बन्धन में असुरों का पतन हो ॥१५ ॥

९७५२. **यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।**
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥१६ ॥

हे अग्ने ! जो राक्षस मनुष्य के मांस से (मनुष्य को मारकर) स्वयं को संतुष्ट करते हैं । जो अश्वादि पशुओं से मांस को एकत्र करते हैं तथा जो हिंसारहित गौ के दूध को चुराते हैं, ऐसे दुष्टों के मस्तकों को अपनी सामर्थ्य से छिन्न-भिन्न कर डालें ॥१६ ॥

९७५३. **संवत्सरीणं पय उस्रियायास्तस्य माशीद्यातुधानो नृचक्षः ।**
पीयूषमग्ने यतमस्तितृप्सात्तं प्रत्यञ्चमर्चिषा विध्य मर्मन् ॥१७ ॥

हे मनुष्यों के निरीक्षक अग्निदेव ! वर्ष भर में संगृहीत होने वाले गाय के दूध को दुष्ट राक्षस पान न करने पाएँ । जो राक्षस इस अमृतवत् दूध को पीने की अभिलाषा करते हैं, आपके समक्ष आने पर आप उन्हें ज्वाला रूपी तेज से छिन्न-भिन्न करें ॥१७ ॥

९७५४. **विषं गवां यातुधानाः पिबन्त्वा वृश्च्यन्तामदितये दुरेवाः ।**
परैनान्देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम् ॥१८ ॥

राक्षसी शक्तियाँ गौओं के जिस दूध का पान करें , वह उनके निमित्त विष के समान हो जाए । देवमाता अदिति की संतुष्टि के लिए इन राक्षसों को आप अपने ज्वाला रूपी शस्त्रों से काट डालें । सविता देव इन राक्षसों को , हिंसक पशुओं को प्रदान करें । ओषधियों के भक्षण योग्य अंश इन्हें प्राप्त न हों ॥१८ ॥

९७५५. सनादग्ने मृणसि यातुधानान्न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
अनु दह सहमूरान्क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥१९ ॥

हे ज्ञानवान्, बलशाली अग्निदेव ! आपने सदा से राक्षसों (आसुरी शक्तियों) का दलन किया है, उन्हें युद्ध में पराभूत किया है। आप क्रूर प्रकृति वाले, अभक्ष्य आहार करने वाले दुष्टों को नष्ट करें । वे आपकी तेजस्विता से बच न सकें ॥१९ ॥

९७५६. त्वं नो अग्ने अधरादुदक्तात्त्वं पश्चादुत रक्षा पुरस्तात् ।
प्रति ते ते अजरासस्तपिष्ठा अघशंसं शोशुचतो दहन्तु ॥२० ॥

हे अग्निदेव ! आप हमें पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों ओर से संरक्षित करें । आपकी अति उज्ज्वल, अविनाशी और अतितापयुक्त ज्वालाएँ दुष्कर्मी राक्षसों को शीघ्र भस्म करें ॥२० ॥

९७५७. पश्चात्पुरस्तादधरादुदक्तात्कविः काव्येन परि पाहि राजन् ।
सखे सखायमजरो जरिम्णेऽग्ने मर्तौं अमर्त्यस्त्वं नः ॥२१ ॥

हे दीप्तिमान् अग्निदेव ! आप क्रान्तदर्शी हैं, अतएव अपने दृष्टि-कौशल से उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम से हमारी भली प्रकार रक्षा करें । हे मित्र और अग्निदेव ! आप जीर्णता रहित हैं, हम आपके मित्र आपकी कृपादृष्टि से दीर्घजीवी हों । आप अविनाशी हैं, हम मरणधर्मा मनुष्यों को चिरंजीवी बनाएँ ॥२१ ॥

९७५८. परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।
धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावताम् ॥२२ ॥

हे शक्तिशाली अग्निदेव ! आप पूर्णता प्रदान करने वाले विज्ञ, संघर्षशील असुरों का नित्यप्रति संहार करने वाले हैं । हम (आपके गुणों का अनुगमन करने के लिए) आपका ध्यान करते हैं ॥२२ ॥

९७५९. विषेण भङ्गुरावतः प्रति ष्म रक्षसो दह ।
अग्ने तिग्मेन शोचिषा तपुरग्राभिर्ऋष्टिभिः ॥२३ ॥

हे अग्निदेव ! आप विध्वंसक कर्मों में संलग्न राक्षसों को अपनी विस्तृत, तीक्ष्ण तेजस्विता से जलाएँ तथा तपते हुए ऋष्टि (दुधारे) अस्त्रों से भी उन्हें नष्ट करें ॥२३ ॥

९७६०. प्रत्यग्ने मिथुना दह यातुधाना किमीदिना ।
सं त्वा शिशामि जागृह्यदब्धं विप्र मन्मभिः ॥२४ ॥

हे बलशाली अग्निदेव ! स्त्री-पुरुष में कहाँ क्या (विशेषता) है, इस बात को कहते और देखते हुए विचरणशील राक्षसों को भस्म कर डालें । हे ज्ञाननिष्ठ अग्निदेव ! आप अदम्य हैं, हम आपका स्तवन करते हैं, आप जाग्रत् रहें ॥२४ ॥

९७६१. प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणीहि विश्वतः प्रति ।
यातुधानस्य रक्षसो बलं वि रुज वीर्यम् ॥२५ ॥

अपने तेज (पराक्रम) से आततायी असुरों (दुष्टों) को नष्ट करने वाले हे अग्ने ! इन असुरों के बल एवं पराक्रम को आप पूर्णतया विनष्ट कर दें ॥२५ ॥

[सूक्त - ८८]

[ऋषि - मूर्धन्वान् आङ्गिरस अथवा मूर्धन्वान् वामदेव्य । देवता - सूर्य और वैश्वानर अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

इस सूक्त में प्रथम अग्निकाण्ड (बिग बैंग) द्वारा सृष्टि के मूल घटकों के निर्माण एवं विकास का क्रम वर्णित है -

९७६२. हविष्पान्तमजरं स्वर्विदि दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ ।
तस्य भर्मणे भुवनाय देवा धर्मणे कं स्वधया पप्रथन्त ॥१ ॥

जो पान योग्य (अथवा पालक) , अविनाशी और देवताओं द्वारा सेवनीय सोमरस, दिव्यलोक का स्पर्श करने वाले, स्वर्ग (देव आवास) को जानने वाले अग्निदेव को आहुतिरूप में समर्पित किया गया है; उसके सर्वपोषण, उत्पादन और धारण करने के लिए देवगणों ने सुखप्रद अग्नि को संवर्द्धित किया है ॥१ ॥

९७६३. गीर्णं भुवनं तमसापगूळ्हमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ।
तस्य देवाः पृथिवी द्यौरुतापोऽरणयन्नोषधीः सख्ये अस्य ॥२ ॥

जब सम्पूर्ण भुवन अन्धकारग्रस्त होकर (प्रलयकाल या रात्रि में) तम से आच्छादित हो जाते हैं , तब (सृष्टि अथवा प्रभात के समय) अग्नि के प्रादुर्भूत होने पर यह सम्पूर्ण विश्व पुनः स्पष्ट रूप से प्रकट होता है । उस जगत् का विलय करने वाले इन महिमामय अग्निदेव के मैत्रीभाव में ही इन्द्रादि देव, पृथ्वी, आकाश, जल, अन्तरिक्ष तथा ओषधियाँ रमण करती हैं ॥२ ॥

९७६४. देवेभिर्न्विषितो यज्ञियेभिरग्निं स्तोषाण्यजरं बृहन्तम् ।
यो भानुना पृथिवीं द्यामुतेमामाततान रोदसी अन्तरिक्षम् ॥३ ॥

यज्ञीय (सृजन एवं पोषण की) प्रक्रिया के संचालक देवों ने हमें प्रेरणा प्रदान की है , अतएव हम उन अविनाशी (विश्वसृजेता) और विस्तृत अग्निदेव की प्रार्थना करते हैं , जो अग्निदेव अपने समर्थ तेज से द्यावा-पृथिवी तथा अन्तरिक्ष को विस्तारित करते हैं ॥३ ॥

[सृष्टि सृजन के समय महाविस्फोट (बिग बैंग) को अविनाशी अग्नि का प्राथमिक प्रयोग कहा जा सकता है , उसी से लोकों की उत्पत्ति होती है ।]

९७६५. यो होतासीत्प्रथमो देवजुष्टो यं समाञ्जन्नाज्येना वृणानाः ।
स पतत्रीत्वरं स्था जगद्यच्छ्वात्रमग्निरकृणोज्जातवेदाः ॥४ ॥

जो वैश्वानर अग्निदेव , देवों द्वारा सेवित और सर्वप्रथम होता (आहुति देने वाले) हुए थे, जिन्हें वरणकर्त्ता देवगण, याजक आदि घृत से भली प्रकार प्रज्वलित करते हैं , उन्हीं अग्निदेव द्वारा उड़ने वाले पक्षियों , गतिशील सर्पादि तथा स्थावर जङ्गमात्मक जगत् को शीघ्रता से उत्पादित किया गया है ॥४ ॥

[देवों (प्रकृति के दिव्य प्रवाहों) द्वारा अग्नि का वरण होने से प्राणियों की उत्पत्ति हुई ।]

९७६६. यज्जातवेदो भुवनस्य मूर्धन्नतिष्ठो अग्ने सह रोचनेन ।
तं त्वाहेम मतिभिर्गीर्भिरुक्थैः स यज्ञियो अभवो रोदसिप्राः ॥५ ॥

हे ज्ञानी अग्निदेव ! जो आप सम्पूर्ण विश्व के मूर्धन्य स्थान पर प्रकाश रूप में रहते हैं , ऐसे आपके मानसिक चित्र , स्तुतियों तथा सुन्दर गायनों से हम आपको उपलब्ध करते हैं । आप यज्ञीय क्रम से आकाश, पृथ्वी के परिपूर्ण- कर्त्ता हैं ॥५ ॥

९७६७. मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निस्ततः सूर्यो जायते प्रातरुद्यन् ।
मायामू तु यज्ञियानामेतामपो यत्तूर्णिश्चरति प्रजानन् ॥६ ॥

रात्रिकाल (अथवा प्रलयरात्रि) में अग्निदेव इस जगत् के सम्पूर्ण प्राणियों के मस्तकरूप मूलाश्रय होते हैं , प्रात:काल (सृष्टिकाल) में सूर्य के रूप में उत्पन्न होते हैं । इन अग्निदेव को यज्ञ-सम्पादक देवताओं की माया (कुशलता) कहा जाता है । वे ही सर्वज्ञाता होकर (विभिन्न रूपों में) शीघ्रता से अन्तरिक्ष में संचरित होते हैं ॥६ ॥

९७६८. दृशेन्यो यो महिना समिद्धोऽरोचत दिवियोनिर्विभावा ।
तस्मिन्नग्नौ सूक्तवाकेन देवा हविर्विश्व आजुहवुस्तनूपाः ॥७ ॥

जो अग्निदेव अपनी महिमा से सर्वदर्शनीय, प्रज्वलनशील, दिव्यलोक में विराजमान, विशिष्ट रूप से तेजस्वी होकर सुशोभित होते हैं; उन्हीं अग्निदेव को शरीर रक्षक सम्पूर्ण देवताओं ने सूक्त पाठ करते हुए हविष्यान्न की आहुतियाँ समर्पित कीं ॥७ ॥

सृष्टि उत्पादक यज्ञ में क्या क्रम चला , इसका उल्लेख इस मंत्र में है -

९७६९. सूक्तवाकं प्रथममादिदग्निमादिद्धविरजनयन्त देवाः ।
स एषां यज्ञो अभवत्तनूपास्तं द्यौर्वेद तं पृथिवी तमापः ॥८ ॥

सर्वप्रथम देवगणों ने पहले वाक् रूप में सूक्तों (श्रेष्ठ उक्ति अथवा दिव्य योजना) को बनाया । इसके पश्चात् अग्निदेव ने ऊर्जा-प्रवाह को प्रकट किया, तब हविष्य (मूल पदार्थ) बनाया । इस प्रकार यह दिव्य यज्ञ सम्पन्न हुआ । यह यज्ञ काया (प्राणियों एवं लोकों) का संरक्षक भी है । इसे द्युलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष जानते हैं ॥८ ॥

९७७०. यं देवासोऽजनयन्ताग्निं यस्मिन्नाजुहवुर्भुवनानि विश्वा ।
सो अर्चिषा पृथिवीं द्यामुतेमामृजूयमानो अतपन्महित्वा ॥९ ॥

जिस अग्नि का उत्पादन देवशक्तियों ने किया , जिस अग्नि में सम्पूर्ण लोक अपनी-अपनी आहुतियाँ समर्पित करते हैं , उसी अग्नि ने सरल मार्ग से पृथ्वी, द्युलोक और अन्तरिक्ष को ताप प्रदान किया ॥९ ॥

९७७१. स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्निमजीजनञ्छक्तिभी रोदसिप्राम् ।
तमू अकृण्वन् त्रेधा भुवे कं स ओषधीः पचति विश्वरूपाः ॥१० ॥

द्युलोक और पृथ्वी को संव्याप्त करने वाले अग्निदेव को देवताओं ने देवलोक में स्तुति-प्रार्थनाओं द्वारा प्रकट किया । उसी सुखप्रदायक अग्नि को उन्होंने तीन भावों (पृथ्वी , अन्तरिक्ष और द्युलोक) में बनाया, वही अग्निदेव पृथ्वी पर सर्वव्यापी ओषधियों को परिपक्व अवस्था प्रदान करते हैं ॥१० ॥

९७७२. यदेदेनमदधुर्यज्ञियासो दिवि देवाः सूर्यमादितेयम् ।
यदा चरिष्णू मिथुनावभूतामादित्प्रापश्यन्भुवनानि विश्वा ॥११ ॥

देवों ने जिस समय यज्ञीय क्रम में इन अग्निदेव को आदित्य (अखण्ड मूल ऊर्जा) तथा सूर्य रूप में आकाश में प्रतिष्ठित किया , तब विचरणशील युग्मों (धन एवं ऋण विभवयुक्त कणों) की रचना हुई । इसके बाद ही वे सम्पूर्ण लोकों को देखते हैं अर्थात् उसी समय इस सम्पूर्ण जगत् की रचना हुई ॥११ ॥

९७७३. विश्वस्मा अग्निं भुवनाय देवा वैश्वानरं केतुमह्नामकृण्वन् ।
आ यस्ततानोषसो विभातीरपो ऊर्णोति तमो अर्चिषा यन् ॥१२ ॥

जो अग्निदेव विशेष दीप्ति से युक्त उषाओं के निर्माता हैं और गमनशील होकर अन्धकार को अपनी तेजस्विता से नष्ट करते हैं; विश्व-कल्याणकारी उन अग्निदेव को सम्पूर्ण देवताओं ने दिन का प्रकाशक बनाया ॥१२

९७७४. वैश्वानरं कवयो यज्ञियासोऽग्निं देवा अजनयन्नजुर्यम्।
नक्षत्रं प्रत्नममिनच्चरिष्णु यक्षस्याध्यक्षं तविषं बृहन्तम् ॥१३ ॥

क्रान्तदर्शी और यज्ञार्थी देवताओं ने अजर वैश्वानर अग्निदेव को प्रकट किया । जिस समय अग्निदेव विस्तृत और महिमामय होते हैं, उस समय वे अन्तरिक्ष में प्राचीनकाल से विहार करने वाले नक्षत्रों को देवताओं के समक्ष ही निष्प्रभावी बना देते हैं ॥१३ ॥

९७७५. वैश्वानरं विश्वहा दीदिवांसं मन्त्रैरग्निं कविमच्छा वदामः ।
यो महिम्ना परिबभूवोर्वी उतावस्तादुत देवः परस्तात् ॥१४ ॥

सदैव दीप्तिमान्, क्रान्तदर्शी और विश्व मंगलकारी अग्निदेव की हम मन्त्रों द्वारा प्रार्थना करते हैं । जो अग्निदेव अपनी महत्त्वपूर्ण उपयोगिता से द्यावा-पृथिवी को परिपूर्ण करते हैं; वे अग्निदेव ऊपर और नीचे दोनों ओर से प्रकाशित होते हैं - तपते हैं ॥१४ ॥

९७७६. द्वे स्रुती अशृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥१५ ॥

पितरों, देवों और मनुष्यों के दो मार्गों (देवयान और पितृयान) से हम परिचित हैं । यह जगत् माता-पिता रूप द्यावा-पृथिवी के बीच प्रकट हुआ है । यह संसार अग्रसर होते हुए (देवलोक और पितृलोक को जाते हुए) उन दोनों (देवयान और पितृयान) मार्गों को प्राप्त करता है ॥१५ ॥

[अग्नि के यजनीय प्रयोगों से देवयान (देवप्रदायक) तथा पितृयान (लोकहितैषी मानवों) मार्गों की प्राप्ति होती है ।]

९७७७. द्वे समीची बिभृतश्चरन्तं शीर्षतो जातं मनसा विमृष्टम्।
स प्रत्यङ्विश्वा भुवनानि तस्थावप्रयुच्छन्तरणिर्भ्राजमानः ॥१६ ॥

परस्पर संयुक्त रूप से गतिशील रहने वाले द्यावा-पृथिवी, सूर्य से उत्पादित, मस्तक (ऊर्ध्व) स्थान पर विद्यमान, मननीय स्तुतियों से परिशोधित होकर अग्निदेव को धारण करते हैं । सबको तारने वाले वे देदीप्यमान अग्निदेव व्यतिक्रम रहित होकर अपने कार्य को करते हुए सम्पूर्ण लोकों के सम्मुख विद्यमान रहते हैं ॥१६ ॥

९७७८. यत्रा वदेते अवरः परश्च यज्ञन्योः कतरो नौ वि वेद ।
आ शेकुरित्सधमादं सखायो नक्षन्त यज्ञं क इदं वि वोचत् ॥१७ ॥

जिस समय नीचे के लोकों में व्याप्त और उच्च लोकों में संचरित अग्नि या वायु में विवाद होता है कि हम दोनों में यज्ञ से भली प्रकार कौन परिचित है ? उस समय मित्रवत् ऋत्विग्गण यज्ञ सम्पादित करते हैं; परन्तु उनमें कोई भी इस विवादास्पद निर्णय को (स्पष्ट) करने में सक्षम नहीं (दोनों ही अपने-अपने अद्भुत यज्ञ रचाते हैं)॥

९७७९. कत्यग्नयः कति सूर्यासः कत्युषासः कत्यु स्विदापः ।
नोपस्पिजं वः पितरो वदामि पृच्छामि वः कवयो विद्मने कम् ॥१८ ॥

हे पितरो ! हम आपसे स्पर्धाभाव से इन प्रश्नों को नहीं पूछते; ज्ञान प्राप्ति के लिए ही इन प्रश्नों को पूछने के इच्छुक हैं कि अग्नि कितने प्रकार की हैं ? सूर्य कितने हैं ? उषाएँ कितनी हैं तथा जलदेवता कितने प्रकार के हैं ?

९७८०. यावन्मात्रमुषसो न प्रतीकं सुपर्ण्यो३वसते मातरिश्वः ।
तावद्दधात्युप यज्ञमायन्ब्राह्मणो होतुरवरो निषीदन् ॥१९ ॥

हे वायुदेव ! जिस समय तक रात्रियाँ प्रभातवेला के तेज रूपी मुख का आवरण नहीं हटा देती हैं , तब तक वेदज्ञ ज्ञानियों में निम्नस्थ होता , अग्नि के समीप विराजमान होकर , यज्ञ के समीप बैठकर स्तोत्रों सहित उनकी उपासना करते हैं ॥१९ ॥

[सूक्त - ८९]

[ऋषि - रेणु वैश्वामित्र । देवता - इन्द्र, ५ इन्द्रासोम देवता । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

९७८१. इन्द्रं स्तवा नृतमं यस्य मह्ना विबबाधे रोचना वि ज्मो अन्तान् ।
आ यः पप्रौ चर्षणीधृद्वरोभिः प्र सिन्धुभ्यो रिरिचानो महित्वा ॥१ ॥

जो इन्द्रदेव अपनी महानता से प्रकाश को भी बाधित कर देते हैं और पृथ्वी के अंतरंग भागों को भी अभिभूत करते हैं ; मनुष्यों के धारणकर्त्ता जिनकी सामर्थ्य समुद्रों से भी अधिक है , वे विश्व को अन्धकारनाशक तेजस्विता से द्यावा-पृथिवी को संव्याप्त करते हैं । हे ऋत्विजो ! उन इन्द्रदेव की स्तुति करो ॥१ ॥

९७८२. स सूर्यः पर्युरू वरांस्येन्द्रो ववृत्याद्रथ्येव चक्रा ।
अतिष्ठन्तमपस्यं१न सर्गं कृष्णा तमांसि त्विष्या जघान ॥२ ॥

सामर्थ्यशाली इन्द्रदेव अपने तेज से अनेक लोकों को चारों ओर उसी प्रकार घुमाते हैं , जिस प्रकार सारथी चक्र को घुमाते हैं । निरन्तर गतिशील और सदा कर्मरत अश्वों के समान इस सृष्टि के चतुर्दिक् फैले, काले अन्धकार को इन्द्रदेव अपने प्रखर-तेज से विनष्ट करते हैं ॥२ ॥

९७८३. समानमस्मा अनपावृदर्च क्ष्मया दिवो असमं ब्रह्म नव्यम् ।
वि यः पृष्ठेव जनिमान्यर्य इन्द्रश्चिकाय न सखायमीषे ॥३ ॥

हे ऋत्विजो ! हमारे साथ संयुक्त होकर उन इन्द्रदेव के निमित्त उत्कृष्ट नूतन स्तोत्रों का उच्चारण करो, जो पृथ्वी और आकाश में अनुपम हैं । जो इन्द्रदेव यज्ञ में कहे गए पृष्ठनामक (या पोषक) स्तोत्र को पाने के लिए जिस प्रकार अभिलाषी हैं , वैसे ही शत्रुओं के निरीक्षण तथा मित्रों के संरक्षण के लिए भी तत्पर रहते हैं ॥३ ॥

९७८४. इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रेरयं सगरस्य बुध्नात् ।
यो अक्षेणेव चक्रिया शचीभिर्विष्वक्तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम् ॥४ ॥

इन्द्रदेवता अपनी क्षमता से द्युलोक और पृथिवीलोक को वैसे ही सँभाले हैं , जैसे चक्र को धुरा । उन इन्द्रदेव के लिए उच्चस्वर से उच्चारण की जाने वाली स्तुतियाँ अन्तरिक्ष से जल प्रवाहित करने में सक्षम होती हैं ॥४ ॥

९७८५. आपान्तमन्युस्तृपलप्रभर्मा धुनिः शिमीवाञ्छरुमाँ ऋजीषी ।
सोमो विश्वान्यतसा वनानि नार्वागिन्द्रं प्रतिमानानि देभुः ॥५ ॥

तेजस्विता के उत्पन्नकर्त्ता, शीघ्रता से अतिवेगपूर्ण प्रहारक , शत्रुओं को पराक्रम से कम्पायमान करने वाले, अनेक कर्मों के निर्वाहक , अस्त्र-शस्त्रधारी, सरल और धर्ममार्ग के प्रेरक सोमदेव सम्पूर्ण विस्तृत वनों में संव्याप्त होकर उन्हें (इन्द्रदेव को) संवर्द्धित करते हैं । कोई भी प्रतिमान इन्द्रदेव की समानता नहीं कर सकते ॥५ ॥

१७८६. न यस्य द्यावापृथिवी न धन्व नान्तरिक्षं नाद्रयः सोमो अक्षाः ।
यदस्य मन्युरधिनीयमानः शृणाति वीळु रुजति स्थिराणि ॥६ ॥

द्युलोक-पृथिवी, मरुस्थल, अन्तरिक्ष और पर्वत जिन इन्द्रदेव की समानता नहीं कर सकते, उन इन्द्रदेव के निमित्त सोमरस क्षरित होता है । जिस समय दुष्ट रिपुओं पर उनका क्रोध बरसता है , उस समय वे दृढ़ता से उन्हें विनष्ट करते हैं तथा स्थिर पदार्थों को भी तोड़ डालते हैं ॥६ ॥

१७८७. जघान वृत्रं स्वधितिर्वनेव रुरोज पुरो अरदन्न सिन्धून् ।
बिभेद गिरिं नवमिन्न कुम्भमा गा इन्द्रो अकृणुत स्वयुग्भिः ॥७ ॥

कुल्हाड़ी जैसे वनों को काट देती है , वैसे इन्द्रदेव ने असुरता का विनाश किया, शत्रुनगरियों को विनष्ट किया तथा कच्चे घड़े के समान मेघ को भग्न किया । इन्द्रदेव ने सहयोगी मरुद्‌गणों के साथ हमें जल प्रदान किया ॥७ ॥

१७८८. त्वं ह त्यदृणया इन्द्र धीरोऽसिर्न पर्व वृजिना शृणासि ।
प्र ये मित्रस्य वरुणस्य धाम युजं न जना मिनन्ति मित्रम् ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप धीर होकर स्तोताओं को उऋण करते हैं । जैसे खड्‌ग गाँठों को काटते हैं , उसी प्रकार आप साधकों के दुःखों को विनष्ट करते हैं । जो अज्ञानग्रस्त मनुष्य वरुण और मित्र के बन्धु के समान धारक कर्म में बाधक होते हैं , इन्द्रदेव उन्हें विनष्ट करते हैं ॥८ ॥

१७८९. प्र ये मित्रं प्रार्यमणं दुरेवाः प्र सङ्गिरः प्र वरुणं मिनन्ति ।
न्य१मित्रेषु वधमिन्द्र तुम्रं वृषन्वृषाणमरुषं शिशीहि ॥९ ॥

जो दुष्कर्मी लोग मित्र, अर्यमा, प्रशंसनीय मरुद्‌गण और वरुण को पीड़ित करते हैं; हे कामनावर्षक इन्द्रदेव ! उन शत्रुओं का संहार करने के लिए आप अपने वेगवान् , सामर्थ्यशाली और प्रदीप्त वज्रास्त्र को धारण करें ॥९ ॥

१७९०. इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या इन्द्रो अपामिन्द्र इत्पर्वतानाम् ।
इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणामिन्द्रः क्षेमे योगे हव्य इन्द्रः ॥१० ॥

द्युलोक , पृथ्वी, जल और पर्वतों आदि सबमें इन्द्र का आधिपत्य है । अनुभवशील वृद्धों और ज्ञानी मनुष्यों पर उनका ही स्वामित्व है । नवीन पदार्थों के पाने और प्राप्त पदार्थों के संरक्षण के लिए इन्द्रकी स्तुति करनी चाहिए।

१७९१. प्राक्तुभ्य इन्द्रः प्र वृधो अहभ्यः प्रान्तरिक्षात्प्र समुद्रस्य धासेः ।
प्र वातस्य प्रथसः प्र ज्मो अन्तात्प्र सिन्धुभ्यो रिरिचे प्र क्षितिभ्यः ॥११ ॥

रात्रि, दिवस, अन्तरिक्ष, जलधारणकर्त्ता समुद्र, वायु के विस्तृत स्थान, पृथ्वी की सीमा, नदियों और मनुष्यों आदि सभी से इन्द्रदेव की शक्ति महिमामय है । इन्द्रदेव सबका अतिक्रमण कर जाते हैं ॥११ ॥

१७९२. प्र शोशुचत्या उषसो न केतुरसिन्वा ते वर्ततामिन्द्र हेतिः ।
अश्मेव विध्य दिव आ सृजानस्तपिष्ठेन हेषसा द्रोघमित्रान् ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपका शत्रुहननकर्त्ता अक्षय वज्रास्त्र, ज्योतिर्मयी उषा की ध्वजा किरण के समान ही शत्रुओं को ध्वस्त करे । आप सन्तापकारी, भयंकर गर्जनकारी, आकाश से बिजली की तरह पड़ने वाले वज्र से विरोधी शत्रुओं का संहार करें ॥१२ ॥

९७९३. अन्वह मासा अन्विद्वनान्यन्वोषधीरनु पर्वतासः ।
अन्विन्द्रं रोदसी वावशाने अन्वापो अजिहत जायमानम् ॥१३ ॥

प्रकट होने के साथ इन्द्रदेव के पीछे-पीछे मास, वन, ओषधियाँ और पर्वत अनुगमन करते हैं । कान्तिमान् आकाश, पृथ्वी तथा जल ये सभी इन्द्रदेव का अनुगमन करते हैं ॥१३ ॥

९७९४. कर्हि स्वित्सा त इन्द्र चेत्यासदघस्य यद्भिनदो रक्ष एषत् ।
मित्रक्रुवो यच्छसने न गावः पृथिव्या आपृगमुया शयन्ते ॥१४ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रख्यात अस्त्र (या बाण) से , युद्ध करने वाले पापकर्मी राक्षसों को नष्ट करते हैं ; वह कब उत्पन्न होगा ? जिससे शिवद्रोही राक्षस , वध-स्थल पर पशुओं के समान मृत्यु को प्राप्त करके धराशायी हों ॥१४ ॥

९७९५. शत्रूयन्तो अभि ये नस्ततस्रे महि व्राधन्त ओगणास इन्द्र ।
अन्धेनामित्रास्तमसा सचन्तां सुज्योतिषो अक्तवस्ताँ अभि ष्युः ॥१५ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिन असुरों ने शत्रुतापूर्वक पीड़ा पहुँचाने की दृष्टि से हमें सभी ओर से घेर लिया है , वे शत्रु गहन अन्धकार में गिरें और प्रकाशमयी रात्रि भी उनके लिए अन्धकारमयी रात्रि सिद्ध हो ॥१५ ॥

९७९६. पुरूणि हि त्वा सवना जनानां ब्रह्माणि मन्दन्गृणतामृषीणाम् ।
इमामाघोषन्नवसा सहूतिं तिरो विश्वाँ अर्चतो याह्यर्वाङ् ॥१६ ॥

हे इन्द्रदेव ! यजमान आपके निमित्त यज्ञादि अनुष्ठान करते हैं । स्तोताओं द्वारा संयुक्तरूप से की जाने वाली प्रार्थनाओं द्वारा हम भी आपको हर्षित करते हैं, अतः प्रसन्न होकर आप संरक्षण के लिए हमारे निकट आएँ ॥१६ ॥

९७९७. एवा ते वयमिन्द्र भुञ्जतीनां विद्याम सुमतीनां नवानाम् ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विश्वामित्रा उत त इन्द्र नूनम् ॥१७ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम कृपापूर्वक संरक्षण करने वाले आपके अनुग्रह को ही उपलब्ध करें । इस हेतु हम बारम्बार आपकी नवीन स्तुतियाँ करते हैं । हम विश्वामित्र-वंशज निश्चित ही आपके अनुग्रह से श्रेष्ठ दिनों को प्राप्त करें ॥१७

९७९८. शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥१८ ॥

इस संग्राम में हम अतिपावन, ऐश्वर्याधिपति, यजमानों के अनुग्रहकर्त्ता, उग्र, युद्धेच्छुक शत्रुविनाशक , सम्पूर्ण धन-ऐश्वर्यों के विजेता तथा पुरुष श्रेष्ठ इन्द्रदेव को अन्न प्राप्ति के निमित्त तथा संरक्षणार्थ आवाहित करते हैं ॥१८ ॥

[सूक्त - ९०]

[ऋषि - नारायण । देवता - पुरुष । छन्द - अनुष्टुप्, १६ त्रिष्टुप् ।]

इस सूक्त के ऋषि नारायण हैं तथा देवता ' पुरुष ' हैं । प्रकारान्तर से वही ऋषि हैं , वही देवता हैं । इसे पुरुष सूक्त भी कहते हैं । इसमें परम पुरुष परमात्मा से विराट् यज्ञ पुरुष के प्रकट होने तथा उसके द्वारा क्रमशः सृष्टि विकसित होने का रहस्यात्मक विवेचन किया गया है । यह विवेचना भौतिक विज्ञान की अवधारणा से भिन्न नहीं है -

९७९९. सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१ ॥

सहस्रों शिर वाले , सहस्रों नेत्र वाले और सहस्रों चरण वाले जो विराट् पुरुष हैं , वे सारे ब्रह्माण्ड का अतिक्रमण करके उन दस अँगुलियों (निर्माण करने वाले अवयवों) में आवृत किये हुए हैं ॥१ ॥

९८००. पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् । उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२ ॥

जो सृष्टि बन चुकी है और जो बनने वाली है , यह सब विराट् पुरुष ही हैं । इनके एक चरण में ये सभी प्राणी हैं और तीन चरण अनन्त दिव्यलोक में स्थित हैं ॥२ ॥

९८०१. एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३ ॥

इस जगत् का जितना भी विस्तार है , उससे भी बड़ा वह विराट् पुरुष है । इस अमर जीव जगत् का भी वही स्वामी है । जो अन्न द्वारा वृद्धि प्राप्त करते हैं , उनके भी वही स्वामी हैं ॥३ ॥

९८०२. त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥४ ॥

ऊपर (दिव्यलोक में) जिसके तीन चरण हैं , उस विराट् पुरुष के एक भाग मे यह पुनः प्रकट हुआ । तब अन्न खाने वाले (प्राणियों) तथा अन्न न खाने वाले (वनस्पति आदि) को संव्याप्त किया ॥४ ॥

९८०३. तस्माद्विराळजायत विराजो अधिपूरुषः । स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः॥

अधिष्ठाता परम पुरुष-परमात्मा से उस विराट् (प्रकाशित मूल सृष्टि तत्त्व) की उत्पत्ति हुई । वह विराट् (मूल तत्त्व) प्रकट होने पर विभाजित होने लगा , उससे भूमि आदि पिण्डों तथा फिर प्राणियों की उत्पत्ति हुई ॥५ ॥

९८०४. यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥६ ॥

जब देवों ने उस विराट् पुरुष को हवि बनाकर यज्ञ (सृष्टि सृजन यज्ञ) करना प्रारम्भ किया, तो उसमें वसन्त ऋतु घृत की तरह , ग्रीष्म ऋतु समिधाओं (ईंधन) की तरह तथा शरद् ऋतु हविष्य की तरह प्रयुक्त हुई ॥६ ॥

९८०५. तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः । तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥७ ॥

जो देव और ऋषि (विशिष्ट प्राण-प्रवाह) उस यज्ञ के साध्य (साधनकर्त्ता) बने, उन्होंने उस पहले प्रकट यज्ञ पुरुष को ही यज्ञ में प्रोक्षित करके यजन कार्य किया ॥७ ॥

९८०६. तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशून्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये ॥८ ॥

उस सर्वहुत यज्ञ से तृप्तिकारक आज्य (पोषक सार तत्त्व) उत्पन्न हुआ । उससे वायु में गमनशील , वनों तथा ग्रामों में रहने वाले प्राणियों की उत्पत्ति हुई ॥८ ॥

९८०७. तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥

उस विराट् यज्ञ पुरुष से ऋग्वेद एवं सामगान का प्रकटीकरण हुआ । उसी से यजुर्वेद एवं अथर्ववेद की ऋचाओं का प्रकटीकरण हुआ ॥९ ॥

९८०८. तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।

गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः ॥१० ॥

उस विराट् यज्ञ पुरुष से दोनों तरफ दाँत वाले पशु , घोड़े , गौएँ , बकरी और भेड़ें आदि उत्पन्न हुए ॥१० ॥

९८०९. **यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।**
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥११ ॥

संकल्प द्वारा प्रकट हुए जिस विराट् पुरुष का , ज्ञानीजन विविध प्रकार से वर्णन करते हैं । वे उसकी कितने प्रकार से कल्पना करते हैं ? उसका मुख क्या है ? भुजाएँ , जाँघें और पाँव कौन से हैं ? शरीर संरचना में वह पुरुष किस प्रकार पूर्ण बना ? ॥११ ॥

९८१०. **ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।**
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥१२ ॥

इस विराट् पुरुष के मुख से ब्रह्मविद की , बाहुओं से शौर्यवान् क्षत्रिय, ऊरु प्रदेश से वैश्य (वितरण कर्त्ता) तथा पैरों से शूद्र (श्रमशील) वर्गों या प्रवृत्तियों की उत्पत्ति हुई ॥१२ ॥

९८११. **चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।**
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥१३ ॥

विराट् पुरुष परमात्मा के मन से चन्द्रमा , नेत्रों से सूर्य , कर्ण से वायु एवं प्राण तथा मुख से अग्नि का प्रकटीकरण हुआ ॥१३ ॥

९८१२. **नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।**
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥१४ ॥

विराट् पुरुष की नाभि से अन्तरिक्ष , सिर से द्युलोक , पैरों से भूमि, कानों से दिशाएँ प्रकट हुईं , इसी प्रकार लोकों को निर्मित किया गया है ॥१४ ॥

९८१३. **सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।**
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥१५ ॥

देवगण जब इस सृष्टियज्ञ का ताना-बाना फैला रहे थे, तो उन्होंने इसकी सात परिधियाँ बनायीं , तीन गुणित सात उसकी समिधाएँ हुईं । उसमें इस (स्वाधीन) पुरुष को , पशु (बन्धन युक्त चेतना) को आबद्ध किया गया ॥१५

[विश्व की सात परिधियाँ बड़ी महत्वपूर्ण हैं । परमाणु सारिणी के अनुसार परमाणु संरचना को सात विभागों में ही वितरित किया गया है । परमाणु के चारों ओर घूमने वाले इलैक्ट्रान्स अधिकतम सात प्रकोष्ठों (आर्बिट्स) में ही घूमते हैं । भूमि के अन्दर भी सात तहें (परिधियाँ) हैं तथा आकाश के भी ७ पर्त कहे गए हैं । आकाश, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी में तीन स्थानों पर अथवा तीन आयामों (थ्री डायमेंशन्स) में यह सात ही त्रिसप्त (तीन गुणा सात) कहे जा सकते हैं । यही इस यज्ञ को संचालित करने में ऊर्जा रूप ईंधन देते हैं । वह विभुरूप परमचेतना इसी प्रकार पिण्ड रूप में आबद्ध है ।]

९८१४. **यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।**
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१६ ॥

देवों ने यज्ञ पुरुष (यज्ञीय संकल्प) से ही यज्ञ (सृष्टिकर्म) का यजन कार्य किया । इस प्रकार के यजन को धर्म कार्यों में प्रथम स्थान प्राप्त है । इस प्रकार यज्ञीय संकल्प के अनुशासन में (यज्ञ रूप कर्म करने वाले) महिमा सम्पन्न लोग भी उन स्वर्गादि स्थानों में वास करने लगे, जहाँ इस प्रक्रिया के पूर्व साधन देवगण रहते थे ॥१६ ॥

[सूक्त - ९१]

[ऋषि - अरुण वैतहव्य । देवता - अग्नि । छन्द - जगती, १५ त्रिष्टुप् ।]

९८१५. सं जागृवद्भिर्जरमाण इध्यते दमे दमूना इषयन्निळस्पदे ।
विश्वस्य होता हविषो वरेण्यो विभुर्विभावा सुषखा सखीयते ॥१ ॥

जाग्रत् (ज्ञानवान्) पुरुषों से स्तुत्य अग्निदेव प्रज्वलित होते हैं । समस्त हवियों के होता, उदार, दानशील अग्निदेव अन्न की कामना करते हैं । वे श्रेष्ठ, सर्वव्यापी, प्रकाशवान् हैं तथा मित्र भाव रखने वाले के मित्र हैं ॥१ ॥

९८१६. स दर्शतश्रीरतिथिर्गृहेगृहे वनेवने शिश्रिये तक्ववीरिव ।
जनञ्जनं जन्यो नाति मन्यते विश आ क्षेति विश्यो३ विशंविशम् ॥२ ॥

सुशोभित और अतिथिरूप पूजनीय अग्निदेव यजमानों के प्रत्येक गृहों और वनों में रहते हैं । जन-हितैषी अग्निदेव प्रत्येक प्राणी में संव्याप्त होकर किसी की उपेक्षा नहीं करते, वे प्रजाजनों के लिए कल्याणकारी हैं तथा सभी मनुष्यों के गृह में वास करते हैं ॥२ ॥

९८१७. सुदक्षो दक्षैः क्रतुनासि सुक्रतुरग्ने कविः काव्येनासि विश्ववित् ।
वसुर्वसूनां क्षयसि त्वमेक इद् द्यावा च यानि पृथिवी च पुष्यतः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप कुशलता से उत्पन्न अति कुशल हैं । आप कर्मों में श्रेष्ठ कर्म हैं और काव्य (वेद मन्त्रों) से उत्पन्न क्रान्तदर्शी हैं । आप सर्वज्ञ और वैभव के स्थापक हैं । द्यावा और पृथिवी जिस धन के संवर्द्धक हैं ,उस सबके आप ही अद्वितीय स्वामी हैं ॥३ ॥

९८१८. प्रजानन्नग्ने तव योनिमृत्वियमिळायास्पदे घृतवन्तमासदः ।
आ ते चिकित्र उषसामिवेतयोऽरेपसः सूर्यस्येव रश्मयः ॥४ ॥

हे अग्ने !यज्ञस्थल के ऊपर यथासमय जो घृतयुक्त आवास बनाया गया है, आप वहाँ पहुँचकर विराजमान हों ।आपकी ज्वालाएँ उषाकाल की दीप्ति के समान विमल और सूर्य की किरणों के समान निर्दोष हैं ॥४ ॥

९८१९. तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतश्चित्राश्चिकित्र उषसां न केतवः ।
यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमास्ये ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! जब आप मुख में डाले गये अन्न (आहार) के रूप में ओषधियों , वृक्ष-वनस्पतियों को जलाते हैं , तब आपकी रश्मियाँ वर्षाकाल की विद्युत् अथवा उषाकाल के प्रकाश की भाँति प्रतीत होती हैं ॥५ ॥

९८२०. तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः ।
तमित्समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ॥६ ॥

ऋतु के अनुरूप उत्पन्न उस अग्नि (ऊर्जा) को ओषधियाँ गर्भ में धारण करती हैं । जल धाराएँ माता की तरह उसे पैदा करती हैं । वनस्पतियाँ और ओषधियाँ उसे गर्भरूप में धारण करके प्रकट करती हैं ॥६ ॥

[यहाँ प्रकृतिगत ऊर्जा चक्र का वर्णन है ।]

९८२१. वातोपधूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद्वितिष्ठसे ।
आ ते यतन्ते रथ्यो३ यथा पृथक् शर्धांस्यग्ने अजराणि धक्षतः ॥७ ॥

हे अग्ने ! वायु के द्वारा प्रकम्पित आप अपने प्रिय आहार वनस्पतियों की ओर प्रेरित होकर जब उसे लपटों द्वारा चारों ओर से घेर लेते हैं, उस समय आपका अदम्य तेज सब कुछ भस्म कर देने की इच्छा से, सभी दिशाओं में उसी प्रकार बढ़ता है, जैसे कोई रथ पर सवार शूरवीर हो ॥७ ॥

९८२२. मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निं होतारं परिभूतमं मतिम् ।
तमिदर्भे हविष्या समानमित्तमिन्महे वृणते नान्यं त्वत् ॥८ ॥

विवेक बुद्धि को बढ़ाने वाले, शत्रुओं का विनाश करने वाले, यज्ञ एवं देवताओं के होतारूप अग्निदेव की हम वन्दना करते हैं। हे अग्निदेव ! (थोड़ी अथवा बहुत) हविष्यान्न ग्रहण करने के लिए हम आपका समवेत स्वर में आवाहन करते हैं। आपके अतिरिक्त किसी अन्य को नहीं पुकारते ॥८ ॥

९८२३. त्वामिदत्र वृणते त्वायवो होतारमग्ने विदथेषु वेधसः ।
यद्देवयन्तो दधति प्रयांसि ते हविष्मन्तो मनवो वृक्तबर्हिषः ॥९ ॥

हे अग्ने ! यज्ञ काल में आपको प्रतिष्ठित करने की आकांक्षा करके होतारूप में आपका ही वरण करते हैं। सुखदायी देवों के अभिलाषी याजक, कुशाओं का छेदन करके आपके लिए ही आहुतियों को धारण करते हैं ॥९ ॥

९८२४. तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः ।
तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! यथाकाल आपको ही होता और पोता के कार्य का निर्वाह करना पड़ता है। यज्ञकर्ता यजमान के लिए आप ही नेष्टा और आग्नीध्र हैं। आप ही प्रशास्ता और अध्वर्यु के कार्यों को निभाते हैं। आप ही ब्रह्मा और घर में गृहपति हैं ॥१० ॥

[श्रौत यागों के विधिवत् सम्पादन हेतु ब्रह्मा और उनके सहयोगी ब्राह्मणाच्छंसी, आग्नीध्र और पोता; होता और उनके सहयोगी मैत्रावरुण, अच्छावाक् और ग्रावस्तुत्; उद्गाता और उनके सहयोगी प्रस्तोता, प्रतिहर्त्ता और सुब्रह्मण्य तथा अध्वर्यु और उनके सहयोगी प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा एवं उन्नेता-इस प्रकार कुल १६ ऋत्विक् होते हैं। यहाँ अग्निदेव को ऋत्विक् मण्डल के सम्पूर्ण दायित्व का सम्पादन करने वाला कहा गया है।]

९८२५. यस्तुभ्यमग्ने अमृताय मर्त्यः समिधा दाशदुत वा हविष्कृति ।
तस्य होता भवसि यासि दूत्य१मुप ब्रूषे यजस्यध्वरीयसि ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! जो मनुष्य आपको अमृतस्वरूप जानकर समिधा और हविष्यान्न समर्पित करते हैं, उनके लिए आप होता रूप होते हैं। उन्हीं के निमित्त आप देवों के पास दूतकर्म करते हैं। ब्रह्मा के समान आप उपदेश करते हैं; यजमान रूप में हवि समर्पित करते हैं तथा यज्ञ में अध्वर्यु का कार्य करते हैं ॥११ ॥

९८२६. इमा अस्मै मतयो वाचो अस्मदाँ ऋचो गिरः सुष्टुतयः समग्मत ।
वसूयवो वसवे जातवेदसे वृद्धासु चिद्वर्धनो यासु चाकनत् ॥१२ ॥

अग्निदेव के निमित्त ही ये सभी वेदवाक्य एवं स्तोत्र एकाग्रतापूर्वक कहे जाते हैं। सर्वज्ञ और आश्रयभूत अग्निदेव में अर्थ की कामना से युक्त ये सभी स्तोत्र समाहित होते हैं। श्री बढ़ाने वाले अग्निदेव इन स्तवनों के विस्तार से हर्षित होते हैं ॥१२ ॥

९८२७. इमां प्रत्नाय सुष्टुतिं नवीयसीं वोचेयमस्मा उशते शृणोतु नः ।
भूया अन्तरा हृद्यस्य निस्पृशे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥१३ ॥

स्तोत्र के अभिलाषी उन प्राचीन अग्निदेव के निमित्त सर्वोत्तम, नवीन और सुन्दर स्तोत्र कहते हैं । वे अग्निदेव हमारी प्रार्थना सुनें । सौभाग्यकांक्षिणी नारी की भाँति शोभनीय वस्त्रों एवं अलंकारों से सुसज्जित अग्निदेव को हम हृदय के मध्य धारण करते हैं ॥१३ ॥

९८२८. **यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः ।**
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनये चारुमग्नये ॥१४ ॥

अन्न-रस का पान करने वाले, सोम की आहुति ग्रहण करने वाले , श्रेष्ठमति वाले अग्निदेव के लिए मन और बुद्धि को शुद्ध करो; इससे ही अश्व, सेचन में समर्थ वृषभ, गौ और मेष, सज्जित होकर भेंट में प्राप्त होते हैं ॥१४ ॥

९८२९. **अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः ।**
वाजसनिं रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ॥१५ ॥

हे अग्ने ! हम आपकी ज्वालाओं में हवि का हवन करते हैं , जैसे स्रुवा में घृत और अभिषव के लिए प्रयुक्त पात्र में सोम रहता है , वैसे ही आप हमें अन्न, वीर पुत्रादि , प्रशंसनीय , श्रेष्ठ धन और सब लोकों में यशस्वी अपार वैभव प्रदान कर सुखी करें ॥१५ ॥

[सूक्त - ९२]

[**ऋषि** - शार्यात मानव । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - जगती ।]

९८३०. **यज्ञस्य वो रथ्यं विश्पतिं विशां होतारमक्तोरतिथिं विभावसुम् ।**
शोचञ्छुष्कासु हरिणीषु जर्भुरद्वृषा केतुर्यजतो द्यामशायत ॥१ ॥

हे देवगण ! आप यज्ञ के नायक, मनुष्यों के संरक्षक , होता, रात्रि के अतिथि और विविध ऐश्वर्यवान् अग्निदेव की अर्चना करें । सूखे काष्ठों को जलाने वाले और हरित काष्ठों में टेढ़े जाने वाले, सुखवर्षक यज्ञ के ध्वजरूप और यजनीय अग्निदेव आकाश में शयन करते हैं ॥१ ॥

९८३१. **इममञ्जस्पामुभये अकृण्वत धर्माणमग्निं विदथस्य साधनम् ।**
अक्तुं न यह्वमुषसः पुरोहितं तनूनपातमरुषस्य निंसते ॥२ ॥

देवताओं और मनुष्यों ने सर्वोपरि संरक्षक और धर्मधारक अग्निदेव को यज्ञ का साधक बनाया । वे तेजस्-सम्पन्न वायु के पुत्र और महान् पुरोधा हैं । उषाएँ उन्हें सूर्यदेव के समान ही स्पर्श करती हैं ॥२ ॥

९८३२. **बळस्य नीथा वि पणेश्च मन्महे वया अस्य प्रहुता आसुरत्तवे ।**
यदा घोरासो अमृतत्वमाशतादिज्जनस्य दैव्यस्य चर्किरन् ॥३ ॥

स्तुत्य अग्निदेव से सम्बन्धित हमारा ज्ञान सदैव सत्य हो, ऐसी हमारी अभिलाषा है । इस यज्ञाग्नि में प्रदत्त की गई हमारी आहुतियाँ अग्निदेव सेवन करें , ऐसी हम कामना करते हैं । जिस समय यज्ञाग्नि की प्रचण्ड ज्वालाएँ देदीप्यमान होती हैं , तभी हम अग्निदेव के निमित्त आहुतियाँ समर्पित करते हैं ॥३ ॥

९८३३. **ऋतस्य हि प्रसितिर्द्यौरुरु व्यचो नमो मह्य१रमतिः पनीयसी ।**
इन्द्रो मित्रो वरुणः सं चिकित्रिरेऽथो भगः सविता पूतदक्षसः ॥४ ॥

विस्तृत द्युलोक , व्यापक अन्तरिक्ष, अतिस्तुत्य और अनन्त पृथ्वी यज्ञाग्नि को प्रणाम करते हैं । इन्द्र , मित्र,

वरुण, भग, सविता आदि पवित्र सामर्थ्ययुक्त देवगण उन्हीं को सम्मानित करते हैं ॥४ ॥

९८३४. प्र रुद्रेण ययिना यन्ति सिन्धवस्तिरो महीमरमतिं दधन्विरे ।
येभिः परिज्मा परियन्नुरु ज्रयो वि रोरुवज्जठरे विश्वमुक्षते ॥५ ॥

नदियाँ गतिशील मरुद्गणों का सहयोग प्राप्त करके तीव्रता से प्रवाहित होती हैं और असीम भूक्षेत्र को आच्छादित करती हैं । सभी जगह विचरणशील इन्द्रदेव चारों ओर जाकर मरुतों की सहायता से आकाश में गरजते हैं और महावेगशील होकर सम्पूर्ण विश्व में जल बरसाते हैं ॥५ ॥

९८३५. क्राणा रुद्रा मरुतो विश्वकृष्टयो दिवः श्येनासो असुरस्य नीळयः ।
तेभिश्चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमेन्द्रो देवेभिरर्वशेभिरर्वशः ॥६ ॥

जिस समय मरुद्गण अपने कार्य को प्रारम्भ करते हैं , उस समय वे सभी मनुष्यों में संव्याप्त होते हैं । वे अन्तरिक्ष के श्येन पक्षी और मेघ के आश्रयभूत हैं । वरुण, मित्र, अर्यमा और अश्वारोही इन्द्रदेव वेगशील मरुद्गणों के साथ इन सभी प्रकरणों को देखते हैं ॥६ ॥

९८३६. इन्द्रे भुजं शशमानास आशत सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
प्र ये न्वस्यार्हणा ततक्षिरे युजं वज्रं नृषदनेषु कारवः ॥७ ॥

स्तोतागण इन्द्रदेव से संरक्षण एवं बल-पौरुष तथा सूर्यदेव से दृष्टि-सामर्थ्य प्राप्त करते हैं । जो स्तोता इन्द्रदेव की उचित रीति से स्तुति करते हैं , वे यज्ञकाल में इन्द्रदेव के वज्र को सहायक रूप में प्राप्त करते हैं ॥७ ॥

९८३७. सूरश्चिदा हरितो अस्य रीरमदिन्द्रादा कश्चिद्भयते तवीयसः ।
भीमस्य वृष्णो जठरादभिश्वसो दिवेदिवे सहुरिः स्तन्नबाधितः ॥८ ॥

इन्द्रदेव के भय से सूर्य भी अपने अश्वों को प्रेरित करते और मार्ग में चलते हुए सबको प्रसन्न करते हैं । जो इन्द्रदेव भयानक और जलवर्षक हैं , उनसे कौन भयभीत नहीं होता ? वे आकाश में गर्जना करते हैं । शत्रुओं का पराभव करने वाली वज्रध्वनि उन्हीं के प्रभाव से नित्य उत्पन्न होती रहती है ॥८ ॥

९८३८. स्तोमं वो अद्य रुद्राय शिक्वसे क्षयद्वीराय नमसा दिदिष्टन ।
येभिः शिवः स्ववाँ एवयावभिर्दिवः सिषक्ति स्वयशा निकामभिः ॥९ ॥

अश्वारूढ़ और उत्साहप्रद मरुद्गणों के सहयोग को प्राप्त कर आत्मशक्ति सम्पन्न, अपनी सामर्थ्य से स्वयं कीर्तिवान्, सुखप्रद, जो देव दिव्यलोक से साधकों की आकांक्षा को पूर्ण करते हैं । हे ऋत्विजो !आप निष्काम मरुद्गणों के साथ रहने वाले वीर शत्रुओं के हन्ता, सामर्थ्यशाली उन रुद्रदेव को नमन करें, स्तोत्र समर्पित करें ॥९ ॥

९८३९. ते हि प्रजाया अभरन्त वि श्रवो बृहस्पतिर्वृषभः सोमजामयः ।
यज्ञैरथर्वा प्रथमो वि धारयद्देवा दक्षैर्भृगवः सं चिकित्रिरे ॥१० ॥

कामवर्षक बृहस्पति और सोमाभिलाषी देवों ने प्रजा के लिए अन्नादि का संग्रह किया ।सर्वप्रथम अथर्वा ऋषि ने यज्ञ द्वारा देवों को आनन्दित किया, देवगण और भृगुकुलोत्पन्न ऋषि यज्ञ में गये और उसे समझा ॥१० ॥

९८४०. ते हि द्यावापृथिवी भूरिरेतसा नराशंसश्चतुरङ्गो यमोऽदितिः ।
देवस्त्वष्टा द्रविणोदा ऋभुक्षणः प्र रोदसी मरुतो विष्णुरर्हिरे ॥११ ॥

नराशंस यज्ञ में चार प्रकार की अग्नियाँ स्थापित की गईं । अतिवर्षक द्यावा-पृथिवी, यम, अदिति, धनदाता अग्निदेव, ऋभुक्षण, रुद्रपत्नी, मरुद्गण और विष्णु आदि सभी देव, यज्ञ में स्तोत्रों से स्तवित होते हैं ॥११ ॥

९८४१. उत स्य न उशिजामुर्विया कविरहिः शृणोतु बुध्न्यो३ हवीमनि ।
सूर्यामासा विचरन्ता दिविक्षिता धिया शमीनहुषी अस्य बोधतम् ॥१२ ॥

श्रेष्ठ आकांक्षा से हम लोग जिन विस्तृत स्तोत्रों का पाठ करते हैं , यज्ञकाल में अन्तरिक्षवासी अहिर्बुध्न्य अग्निदेव इन सभी स्तोत्रों को सुनें । आकाश में भ्रमण करने वाले सूर्य और चन्द्र भी आकाश में स्थित होकर अन्तःकरण से इन स्तोत्रों का श्रवण करें ॥१२ ॥

९८४२. प्र नः पूषा चरथं विश्वदेव्योऽपां नपादवतु वायुरिष्टये ।
आत्मानं वस्यो अभि वातमर्चत तदश्विना सुहवा यामनि श्रुतम् ॥१३ ॥

सम्पूर्ण देवताओं के कल्याणकारी और जल के वंशज पूषादेव, हमारे पशुओं आदि का संरक्षण करें । यज्ञ के निमित्त वायुदेव भी हमारे संरक्षक हों । आत्मरूप में स्थित वायुदेव की अन्न, धन के निमित्त अर्चना करें । हे स्तुत्य अश्विनीकुमारो ! मार्ग में गमन करने के लिए आप इन स्तोत्रों का श्रवण करें ॥१३ ॥

९८४३. विशामासामभयानामधिक्षितं गीर्भिरु स्वयशसं गृणीमसि ।
ग्नाभिर्विश्वाभिरदितिमनर्वणमक्तोर्युवानं नृमणा अधा पतिम् ।१४ ॥

अन्तःकरण में जो प्रजाजनों के अभयदाता स्वामी हैं , जो अपनी यशस्वी कीर्ति स्वयं उत्पादित करते हैं , उनकी हम प्रार्थना करते हैं। देव पत्नियों के साथ स्वतन्त्र (स्थिर) देवमाता अदिति और निशापति चन्द्रमा की हम प्रार्थना करते हैं। सभी मनुष्यों के अनुग्रहकर्त्ता आदित्य और सर्वजगत् पालक इन्द्रदेव की भी हम प्रार्थना करते हैं ॥१४ ॥

९८४४. रेभदत्र जनुषा पूर्वो अङ्गिरा ग्रावाण ऊर्ध्वा अभि चक्षुरध्वरम् ।
येभिर्विहाया अभवद्विचक्षणः पाथः सुमेकं स्वधितिर्वनन्वति ॥१५ ॥

इस यज्ञ में सुजन्मा अंगिरा ऋषि देवताओं की प्रार्थना करते हैं । जो (सोमवल्ली) पीसने के लिए पत्थरों को ऊपर उठाते हैं , वे अभिषवकर्त्ता भी यज्ञीय सोम को देखते और प्राप्त करते हैं । सर्वद्रष्टा इन्द्रदेव जिस सोमरस को पीकर हर्षित हुए , उन इन्द्रदेव का वज्रास्त्र आकाशमार्ग से अन्न उत्पादक जल को प्रकट करे ॥१५ ॥

[सूक्त - ९३]

[**ऋषि** - तान्व पार्थ । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - प्रस्तारपंक्ति; २, ३, १३ अनुष्टुप् , ९ अक्षर पंक्ति , ११ न्यङ्कुसारिणी, १५ पुरस्ताद् बृहती ।]

९८४५. महि द्यावापृथिवी भूतमुर्वी नारी यह्वी न रोदसी सदं नः ।
तेभिर्नः पातं सह्यस एभिर्नः पातं शूषणि ॥१ ॥

हे द्यावा-पृथिवि ! आप दोनों महान् विस्तार पाएँ । आप दोनों नारी (स्त्री या नेतृत्व में सक्षम) की भाँति हमारे लिए सदैव सहयोगी हों । इस प्रकार आप हमें शत्रुओं से बचाएँ । उनसे हमें हर प्रकार से संरक्षित करें ॥१ ॥

९८४६. यज्ञेयज्ञे स मर्त्यो देवान्त्सपर्यति । यः सुम्नैर्दीर्घश्रुत्तम आविवासात्येनान् ॥२ ॥

जो मनुष्य सम्पूर्ण यज्ञीय कार्यों में देवताओं की अर्चना करते हैं तथा जो विभिन्न शास्त्रों के श्रोता, सुखप्रद हवियों द्वारा देवों की अर्चना करते हैं (वे ही सच्चे सेवक हैं) ॥२ ॥

९८४७. विश्वेषामिरज्यवो देवानां वार्महः । विश्वे हि विश्वमहसो विश्वे यज्ञेषु यज्ञियाः ॥३ ॥

हे सर्वेश्वर ! देवताओं का महिमामय धारण योग्य ऐश्वर्य हमें प्रदान करें । आप निश्चय ही सम्पूर्ण तेजस्विता के धारणकर्त्ता और यज्ञों में अपना भाग पाने वाले हैं ॥३ ॥

९८४८. ते घा राजानो अमृतस्य मन्द्रा अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा ।
कद्रुद्रो नृणां स्तुतो मरुतः पूषणो भगः ॥४ ॥

अर्यमा, मित्र, सर्वज्ञ वरुण, लोगों के स्तवनीय रुद्र , सर्वपोषक मरुद्‌गण और भगदेव ये सभी देवगण स्तुति योग्य हैं । ये मनुष्यों के सुखदाता तथा अमृत के समान हविर्द्रव्यों के अधिपति हैं ॥४ ॥

९८४९. उत नो नक्तमपां वृषण्वसू सूर्यामासा सदनाय सधन्या ।
सचा यत्साद्येषामहिर्बुध्नेषु बुध्न्यः ॥५ ॥

हे वृषण्वसू (अश्विनीकुमारो) ! अहिर्बुध्न्य अग्निदेव जल (मेघों) के बीच उपस्थित रहते हैं । सूर्य और चन्द्र भी जल के संसाधन हैं । उनके साथ आप भी रात-दिन हमारे आवासों के लिए (रसों का) संचार करें ॥५ ॥

९८५०. उत नो देवावश्विना शुभस्पती धामभिर्मित्रावरुणा उरुष्यताम् ।
महः स राय एषतेऽति धन्वेव दुरिता ॥६ ॥

कल्याणकारी कर्मों के पालक अश्विनीकुमार , मित्र और वरुणदेव अपने शारीरिक तेज से हमारा संरक्षण करें । जिन यजमानों का ये देव संरक्षण करते हैं , वे महान् ऐश्वर्यों को प्राप्त करते हैं तथा वे मरुस्थल के समान (कष्टदायी स्थितियों से) पार हो जाते हैं ॥६ ॥

९८५१. उत नो रुद्रा चिन्मृळतामश्विना विश्वे देवासो रथस्पतिर्भगः ।
ऋभुर्वाज ऋभुक्षणः परिज्मा विश्ववेदसः ॥७ ॥

रुद्रपुत्र मरुत् , अश्विनीकुमार , रथारूढ़ पूषा, ऋभु , अन्नवान् भग, सर्वगामी इन्द्र और सर्वज्ञ ऋभुक्षण आदि सभी देवगण हमें सुख प्रदान करें । हम सभी देवताओं की प्रार्थना करते हैं ॥७ ॥

९८५२. ऋभुर्ऋभुक्षा ऋभुर्विधतो मद आ ते हरी जूजुवानस्य वाजिना ।
दुष्टरं यस्य साम चिदृधग्यज्ञो न मानुषः ॥८ ॥

महान् इन्द्रदेव यज्ञ द्वारा कान्तिमान् होते हैं । हे इन्द्रदेव ! आपके सेवक यजमान भी यज्ञ द्वारा आनन्दित होते हैं । यज्ञ की ओर अतिशीघ्रता से आने वाले आपके रथ के घोड़े अति सामर्थ्यवान् हैं । उनके यज्ञानुष्ठान मनुष्य के लिए साध्य नहीं हैं , वे सभी दिव्यतायुक्त हैं ॥८ ॥

९८५३. कृधी नो अह्रयो देव सवितः स च स्तुषे मघोनाम् ।
सहो न इन्द्रो वह्निभिर्न्येषां चर्षणीनां चक्रं रश्मिं न योयुवे ॥९ ॥

हे सवितादेव !आप हमें कभी लज्जित न होने दें ।आप स्तोताओं से स्तुत्य हैं । मरुतों के साथ निवास करने वाले इन्द्रदेव, रथचक्र और रश्मियों (लगामों या किरणों) के समान इन लोकों को हमारे लिए नियंत्रित करते हैं ॥९॥

९८५४. **ऐषु द्यावापृथिवी धातं महदस्मे वीरेषु विश्वचर्षणि श्रवः ।**
पृक्षं वाजस्य सातये पृक्षं रायोत तुर्वणे ॥१० ॥

हे द्यावा-पृथिवि ! आप हमारे इन वीरपुत्रों को जीवनोपयोगी महान् यश प्रदान करें ।आप शक्ति को उपार्जित करने के लिए पौष्टिक अन्नादि प्रदान करें तथा शत्रु के संहार और विपत्तियों से परित्राण के लिए धन प्रदान करें ॥१०॥

९८५५. **एतं शंसमिन्द्रास्मयुष्ट्वं कूचित्सन्तं सहसावन्नभिष्टये सदा पाह्यभिष्टये ।**
मेदतां वेदता वसो ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे समीप आगमन के लिए इच्छुक , आप कहीं भी स्थित स्तोताओं की अभीष्ट सिद्धि के लिए उनकी सदैव सुरक्षा करें । आपके प्रति जो स्तोता स्तुतिगान करते हैं , उनके अभिप्राय को आप सुनें ॥११ ॥

९८५६. **एतं मे स्तोमं तना न सूर्ये द्युतद्यामानं वावृधन्त नृणाम् ।**
संवननं नाश्व्यं तष्टेवानपच्युतम् ॥१२ ॥

जिस प्रकार सूर्यदेव की तेजस्वी रश्मियाँ व्यापक दीप्तिमान् ज्योति को फैलाती हैं , उसी प्रकार हमारे ये स्तोत्रगान मनुष्यों की श्री-सम्पदा को बढ़ाएँ । जैसे शिल्पकार अक्षय, शीघ्र गतिशील अश्वों से वहन योग्य सुदृढ़ रथ को बनाते हैं , उसी प्रकार हमने इन स्तोत्रों की रचना की है ॥१२ ॥

९८५७. **वावर्त येषां राया युक्तैषां हिरण्ययी । नेमधिता न पौंस्या वृथेव विष्टान्ता ॥१३ ॥**

जिनसे हम ऐश्वर्य की कामना करते हैं , उनके निमित्त हम अतिश्रेष्ठ स्तोत्रों का बार-बार उच्चारण करते हैं । जिस प्रकार युद्ध में क्रमबद्ध पराक्रम किये जाते हैं अथवा जैसे घटीचक्र क्रमबद्ध होकर आगे-पीछे चलता है , वैसे ही हमारे स्तोत्र भी हों ॥१३ ॥

९८५८. **प्र तद्दुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु ।**
ये युक्त्वाय पञ्च शतास्मयु पथा विश्राव्येषाम् ॥१४ ॥

जो देव पाँच सौ रथों में घोड़े जोतकर हमारे लिए यज्ञमार्ग में गमन करते हैं , उनके लिए प्रशंसनीय स्तोत्रों का उच्चारण हमने दुःशीम, पृथवान् , वेन और शक्तिशाली राम आदि ऐश्वर्यशाली नरेशों के समीप किया है ॥१४ ॥

९८५९. **अधीन्वत्र सप्ततिं च सप्त च ।**
सद्यो दिदिष्ट तान्वः सद्यो दिदिष्ट पार्थ्यः सद्यो दिदिष्ट मायवः ॥१५ ॥

उन नरेशों से तान्व, पार्थ्य और मायव आदि ऋषियों ने शीघ्र ही सतहत्तर गौओं की याचना (कामना) की ॥१५ ॥

[सूक्त - ९४]

[**ऋषि** - अर्बुद काद्रवेय (सर्प) । **देवता** - ग्रावा (प्रस्तर खण्ड) । **छन्द** - जगती; ५, ७, १४ त्रिष्टुप् ।]

९८६०. **प्रैते वदन्तु प्र वयं वदाम ग्रावभ्यो वाचं वदता वदद्भ्यः ।**
यदद्रयः पर्वताः साकमाशवः श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः ॥१ ॥

ये ग्रावा (पाषाण) अभिषव क्रिया करें । हम याजक उन ध्वनि करने वाले पाषाणों की प्रार्थना करते हैं । हे ऋत्विग्गण ! आप स्तोत्र-पाठ करें । जिस समय आदरणीय और सुदृढ़ ग्रावा, इन्द्रदेव के लिए सोमाभिषव की ध्वनि करते हैं , उस समय वे सोमपान करके सन्तुष्ट होते हैं ॥१ ॥

९८६१. **एते वदन्ति शतवत्सहस्रवदभि क्रन्दन्ति हरितेभिरासभिः ।**
विष्ट्वी ग्रावाणः सुकृतः सुकृत्यया होतुश्चित्पूर्वे हविरद्यमाशत ॥२ ॥

ये ग्रावा सैकड़ों और सहस्रों मनुष्यों के समान शब्दायमान, तेजस्वी मुखों से देवों को आवाहित करते हैं । उत्तमकर्मा ये पाषाण यज्ञ को प्राप्त करके देवों के आवाहक अग्निदेव से पहले ही सेवनीय हविष्यान्न को उपलब्ध करते हैं ॥२ ॥

९८६२. **एते वदन्त्यविदन्नना मधु न्यूङ्खयन्ते अधि पक्व आमिषि ।**
वृक्षस्य शाखामरुणस्य बप्सतस्ते सूभर्वा वृषभाः प्रेमराविषुः ॥३ ॥

लाल रंग की वृक्षशाखा का भक्षण करते हुए बैलों के समान ही ये ग्रावा शब्द करते हैं । मांसाहारी जिस प्रकार मांस के पकने पर आनन्दप्रद शब्द करते हैं, वैसे ही ये सोमाभिषव करते हुए ध्वनि करते हैं ॥३ ॥

९८६३. **बृहद्वदन्ति मदिरेण मन्दिनेन्द्रं क्रोशन्तोऽविदन्नना मधु ।**
संरभ्या धीराः स्वसृभिरनर्तिषुराघोषयन्तः पृथिवीमुपब्दिभिः ॥४ ॥

आनन्दप्रद चूसे (निचोड़े) जाते हुए सोम से इन्द्रदेव को आवाहित करते हुए ये ग्रावा-भयंकर ध्वनि करते हैं । इन्होंने मुख से (पान करने योग्य) आनन्दप्रद सोमरस को उपलब्ध किया । ये अभिषव कार्य में संलग्न और धीर-गम्भीर होकर अपनी शब्द गर्जनाओं से पृथ्वी को परिपूर्ण करते हुए भगिनीस्वरूपा अँगुलियों के साथ हर्षित होकर नाचते हैं ॥४ ॥

९८६४. **सुपर्णा वाचमक्रतोप द्यव्याखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः ।**
न्यङ्नि यन्त्युपरस्य निष्कृतं पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्वितः ॥५ ॥

पत्थरों की ध्वनि से लगता है कि अन्तरिक्ष में पक्षी कलरव कर रहे हैं । मृगभूमि में ये गतिशील कृष्णमृगों के समान गतिमान् होकर नाच रहे हैं । निष्पादित सुखदायी सोमरस को ये पत्थर नीचे गिराते हैं, मानों वे सूर्य के समान श्वेत वर्णरूप जल को ग्रहण करते हैं ॥५ ॥

९८६५. **उग्राइव प्रवहन्तः समायमुः साकं युक्ता वृषणो बिभ्रतो धुरः ।**
यच्छ्वसन्तो जग्रसाना अराविषुः शृण्व एषां प्रोथथो अर्वतामिव ॥६ ॥

जिस प्रकार बलिष्ठ अश्व पारस्परिक सहयोग से रथ के धुरे को धारण करके रथवहन करते हैं, वैसे ही ये कामनापूरक पाषाण यज्ञ के भार को धारण करके सोमरस को बरसाते हैं । जब ये सोम को ग्रहण करते हुए श्वास के साथ ध्वनि करते हैं - तभी अश्वों के समान इनके मुख से निकले हुए शब्दों को हम सुनते हैं ॥६ ॥

९८६६. **दशावनिभ्यो दशकक्ष्येभ्यो दशयोक्त्रेभ्यो दशयोजनेभ्यः ।**
दशाभीशुभ्यो अर्चताजरेभ्यो दश धुरो दश युक्ता वहद्भ्यः ॥७ ॥

दस अँगुलियों से आबद्ध, दस प्रकार के कर्मों के प्रकाशक, दस अश्वों के तुल्य, सोम के साथ संयोजित, दस प्रकार के कर्मों के निर्वाहक, संचालनकर्त्ता, दस प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न होकर अभिषवण कार्य को वहन करने वाले पत्थरों की महिमा का गुणगान करें ॥७ ॥

९८६७. **ते अद्रयो दशयन्त्रास आशवस्तेषामाधानं पर्येति हर्यतम् ।**
त ऊ सुतस्य सोम्यस्यान्धसोंऽशोः पीयूषं प्रथमस्य भेजिरे ॥८ ॥

ये पाषाण दस अँगुलियों को बन्धनरूप रस्सी के समान समझकर शीघ्रता से कार्य सम्पन्न करते हैं । इन पाषाणों का अभिषवण कार्य अत्यन्त प्रशंसनीय और गतिशील है । अभिस्रवित श्रेष्ठ सोमरस का भाग सबसे पहले इन्हें ही प्राप्त होता है ॥८ ॥

९८६८. ते सोमादो हरी इन्द्रस्य निंसतेंऽशुं दुहन्तो अध्यासते गवि ।
तेभिर्दुग्धं पपिवान्त्सोम्यं मध्विन्द्रो वर्धते प्रथते वृषायते ॥९ ॥

ये पाषाण सोम का सेवन करके इन्द्रदेव के दोनों अश्वों को चूमते (स्नेह करते) हैं । सोमरस अभिषवण क्रिया के समय वे शोधक यन्त्र के ऊपर विराजमान होते हैं । इन पाषाणों द्वारा सोमवल्ली से जिस मधुररस को निकाला जाता है , उसे पीकर इन्द्रदेव बढ़ते, विकसित होते और बलिष्ठ साँड़ के समान पराक्रम करते हैं ॥९ ॥

९८६९. वृषा वो अंशुर्न किला रिषाथनेळावन्तः सदमित्स्थनाशिताः ।
रैवत्येव महसा चारवः स्थन यस्य ग्रावाणो अजुषध्वमध्वरम् ॥१० ॥

हे पाषाणो ! सोमरस आपको यज्ञ में अभिलषित सामर्थ्य प्रदान करेंगे । आप कभी निराश अथवा क्षीण न हों । अन्नादि से सम्पन्नों के समान आप सदैव भोजनादि से सन्तुष्ट रहते हैं । आप जिसके यज्ञ को ग्रहण करते हैं, वे ऐश्वर्यशाली मनुष्यों के समान उज्ज्वल कान्ति से युक्त और कल्याणकारी होकर रहते हैं ॥१० ॥

९८७०. तृदिला अतृदिलासो अद्रयोऽश्रमणा अशृथिता अमृत्यवः ।
अनातुरा अजराः स्थामविष्णवः सुपीवसो अतृषिता अतृष्णजः ॥११ ॥

हे पाषाणो ! आपको परिश्रम, शिथिलता, मृत्यु , रुग्णता, जीर्णता, तृष्णा और स्पृहा कभी नहीं घेरते । आप स्वयं निराशा रहित होकर दूसरों (दुष्टों) को निराश करने वाले हों । आप (सार वस्तु को) समेटने तथा (अनुपयोगी को) फेंकने में कुशल हैं ॥११ ॥

९८७१. ध्रुवा एव वः पितरो युगेयुगे क्षेमकामासः सदसो न युञ्जते ।
अजुर्यासो हरिषाचो हरिद्रव आ द्यां रवेण पृथिवीमशुश्रवुः ॥१२ ॥

हे पाषाणो ! आपके पूर्वज पर्वत चिरकाल से अटल, पूर्ण अभिलाषाओं से युक्त और किसी भी कारण अपने स्थान से हटने को तैयार नहीं हैं । वे जीर्णता रहित, सोम वल्लियों से युक्त और हरिताभ होकर आकाश और पृथ्वी को अपने अभिषव शब्द से परिपूर्ण करते हैं ॥१२ ॥

९८७२. तदिद्वदन्त्यद्रयो विमोचने यामन्नञ्जस्पाइव घेदुपब्दिभिः ।
वपन्तो बीजमिव धान्याकृतः पृञ्चन्ति सोमं न मिनन्ति बप्सतः ॥१३ ॥

ये पाषाण उस सोम अभिषव क्रिया-काल में वेगशील रथों के समान ही ध्वनि करते हैं । अभिषव करने वाले पत्थर , धान्य का वपन करने वाले कृषकों के समान ही सोम को फैलाते हैं । ये उसे खाकर विनष्ट नहीं करते ॥१३ ॥

९८७३. सुते अध्वरे अधि वाचमक्रता क्रीळयो न मातरं तुदन्तः ।
वि षू मुञ्चा सुषुवुषो मनीषां वि वर्तन्तामद्रयश्चायमानाः ॥१४ ॥

पूजनीय पाषाण यज्ञ में सोम अभिषवण कार्य करते हुए उसी प्रकार ध्वनि करते हैं , जिस प्रकार क्रीड़ारत शिशु माता को हाथों से मारते हुए खुशी में किलकारी शब्द करते हैं । सोम के अभिषवण कार्य में प्रयुक्त पाषाणों की विभिन्न प्रकार से प्रार्थना करें । अब पाषाण अभिषवण कार्य को स्थगित करें ॥१४ ॥

[सूक्त - ९५]

[**ऋषि** - पुरूरवा ऐळ; २,४,५,७,११,१३,१५,१६,१८ उर्वशी (ऋषिका) । **देवता** - पुरूरवा ऐळ, १,३,६,८-१०,१२,१४,१७ उर्वशी । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

इस सूक्त में ' पुरूरवा ' (पति) तथा ' उर्वशी ' (पत्नी) का संवाद है। पौराणिक संदर्भ में अप्सरा उर्वशी का पुरूरवा से स्नेह हुआ। वह कुछ शर्तों के साथ पत्नी की तरह उनके पास रही। शर्तें टूटने पर वह लुप्त हो गई। पुरूरवा व्याकुल घूमने लगे। एक सरोवर पर वह अन्य अप्सराओं के साथ मिली, तब यह संवाद हुआ। व्युत्पत्तिशास्त्र के अनुसार 'पुरूरवा' का अर्थ ' विपुल शब्द वाला ' है। ' शब्द ', ज्ञान का प्रतीक है। अस्तु, ' पुरूरवा ' का तात्पर्य ' विपुल ज्ञान वाले ' या ' निर्देश देने में सक्षम ' हुआ। वे इळा पुत्र हैं, इळा-लक्ष्मी, सरस्वती दोनों का नाम है। ' धी ' एवं ' श्री ' युक्त होकर ही ' स्त्री ' प्राप्त करनी चाहिए, इस सूत्र का बोध इस प्रकरण से होता है। इसी प्रकार पत्नी को ' उर्वशी ' ' उरु अभ्यश्नुते ' बहुत गुणों वाली या ' उर ' - हृदय को वश में रखने वाली (उर्वशी) होना चाहिए।

गूढ़ सन्दर्भ में उर्वशी ' अप्सरा ' है। वह ब्रह्म से उत्पन्न मूल सक्रिय तत्त्व ' अप् ' से उत्पन्न है। उसे मूल तत्त्व अप् से उत्पन्न बृहद् प्रकृति कह सकते हैं। ' उर्वशी ' अप्सराओं में से है, जो ' उरु अभ्यश्नुते ' के अनुसार व्यापक गुणों या क्षेत्र वाली है अथवा ' उरु वशिनी ' विशाल इच्छा-प्रभाव या नियंत्रण में समर्थ है। स्कन्दाचार्य इसे विद्युत् के अर्थ में भी लेते हैं। पुरूरवा (शब्द, कलरव से जुड़ा) जीव कहा जा सकता है। निरुक्त (१०.४.४७) के अनुसार "प्राण एव हि पुरूरवा" - प्राण ही पुरूरवा है। जीव या प्राण, प्रकृति के समागम से सुखोपभोग करता है। प्रकृति उसके साथ अपनी ही शर्तों पर जुड़ती या विलग होती है। मंत्रार्थों का उक्त अनेक सन्दर्भों में अध्ययन किया जा सकता है -

९८७४. **हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे वचांसि मिश्रा कृणवावहै नु।**
न नौ मन्त्रा अनुदितास एते मयस्करन्परतरे चनाहन् ॥१ ॥

(पुरूरवा का कथन है) हे निष्ठुर पत्नि ! आप भावनापूर्वक कुछ समय के लिए ठहरें । हम दोनों का मिलन शीघ्र ही उपयोगी वार्त्ता से युक्त हो । वर्तमान समय में हम दोनों द्वारा किये गये पारस्परिक विचार-विमर्श से क्या हमारा भविष्य सुखप्रद नहीं हो सकता ? ॥१ ॥

९८७५. **किमेता वाचा कृणवा तवाहं प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव ।**
पुरूरवः पुनरस्तं परेहि दुरापना वातइवाहमस्मि ॥२ ॥

(उर्वशी की उक्ति) मात्र निरर्थक वार्त्ता से हमारा क्या भला होगा ?उषा के समान आपके समीप से मैं चली आ रही हूँ ।अत: हे पुरूरवा ! आप दुबारा अपने घर वापस जाएँ ।मैं आपके लिए वायु के समान ही दुर्लभ हूँ ॥२ ॥

९८७६. **इषुर्न श्रिय इषुधेरसना गोषाः शतसा न रंहिः ।**
अवीरे क्रतौ वि दविद्युतन्नोरा न मायुं चितयन्त धुनयः ॥३ ॥

(पुरूरवा की उक्ति) आपके विरह से व्यथित होकर मेरे तरकस से विजयश्री हेतु बाण नहीं छोड़े जाते, शक्तिशाली होते हुए भी मैं असंख्य गौओं (ऐश्वर्यों) को प्राप्त नहीं कर सकता । वीरतारहित होने से हमारे कर्म धूमिल हो गये हैं । युद्ध (जीवन-समर) में शत्रुओं को कम्पायमान करने वाला मैं सिंह गर्जना नहीं कर पाता ॥३ ॥

९८७७. **सा वसु दधती श्वशुराय वय उषो यदि वष्ट्यन्तिगृहात् ।**
अस्तं ननक्षे यस्मिञ्चाकन्दिवा नक्तं श्नथिता वैतसेन ॥४ ॥

उषाकाल (सृष्टि उद्भव के समय) में यदि यह (उर्वशी) श्वसुर (अपने वीर पुरुष अथवा श्वसुर-परमेश्वर) के निमित्त वैभव तथा आयु धारण करती, तो अपने घर (देह) में प्रवेश पाती और दिन-रात कामना करती हुई सुखोपभोग प्राप्त करती ॥४ ॥

९८७८. त्रिः स्म माह्नः श्नथयो वैतसेनोत स्म मेऽव्यत्यै पृणासि।
पुरूरवोऽनु ते केतमायं राजा मे वीर तन्व१स्तदासीः ॥५ ॥

(उर्वशी कहती है) हे पुरूरवा ! दिन (सृष्टि के प्रारम्भ) के समय आपने मुझे तीन बन्धनों (त्रिगुणों) से बाँधा है । किसी अन्य कान्तिहीन या अप्रजननशील के साथ मेरी प्रतिद्वंद्विता नहीं थी, उसी भाव से मैं आपकी काया के अनुरूप आश्रय प्राप्त करती थी । उस समय शरीर पर मेरा ही शासन चलता था ॥५ ॥

[' अव्यत्यै ' का अर्थ आचार्यों ने सपत्नी किया है; किन्तु धातु कोष के अनुसार - ' वी ' धातु से ' व्यती ' शब्द बनता है, जिसके अर्थ व्याप्ति, प्रजनन, कान्ति आदि होते हैं, तदनुसार अव्यती का अर्थ अप्रजननशील या कान्तिहीन उचित है ।]

९८७९. या सुजूर्णिः श्रेणिः सुम्नआपिर्ह्रदेचक्षुर्न ग्रन्थिनी चरण्युः ।
ता अञ्जयोऽरुणयो न सस्रुः श्रिये गावो न धेनवोऽनवन्त ॥६ ॥

(पुरूरवा कहते हैं - उर्वशी की सखियाँ) सुजूर्णि (उत्तम गतियुक्त), श्रेणि (पंक्तिबद्ध), सुम्ने आपि (सुखप्रदायक), ह्रदेचक्षु (जलागार-आकाश चक्षु वाली), चरण्यु (विचरणशील) आदि तेजस्वी अरुणाभ अप्सराएँ तुम्हारे जाने के बाद सज्जित होकर नहीं आतीं । वे सब श्री-सम्पन्न, धारण शक्ति सम्पन्न तथा वाणी या किरण-प्रकाश सम्पन्न देवियाँ अब शब्द (उद्घोष) करती नहीं आतीं ॥६ ॥

९८८०. समस्मिञ्जायमान आसत ग्ना उतेमवर्धन्नद्य१: स्वगूर्ताः ।
महे यत्त्वा पुरूरवो रणायावर्धयन्दस्युहत्याय देवाः ॥७ ॥

(उर्वशी की उक्ति) हे पुरूरवा ! जिस समय आपका जन्म हुआ, उस समय देवशक्तियाँ भी प्रादुर्भूत हुईं । प्रवाहवती नदियों ने स्वयं उनका संवर्द्धन किया । आपको महासंग्राम (जीवन-संग्राम) में रिपुओं के दलन के लिए देवताओं ने सामर्थ्य-शक्ति से सम्पन्न किया ॥७ ॥

९८८१. सचा यदासु जहतीष्वत्कममानुषीषु मानुषो निषेवे ।
अप स्म मत्तरसन्ती न भुज्युस्ता अत्रसन्रथस्पृशो नाश्वाः ॥८ ॥

(पुरूरवा का कथन) जब यह मनुष्य देहधारी अपने स्वरूप को छोड़कर (भूलकर) अमानवी (अप्सराओं-प्रकृति की शक्तियों) के उपभोग की लालसा से उनके पास जाता था, तो वे उसी प्रकार भाग (विलुप्त) जाती थीं, जैसे भयभीत हरिणी या रथयुक्त घोड़े ॥८ ॥

[प्राकृतिक शक्तियों - अप्सराओं को विशिष्ट उपयोग के लिए बनाया गया है । यह अनुशासन भूलकर मनुष्य उनका उपभोग करके सुख पाना चाहता है, तो सफल नहीं होता । उस समय प्रकृति को तृप्त करने वाली शक्ति लुप्त हो जाती है । मनुष्य (पुरूरवा) अतृप्त रह जाता है ।]

९८८२. यदासु मर्तो अमृतासु निस्पृक्सं क्षोणीभिः क्रतुभिर्न पृङ्क्ते ।
ता आतयो न तन्वः शुम्भत स्वा अश्वासो न क्रीळयो दन्दशानाः ॥९ ॥

जब इन देवलोकवासिनी अप्सराओं के साथ मनुष्य देहधारी ' पुरूरवा ' अतिस्नेहपूर्ण सम्वाद और क्रिया-कलापों में सहयोग हेतु गये, तो वे अन्तर्धान हो गईं अर्थात् अपने (शरीरों) को प्रकट नहीं किया । वे दाँतों से लगाम को काटते, क्रीड़ाशील अश्वों के समान भाग गईं ॥९ ॥

९८८३. विद्युन्न या पतन्ती दविद्योद्भरन्ती मे अप्या काम्यानि ।
जनिष्टो अपो नर्यः सुजातः प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः ॥१० ॥

उस उर्वशी ने अन्तरिक्ष से पतनशील विद्युत् के सदृश शुभ्रज्योति धारण की और मेरी सम्पूर्ण कामनाओं को पूरा किया। उनके गर्भ से क्रियाशील और मनुष्यों का कल्याणकारी सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। उर्वशी उसे दीर्घायुष्य प्रदान करती है ॥१०॥

[निर्धारित मर्यादा में उर्वशी-प्रकृति मनुष्य की सभी कामनाओं को पूर्ण करती हुई फलित होती है।]

९८८४. जज्ञिष इत्था गोपीथ्याय हि दधाथ तत्पुरूरवो म ओजः।
अशासं त्वा विदुषी सस्मिन्नहन्न म आशृणोः किमभुग्वदासि ॥११॥

(उर्वशी का कथन) हे पुरूरवा ! पृथ्वी के संरक्षण हेतु आपने पुत्र को जन्म दिया, मुझमें गर्भ की स्थापना की। इस बात से परिचित होकर मैंने बार-बार आपसे (मर्यादा पालन हेतु) कहा था; परन्तु आपने मेरे कथन पर ध्यान नहीं दिया। आपने पारस्परिक स्नेह को भंग किया है, अब शोक करने से कोई लाभ नहीं ॥११॥

९८८५. कदा सूनुः पितरं जात इच्छाच्चक्रन्नाश्रु वर्तयद्विजानन्।
को दम्पती समनसा वि यूयोदध यदग्निः श्वशुरेषु दीदयत् ॥१२॥

(पुरूरवा कहते हैं) ऐसा कब होगा कि जन्म पाकर पुत्र (जीव) आँसू न बहाता हुआ (भोगों में फँसकर दुःखी न होता हुआ) पिता परमेश्वर की इच्छा करेगा ? कौन श्रेष्ठ समान मन वाले दम्पतियों को विलग करता है ? (हे उर्वशी) तुम्हारे जैसा अग्नि (तेजस्वी पुत्र या चेतन जीव) कब श्वसुर गृह को प्रकाशित करेगा ? ॥१२॥

९८८६. प्रति ब्रवाणि वर्तयते अश्रु चक्रन्न क्रन्ददाध्ये शिवायै।
प्र तत्ते हिनवा यत्ते अस्मे परेह्यस्तं नहि मूर मापः ॥१३॥

(उर्वशी का उत्तर) हे पुरूरवा ! मैं आपके लिए बोलती हूँ; आप (या आपका पुत्र) अश्रु बहाते हुए न लौटें, ऐसी कल्याण कामना करती हूँ। आपका चाहा हुआ मैं आपके पास प्रेरित (या प्रेषित) कर दूँगी। आप अपने अन्दर जो (आसक्ति) है, उसे निकाल दें। मूर्ख व्यक्ति मेरा ठिकाना प्राप्त नहीं कर पाते ॥१३॥

९८८७. सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत्परावतं परमां गन्तवा उ।
अधा शयीत निर्ऋतेरुपस्थेऽधैनं वृका रभसासो अद्युः ॥१४॥

(पुरूरवा की उक्ति) आपके साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार करने वाला पति ' पुरूरवा ' आज पृथ्वी पर गिर पड़े अथवा संरक्षणरहित होकर दूरस्थ जाने के लिए प्रस्थान करे अथवा यहीं पृथ्वी पर शयन करे अर्थात् दुर्गति में मृत्यु को प्राप्त हो जाए अथवा उसे बलिष्ठ जंगल के वृक् आदि भक्षित कर लें ॥१४॥

९८८८. पुरूरवो मा मृथा मा प्र पप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उ क्षन्।
न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता ॥१५॥

(उर्वशी का कथन है) हे पुरूरवा ! आप मृत्यु को प्राप्त न हों, न यहाँ पृथ्वी पर गिरें तथा अमंगल-सूचक भेड़ियादि भी आपको भक्षित न करें, आपका विनाश न करें। स्त्रियों की मैत्री और स्नेह स्थायी नहीं होते। स्त्रियों और वृकों के हृदय समान होते हैं ॥१५॥

९८८९. यद्विरूपाचरं मर्त्येष्ववसं रात्रीः शरदश्चतस्रः।
घृतस्य स्तोकं सकृदह्न आश्नां तादेवेदं तातृपाणा चरामि ॥१६॥

(उर्वशी का कथन) मानवीय शरीरों को विभिन्न रूपों में धारण करके मनुष्यों के बीच मैंने भ्रमण किया।

आपके साथ मैं चार वर्षों तक रही । घृतादि (तेजस्) का स्वाद दिन में अनेक बार प्राप्त किया । उसी से सन्तुष्ट होकर मैं विचरण कर रही हूँ ॥१६ ॥

९८९०. अन्तरिक्षप्रां रजसो विमानीमुप शिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठः ।
उप त्वा रातिः सुकृतस्य तिष्ठान्नि वर्तस्व हृदयं तप्यते मे ॥१७ ॥

(पुरूरवा का कथन) अन्तरिक्ष को परिपूर्ण करने वाली और तेजस् उत्पन्न करने वाली उर्वशी को मैं वसिष्ठ (पुरूरवा) अपने नियन्त्रण में लेना चाहता हूँ । श्रेष्ठ कर्मयुक्त दाता (जीव) आपके समीप रहे अर्थात् आपको प्राप्त हो । मेरा हृदय आपके विरह में व्याकुल हो रहा है , इसलिये हे उर्वशी ! आप पुन: वापस लौटें ॥१७ ॥

९८९१. इति त्वा देवा इम आहुरैळ यथेमेतद्भवसि मृत्युबन्धुः ।
प्रजा ते देवान्हविषा यजाति स्वर्ग उ त्वमपि मादयासे ॥१८ ॥

(उर्वशी ने कहा) हे इळापुत्र पुरूरवा ! ये सम्पूर्ण देवगण आपके सम्बन्ध में कह रहे हैं कि आप मृत्यु पर विजय प्राप्त करेंगे, (जीवन को बन्धन न मानें) अर्चना (प्राप्त सम्पदा का यज्ञीय उपयोग) करेंगे और स्वर्ग में जाकर सुख तथा आनन्द प्राप्त करेंगे ॥१८ ॥

[सूक्त - ९६]

[**ऋषि** - बरु आङ्गिरस अथवा सर्वहरि ऐन्द्र । **देवता** - हरि । **छन्द** - जगती, १२-१३ त्रिष्टुप् ।]

९८९२. प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम् ।
घृतं न यो हरिभिश्चारु सेचत आ त्वा विशन्तु हरिवर्पसं गिरः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके दोनों घोड़ों की, इस महायज्ञ में हम अर्चना करते हैं । आपके सेवनीय, प्रशंसा-योग्य उत्साह की हम कामना करते हैं । जो इन्द्रदेव हरि (हरणशील सूर्यादि) के माध्यम से घृत (तेज अथवा जल) सिंचित करते हैं , ऐसे मनोहारी इन्द्रदेव के समीप हमारे स्तोत्र पहुँचें ॥१ ॥

९८९३. हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन्हिन्वन्तो हरी दिव्यं यथा सदः ।
आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शूषं हरिवन्तमर्चत ॥२ ॥

हे ऋत्विग्गण ! जिस प्रकार अश्व द्रुतगति से इन्द्रदेव को दिव्य धामों में पहुँचाते हैं , उसी प्रकार स्तोत्रों से इन्द्रदेव के दोनों अश्वों को यज्ञस्थल की ओर प्रेरित करें । अश्वों सहित इन्द्रदेव की कल्याणप्रद सामर्थ्य की स्तुति करें । जैसे गौएँ दूध देती हैं , उसी प्रकार आप भी हरिताभ सोम एवं स्तुतियों से इन्द्रदेव को तृप्त करें ॥२ ॥

९८९४. सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः ।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ॥३ ॥

इन्द्रदेव का जो वज्र हरित (हरणशील) और लौह धातु का है , उस शत्रुनाशक वज्र को दोनों हाथों से धारण किया जाता है । इन्द्रदेव वैभवशाली, सुन्दर हनुयुक्त हैं और क्रोधित होकर दुष्टजनों को बाणों द्वारा विनष्ट करने वाले हैं । हरिताभ सोम द्वारा इन्द्रदेव को अभिषिंचित किया जा रहा है ॥३ ॥

९८९५. दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद्वज्रो हरितो न रंह्या ।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिम्भरः ॥४ ॥

अन्तरिक्ष में सूर्य के सदृश कान्तिमान् वज्र, प्रशंसनीय होकर सबको संव्याप्त करता है , मानो उसने अपनी गति से रथ के वहनकर्त्ता अश्वों के सदृश ही सम्पूर्ण दिशाओं को संव्याप्त किया है । सुन्दर हनु से युक्त और सोमरस पानकर्त्ता इन्द्रदेव, लोहे से विनिर्मित वज्रास्त्र के द्वारा वृत्रासुर के हननकाल में असाधारण आभा युक्त हुए ॥४ ॥

९८९६. त्वंत्वमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः ।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्य१मसामि राधो हरिजात हर्यतम् ॥५ ॥

हे हरिकेश इन्द्रदेव ! पुरातन कालीन ऋषियों द्वारा आपकी ही यज्ञ में प्रार्थना की जाती थी तथा आप यज्ञ में उपस्थित होते थे । आप सबके स्पृहणीय और प्रशंसायोग्य हैं । हे इन्द्रदेव ! आपके सभी प्रकार के अन्न प्रशंसनीय हैं , आप कान्तिमान् और असाधारण विशेषताओं से सम्पन्न हैं ॥५ ॥

९८९७. ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी ।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ॥६ ॥

स्तुतियोग्य और वज्रधारी इन्द्रदेव जब सोमरस के पान हेतु हर्षित होकर सन्नद्ध होते हैं , तो उस समय दो सुन्दर हरितवर्ण घोड़े उनके रथ में जोते जाकर उनको वहन करते हैं । वहाँ (हमारे यज्ञस्थल में) इन कामना-योग्य इन्द्रदेव के निमित्त अनेक बार सोमरस का अभिषवण किया जाता है ॥६ ॥

९८९८. अरं कामाय हरयो दधन्विरे स्थिराय हिन्वन्हरयो हरी तुरा ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्जोषमीयते सो अस्य कामं हरिवन्तमानशे ॥७ ॥

इन्द्रदेव के निमित्त यथोचित मात्रा में सोमरस रखा गया है , उसी सोमरस द्वारा इन्द्रदेव के अविचल घोड़ों को यज्ञ की ओर वेगशील किया जाता है । गतिशील घोड़े जिस रथ को युद्ध-भूमि की ओर वहन करते हैं , वही रथ इन्द्रदेव को कमनीय और सोमरस-सम्पन्न यज्ञ में प्रतिष्ठित करता है ॥७ ॥

९८९९. हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिषद्धरी ॥८ ॥

हरि (किरणों) को श्मश्रु (दाढ़ी-मूंछ) एवं केशों के समान धारणकर्त्ता, लोहे के समान सुदृढ़ शरीरधारी इन्द्रदेव, तीव्रता से हर्षित करने वाले सोमरस का पान करके उत्साहित होते हैं । वे गतिशील अश्वों से यज्ञों तक पहुँचते हैं । दोनों अश्वों को जोतकर वे हमारे सभी प्रकार के विघ्नों का निवारण करें ॥८ ॥

९९००. स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्रे वाजाय हरिणी दविध्वतः ।
प्र यत्कृते चमसे मर्मृजद्धरी पीत्वा मदस्य हर्यतस्यान्धसः ॥९ ॥

इन्द्रदेव के दो हरितवर्ण अथवा दीप्तिमान् नेत्र यज्ञवेदी में दो स्रुवों के समान ही विशिष्ट ढंग से सोमरस पर केन्द्रित रहते हैं । उनके हरित वर्ण के दोनों जबड़े सोमपान हेतु कम्पायमान होते हैं । शोधित चमस-पात्र में जो अति सुखप्रद, उज्ज्वल सोमरस था, उसे पीकर वे अपने दोनों अश्वों के शरीरों को परिमार्जित करते हैं ॥९ ॥

९९०१. उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्यो३ रत्यो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत् ।
मही चिद्धि धिषणाहर्यदोजसा बृहद्वयो दधिषे हर्यतश्चिदा ॥१० ॥

कान्तिमान् इन्द्रदेव का आवास द्यावा-पृथिवी पर ही है । वे रथारूढ़ होकर घोड़े के समान ही अतिवेग से

समरक्षेत्र में गमन करते हैं। हे इन्द्रदेव ! उत्कृष्ट स्तोत्र आपको प्रशंसित करते हैं। आप अपनी सामर्थ्यानुसार विपुल अन्न को धारण करते हैं ॥१०॥

९९०२. **आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्यंनव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम्।**
प्र पस्त्यमसुर हर्यतं गोराविष्कृधि हरये सूर्याय ॥११॥

हे इन्द्रदेव ! आप अपनी महत्ता से द्यावा-पृथिवी को संव्याप्त करते हैं और नवीन प्रिय स्तोत्रों की कामना करते हैं। हे बल-सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप गो (पृथ्वी) को हर्षित करने के लिए प्रेरक सूर्यदेव के लिए घर की तरह आकाश को प्रकट करते हैं ॥११॥

९९०३. **आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र।**
पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन्यज्ञं सधमादे दशोणिम् ॥१२॥

हे सुन्दर हनुयुक्त इन्द्रदेव ! आपके अश्व, रथ में जोते जाकर मनुष्यों द्वारा सम्पादित यज्ञ में आपको पहुँचाएँ। आपके निमित्त जो प्रेमपूर्वक तैयार किया गया, मधुर सोमरस प्रस्तुत है, उसे आप पिएँ। दस अँगुलियों से अभिषवित सोमरस, जो यज्ञ का साधनरूप है, आप युद्ध में विजय हेतु उसे पीने की कामना करें ॥१२॥

९९०४. **अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते।**
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषञ्जठर आ वृषस्व ॥१३॥

हे अश्वयुक्त इन्द्रदेव ! पहले प्रातः सवन में सोमरस दिया गया है, उसको आपने ग्रहण किया। इस समय (माध्यन्दिन सवन में) जो सोम प्रस्तुत है, वह मात्र आपके निमित्त ही है। आप इस मीठे सोमरस से आनन्द प्राप्त करें। हे विपुल वृष्टिकर्त्ता इन्द्रदेव ! आप अपने उदर को सोमरस से परिपूर्ण करें ॥१३॥

[सूक्त - ९७]

[**ऋषि** - भिषक् आथर्वण। **देवता** - ओषधि समूह। **छन्द** - अनुष्टुप्।]

९९०५. **या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।**
मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च ॥१॥

सृष्टि के प्रारम्भ में जो ओषधियाँ देवताओं द्वारा वसन्त, वर्षा, शरद इन तीन ऋतुओं में उत्पन्न हुई हैं, (पककर) पीत वर्ण हुई उन ओषधियों के एक सौ सात स्थानों का ज्ञान हमें है।१॥

९९०६. **शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः।**
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥२॥

हे मातृवत् पोषणगुण-सम्पन्न ओषधियो ! आप सभी के सैकड़ों नाम हैं और सहस्रों अर्थात् असंख्य अङ्कुर हैं। सैकड़ों कर्मों को सिद्ध करने वाली हे ओषधियो ! आप सभी हमें आरोग्य प्रदान करें ॥२॥

९९०७. **ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः। अश्वाइव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्ण्वः।**

हे ओषधियो ! आप वेगवान् घोड़े के समान ही अनेक प्रकार की शत्रुवत् व्याधियों को तेजी से नष्ट करने वाली हों। पुष्पों से युक्त तथा फलोत्पादित गुणों से सम्पन्न आप हमारे लिए आनन्दप्रद सिद्ध हों ॥३॥

९९०८. **ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे। सनेयमश्वं गां वास आत्मानं तव पूरुष ॥४**

हे ओषधियो ! आप माता के समान पालनशक्ति से युक्त, दिव्य गुणों से सम्पन्न हैं , आपके ऐसे गुणों की हम प्रशंसा करते हैं, इसे आप स्वीकार करें । हे पुरुष (यज्ञदेव या चिकित्सक) ! गौ, घोड़े, वस्त्र और स्वयं को मैं आपके निमित्त अर्पित करता हूँ ॥४ ॥

९९०९. **अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।**
गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥५ ॥

अश्वत्थ और पलाश वृक्ष पर निवास करने वाली हे ओषधियो ! आप यजमान को जीवनी-शक्ति प्रदान करके, उस पर अनुग्रह करती हैं , जिसके लिए आप विशिष्ट कृतज्ञता की पात्र हैं ॥५ ॥

९९१०. **यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव । विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः**

जैसे राजागण समर में एकत्रित हो जाते हैं, उसी प्रकार जिसके पास ओषधियाँ एकत्र होती हैं, वही ज्ञानवान् व्यक्ति चिकित्सक कहलाता है । वही पीड़ाओं और व्याधियों का निवारण कर पाता है ॥६ ॥

९९११. **अश्वावतीं सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् ।**
आवित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये ॥७ ॥

इस (यजमान के) रोगों को दूर करने के लिये अश्ववती (शक्तिशाली) , सोमवती (शान्तिदायक) , ऊर्जवन्ती (ऊर्जा प्रदायक) , उदोजस् (ओजस्विता की पोषक) आदि समस्त ओषधियों के दिव्य गुणों से हम भलीप्रकार परिचित हैं ॥७ ॥

९९१२. **उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते । धनं सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥८**

जैसे गोशाला से गौएँ बाहर की ओर जाती हैं, वैसे ही (यज्ञ के प्रभाव से) ओषधियों की सामर्थ्य विस्तृत वायुमण्डल में फैल जाती है । हे पुरुष ! ये ओषधियाँ आपको स्वास्थ्य तथा सम्पदा प्रदान करेंगी ॥८ ॥

९९१३. **इष्कृतिर्नाम वो माताथो यूयं स्थ निष्कृतीः ।**
सीराः पतत्रिणीः स्थन यदामयति निष्कृथ ॥९ ॥

हे ओषधियो ! आप विकारों को दूर करने वाली माता की भाँति 'निष्कृति' अर्थात् रोगों का निवारण करने वाली हैं । क्षुधाहरण करने वाले अन्न के समान ही आप मनुष्यों में स्थित रोगों को दूर करें ॥९ ॥

९९१४. **अति विश्वाः परिष्ठाः स्तेनइव व्रजमक्रमुः ।**
ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किं च तन्वो३ रपः ॥१० ॥

चोर द्वारा गौओं के बाड़े पर आक्रमण करने के समान ही, अपने गुणों से सर्वत्र व्याप्त ओषधियाँ भी रोग समूह पर आक्रमण करती हैं तथा शरीर के समस्त विकारों को अपनी आरोग्यवर्द्धक सामर्थ्य से दूर करती हैं ॥१० ।

९९१५. **यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे ।**
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥११ ॥

विशेष शक्ति-सम्पन्न इन ओषधियों को सेवन करने के लिए जब हम हाथ में धारण करते हैं, तब राजयक्ष्मा (टी० बी०) जैसे भयानक रोग अपने को उसीप्रकार नष्ट मानते हैं, जैसे वधगृह में पहुँचने से पूर्व ही वध हेतु ले जाया जा रहा प्राणी, अपने को मरा हुआ मानता है ॥११ ॥

९९१६. **यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः । ततो यक्ष्मं वि बाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव ॥**